CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

मत्स्य-पुराण

[अंतिमखण्ड]

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

(संस्करण १,७०,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर फाल्गुन, श्रीकृष्ण-संवत् ५२१०, फरवरी १९८५

अध्याय विषय	पृष्ठ-संख्या
सहज कृपामय भगवान् विष्णु [कविता] ...	८९७
२२८—अद्भुत शान्तिका वर्णन ...	९१२
२२९—उत्पातोंके भेद तथा कतिपय ऋतुस्वभावजन्य शुभदायक अद्भुतोंका वर्णन ...	९१४
२३०—अद्भुत उत्पातके लक्षण तथा उनकी शान्तिके उपाय ...	९१६
२३१—अग्निसम्बन्धी उत्पातके लक्षण तथा उनकी शान्तिके उपाय ...	९१७
२३२—वृक्षजन्य उत्पातके लक्षण और उनकी शान्तिके उपाय ...	९१८
२३३—वृष्टिजन्य उत्पातके लक्षण और उनकी शान्तिके उपाय ...	९२०
२३४—जलाशयजनित विकृतियाँ और उनकी शान्तिके उपाय ...	९२१
२३५—प्रसवजनित विकारका वर्णन और उसकी शान्ति ...	९२१
२३६—उपस्कर-विकृतिके लक्षण और उनकी शान्ति ...	९२२
२३७—पशु-पक्षी-सम्बन्धी उत्पात और उनकी शान्ति	९२२
२३८—राजाकी मृत्यु तथा देशके विनाशसूचक लक्षण और उनकी शान्ति ...	९२४
२३९—ग्रहयोगका विधान ...	९२५
२४०—राजाओंकी विजयार्थ यात्राका विधान ...	९२८
२४१—अङ्गस्फुरणके शुभाशुभ फल ...	९३०
२४२—शुभाशुभ स्वप्नोंके लक्षण ...	९३२
२४३—शुभाशुभ शकुनोंका निरूपण ...	९३४
२४४—वामन-प्रादुर्भाव-प्रसङ्गमें श्रीभगवान्-द्वारा अदितिको वरदान ...	९३६
२४५—बलिद्वारा विष्णुकी निन्दापर प्रह्लादद्वारा उन्हें शाप, बलिका अनुनय, ब्रह्माजीद्वारा वामनभगवान्‌का स्तवन, भगवान् वामनका देवताओंको आश्वासन तथा उनका बलिके यज्ञके लिये प्रस्थान ...	९४१

चित्र-सूची

१—भगवान् मत्स्य (रेखा-चित्र) आवरण-पृष्ठ

२—भगवान् श्रीहरिद्वारा गजेन्द्रका उद्धार (रंगीन चित्र) मुख-पृष्ठ

प्रत्येक साधारण अङ्कका मूल्य
भारतमें १.०० रु०
विदेशमें १० पेंस

जय विराट् जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

कल्याणका वार्षिक मूल्य
भारतमें २४.०० रु०
विदेशमें ६०.०० रु०
(४ पौण्ड)

संस्थापक—ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

सम्पादक—राधेश्याम खेमका

गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये जगदीशप्रसाद जालानद्वारा गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

[भारत-सरकारद्वारा उपलब्ध कराये गये रियायती मूल्यके कागजपर मुद्रित]

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

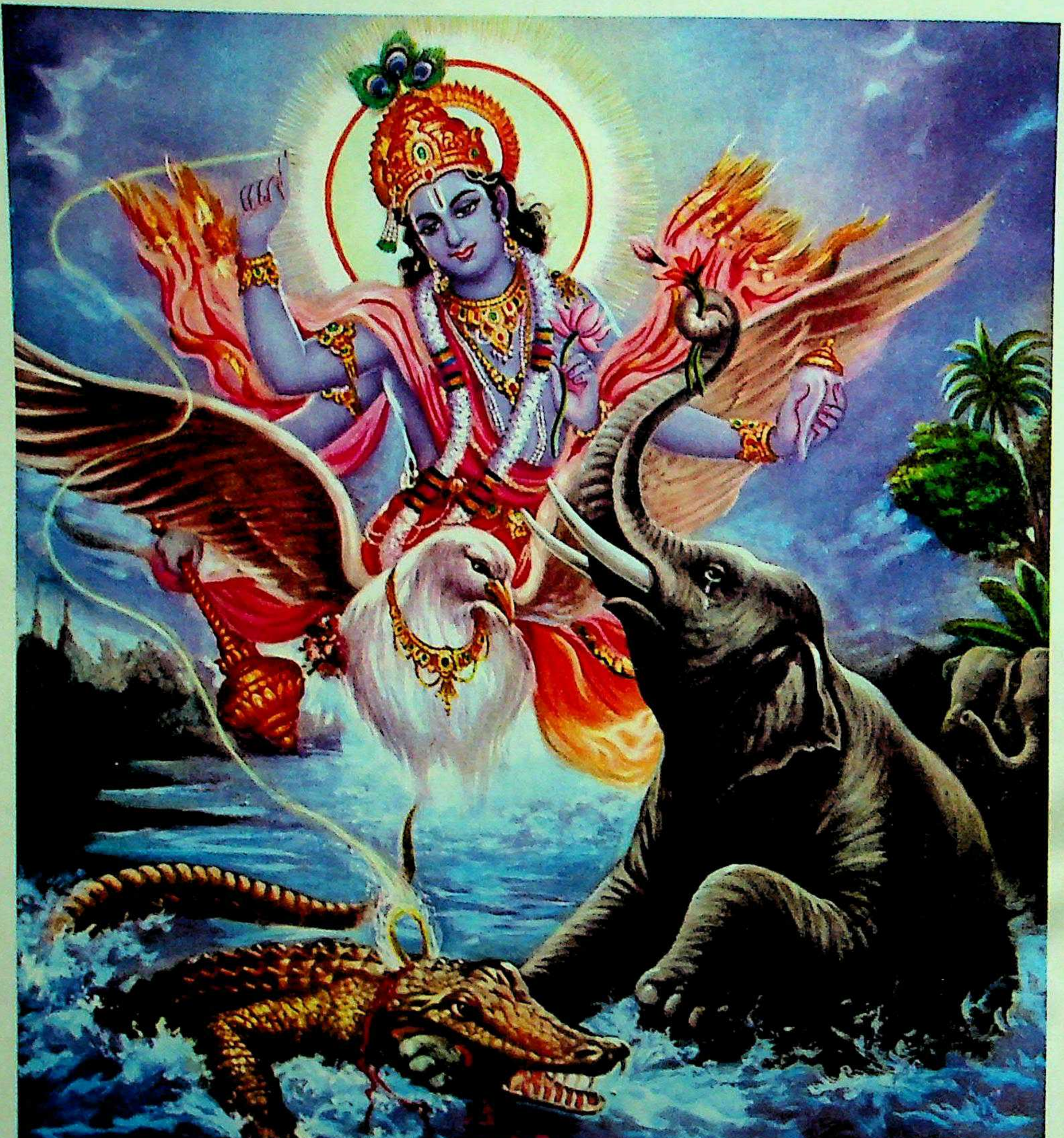

भगवान् श्रीहरिद्वारा गजेन्द्रका उद्धार

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

कल्याण

वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते ।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते म्लेच्छान् मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः ॥

वर्ष ५९ } गोरखपुर, सौर फाल्गुन, श्रीकृष्ण-संवत् ५२१०, फरवरी १९८५ ई० { संख्या २
पूर्ण संख्या ६९९

सहज कृपामय भगवान् विष्णु

हरि-सम आपदा-हरन ।
नहिं कोउ सहज कृपालु दुसह दुख-सागर-तरन ॥ १ ॥
गज निज बल अवलोकि कमल गहि गयो सरन ।
दीन बचन सुनि चले गरुड़ तजि सुनाभ-धरन ॥ २ ॥
द्रुपदसुताको लग्यो दुसासन नगन करन ।
'हा हरि पाहि' कहत पूरे पट बिबिध बरन ॥ ३ ॥
इहै जानि सुर-नर-मुनि-कोविद सेवत चरन ।
तुलसिदास प्रभु को न अभय कियो नृग उद्धरन ॥ ४ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

वर्णानामानुपूर्व्येण त्रयाणामविशेषतः । अकार्यकारिणः सर्वान् प्रायश्चित्तानि कारयेत् ॥ ३३ ॥
अमत्या च प्रमाप्य स्त्रीं शूद्रहत्याव्रतं चरेत् । दानेन च धनेनैकं सर्पादीनामशक्नुवन् ॥ ३४ ॥
एकैकं स चरेत् कृच्छ्रं द्विजः पापापनुत्तये । फलदानां च वृक्षाणां छेदने जप्यमृक्शतम् ॥ ३५ ॥
गुल्मवल्लीलतानां च पुष्पितानां च वीरुधाम् ।
अस्थिमतां च सत्त्वानां सहस्रस्य प्रमापणे । पूर्णे वानस्यवस्थातुं शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ॥ ३६ ॥
किंचिद् देयं च विप्राय दद्यादस्थिमतां वधे । अनस्थ्नां चैव हिंसायां प्राणायामैर्विशुद्ध्यति ॥ ३७ ॥
अन्नादिजानां सत्त्वानां रसजानां च सर्वशः । फलपुष्पोद्गतानां च घृतप्राशो विशोधनम् ॥ ३८ ॥
कृष्टानामोषधीनां च जातानां च स्वयं वने । वृथाच्छेदेन गच्छेत दिनमेकं पयोव्रती ॥ ३९ ॥
एतैर्व्रतैरपोह्यं स्यादेनो हिंसासमुद्भवम् । स्तेयदोषापहर्तॄणां श्रूयतां व्रतमुत्तमम् ॥ ४० ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य—इन तीनों वर्णोंके लोग समाजमें अपनी स्थितिके बिना किसी विशेषताके क्रमसे यदि निषिद्ध कार्य करते हैं तो उन सबसे प्रायश्चित्त करवाना चाहिये । यदि कोई अनजानमें स्त्रीका वध कर देता है तो उसे शूद्र-हत्या-व्रतका पालन करना चाहिये । सर्पादिकी हत्या कर धन-दान करनेमें असमर्थ द्विजको पाप-शान्तिके लिये एक-एक कृच्छ्रव्रतका आचरण करना चाहिये । फल देनेवाले वृक्षों, फूली हुई लताओं, गुल्मों, वल्लियों तथा फूले हुए वृक्षोंको काटनेपर सौ ऋचाओंका जप करना चाहिये । एक सहस्र अथवा एक गाड़ीमें भर जानेके योग्य हड्डीवाले जीवोंकी हत्या करनेवालेको शूद्रहत्या-का प्रायश्चित्त करना चाहिये । हड्डीवाले जानवरोंकी हत्या करनेपर ब्राह्मणको कुछ दान देना चाहिये और जो बिना हड्डीके हैं, उनकी हिंसा करनेपर प्राणायामसे शुद्धि हो जाती है । अन्नादिसे एवं रससे उत्पन्न होनेवाले तथा फलों और पुष्पोंमें पैदा होनेवाले जन्तुओंकी हिंसा करनेपर घृत-पान ही प्रायश्चित्त है । जुताईसे उत्पन्न हुई तथा वनमें स्वतः उगी हुई ओषधियोंको बिना आवश्यकताके काटनेपर एक दिनका दुग्धव्रत करना चाहिये । हिंसासे उत्पन्न हुआ पातक इन व्रतोंसे दूर किया जा सकता है । अब चोर-कर्मसे उत्पन्न हुए पापको दूर करनेके लिये उत्तम व्रत सुनिये ॥ ३३–४० ॥

धान्यान्नधनचौर्याणि कृत्वा कामाद् द्विजोत्तमः । सजातीयगृहादेव कृच्छ्रार्धेन विशुद्ध्यति ॥ ४१ ॥
मनुष्याणां तु हरणे स्त्रीणां क्षेत्रगृहस्य तु । कूपवापीजलानां तु शुद्धिश्चान्द्रायणं स्मृतम् ॥ ४२ ॥
द्रव्याणामल्पसाराणां स्तेयं कृत्वान्यवेश्मतः । चरेत् सान्तपनं कृच्छ्रं तन्निर्यात्यविशुद्धये ॥ ४३ ॥
भक्ष्यभोज्यापहरणे यानशय्यासनस्य तु । पुष्पमूलफलानां तु पञ्चगव्यं विशोधनम् ॥ ४४ ॥
तृणकाष्ठद्रुमाणां तु शुष्कान्नस्य गुडस्य च । चैलचर्मामिषाणां तु त्रिरात्रं स्यादभोजनम् ॥ ४५ ॥
मणिमुक्ताप्रवालानां ताम्रस्य रजतस्य च । अयस्कांस्योपलानां च द्वादशाहं कणान्नभुक् ॥ ४६ ॥
कार्पासकीटजोर्णानां द्विशफैकशफस्य च । पक्षिगन्धौषधीनां च रज्ज्वाश्चैव त्र्यहं पयः ॥ ४७ ॥
एतैर्व्रतैर्व्यपोहेत पापं स्तेयकृतं द्विजः । अगम्यागमनीयं तु व्रतैरेभिरपानुदेत् ॥ ४८ ॥
गुरुतल्पव्रतं कुर्याद् रेतः सिक्त्वा स्वयोनिषु । सख्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु कुमारीष्वन्त्यजासु च ॥ ४९ ॥
पैतृष्वस्रीयभगिनीं स्वस्रीयां मातुरेव च । भ्रातुर्दुहितरं चैव गत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ ५० ॥

यदि ब्राह्मण अपनी जातिवालोंके घरसे इच्छापूर्वक धान्य, अन्न और धनकी चोरी करता है तो वह अर्ध-कृच्छ्रव्रतसे शुद्ध होता है । मनुष्य, स्त्री, खेत, घर, कूप और बावलीके जलका हरण करनेपर शुद्धिके लिये चान्द्रायणव्रतका विधान है । दूसरेके घरसे थोड़ी मूल्यवाली वस्तुओंकी चोरी करनेपर उससे शुद्ध होनेके लिये कृच्छ्रसांतपन-व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये । भक्ष्य, भोज्य, वाहन, शय्या, आसन, पुष्प, मूल और फलकी चोरी करनेपर उसका प्रायश्चित्त पञ्चगव्य-पान है । तृण, काष्ठ, वृक्ष, सूखा अन्न, गुड, वस्त्र, चमड़ा

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

*

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

तथा मांसकी चोरी करनेपर तीन राततक उपवास करना चाहिये। मणि, मोती, प्रवाल, ताँबा, चाँदी, लोहा, काँसा तथा पत्थरकी चोरी करनेपर बारह दिनोंतक अन्नके कणोंका भोजन करना चाहिये। सूती, रेशमी, ऊनी वस्त्र, दो तथा एक खुरवाले पशु, पक्षी, सुगन्धित द्रव्य, ओषधि तथा रस्सीकी चोरी करनेपर तीन दिनतक केवल जल पीकर रहना चाहिये। ब्राह्मणको इन व्रतोंद्वारा चोरीसे उत्पन्न हुए पापका निवारण करना चाहिये। अगम्या स्त्रीके साथ समागम करनेसे उत्पन्न हुए पापको इन व्रतोंद्वारा नष्ट करना चाहिये। अपनी जातिकी परायी स्त्रीके साथ समागम करके गुरुतल्प-व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये अर्थात् गुरुकी स्त्रीके साथ समागम करनेपर जो प्रायश्चित्त कहा गया है, उसका अनुष्ठान करना चाहिये। मित्र तथा पुत्रकी स्त्री, कुमारी कन्या, नीच जातिकी स्त्री (चाण्डाली), फुफेरी तथा मौसेरी बहन और भाईकी कन्याके साथ समागम करनेपर चान्द्रायण-व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये ॥ ४८-५० ॥

एताः स्त्रियस्तु भार्यार्थे नोपगच्छेत्तु बुद्धिमान्। ज्ञातीनां च स्त्रियो यास्तु पतितानुगताश्च याः ॥ ५१ ॥
अमानुषीषु पुरुषो उदक्यायामयोनिषु। रेतः सिक्त्वा जले चैव कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥ ५२ ॥
मैथुनं च समालोक्य पुंसि योषिति वा द्विजः। गोयानेऽप्सु दिवा चैव सवासाः स्नानमाचरेत् ॥ ५३ ॥
चाण्डालान्त्यस्त्रियो गत्वा भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च। पतत्यज्ञानतो विप्रो ज्ञानात् साम्यं तु गच्छति ॥ ५४ ॥
विप्रदुष्टां स्त्रियं भर्त्ता निरुन्ध्यादेकवेश्मनि। यत् पुंसः परदारेषु तच्चैनां चारयेद् व्रतम् ॥ ५५ ॥
सा चेत् पुनः प्रदुष्येत्तु सदृशेनोपमन्त्रिता। कृच्छ्रं चान्द्रायणं चैव तत् तस्याः पावनं स्मृतम् ॥ ५६ ॥
यः करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनं द्विजः। तद्भक्ष्यभुग् जपेन्नित्यं त्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति ॥ ५७ ॥
एषा पापकृतामुक्ता चतुर्णामपि निष्कृतिः। पतितैः सम्प्रयुक्तानामिमां शृणुत निष्कृतिम् ॥ ५८ ॥

बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि जो स्त्रियाँ अपनी जातिकी हों तथा जो पतितोंकी अनुगामिनी हों, उनके साथ भार्याके समान समागम न करे। मनुष्यसे भिन्न योनि, ऋतुमती स्त्री तथा योनिद्वारसे अन्यत्र अथवा जलमें वीर्यपात करके पुरुषको कृच्छ्र-सान्तपन नामक व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। बैलगाड़ीपर, जलमें तथा दिनमें स्त्री-पुरुषके मैथुनको देखकर ब्राह्मणको वस्त्रसहित स्नान करना चाहिये। ब्राह्मण यदि अज्ञानसे चाण्डाल और अन्त्यज स्त्रियोंके साथ सम्भोग, उनके यहाँ भोजन और उनका दिया हुआ दान ग्रहण करता है तो वह पतित हो जाता है और जान-बूझकर करता है तो वह उन्हींके समान हो जाता है। ब्राह्मणद्वारा दूषित स्त्रीको उसका पति एक घरमें बंद कर दे। इसी प्रकार दूसरेकी स्त्रियोंसे समागम करनेवाले पुरुषको भी यही व्रत करना चाहिये। यदि वह स्त्री पुनः किसी परकीय पुरुषसे दूषित होती है तो उसे शुद्ध करनेके लिये कृच्छ्रचान्द्रायण व्रतका अनुष्ठान बताया गया है। जो द्विज एक रात भी शूद्रा स्त्रीके साथ समागम करता है तथा उसका दिया हुआ अन्न भोजन करता है, वह तीन वर्षोंतक निरन्तर गायत्री-जप करनेसे शुद्ध होता है। चारों वर्णोंके पापियोंके लिये यह प्रायश्चित्त कहा गया है। अब पतितोंके संसर्गमें होनेवाले पापके लिये यह प्रायश्चित्त सुनिये ॥ ५१-५८ ॥

संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन्। याजनाध्यापनाद् योनादनुयानाशनासनात् ॥ ५९ ॥
यो येन पतितेनैषां संसर्गं याति मानवः। स तस्यैव व्रतं कुर्यात् तत्संसर्गविशुद्धये ॥ ६० ॥
पतितस्योदकं कार्यं सपिण्डैर्बान्धवैः सह। निन्दितेऽहनि सायाह्ने ज्ञातिभिर्गुरुसंनिधौ ॥ ६१ ॥
दासी घटमपां पूर्णं पर्यस्येत् प्रेतवत् सदा। अहोरात्रमुपासीरन् नाशौचं बान्धवैः सह ॥ ६२ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

निवर्तयेरंस्तस्मात्तु सम्भाषणसहासनम्। दायादस्य प्रमाणं च यात्रामेव च लौकिकीम् ॥ ६३ ॥
ज्येष्ठाभावान्निवर्तेत ज्येष्ठ्यावाप्तं च यत्पुनः। ज्येष्ठांशं प्राप्नुयाच्चास्य यवीयान् गुणतोऽधिकः ॥ ६४ ॥
स्थापितां चापि मर्यादां ये भिन्द्युः पापकर्मिणः। सर्वे पृथग्दण्डनीया राज्ञा प्रथमसाहसम् ॥ ६५ ॥
शतं ब्राह्मणमाक्रुश्य क्षत्रियो दण्डमर्हति। वैश्यस्तु द्विशतं राजञ् शूद्रस्तु वधमर्हति ॥ ६६ ॥
पञ्चाशद् ब्राह्मणो दण्ड्यः क्षत्रियस्याभिशंसने। वैश्यस्याप्यर्धपञ्चाशच्छूद्रे द्वादशको दमः ॥ ६७ ॥
क्षत्रियस्याप्नुयाद्वैश्यः साहसं पूर्वमेव च। शूद्रः क्षत्रियमाक्रुश्य जिह्वाच्छेदनमाप्नुयात् ॥ ६८ ॥

पतितके साथ यज्ञानुष्ठान, अध्यापन, यौन-सम्बन्ध, भोजन, एक वाहनपर गमन तथा आसनपर उपवेशन करनेसे भला मनुष्य (भी) एक वर्षमें पतित हो जाता है। जो मनुष्य इन कर्मोंमें जिस पतितका संसर्ग प्राप्त करता है, उसे उस संसर्गदोषकी शुद्धिके लिये उसी पतितके व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। उसके सपिण्ड भाई-बन्धुओंको जातिवालोंके साथ किसी निन्दित दिनको सायंकालके समय गुरुके समीप उस पतितके लिये उदक-क्रिया करनी चाहिये। दासी उक्त व्यक्तिके लिये प्रेतकी तरह जलपूर्ण घट रखे, परिवारवालोंके साथ एक दिन-रातका उपवास करे और अशौचके समान व्यवहार करे। परिवारवालोंके लिये उसके साथ वार्तालाप करना और एक आसनपर बैठना निषिद्ध है। इस पाप-कर्मकी जातिको भी उन्हें नहीं प्रकट करना चाहिये—यह लोककी मर्यादा है। जिस प्रकार ज्येष्ठ भाईके न रहनेपर उसके हिस्सेकी प्राप्ति छोटे भाईको होती है, उसी प्रकार अधिक गुणवान् होनेपर भी छोटे भाईको उसका फल भोगना पड़ता है। जो पापाचारी प्राणी निश्चित की गयी मर्यादाको तोड़ देते हैं, उन्हें राजा पृथक्-पृथक् जाति-क्रमके अनुसार प्रथम साहस(२५०पण)का दण्ड दे। राजन्! यदि क्षत्रिय होकर ब्राह्मणको कटु वचन कहता है तो उसे सौ मुद्राका दण्ड देना चाहिये। यदि वैश्य है तो उसे दो सौ मुद्राका और यदि शूद्र है तो उसे प्राण-दण्ड देना चाहिये। यदि ब्राह्मण क्षत्रियको कटु बातें कहे तो उसे पचास पण, वैश्यको कहे तो पचीस पण तथा शूद्रको कहे तो बारह पणका दण्ड देना चाहिये। यदि वैश्य क्षत्रियको कटु वचन कहता है तो उसे पूर्वोक्त साहसका दण्ड देना चाहिये और शूद्र क्षत्रियको कटूक्ति सुनाता है तो उसकी जीभ काट लेनी चाहिये ॥ ५९—६८ ॥

पञ्चाशत्क्षत्रियो दण्ड्यस्तथा वैश्याभिशंसने। शूद्रे चैवार्धपञ्चाशत्तथा धर्मो न हीयते ॥ ६९ ॥
वैश्यस्याक्रोशने दण्ड्यः शूद्रश्चोत्तमसाहसम्। शूद्राक्रोशे तथा वैश्यः शतार्धं दण्डमर्हति ॥ ७० ॥
सवर्णाक्रोशने दण्ड्यस्तथा द्वादशकं स्मृतम्। वादेष्ववचनीयेषु तदेव द्विगुणं भवेत् ॥ ७१ ॥
एकजातिर्द्विजातिं तु वाचा दारुणया क्षिपन्। जिह्वायाः प्राप्नुयाच्छेदं जघन्यः प्रथमो हि सः ॥ ७२ ॥
नामजातिग्रहं तेषामभिद्रोहेण कुर्वतः। निक्षेप्योऽयोमयः शङ्कुर्ज्वलन्नास्ये दशाङ्गुलः ॥ ७३ ॥
धर्मोपदेशं शूद्रस्तु द्विजानामभिकुर्वतः। तप्तमासेचयेत्तैलं वक्त्रे श्रोत्रे च पार्थिवः ॥ ७४ ॥
श्रुतिं देशं च जातिं च कर्म शारीरमेव च। वितथं च ब्रुवन् दण्ड्यो राज्ञा द्विगुणसाहसम् ॥ ७५ ॥
यस्तु पातकसंयुक्तः क्षिपेद् वर्णान्तरं नरः। उत्तमं साहसं दण्डः पात्यस्तस्मिन् यथाक्रमम् ॥ ७६ ॥
राज्ञो निवेशनियमं वितथं यान्ति वै मिथः। सर्वे द्विगुणदण्ड्यास्ते विप्रलम्भान्नृपस्य तु ॥ ७७ ॥
प्रीत्या मयास्याभिहितं प्रमादेनाथवा वदेत्। भूयो न चैवं वक्ष्यामि स तु दण्डार्धभाग्भवेत् ॥ ७८ ॥

क्षत्रिय यदि वैश्यको बुरा-भला कहता है तो उसे पचास और शूद्रको कहता है तो पचीस पणका दण्ड देना चाहिये। ऐसा करनेसे उसका धर्म क्षीण नहीं होता। शूद्र यदि वैश्यको कटु वचन कहे तो उसे उत्तम साहस(हजारपण)का दण्ड देना चाहिये और वैश्य होकर शूद्रको बुरा-भला कह रहा है तो वह पचास पणके दण्डका भागी होता है। यदि कोई अपने वर्णवालेको कटूक्ति सुनाता है तो उसे बारह पणका दण्ड देना चाहिये तथा

Sri Vidyabharathi Book Centre Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

अकथनीय बातें कहनेपर वह दण्ड दुगुना हो जाता है। यदि द्विजातिसे भिन्न जातिवाला किसी द्विजातिको कठोर वाणीसे बुरा-भला कहता है तो उसकी जीभ काट लेनी चाहिये और उसे परम नीच समझना चाहिये। अधिक द्रोहवश नाम, जाति तथा वर्णकी निन्दा करनेवालेके मुखमें लोहेकी बारह अंगुल लम्बी जलती हुई शलाका डाल देनी चाहिये। राजाको द्विजातिको धर्मोपदेश करनेवाले शूद्रके मुख और कानमें खौलता हुआ तेल डाल देना चाहिये। वेद, देश, जाति और शारीरिक कर्मको निष्फल बतलानेवाला राजाद्वारा मध्यम साहस(५०० पण)के दण्डका भागी होता है। जो मनुष्य स्वयं पापाचारी होकर दूसरे वर्णकी निन्दा करता है, उसे राजा जातिके अनुरूप उत्तम साहसका दण्ड दे। जो राजाके बनाये हुए नियमकी अवहेलना करते हैं अथवा राजाकी निन्दा करते हैं, उन सबको मध्यम साहसका दण्ड देना चाहिये। जो व्यक्ति 'मैंने प्रेमवश अथवा प्रमादसे ऐसा कहा है, अब पुनः ऐसा नहीं कहूँगा' ऐसा कहकर अपराध स्वीकार कर लेता है, वह आधे दण्डका पात्र है ॥ ६९–७८ ॥

काणं वाप्यथवा खञ्जमन्धं चापि तथाविधम्। तथ्येनापि ब्रुवन् दाप्यो दण्डं कार्षापणं धनम् ॥ ७९ ॥
मातरं पितरं ज्येष्ठं भ्रातरं श्वशुरं गुरुम्। आक्रोशयञ् शतं दण्ड्यः पन्थानं चाददन् गुरोः॥ ८० ॥
गुरुवर्ज्यं तु मानार्हं यो हि मार्गं न यच्छति। स दाप्यः कृष्णलं राज्ञस्तस्य पापस्य शान्तये ॥ ८१ ॥
एकजातिर्द्विजातिं तु येनाङ्गेनापराध्नुयात्। तदेव च्छेदयेत्तस्य क्षिप्रमेवाविचारयन् ॥ ८२ ॥
अवनिष्ठीवतो दर्पाद् द्वावोष्ठौ च्छेदयेन्नृपः। अवमूत्रयतो मेढ्रमपशब्दयतो गुदम् ॥ ८३ ॥
सहासनमभिप्रेप्सुरुत्कृष्टस्यापकृष्टजः। कट्यां कृताङ्को निर्वास्यः स्फिचं वाप्यस्य कर्तयेत् ॥ ८४ ॥
केशेषु गृह्णतो हस्तं छेदयेदविचारयन्। पादयोर्नासिकायां च ग्रीवायां वृषणेषु च ॥ ८५ ॥
त्वग्भेदकः शतं दण्ड्यो लोहितस्य च दर्शकः। मांसभेत्ता च षण्निष्कान् निर्वास्यस्त्वस्थिभेदकः ॥ ८६ ॥
अङ्गभङ्गकरस्याङ्गं तदेवापहरेन्नृपः। दण्डपारुष्यकृद् दण्ड्यः समुत्थानव्ययं तथा ॥ ८७ ॥
अर्धपादकरः कार्यो गोगजाश्वोष्ट्रघातकः। पशुक्षुद्रमृगाणां च हिंसायां द्विगुणो दमः ॥ ८८ ॥
पञ्चाशच्च भवेद् दण्ड्यस्तथैव मृगपक्षिषु। कृमिकीटेषु दण्ड्यः स्याद् रजतस्य च माषकम् ॥ ८९ ॥
तस्यानुरूपं मूल्यं च प्रदद्यात् स्वामिने तथा।

कोई काना हो, लँगड़ा हो अथवा अन्धा हो, उसे सत्यतापूर्वक उसी प्रकारका कहनेपर भी उसे एक कार्षापणका* दण्ड देना चाहिये। माता, पिता, ज्येष्ठ भाई, श्वशुर तथा गुरु—इनकी निन्दा करनेवाले तथा गुरुजनोंके मार्गको नष्ट करनेवालेको सौ कार्षापणका दण्ड देना चाहिये। जो माननीय श्रेष्ठ लोगोंको मार्ग नहीं देता, उसे उस पापकी शान्तिके लिये राजा एक कृष्णलका दण्ड दे। द्विजातिसे भिन्न जातिवाला व्यक्ति किसी द्विजातिका जिस अङ्गसे अपकार करता है, उसके उसी अङ्गको शीघ्र ही बिना कुछ विचार किये कटवा देना चाहिये। राजा सामने गर्वपूर्वक थूकनेवाले, पेशाब करनेवाले तथा अपानवायु छोड़नेवाले व्यक्तिका क्रमशः दोनों होंठ, लिङ्ग और गुदाद्वार कटवा दे। यदि कोई नीच जातिवाला व्यक्ति उत्कृष्ट व्यक्तिके साथ आसनपर बैठना चाहता है तो राजा उसकी कमरमें एक चिह्न बनाकर अपने राज्यसे निर्वासित कर दे या उसके गुदाभागको कटवा दे। इसी प्रकार यदि कोई निम्न जातिवाला किसी उच्च जातीय व्यक्तिके केशोंको पकड़ता है तो उसके हाथको बिना विचार किये ही कटवा देना चाहिये। इसी प्रकारका दण्ड दोनों पैरों, नासिका, गला तथा अण्डकोशके पकड़नेपर भी देना चाहिये। यदि कोई किसीके चमड़ेको काट देता है और उससे रक्त निकलने लगता है तो उसे शतमुद्राका दण्ड देना चाहिये। मांस काट लेनेवालेको छः निष्कोंका दण्ड तथा हड्डी तोड़नेवालेको देशनिकालाका दण्ड देना चाहिये। यदि कोई व्यक्ति किसीके अङ्गको तोड़-फोड़ देता है तो राजाको चाहिये कि उसके उसी अङ्गको

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

* १६ माशेकी स्वर्णमुद्रा या १६ पणकी रजतमुद्रा। (दे० मनु० ८। १३६, ३३६ आदि)

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

कटवा दे तथा उसे उतने द्रव्यका भी दण्ड दे, जितना उस आहत व्यक्तिके उठने-बैठनेके व्ययके लिये अपेक्षित हो। गाय, हाथी, अश्व और ऊँटकी हत्या करनेवालेका आधा हाथ और आधा पैर काट लेना चाहिये। राजाको पशु तथा छोटे जानवरोंकी हत्या करनेपर अपराधीको उनके मूल्यके दुगुने पणका दण्ड देना चाहिये। मृग तथा पक्षियोंकी हत्या करनेपर पचास पणका दण्ड करनेका विधान है। कृमि तथा कीटोंके मारनेपर एक मासा चाँदीका दण्ड लगाना उचित है तथा उसके अनुकूल मूल्य भी उसके स्वामीको दिलाना चाहिये ॥७९–८९½॥

स्वस्वामिकानां सकलं शेषाणां दण्डमेव तु ॥ ९० ॥
वृक्षं तु सफलं छित्त्वा सुवर्णं दण्डमर्हति। द्विगुणं दण्डयेच्चैनं पथि सीम्नि जलाशये ॥ ९१ ॥
छेदनादफलस्यापि मध्यमं साहसं स्मृतम्। गुल्मवल्लीलतानां च सुवर्णस्य च माषकम् ॥ ९२ ॥
वृथाच्छेदी तृणस्यापि दण्ड्यः कार्षापणं भवेत्। त्रिभागं कृष्णला दण्ड्याः प्राणिनस्ताडने तथा ॥ ९३ ॥
देशकालानुरूपेण मूल्यं राजा द्रुमादिषु। तत्स्वामिनस्तथा दण्ड्या दण्डमुक्तस्तु पार्थिव ॥ ९४ ॥
यत्रातिवर्तते युग्यं वैगुण्यात् प्राजकस्य तु। तत्र स्वामी भवेद् दण्ड्यो नाप्तश्चेत् प्राजको भवेत् ॥ ९५ ॥
प्राजकश्च भवेदाप्तः प्राजको दण्डमर्हति। नास्ति दण्डश्च तस्यापि तथा वै हेतुकल्पकः ॥ ९६ ॥
द्रव्याणि यो हरेद् यस्य ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा। स तस्योत्पादयेत् तुष्टिं राज्ञो दद्यात् ततो दमम् ॥ ९७ ॥
यस्तु रज्जुं घटं कूपाद्धरेद् भिन्द्याच्च तां प्रपाम्। स दण्डं प्राप्नुयान्माषं तच्च सम्प्रतिपादयेत् ॥ ९८ ॥
धान्यं दशभ्यः कुम्भेभ्यो हरतोऽभ्यधिकं वधः। शेषेऽप्येकादशगुणं तस्य दण्डं प्रकल्पयेत् ॥ ९९ ॥
तथा भक्ष्यान्नपानानां न तथाप्यधिके वधः। सुवर्णरजतादीनामुत्तमानां च वाससाम् ॥१००॥
पुरुषाणां कुलीनानां नारीणां च विशेषतः। महापशूनां हरणे शस्त्राणामौषधस्य च ॥१०१॥
मुख्यानां चैव रत्नानां हरणे वधमर्हति।

अब स्वतन्त्र पदार्थोंको नष्ट करनेपर लगनेवाले दण्डको बतला रहा हूँ। फलयुक्त वृक्षको काटनेपर अपराधीको सुवर्णका दण्ड देना उचित है। यदि वह वृक्ष किसी सीमा, मार्ग अथवा जलाशयके समीप है तो उसे दुगुना दण्ड देना चाहिये। फलरहित वृक्षको भी काटनेपर मध्यमसाहसका दण्ड देनेका विधान है। गुल्मों, लताओं तथा वल्लियोंको काटनेपर एक मासा सुवर्णका दण्ड देना चाहिये। बिना किसी आवश्यकताके तृणको भी नष्ट करनेवाला व्यक्ति एक कार्षापणके दण्डका भागी होता है। किसी प्राणीको कष्ट पहुँचानेवालेको कृष्णलके तिहाई भागका दण्ड देना चाहिये। राजन्! वृक्षादिके काटे जानेपर राजा देश तथा कालके अनुसार उचित मूल्यका दण्ड दे और उस दण्डको वृक्षादिके स्वामीको दिला दे। यदि चालककी असावधानीसे रथ मार्गसे विचलित हो जाता है तो ऐसे अवसरपर यदि वह चालक निपुण नहीं है तो उसके स्वामीको दण्ड देना चाहिये और यदि चालक निपुण है तो उसीके ऊपर दण्ड लगाना चाहिये, किंतु यदि वह घटना किसी विशेष परिस्थिति-वश घटित हुई हो तो चालकको भी दण्ड नहीं देना चाहिये। जो किसीके द्रव्यको जानकर या अनजानमें अपहरण कर लेता है, उसे राजाके सम्मुख दण्ड स्वीकार कर उसके स्वामीको संतुष्ट करना चाहिये। अन्यथा उसपर एक पण दण्ड लगानेका विधान है। जो व्यक्ति किसी कुएँपरसे रस्सी अथवा घड़ा चुरा लेता है या उस कुएँको तोड़ता-फोड़ता है, उसके ऊपर एक मासा सुवर्णका दण्ड लगाना उचित है और उसीसे कुएँकी क्षति-पूर्ति करानी चाहिये। दस घड़ेसे अधिक अन्न चुरानेवालेको प्राण-दण्ड देना चाहिये। यदि दस घड़ेसे कम अन्न चुराता है तो उसने जितना अन्न चुराया है, उससे ग्यारहगुना अधिक मूल्यका दण्ड उसपर लगाना चाहिये। उसी प्रकार दस घड़ेसे अधिक खाद्य-सामग्री, अन्न एवं पानादिकी

Sri Vidyabharathi Book Centre Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

चोरी करनेपर उसी प्रकारके दण्डका विधान है। उसे स्त्रियों, बड़े-बड़े पशुओं, हथियारों, ओषधियों तथा प्राणदण्ड नहीं देना चाहिये। सुवर्ण, चाँदी आदि मुख्य-मुख्य रत्नोंकी चोरी करनेपर चोर प्राण-दण्डका धातुओं, उत्तम वस्त्रों, कुलीन पुरुषों, विशेषतया कुलीन पात्र होता है॥ ९०-१०१½ ॥

दध्नः क्षीरस्य तक्रस्य पानीयस्य रसस्य च ॥१०२॥
वेणुवैदलभाण्डानां लवणानां तथैव च। मृन्मयानां च सर्वेषां मृदो भस्मन एव च ॥१०३॥
कालमासाद्य कार्यं च राजा दण्डं प्रकल्पयेत्। गोषु ब्राह्मणसंस्थासु महिषीषु तथैव च ॥१०४॥
अश्वापहारकश्चैव सद्यः कार्योऽर्धपादकः। सूत्रकार्पासकिण्वानां गोमयस्य गुडस्य च ॥१०५॥
मत्स्यानां पक्षिणां चैव तैलस्य च घृतस्य च। मांसस्य मधुनश्चैव यच्चान्यद्वस्तुसम्भवम् ॥१०६॥
अन्येषां लवणादीनां मद्यानामोदनस्य च। पक्वान्नानां च सर्वेषां तन्मूल्याद् द्विगुणो दमः ॥१०७॥
पुष्पेषु हरिते धान्ये गुल्मवल्लीलतासु च।
अन्नेषु परिपूर्णेषु दण्डः स्यात् पञ्चमाषकम्। परिपूर्णेषु धान्येषु शाकमूलफलेषु च ॥१०८॥
निरन्वये शतं दण्ड्यः सान्वये द्विशतं दमः। येन येन यथाङ्गेन स्तेनोऽन्येषु विचेष्टते ॥१०९॥
तत्तदेव हरेत् तस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः। द्विजोऽध्वगः क्षीणवृत्तिर्द्वाविक्षू द्वे च मूलके ॥११०॥
त्रपुसोर्वारुकौ द्वौ च तावन्मात्रं फलेषु च। तथा च सर्वधान्यानां मुष्टिग्राहेण पार्थिव ॥१११॥
शाके शाकप्रमाणेन गृह्णमाणे न दुष्यति। वानस्पत्यं फलं मूलं दार्वग्न्यर्थं तथैव च ॥११२॥
तृणं गोऽभ्यवहारार्थमस्तेयं मनुरब्रवीत्। अदेववाटिजं पुष्पं देवतार्थं तथैव च ॥११३॥
आददानः परक्षेत्रान्न दण्डं दातुमर्हति।

दही, दूध, तक्र (छाँछ-मट्ठा), जल, रस, बाँस एवं बेंदल आदिके पात्र, लवण, सभी प्रकारके मिट्टीके पात्र, मिट्टी और भस्मकी चोरी करनेवालेके लिये राजा देश एवं कालके अनुसार दण्डकी व्यवस्था करे। ब्राह्मणके घरसे गाय, भैंस और घोड़ेकी चोरी करनेवालेको तुरंत ही आधे पैरवाला कर देना चाहिये। सूत, कपास, आसव, गोबर, गुड़, मछली, पक्षी, तेल, घी, मांस, मधु, नमक, मदिरा, भात एवं इनसे बनी हुई अन्यान्य वस्तुओं तथा सभी प्रकारके पकवानोंकी चोरी करनेवालेको उस वस्तुके मूल्यसे दुगुना दण्ड देना चाहिये। पुष्प, कच्चा अन्न, गुल्म, लता, वल्ली तथा अधिक अन्नकी चोरी करनेवालेको पाँच मासा सुवर्णका दण्ड देना उचित है। प्रचुरमात्रामें अन्न, शाक, मूल और फलकी चोरी करनेवाले संतानहीनको सौ मुद्राका तथा संतानवालेको दो सौ पणका दण्ड देना चाहिये। चोर जिस-जिस अङ्गोंकी सहायतासे चोरी करनेकी चेष्टा करता है, राजा उसके उस अङ्गको कटवा दे। यदि कोई अकिंचन ब्राह्मण मार्गमें चलते हुए दो ईख, दो कन्द (मूली), दो खीरे, दो तरबूजे, दो अन्य फल, दो मुट्ठी सभी प्रकारके अन्न अथवा साग ले लेता है तो वह चोरीके दोषसे दूषित नहीं होता। भोजनके लिये वृक्षसे उत्पन्न हुए फल, मूल और जलौनी लकड़ीको काट लेना अथवा गौको खिलानेके लिये घास उखाड़ लेना चोरी नहीं है—ऐसा मनुजीने कहा है। देवताकी वाटिकासे भिन्न दूसरेके खेतमें उत्पन्न हुए पुष्पको देवताकी पूजाके लिये तोड़नेवाला दण्डका पात्र नहीं होता, उसे दण्ड नहीं देना चाहये॥ १०२-११३½ ॥

शृङ्गिणं नखिनं राजन् दंष्ट्रिणं च वधोद्यतम् ॥११४॥
यो हन्यान्न स पापेन लिप्यते मनुजेश्वर। गुरुं वा बालवृद्धं वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् ॥११५॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् । नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन ॥११६॥
प्रकाशं वाप्रकाशं वा मन्युस्तं मन्युमृच्छति । गृहक्षेत्राभिहर्तारस्तथागम्याभिगामितः ॥११७॥
अग्निदो गरदश्चैव तथा चाभ्युद्यतायुधः । अभिचारं तु कुर्वाणो राजगामि च पैशुनम् ॥११८॥
एते हि कथिता लोके धर्मज्ञैराततायिनः । भिक्षुकोऽप्यथवा नारी योऽपि वा स्यात् कुशीलवः ॥११९॥
प्रविशेत् प्रतिषिद्धस्तु प्राप्नुयाद् द्विगुणं दमः । परस्त्रीणां तु सम्भाषे तीर्थेऽरण्ये गृहेऽपि वा ॥१२०॥
नदीनां चैव सम्भेदे स संग्रहणमाप्नुयात् । न सम्भाषेत् परस्त्रीभिः प्रतिषिद्धः समाचरेत् ॥१२१॥
प्रतिषिद्धे समाभाष्य सुवर्णं दण्डमर्हति । नैव चारणदारेषु विधिरात्मोपजीविषु ॥१२२॥
सज्जयन्ति मनुष्यैस्ता निगूढं वा चरन्त्युत । किंचिदेव तु दाप्यः स्यात् सम्भाषेणापचारयन् ॥१२३॥
प्रेष्यासु चैव सर्वासु गृहप्रव्रजितासु च । योऽकामां दूषयेत् कन्यां स सद्यो वधमर्हति ॥१२४॥
सकामां दूषयाणस्तु प्राप्नुयाद् द्विशतं दमम् । यश्च संरक्षकस्तत्र पुरुषः स तथा भवेत् ॥१२५॥

राजन् ! जो अपनेको मारनेके लिये उद्यत सींगवाले, नखवाले तथा दाढ़वाले पशुको मारता है, वह पापसे लिप्त नहीं होता । गुरु, बालक, वृद्ध अथवा शास्त्रज्ञ ब्राह्मण ही क्यों न हो, यदि वह अपनेको मारनेके लिये आ रहा हो तो उसे बिना विचार किये ही मार डालना चाहिये;* क्योंकि आततायीका वध करनेपर वधकर्ताको कोई पाप नहीं लगता । प्रकटरूपमें अथवा गुप्तरूपमें भी पाप करनेवाला पापका भागी होता है । दूसरोंके घर तथा खेतका अपहरण करनेवाले, अगम्या स्त्रीके साथ समागम करनेवाले, आग लगानेवाले, विष देनेवाले, हथियार लेकर मारनेके लिये उद्यत, अभिचार-परायण, राजाके विरोधमें विद्रोह करनेवाले—इनको धर्मज्ञोंने लोकमें आततायी बतलाया है । यदि भिक्षुक, परायी स्त्री तथा चारण आदि निषेध करनेपर भी घरमें घुस जाते हैं तो उन्हें दुगुना दण्ड देना चाहिये । तीर्थ, जंगल या घरमें परायी स्त्रियोंके साथ वार्तालाप करनेवाले तथा नदीकी धाराका भेदन करनेवालेको पकड़कर बंद कर देना चाहिये । 'परायी स्त्रीके साथ सम्भाषण नहीं करना चाहिये'—ऐसी निषेधाज्ञा घोषित कर दे । निषेध होनेपर भी यदि कोई सम्भाषण करता है तो वह एक सुवर्ण-मुद्राके दण्डका भागी होता है । किंतु यह दण्ड चारणों, स्त्रियों तथा अन्तःपुरमें प्रवेश कर नृत्य-गीतादिद्वारा अपनी जीविका चलानेवालेको नहीं देना चाहिये । ऐसे लोग यदि अन्तःपुरके लोगोंके साथ सम्भाषण करते हैं या वहाँ घूमते-फिरते हैं तो उन्हें तथा घरसे निकालकर बाहर घूमती हुई सभी दासियोंको नाममात्रका दण्ड देना चाहिये । जो व्यक्ति किसी कुमारी कन्याके साथ बलात्कार करता है, वह तुरंत ही मार डालने योग्य है । यदि कोई किसी कामुकी कुमारी कन्याके साथ व्यभिचार करता है तो उसे दो सौ पणका दण्ड देना चाहिये और वहाँ जो संरक्षणकर्ता पुरुष है, उसे भी यही दण्ड देना चाहिये ॥ ११४–१२५ ॥

पारदारिकवद् दण्ड्यो योऽपि स्यादवकाशदः । बलात् संदूषयेद् यस्तु परभार्यां नरः क्वचित् ॥१२६॥
वधो दण्डो भवेत्तस्य नापराधो भवेत् स्त्रियाः । रजस्तृतीयं या कन्या स्वगृहे प्रतिपद्यते ॥१२७॥
अदण्ड्या सा भवेद् राज्ञा वरयन्ती पतिं स्वयम् । स्वदेशे कन्यकां दत्त्वा तामादाय तथा व्रजेत् ॥१२८॥
परदेशे भवेद् वध्यः स्त्रीचौरः स यतो भवेत् । अद्रव्यां मृतपत्नीं तु संगृह्णन्नापराध्यति ॥१२९॥
सद्रव्यां तां संग्रहीता दण्डं तु क्षिप्रमर्हति । उत्कृष्टं या भजेत् कन्या देया तस्यैव सा भवेत् ॥१३०॥
यच्चान्यं सेवमानां च संयतां वासयेद् गृहे ।
उत्तमां सेवमानस्तु जघन्यो वधमर्हति । जघन्यमुत्तमा नारी सेवमाना तथैव च ॥१३१॥
भर्तारं लङ्घयेद् या स्त्री ज्ञातिभिर्बलदर्पिता । तां च निष्कासयेद् राजा संस्थाने बहुसंस्थिते ॥१३२॥

* मिताक्षरादिके मतसे यह अर्थवाद है ।

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

हृताधिकारां मलिनां पिण्डमात्रोपजीविनीम्। वासयेत् स्वैरिणीं नित्यं सवर्णेनाभिदूषिताम् ॥१३३॥
ज्यायसा दूषिता नारी मुण्डनं समवाप्नुयात्। वासश्च मलिनं नित्यं शिखां सम्प्राप्नुयाद् दश ॥१३४॥
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः क्षत्रविट्शूद्रयोषितः। व्रजन् दण्ड्यो भवेद् राज्ञा दण्डमुत्तमसाहसम् ॥१३५॥
वैश्यागमे च विप्रस्य क्षत्रियस्यान्त्यजागमे। मध्यमं प्रथमं वैश्यो दण्ड्यः शूद्रागमाद् भवेत् ॥१३६॥
शूद्रः सवर्णागमने शतं दण्ड्यो महीक्षिता। वैश्यस्तु द्विगुणं राजन् क्षत्रस्तु त्रिगुणं तथा ॥१३७॥
ब्राह्मणश्च भवेद् दण्ड्यस्तथा राजंश्चतुर्गुणम्। अगुप्तासु भवेद् दण्डः सुगुप्तास्वधिको भवेत् ॥१३८॥

जो ऐसे व्यभिचारोंको सम्भव बनानेमें अवकाश देता है, उसे परायी स्त्रीके साथ व्यभिचार करनेवालेके समान ही दण्ड देना चाहिये। जो मनुष्य दूसरेकी स्त्रीके साथ बलात्कार करता है, उसे प्राणदण्ड देना चाहिये और इसमें उस स्त्रीका कोई भी अपराध नहीं मानना चाहिये। जो कन्या पिताके घरपर तीसरी बार रजस्वला होकर स्वयं पतिका वरण कर लेती है, वह राजाद्वारा दण्डनीय नहीं होती। जो अपने देशमें कन्यादान देकर पुनः उसे लेकर परदेशमें भाग जाता है, उसे प्राण-दण्ड देना चाहिये; क्योंकि वह स्त्री-चोर है। द्रव्यहीना विधवा स्त्रीको ग्रहण करनेवाला अपराधी नहीं माना जाता, किंतु सम्पत्तिसहित विधवाको स्वीकार करनेवाला शीघ्र ही दण्डका भागी होता है। जो कन्या अपनी जाति अथवा योग्यतासे उत्कृष्ट व्यक्तिसे प्रेम करती है तो उसे उसी व्यक्तिको दे देना चाहिये, किंतु जो कन्या किसी कम योग्यतावालेसे प्रेम करती है, उसे विशेष संयमके साथ घरमें ही रखे। यदि नीच जातिवाला जघन्य पुरुष उत्तम जातिकी कन्याके साथ प्रेम करता है तो उसे प्राण-दण्ड देना चाहिये। इसी प्रकार यदि उत्तम जातिकी स्त्री किसी नीच जातिके पुरुषके साथ प्रेम करती है तो वह भी प्राण-दण्डके योग्य है। जो स्त्री अपने जाति-भाइयोंके बलसे गर्वीली होकर अपने पतिको छोड़ देती है, उसे घरसे निकालकर अनेक व्यक्तियोंसे युक्त संस्थानमें रख दे। राजा सवर्ण पुरुषद्वारा दूषित कुलटा स्त्रीको सभी अधिकारोंसे वञ्चित कर मलिन बना दे और भोजनमात्रका प्रबन्ध कर घरमें पड़ा रहने दे। उत्तम कुल एवं जातिमें उत्पन्न हुई स्त्री यदि दूषित हुई हो तो उसकी दस चोटियाँ रखकर शेष बाल कटवा दे और नित्य मैला वस्त्र पहननेको दे। यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य क्रमशः क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रकी स्त्रीके साथ दुराचार करते हैं तो वे राजाद्वारा उत्तमसाहस नामक दण्डके भागी होते हैं। यदि ब्राह्मण वैश्य-स्त्रीके साथ और क्षत्रिय अन्त्यज-स्त्रीके साथ पापाचरण करते हैं तो उन्हें मध्यमसाहसका दण्ड देना चाहिये और यदि वैश्य शूद्रा स्त्रीके साथ व्यभिचार करता है तो उसे भी पूर्वोक्त रीतिके अनुसार उत्तमसाहसका दण्ड मिलना चाहिये। राजन्! यदि शूद्र अपनी जातिकी स्त्रीके साथ समागम करता है तो उसे राजाद्वारा सौ मुद्राओंका दण्ड मिलना चाहिये। इसी प्रकार सवर्णा स्त्रीके साथ पापाचरण करनेसे वैश्यको दो सौ, क्षत्रियको तीन सौ तथा ब्राह्मणको चार सौ मुद्राओंका दण्ड देनेका विधान है। ये दण्ड अरक्षित स्त्रीके साथ पापाचरण करनेपर बताये गये हैं, किंतु सुरक्षित स्त्रियोंके साथ दुराचार करनेपर इससे अधिक दण्ड देना चाहिये ॥ १२६–१३८ ॥

माता पितृष्वसा श्वश्रूर्मातुलानी पितृव्यजा।
पितृव्यसखिशिष्यस्त्री भगिनी तत्सखी तथा। भ्रातृभार्यागमे पूर्वाद् दण्डस्तु द्विगुणो भवेत् ॥१३९॥
भागिनेयी तथा चैव राजपत्नी तथैव च। तथा प्रव्रजिता नारी वर्णोत्कृष्टा तथैव च ॥१४०॥
इत्यगम्याश्च निर्दिष्टास्तासां तु गमने नरः। शिश्नस्योत्कर्तनं कृत्वा ततस्तु वधमर्हति ॥१४१॥
चण्डालीं च [illegible] वाप्नुयात् ॥१४२॥
Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

तिर्यग्योनिं च गोवर्ज्यं मैथुनं यो निषेवते । वपनं प्राप्नुयाद् दण्डं तस्याश्च यवसोदकम् ॥१४३॥
सुवर्णं च भवेद् दण्ड्यो गां व्रजन् मनुजोत्तम । वेश्यागामी द्विजो दण्ड्यो वेश्याशुल्कसमं पणम्॥१४४॥
गृहीत्वा वेतनं वेश्या लोभादन्यत्र गच्छति । वेतनं द्विगुणं दद्याद् दण्डं च द्विगुणं तथा ॥१४५॥
अन्यमुद्दिश्य यो वेश्यां नयेदन्यस्य कारणात् । तस्य दण्डो भवेद् राजन् सुवर्णस्य च माषकम् ॥१४६॥
नीत्वा भोगान्न यो दद्याद् दाप्यो द्विगुणवेतनम् । राज्ञश्च द्विगुणं दण्डं तथा धर्मो न हीयते ॥१४७॥
बहूनां व्रजतामेकां सर्वे ते द्विगुणं दमम् । दद्युः पृथक् पृथक् सर्वे दण्डं च द्विगुणं परम् ॥१४८॥
न माता न पिता न स्त्री न ऋत्विग् याज्यमानवाः ।
अन्योन्यं पतितास्त्याज्या योगे दण्ड्याः शतानि षट् ॥१४९॥
पतिता गुरवस्त्याज्या न तु माता कथंचन । गर्भधारणपोषाभ्यां तेन माता गरीयसी ॥१५०॥

माता, फूफी, सास, मामी, चचेरी बहन, चाचीकी सखी, शिष्यकी स्त्री, बहिन, उसकी सखी तथा भाईकी स्त्री—इन सबके साथ समागम करनेपर पूर्वकथित दण्डसे दुगुना दण्ड देना चाहिये । भानजेकी स्त्री, राजाकी पत्नी, संन्यासिनी तथा उच्चवर्णकी स्त्री—ये सभी अगम्या मानी गयी हैं । इन सबके साथ समागम करनेवाले व्यक्तिके लिंगको कटवाकर तत्पश्चात् उसे प्राण-दण्ड देना चाहिये । इसी प्रकार चाण्डालकी स्त्री तथा कुत्तेको खानेवालोंकी स्त्रीके साथ व्यभिचार करनेवालेको प्राण-दण्ड देना चाहिये । गौको छोड़कर अन्य तिर्यग् योनियोंमें सम्भोग करनेवाले व्यक्तिको मुण्डनका दण्ड देकर उस पशुके लिये घास तथा जल देनेका दण्ड देना चाहिये । मानवश्रेष्ठ ! गौके साथ भोग करनेवाले व्यक्तिको सुवर्णका दण्ड लगाना चाहिये । वेश्याके साथ समागम करनेवाले ब्राह्मणको वेश्याको दिये गये शुल्कके बराबर अर्थ-दण्ड देना चाहिये । वेश्या यदि वेतन स्वीकार करनेके उपरान्त लोभवश अन्यत्र चली जाती है तो उसे दुगुना दण्ड देनेके उपरान्त लिये हुए शुल्कका दूना अर्थ दण्ड भी देना चाहिये । राजन् ! यदि कोई वेश्याको दूसरेके बहानेसे किसी दूसरेके पास लिवा जाता है तो उसे एक मासा सुवर्णका दण्ड देना चाहिये । जो वेश्याको लानेके बाद उसके साथ सम्भोगादि नहीं करता, उसे दूना दण्ड देकर उस वेश्याको दूना शुल्क दिलाना चाहिये । ऐसा करनेसे राजाका धर्म क्षीण नहीं होता । यदि अनेक व्यक्ति एक वेश्याके साथ समागम करनेको उपस्थित हों तो राजा उनको दूना दण्ड दे और वे सब पृथक्-पृथक् उस वेश्याको दूना द्रव्य दण्डरूपमें अधिक दें । माता, पिता, स्त्री, पुरोहित और यजमान—ये पतित होनेपर भी नहीं छोड़े जाते, पर यदि कोई मनुष्य इनमेंसे किसीको छोड़ता है तो वह छः सौ सुवर्ण-मुद्राओंका दण्डभागी होता है । पतित होनेपर गुरुजन भी त्याज्य हो सकते हैं, किंतु माता नहीं छोड़ी जा सकती । गर्भकालमें धारण-पोषण करनेके कारण माताका गौरव गुरुजनोंसे भी अधिक है ॥

अधीयानोऽप्यनध्याये दण्ड्यः कार्षापणत्रयम् । अध्यापकश्च द्विगुणं तथाऽऽचारस्य लङ्घने ॥१५१॥
अनुक्तस्य भवेद् दण्डः सुवर्णस्य च कृष्णलम् । भार्या पुत्रश्च दासश्च शिष्यो भ्राता च सोदरः ॥१५२॥
कृतापराधास्ताड्याः स्यू रज्ज्वा वेणुदलेन वा । पृष्ठतस्तु शरीरस्य नोत्तमाङ्गं कथंचन ॥१५३॥
अतोऽन्यथा प्रहरतः प्राप्तं स्याच्चोरकिल्बिषम् । दूतीं समाह्वयंश्चैव यो निषिद्धं समाचरेत् ॥१५४॥
प्रच्छन्नं वा प्रकाशं वा स दण्ड्यः पार्थिवेच्छया । वासांसि फलकैः श्लक्ष्णैर्निर्णिज्याद् रजकः शनैः ॥१५५॥
अतोऽन्यथा हि कुर्वंस्तु दण्ड्यः स्याद् रुक्मभाषकम् । रक्षास्वधिकृतैश्चैव प्रदेयं यैर्विलुप्यते ॥१५६॥
कर्षकेभ्योऽर्थमादाय यः कुर्यात् करमन्यथा । तस्य सर्वस्वमादाय तं राजा विप्रवासयेत् ॥१५७॥
ये नियुक्ताः स्वकार्येषु हन्युः कार्याणि कार्यिणाम् । निर्घृणाः क्रूरमनसः सर्वे कर्मापराधिनः ॥१५८॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

धनोष्मणा पच्यमानास्तान् निःस्वान् कारयेन्नृपः। कूटशासनकर्तुंश्च प्रकृतीनां च दूषकान् ॥१५९॥
स्त्रीबालब्राह्मणघ्नांश्च वध्यात् तत्सेविनस्तथा। अमात्यः प्राड्विवाको वा यः कुर्यात् कार्यमन्यथा॥१६०॥
तस्य सर्वस्वमादाय तं राजा विप्रवासयेत्। ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च तस्करो गुरुतल्पगः ॥१६१॥
एतान् सर्वान् पृथग्विधान्महापातकिनो नरान्। महापातकिनो वध्या ब्राह्मणं तु विवासयेत् ॥१६२॥
कृतचिह्नं स्वदेशाच्च शृणु चिह्नाकृतिं ततः। गुरुतल्पे भगः कार्यः सुरापाने सुराध्वजः ॥१६३॥
स्तेने तु श्वपदं तद्वद् ब्रह्महन्यशिराः पुमान्। असम्भाष्या ह्यसम्भोज्या असंवाह्या विशेषतः॥१६४॥
त्यक्तव्याश्च तथा राजञ्ज्ञातिसम्बन्धिबान्धवैः।

अनध्यायके दिन भी अध्ययन करनेवाले ब्राह्मणको तीन कार्षापणका दण्ड देना चाहिये और अध्यापकको दुगुना दण्ड देनेका विधान है। इसी प्रकार उन्हें अपने-अपने आचारोंका उल्लङ्घन करनेपर भी दण्ड देना चाहिये। जिन-जिन अपराधोंमें केवल दण्डकी चर्चा की गयी है और कोई परिमाण नहीं निश्चित किया गया है, वहाँ सुवर्णका एक कृष्णल दण्डरूपमें समझना चाहिये। स्त्री, पुत्र, सेवक, शिष्य तथा सगा भाई—ये यदि अपराध करते हैं तो इन्हें रस्सीसे बाँधकर बाँसकी छड़ीसे शरीरके पिछले भागपर दण्ड देना चाहिये; किंतु सिरपर किसी प्रकार भी चोट न लगने दे। इन कहे गये स्थानोंके अतिरिक्त अन्य स्थानोंपर प्रहार करनेवालेको चोरी करनेके समान पाप लगता है। जो दूतीको बुलाकर प्रकट-रूपमें या गुप्तरूपमें निषिद्धाचरण करता है, उसके लिये राजा स्वेच्छानुसार दण्डकी व्यवस्था करे। धोबीको चाहिये कि वह कोमल काठके पीठकोंपर वस्त्रको धीरे-धीरे साफ करे। यदि वह ऐसा नहीं करता है तो उसे एक मासे सुवर्णका दण्ड देना चाहिये। राजाकी ओरसे रक्षा आदि स्थानोंपर नियुक्त किये गये लोग यदि देय भागको हड़प लेते हैं या किसानोंसे कर लेकर उसे दूसरे कार्योंमें लगा देते हैं तो राजा उनका सर्वस्व छीनकर उन्हें निर्वासनका दण्ड दे। जो लोग अपने पदपर नियुक्त होकर अन्य कर्मचारियोंके कार्योंको हानि पहुँचाते हैं, वे सभी निर्दय, क्रूरात्मा, कर्मके अपराधी और धनकी गर्मीसे उन्मत्त हो जाते हैं, राजाको चाहिये कि उन्हें निर्धन बना दे। यदि राजाके सेवकगण कूटनीतिसे शासन करनेवाले, प्रजावर्गको राजाके विरुद्ध भड़कानेवाले, स्त्री, बालक और ब्राह्मणकी हत्या करनेवाले हों तो राजा उन्हें प्राण-दण्ड दे। चाहे अमात्य हो या प्रधान न्यायकर्ता, यदि वह अपने कर्तव्यका पालन नहीं करता तो राजा उसका सर्वस्व छीनकर उसे अपने देशसे बाहर निकाल दे। ब्रह्महत्यारा, मद्यपायी, चोर तथा गुरु-स्त्रीगामी—इन महापातकी पुरुषोंको राजा पृथक्-पृथक् प्राण-दण्डकी व्यवस्था करे। ऐसे महापापियोंको राजा प्राण-दण्ड दे, किंतु ब्राह्मणको चिह्नित करके अपने देशसे निकाल दे। उक्त चिह्नका आकार बताता हूँ, सुनिये। यदि ब्राह्मण गुरुपत्नीके साथ समागम करता है तो उसके शरीरमें भगका आकार, मदिरापायी हो तो सुराध्वजका चिह्न, चोरीके अपराधमें कुत्तेके पैरोंका चिह्न तथा ब्रह्मघातीके शरीरमें बिना सिरके पुरुषका चिह्न बनाना चाहिये। राजन्! ऐसे घोर पापियोंके साथ उनकी जातिवाले, सम्बन्धी तथा भाई-बन्धुओंको विशेषतया सम्भाषण, सहभोज तथा विवाहादि-सम्बन्ध त्याग देना चाहिये ॥ १५१–१६४½ ॥

महापातकिनो वित्तमादाय नृपतिः स्वयम् ॥१६५॥
अप्सु प्रवेशयेद् दण्डं वरुणायोपपादयेत्। सहोढं न विना चोरं घातयेद् धार्मिको नृपः ॥१६६॥
सहोढं सोपकरणं घातयेदविचारयन्। ग्रामेष्वपि च ये केचिच्चोराणां भक्ष्यदायकाः ॥१६७॥
भाण्डावकाशदाश्चैव सर्वांस्तानपि घातयेत्। राष्ट्रेषु राष्ट्राधिकृताः सामन्ताश्चैव दूषकाः ॥१६८॥

Sri Vidyadhirathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

अभ्याघातेषु मध्यस्थाः क्षिप्रं शास्यास्तु चोरवत् । ग्रामघाते मठाभङ्गे पथि मोषाभिमर्दने ॥१६९॥
शक्तितो नाभिधावन्तो निर्वास्याः सपरिच्छदाः । राज्ञः कोशापहर्तृंश्च प्रतिकूलेषु संस्थितान् ॥१७०॥
अरीणामुपकर्तृंश्च घातयेद् विविधैर्वधैः । संधिं कृत्वा तु ये चौर्यं रात्रौ कुर्वन्ति तस्कराः ॥१७१॥
तेषां छित्त्वा नृपो हस्तौ तीक्ष्णशूले निवेशयेत् । तडागभेदकं हन्यादप्सु शुद्धवधेन तु ॥१७२॥
यस्तु पूर्वं निविष्टं स्यात् तडागस्योदकं हरेत् । आगमं चाप्यपां भिन्द्यात् स दाप्यः पूर्वसाहसम् ॥१७३॥
कोष्ठागारायुधागारदेवागारविभेदकान् । पापान् पापसमाचारान् पातयेच्छीघ्रमेव च ॥१७४॥

राजा महापापी पुरुषोंकी सम्पत्तिको अपने अधीन कर ले और उसमेंसे दण्डभागको वरुणके उद्देश्यसे जलमें छोड़ दे। धार्मिक राजाको सपत्नीक चोरको प्राण-दण्ड नहीं देना चाहिये, किंतु चुरायी हुई वस्तुके साथ ही यदि सपत्नीक चोर पकड़ा जाता है तो उसे भी राजा बिना किसी विचारके प्राण-दण्ड दे। ग्रामोंमें भी जो कोई चोरोंको भोजन, पात्र तथा रहनेका आश्रय देनेवाले हों तो इन सभीको प्राण-दण्ड देना चाहिये। राष्ट्रमें राजाके अधिकारी तथा अधीनस्थ सामन्तगण यदि दुष्ट हो गये हों या बुरे अवसरपर तटस्थ रहते हों तो वे भी चोरोंके समान दण्डके भागी होते हैं। ग्राममें किसी विनाशके उपस्थित होनेपर, किसी घर आदिके गिरनेके अवसरपर या मार्गमें किसी रमणीपर अत्याचार किये जानेपर राजाके जो अधिकारी या सामन्त अपनी शक्तिके अनुसार उसकी रक्षाके लिये नहीं दौड़ते, वे परिवार तथा साधनसहित निर्वासित कर देने योग्य हैं। राजाके कोशको अपहृत करनेवालों, शत्रु-पक्षसे मिले रहनेवालों तथा शत्रुओंका उपकार करनेवालोंको विविध वधोपायोंद्वारा मरवा डालना चाहिये। जो चोर रातमें सेंध लगाकर चोरी करते हैं, राजाको उनके हाथोंको काटकर तीखे शूलपर बैठा देना चाहिये। तड़ागका भेदन करनेवालेको राजा जलमें डुबोकर मृत्युदण्ड दे। जो व्यक्ति तालाबमें भरे हुए जलकी चोरी करता है, या उसमें जलके आनेके मार्गोंको रोक देता है, उसे पूर्ववत् साहस-दण्ड देना चाहिये। कोष्ठागार, आयुधागार तथा देवागारोंको तोड़नेवाले पापाचारियों एवं पापयुक्त किंवदन्तीसे लिप्त पुरुषोंको राजा शीघ्र ही प्राण-दण्ड दे॥ १६५–१७४॥

समुत्सृजेद् राजमार्गे यस्त्वमेध्यमनापदि । स हि कार्षापणं दण्ड्यस्तत्त्वमेध्यं च शोधयेत् ॥१७५॥
आपद्गतोऽथवा वृद्धो गर्भिणी बाल एव च । परिभाषणमर्हन्ति न च शोध्यमिति स्थितिः ॥१७६॥
प्रथमं साहसं दण्ड्यो यश्च मिथ्या चिकित्सते । परुषे मध्यमं दण्डमुत्तमं च तथोत्तमे ॥१७७॥
छत्रस्य ध्वजयष्टीनां प्रतिमानां च भेदकाः । प्रतिकुर्युस्ततः सर्वं पञ्च दण्ड्याः शतानि च ॥१७८॥
अदूषितानां द्रव्याणां दूषणे भेदने तथा । मणीनामपि भेदेन दण्ड्यः प्रथमसाहसम् ॥१७९॥
समं च विषमं चैव कुरुते मूल्यतोऽपि वा । समाप्नुयात् स वै पूर्वं दमं मध्यममेव च ॥१८०॥
बन्धनानि च सर्वाणि राजमार्गे निवेशयेत् । कर्षन्तो यत्र दृश्यन्ते विकृताः पापकारिणः ॥१८१॥
प्राकारस्य च भेत्तारं परिखाणां च भेदकम् । द्वाराणां चैव भेत्तारं क्षिप्रं निर्वासयेत् पुरात् ॥१८२॥
मूलकर्माभिचारेषु कर्तव्यो द्विशतो दमः । अबीजविक्रयी यश्च बीजोत्कर्षक एव च ॥१८३॥
मर्यादाभेदकश्चापि विकृतं वधमाप्नुयात् । सर्वसंकरपापिष्ठं हेमकारं नराधिप ॥१८४॥
अन्याये वर्तमानं च छेदयेल्लवशः क्षुरैः । द्रव्यमादाय वणिजामनर्घेणावरुन्धताम् ॥१८५॥
द्रव्याणां दूषको यस्तु प्रतिच्छन्नस्य विक्रयी । मध्यमं प्राप्नुयाद् दण्डं कूटकर्त्ता तथोत्तमम् ॥१८६॥
राजा पृथक् पृथक् कुर्याद् दण्डं चोत्तमसाहसम् । शस्त्राणां यज्ञतपसां देशानां क्षेपको नरः ॥१८७॥
देवतानां सतीनां च उत्तमं दण्डमर्हति । एकस्य दण्डपारुष्ये बहूनां द्विगुणो दमः ॥१८८॥

जो किसी आपत्तिके न होनेपर भी सड़कपर मल आदि अपवित्र वस्तुओंको फेंकता है, उसे एक कार्षापणका दण्ड देना चाहिये और उसीसे उस गंदी वस्तुको हटवाना चाहिये। यदि आपत्तिग्रस्त, वृद्ध, गर्भिणी स्त्री

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

अथवा बालक ऐसा अपराध करते हैं तो उन्हें कहकर मना कर दे, उनसे सफाई न कराये, ऐसी मर्यादा है। जो वैद्य झूठी दवा करता है या वैद्य न होकर भी दवा देता है, उसे प्रथम साहसका दण्ड देना चाहिये। जिसकी दवा निकृष्ट है, उसे मध्यम साहसका दण्ड तथा जिसकी दवा अत्यन्त अवगुणकारी है, उसे उत्तमसाहसका दण्ड देना चाहिये। छत्र, ध्वजाके दण्डों तथा प्रतिमाओंको तोड़नेवालेको पाँच सौ मुद्राका दण्ड देना चाहिये और उन्हींसे इन सबका प्रतिशोध भी कराना चाहिये। अदूषित वस्तुओंको दूषित करने या तोड़नेवालेको तथा मणि आदि मूल्यवान् वस्तुओंको नष्ट करनेवालेको प्रथमसाहसका दण्ड देना चाहिये। किसी वस्तुके मूल्यमें जो कमी या वृद्धि करता है, उसे क्रमशः पूर्व और मध्यम साहसका दण्ड देना चाहिये। राजाको अपराधियोंके सभी प्रकारके दण्डोंकी व्यवस्था मुख्य सड़कपर करनी चाहिये जिससे उस दण्डको भुगतनेवाले पापात्माको सभी लोग देख सकें। दुर्गकी चहारदीवारी, खाइयों तथा दरवाजोंको तोड़नेवालेको राजा तुरंत अपने पुरसे बाहर निकाल दे। वशीकरण, अभिचार आदि करनेवालेको राजा दो सौ पणका दण्ड दे। घटिया बीज बेचनेवाले, बोये हुए खेतको जोतनेवाले तथा खेतोंकी मेड़को तोड़नेवालेको विकृत मृत्युका दण्ड देना चाहिये। नराधिप! अच्छी धातुमें नकली धातु मिलानेवाले पापात्मा एवं अन्यायी सोनारको छुरेसे खण्ड-खण्ड काट डालना चाहिये। जो बनियेसे वस्तु लेकर उसका दाम नहीं चुकाता, अच्छी वस्तुको बुरी बतलाता है और वस्तुको बाजारमें छिपाकर बेंचता है, उसे मध्यम साहसका दण्ड देना चाहिये। इसी प्रकार कूटनीतिका प्रयोग करनेवालेको उत्तम साहसका दण्ड देनेका विधान है। इन सभी अपराधियोंको राजा अलग-अलगसे उत्तम साहसका दण्ड दे। शास्त्र, यज्ञ, तपस्या, देश, देवता तथा सतीकी निन्दा करनेवाला पुरुष उत्तम साहसके दण्डका पात्र है। अनेक व्यक्ति किसी एक व्यक्तिके प्रति कठोर दण्डनीय अपराध करते हैं तो उन सबको दुगुना दण्ड देना चाहिये॥ १७५-१८८॥

कलहो यद्गतो दाप्यो दण्डश्च द्विगुणस्ततः। मध्यमं ब्राह्मणं राजा विषयाद् विप्रवासयेत्॥१८९॥
लशुनं च पलाण्डुं च शूकरं ग्रामकुक्कुटम्। तथा पञ्चनखं सर्वं भक्ष्यादन्यत्तु भक्षयेत्॥१९०॥
विवासयेत् क्षिप्रमेव ब्राह्मणं विषयात् स्वकात्। अभक्ष्यभक्षणे दण्ड्यः शूद्रो भवति कृष्णलम्॥१९१॥
ब्राह्मणक्षत्रियविशां चतुस्त्रिद्विगुणं स्मृतम्। यः साहसं कारयति स दण्ड्यो द्विगुणं दमम्॥१९२॥
यस्त्वेवमुक्त्वाहं दाता कारयेत् स चतुर्गुणम्। संदिष्टस्याप्रदाता च समुद्रगृहभेदकः॥१९३॥
पञ्चाशत्पणिको दण्डस्तत्र कार्यो महीक्षिता। अस्पृश्यं च स्पृशन्नार्यो ह्ययोग्यो योग्यकर्मकृत्॥१९४॥
पुंस्त्वहर्ता पशूनां च दासीगर्भविनाशकृत्। शूद्रप्रव्रजितानां च दैवे पित्र्ये च भोजकः॥१९५॥
अव्रजन् बाढमुक्त्वा तु तथैव च निमन्त्रणे। एते कार्षापणशतं सर्वे दण्ड्या महीक्षिता॥१९६॥
दुःखोत्पादि गृहे द्रव्यं क्षिपन् दण्ड्यस्तु कृष्णलम्।
पितापुत्रविरोधे च साक्षिणां द्विशतो दमः। स्यान्नरश्च तथार्यः स्यात् तस्याप्यष्टशतो दमः॥१९७॥

जिस व्यक्तिपर कलहका आरोप हो, उसे दूना दण्ड देना चाहिये। जो ब्राह्मण अपने आचार-विचारसे अधम हो गया हो, उसे राजा अपने देशसे निकाल दे। भक्ष्य पदार्थोंको छोड़कर जो लहसुन, प्याज, सूअर, ग्रामीण मुरगे, पाँच नखवाले जीवों तथा अन्य अभक्ष्य पदार्थोंको खाता है, उस ब्राह्मणको शीघ्र ही अपने राष्ट्रसे निकाल देना चाहिये। अभक्ष्य पदार्थोंको खानेसे शूद्रको एक कृष्णलका दण्ड देना चाहिये तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय और

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

वैश्यको क्रमशः चौगुना, तिगुना तथा दुगुना दण्ड देनेका विधान है। जो अभक्ष्य-भक्षणके लिये उत्साहित करता है, उसे दूना दण्ड देना चाहिये। जो मनुष्य 'मैं देता हूँ' ऐसा कहकर अभक्ष्य वस्तुओंके भक्षणमें दूसरेको प्रवृत्त करता है, उसे भी चौगुना दण्ड मिलना चाहिये। संदेशको न देनेवाले तथा समुद्रमें बने हुए अङ्कोको नष्ट करनेवाले व्यक्तियोंको राजा पचास मुद्राका दण्ड दे। जो श्रेष्ठ होकर अस्पृश्यका स्पर्श करता है, अयोग्य होकर योग्य कार्यमें हाथ लगाता है, पशुओंके पुंस्त्वका अपहरण करता है, दासीके गर्भको नष्ट करता है, शूद्र और संन्यासियोंके घर देव-कार्य और पितृकार्यमें भोजन करता है तथा निमन्त्रण स्वीकार करनेपर भोजन करने नहीं जाता—ये सभी राजाद्वारा सौ पग कार्षापण-दण्डके भागी हैं। अपने घरमें पीडोत्पादक वस्तु रखनेवालेको एक कृष्णलका दण्ड देना चाहिये। पिता और पुत्रके पारस्परिक विरोधमें साक्षी देनेवालोंको दो सौ पणका दण्ड लगाना चाहिये। यदि कोई माननीय व्यक्ति यह अपराध करता है तो उसपर एक सौ आठ पणका दण्ड लगाना चाहिये ॥१८९–१९७॥

तुलाशासनमानानां कूटकृन्मानकस्य च। एभिश्च व्यवहर्ता च स दण्ड्यो दममुत्तमम् ॥१९८॥
विषाग्निदां पतिगुरुनिजापत्यप्रमापणीम्। विकर्णनासिकां व्योष्ठीं कृत्वा गोभिः प्रमापयेत् ॥१९९॥
ग्रामस्य दाहका ये च ये च क्षेत्रस्य वेश्मनः। राजपत्न्यभिगामी च दग्धव्यास्ते कटाग्निना ॥२००॥
ऊनं वाप्यधिकं वापि लिखेद् यो राजशासनम्। पारदारिकचौरं वा मुञ्चतो दण्ड उत्तमः ॥२०१॥
अभक्ष्येण द्विजं दूष्य दण्ड्य उत्तमसाहसम्। क्षत्रियं मध्यमं वैश्यं प्रथमं शूद्रमर्धकम् ॥२०२॥
मृताङ्गलग्नविक्रेतुर्गुरुं ताडयतस्तथा। राजयानासनारोढुर्दण्ड उत्तमसाहसः ॥२०३॥
यो मन्येताजितोऽस्मीति न्यायेनापि पराजितः। तमायान्तं पुनर्जित्वा दण्डयेद् द्विगुणं दमम् ॥२०४॥
आह्वानकारी मध्यः स्यादनाह्वाने तथाह्वयन्। दण्डिकस्य च यो हस्तादभियुक्तः पलायते ॥२०५॥
हीनः पुरुषकारेण तं दण्ड्याद् दाण्डिको धनम्। प्रेष्यापराधात् प्रेष्यस्तु स दण्ड्यश्चार्धमेव च ॥२०६॥
दण्डार्थं नियमार्थं च नीयमानेषु बन्धनम्। यदि कश्चित् पलायेत दण्डश्चाष्टगुणो भवेत् ॥२०७॥
अनिन्दिते विवादे तु नखरोमावतारणम्। कारयेद् यः स पुरुषो मध्यमं दण्डमर्हति ॥२०८॥

तराजू, शासन, मानदण्ड और धर्मकाँटेके प्रति कूटनीतिका प्रयोग करनेवाले तथा ऐसे व्यक्तिके साथ व्यवहार करनेवालेको उत्तम साहसका दण्ड देना चाहिये। विष देनेवाली, आग लगानेवाली, पति, गुरुजन एवं अपने बच्चोंकी हत्या करनेवाली स्त्रीको कान, ओठ और नाकसे रहित करके पशुओंद्वारा मरवा डालना चाहिये। जो गाँव, खेत और घरमें आग लगानेवाले तथा राजपत्नीके साथ व्यभिचार करनेवाले हैं, उन्हें घास-फूसकी अग्निमें जला देना चाहिये। जो (राजाका अधिकारी) राजाज्ञाको घटा-बढ़ाकर लिखता है तथा दूसरेकी स्त्रीके साथ अपराध करनेवाले एवं चोरको छोड़ देता है, उसे उत्तमसाहसका दण्ड देना चाहिये। जो व्यक्ति अभक्ष्य वस्तु खिलाकर ब्राह्मणको दूषित करता है, उसे उत्तमसाहसका दण्ड देना चाहिये। इसी प्रकार क्षत्रियको विधर्मी करनेवालेको मध्यम, वैश्यको प्रथम तथा शूद्रको अर्धसाहसका दण्ड देना चाहिये। मृतकके शरीरपर लगे हुए आभूषण तथा वस्त्रादिको बेंचनेवाले, गुरुको पीटनेवाले, राजाके वाहन और आसनपर बैठनेवालेको उत्तम साहसका दण्ड देना चाहिये। जो व्यक्ति न्यायद्वारा या युद्धमें पराजित होनेपर भी अपनेको 'मैं पराजित नहीं हूँ'—ऐसा मानता है, उसे आता हुआ देखकर राजाको चाहिये कि उसे पुनः जीतकर दुगुने पणका दण्ड दे। जो व्यक्ति अपराध होनेपर सूचनाद्वारा बुलानेसे नहीं आता है और जो बिना बुलाये ही आकर सम्मुख उपस्थित होता है तथा

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

जो अपराधी दण्ड देनेवालेके हाथसे छुड़ाकर भाग जाता है—ऐसे हीन लोगोंको पौरुषपूर्वक दण्ड देनेवाला न्यायकर्ता आर्थिक दण्ड दे। जो व्यक्ति दूत होनेपर अपने कर्तव्यका पालन नहीं करता, उसे उपर्युक्त दण्डका आधा दण्ड देना चाहिये। दण्ड या नियमनके लिये बाँधकर ले जाते समय यदि कोई अपराधी भाग जाता है तो उसे आठगुना दण्ड देना चाहिये। जो पुरुष सामान्य वाद-विवादमें किसीके नख या बालको काट लेता है, वह मध्यम दण्डका भागी होता है ॥ १९८–२०८ ॥

बन्धनं चाप्यवध्यस्य बलान्मोचयते तु यः। वध्यं विमोचयेद् यस्तु दण्ड्यो द्विगुणभाग् भवेत् ॥२०९॥
दुर्दृष्टव्यवहाराणां सभ्यानां द्विगुणो दमः। राज्ञा त्रिंशद्गुणो दण्डः प्रक्षेप्य उदके भवेत् ॥२१०॥
अल्पदण्डेऽधिकं कुर्याद् विपुले चाल्पमेव च। ऊनाधिकं तु तं दण्डं सभ्यो दद्यात् स्वकाद् गृहात् ॥२११॥
यावानवध्यस्य वधे तावान् वध्यस्य रक्षणे। अधर्मो नृपतेर्दृष्ट एतयोरुभयोरपि ॥२१२॥
ब्राह्मणं नैव हन्यात्तु सर्वपापेष्ववस्थितम्। प्रवासयेत् स्वकाद् राष्ट्रात् समग्रधनसंयुतम् ॥२१३॥
न जातु ब्राह्मणं वध्यात् पातकं ह्यधिकं भवेत्। यस्मात् तस्मात् प्रयत्नेन ब्रह्महत्यां विवर्जयेत् ॥२१४॥
अदण्ड्यान् दण्डयन् राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन्। अयशो महदाप्नोति नरकं चाधिगच्छति ॥२१५॥
ज्ञात्वापराधं पुरुषस्य राजा कालं तथा चानुमतं द्विजानाम्।
दण्ड्येषु दण्डं परिकल्पयेत्तु यो यस्य युक्तः स समीक्ष्य कुर्यात् ॥२१६॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राजधर्मे दण्डप्रणयनं नाम सप्तविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२७ ॥

जो व्यक्ति बलपूर्वक अवध्य अपराधीके बन्धनोंको खोल देता है तथा जो मृत्यु-दण्डके अपराधीको छोड़ देता है, वह दुगुने दण्डका भागी होता है। राजाके जो सभासद उपस्थित विषयोंमें कुशलतासे मनोयोग नहीं देते, उन्हें दूना दण्ड देना चाहिये। राजा ऐसे अपराधियोंको तीसगुना अधिक दण्ड दे और जलमें फेंकवा दे। थोड़ेसे अपराधमें अधिक दण्ड देनेवाले तथा भीषण अपराधमें अल्प दण्ड देनेवाले न्यायकर्ताको जितना कम या अधिक दण्ड हो, उसे अपने घरसे पूर्ण करना या अपराधीको लौटाना चाहिये। अवध्य अपराधीका वध करनेमें जितना पाप लगता है उतना ही पाप वध्यको छोड़ देनेमें लगता है। राजाको इन दोनों दशाओंमें समानरूपसे पापभागी होना पड़ता है। सभी प्रकारके पापोंमें अपराधी पाये गये ब्राह्मणको मृत्युदण्ड नहीं देना चाहिये, उसे सम्पूर्ण सम्पत्तिके साथ अपने राष्ट्रसे निर्वासित कर देना चाहिये। कभी भूलकर भी ब्राह्मणका वध नहीं करना चाहिये; क्योंकि इससे अधिक पाप होता है। इसलिये राजाको ब्रह्महत्यासे बचना चाहिये। अदण्डनीय पुरुषोंको दण्ड देने तथा दण्डनीयको दण्ड न देनेसे राजा महान् अयशका भागी बनता है और मरनेपर नरकगामी होता है। इसलिये राजा मनुष्यके अपराधको भलीभाँति जानकर तथा यथासमय ब्राह्मणोंकी अनुमति लेकर दण्डनीयोंके प्रति दण्डकी कल्पना करे और जो जिस प्रकारके दण्डका पात्र हो, उसकी भलीभाँति समीक्षा कर उसे उसी प्रकारका समुचित दण्ड दे ॥२०९–२१६॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके राजधर्म-कीर्तन-प्रसङ्गमें दण्डनीति नामक दो सौ सत्ताईसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २२७ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

दो सौ अट्ठाईसवाँ अध्याय

अद्भुतशान्तिका* वर्णन

मनुरुवाच

दिव्यान्तरिक्षभौमेषु या शान्तिरभिधीयते । तामहं श्रोतुमिच्छामि महोत्पातेषु केशव ॥ १ ॥

मनुने पूछा—केशव ! दिव्य, अन्तरिक्ष और पृथ्वी-सम्बन्धी बड़े-बड़े अद्भुत उपद्रवोंके होनेपर जिस शान्तिका विधान किया जाता है, उसे मैं श्रवण करना चाहता हूँ ॥ १ ॥

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि त्रिविधामद्भुतादिषु । विशेषेण तु भौमेषु शान्तिः कार्या तथा भवेत् ॥ २ ॥
अभया चान्तरिक्षेषु सौम्या दिव्येषु पार्थिव । विजिगीषुः परं राजन् भूतिकामस्तु यो भवेत् ॥ ३ ॥
विजिगीषुः परानेवमभियुक्तस्तथा परैः । तथाभिचारशङ्कायां शत्रूणामभिनाशने ॥ ४ ॥
भये महति सम्प्राप्ते अभया शान्तिरिष्यते । राजयक्ष्माभिभूतस्य क्षतक्षीणस्य चाप्यथ ॥ ५ ॥
सौम्या प्रशस्यते शान्तिर्यज्ञकामस्य चाप्यथ । भूकम्पे च समुत्पन्ने प्राप्ते चान्नक्षये तथा ॥ ६ ॥
अतिवृष्ट्यामनावृष्ट्यां शलभानां भयेषु च । प्रमत्तेषु च चौरेषु वैष्णवी शान्तिरिष्यते ॥ ७ ॥
पशूनां मारणे प्राप्ते नराणामपि दारुणे । भूतेषु दृश्यमानेषु रौद्री शान्तिस्तथेष्यते ॥ ८ ॥
वेदनाशे समुत्पन्ने जने जाते च नास्तिके । अपूज्यपूजने जाते ब्राह्मी शान्तिस्तथेष्यते ॥ ९ ॥
भविष्यत्यभिषेके च परचक्रभयेऽपि च । स्वराष्ट्रभेदेऽरिवधे रौद्री शान्तिः प्रशस्यते ॥ १० ॥

मत्स्यभगवान्ने कहा—राजन् ! अब मैं उत्पातोंके समय की जानेवाली तीनों प्रकारकी शान्तियाँ बतला रहा हूँ । उनमें विशेषरूपसे पृथ्वी-सम्बन्धी महोत्पातोंके अवसरपर शान्ति करनी चाहिये । राजन् ! अन्तरिक्ष-सम्बन्धी उत्पातोंके लिये अभया तथा दिव्य उत्पातोंके लिये सौम्या शान्ति करनी चाहिये । राजन् ! जो विजयाभिलाषी तथा ऐश्वर्यकामी हो, उस शत्रुओंपर विजय पानेके इच्छुक, शत्रुओंद्वारा आक्रान्त, आभिचारिक कर्मोंकी शङ्कासे युक्त, शत्रुओंको विनष्ट करनेके लिये उद्यत राजाके लिये महान् भय उपस्थित होनेपर अभया शान्ति कही गयी है । राजयक्ष्मा रोगसे ग्रस्त, घावसे दुर्बल तथा यज्ञकी कामनावालेके लिये सौम्या शान्तिकी प्रशंसा की गयी है । भूकम्प आनेपर, अकाल पड़नेपर, अतिवृष्टि, अनावृष्टि एवं टिड्डियोंसे भय होनेपर, पागल और चोरसे भय उपस्थित होनेपर राजाको वैष्णवी शान्ति करानी चाहिये । पशुओं और मनुष्योंका भीषण संहार उपस्थित होनेपर तथा भूत-पिशाचादिके दिखायी देनेपर रौद्री शान्ति करानी चाहिये । वेदोंका विनाश उपस्थित होनेपर, लोगोंके नास्तिक हो जानेपर तथा अपूज्य लोगोंकी पूजा होनेपर, ब्राह्मी शान्ति करानी चाहिये । भावी अभिषेक, शत्रुसेनासे उत्पन्न भय, अपने राष्ट्रमें भेद तथा शत्रु-वधका अवसर प्राप्त होनेपर रौद्री शान्तिकी प्रशंसा की गयी है ॥ २—१० ॥

त्र्यहातिरिक्ते पवने भक्ष्ये सर्वविगर्हिते । वैकृते वातजे व्याधौ वायवी शान्तिरिष्यते ॥ ११ ॥
अनावृष्टिभये जाते प्राप्ते विकृतिवर्षणे । जलाशयविकारेषु वारुणी शान्तिरिष्यते ॥ १२ ॥
अभिशापभये प्राप्ते भार्गवी च तथैव च । जाते प्रसववैकृत्ये प्राजापत्या महाभुज ॥ १३ ॥
उपस्कराणां वैकृत्ये त्वाष्ट्री पार्थिवनन्दन । बालानां शान्तिकामस्य कौमारी च तथा नृप ॥ १४ ॥
कुर्याच्छान्तिमथाग्नेयीं सम्प्राप्ते वह्निवैकृते । आज्ञाभङ्गे तु संजाते तथा भृत्यादिसंक्षये ॥ १५ ॥

* इन अद्भुतोंका वर्णन तथा इनकी शान्तियोंका विस्तृत विधान पञ्चम आथर्वण शान्तिकल्प एवं अथर्वपरिशिष्टादिमें है

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

अश्वानां शान्तिकामस्य तद्विकारे समुत्थिते । अश्वानां कामयानस्य गान्धर्वी शान्तिरिष्यते ॥ १६ ॥
गजानां शान्तिकामस्य तद्विकारे समुत्थिते । गजानां कामयानस्य शान्तिराङ्गिरसी भवेत् ॥ १७ ॥
पिशाचादिभये जाते शान्तिर्वै नैर्ऋती स्मृता । अपमृत्युभये जाते दुःस्वप्ने च तथा स्थिते ॥ १८ ॥
याम्यां तु कारयेच्छान्तिं प्राप्ते तु नरके तथा । धननाशे समुत्पन्ने कौबेरी शान्तिरिष्यते ॥ १९ ॥
वृक्षाणां च तथार्थानां वैकृते समुपस्थिते । भूतिकामस्तथा शान्तिं पार्थिवीं प्रतियोजयेत् ॥ २० ॥

तीन दिनोंसे अधिक प्रबल वायुके चलनेपर, सभी भक्ष्य पदार्थोंके विकृत हो जानेपर तथा वातज व्याधिके बिगड़ जानेपर वायवी शान्ति करानी चाहिये । सूखा पड़ जानेका भय हो, वृष्टिसे अधिक हानि हो तथा जलाशयोंमें कोई विकार उत्पन्न हो गया हो तो ऐसे अवसरपर वारुणी शान्ति करानी चाहिये । महाबाहो ! अभिशापका भय उपस्थित होनेपर, भार्गवी तथा स्त्रीके प्रसवमें विकार उत्पन्न होनेपर प्राजापत्या नामकी शान्ति करानी चाहिये। पार्थिवनन्दन ! गृह-सामग्रियोंमें विकार उत्पन्न होनेपर त्वाष्ट्री (विश्वकर्मासम्बन्धी) शान्ति करानी चाहिये । राजन् ! बालकोंकी बाधा दूर करनेके लिये कौमारी शान्ति होनी चाहिये । अग्नि-विकार उपस्थित होनेपर, आज्ञा-भङ्ग होनेपर तथा सेवकादिके विनाश होनेपर आग्नेयी शान्ति करानी चाहिये । अश्वोंकी शान्ति-कामनासे उनमें रोग उत्पन्न होनेपर तथा अधिक संख्याकी अभिलाषासे गान्धर्वी शान्ति करानी चाहिये । हाथियोंकी शान्ति-कामनासे, उनमें रोग उपस्थित होनेपर तथा उनकी रक्षाकी भावनासे आङ्गिरसी शान्ति करानी चाहिये । पिशाचादिका तथा अकालमृत्युका भय उपस्थित होनेपर और दुःस्वप्न देखनेपर नैर्ऋती शान्ति कही गयी है । मृत्युका भय होनेपर याम्या शान्ति कराये तथा धनका नाश उत्पन्न होनेपर कौबेरी शान्ति करानी चाहिये । ऐश्वर्यकामी मनुष्यको वृक्षों तथा सम्पत्तियोंका विनाश उपस्थित होनेपर पार्थिवी शान्तिका प्रयोग करना चाहिये ॥११–२०॥

प्रथमे दिनयामे च रात्रौ वा मनुजोत्तम । हस्ते स्वातौ च चित्रायामादित्ये चाश्विने तथा ॥ २१ ॥
अर्यम्णि सौम्यजातेषु वायव्यां त्वद्भुतेषु च । द्वितीये दिनयामे तु रात्रौ च रविनन्दन ॥ २२ ॥
पुष्याग्नेयविशाखासु पित्र्यासु भरणीषु च । उत्पातेषु तथा भाग आग्नेयीं तेषु कारयेत् ॥ २३ ॥
तृतीये दिनयामे च रात्रौ च रविनन्दन । रोहिण्यां वैष्णवे ब्राह्मे वासवे वैश्वदेवते ॥ २४ ॥
ज्येष्ठायां च तथा मैत्रे ये भवन्त्यद्भुताः क्वचित् । ऐन्द्री तेषु प्रयोक्तव्या शान्ती रविकुलोद्वह ॥ २५ ॥
चतुर्थे दिनयामे च रात्रौ वा रविनन्दन । सार्पे पौष्णे तथार्द्रायामहिर्बुध्न्ये च दारुणे ॥ २६ ॥
मूले वरुणदैवत्ये ये भवन्त्यद्भुतास्तथा । वारुणी तेषु कर्तव्या महाशान्तिर्महीक्षिता ॥ २७ ॥
मित्रमण्डलवेलासु ये भवन्त्यद्भुताः क्वचित् ।
तत्र शान्तिद्वयं कार्यं निमित्तेषु च नान्यथा । निर्निमित्तकृता शान्तिर्निमित्तेनोपयुज्यते ॥ २८ ॥
बाणप्रहारा न भवन्ति यद्वद् राजन् नृणां सन्नहनैर्युतानाम् ।
दैवोपघाता न भवन्ति तद्वद् धर्मात्मनां शान्तिपरायणानाम् ॥ २९ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽद्भुतशान्तिर्नामाष्टाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२८ ॥

मानवश्रेष्ठ ! दिनके या रात्रिके पहले पहरमें सूर्यके हस्त, स्वाती, चित्रा, पुनर्वसु या अश्विनी नक्षत्रमें जानेपर वायव्य-कोणमें यदि अद्भुत उपद्रव दिखायी पड़े तो आग्नेयी शान्ति करानी चाहिये । रविनन्दन ! दिनके अथवा रात्रिके दूसरे पहरमें सूर्यके पुष्य, भरणी, कृत्तिका, मघा और विशाखा नक्षत्रमें जानेपर आग्नेय कोण या दक्षिण दिशामें यदि कोई उत्पात दिखायी दे तो आग्नेयी शान्ति करानी चाहिये । रविनन्दन ! दिनके या रात्रिके तीसरे पहरमें

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

रोहिणी, श्रवण, धनिष्ठा, उत्तराषाढ, अनुराधा और ज्येष्ठा नक्षत्रमें सूर्यके जानेपर यदि ईशान, पूर्व या अग्निकोणमें कोई उत्पात दिखायी दे तो ऐन्द्री शान्ति करानी चाहिये। रविनन्दन! दिन या रात्रिके चौथे पहरमें आश्लेषा, रेवती, आर्द्रा उत्तराभाद्र, शतभिषा या मूल नक्षत्रमें सूर्यके जानेपर पश्चिम दिशामें उत्पात दिखायी देनेपर राजाको वारुणी शान्ति करानी चाहिये। यदि मध्याह्नके समय कहींपर अद्भुत उत्पात होते हैं तो उस समय दोनों प्रकारकी शान्ति करानी चाहिये। इन उपर्युक्त कारणोंके उपस्थित होनेपर ही शान्ति करानी चाहिये, अन्यथा नहीं। बिना किसी कारणके की गयी शान्ति निष्फल हो जाती है। राजन्! जिस प्रकार कवचसे सुरक्षित शरीरवाले मनुष्योंको बाणोंका प्रहार किसी प्रकारकी हानि नहीं पहुँचाता, उसी प्रकार धर्मात्मा एवं शान्तिपरायण मनुष्योंको दैव-प्रहार किसी प्रकारकी हानि नहीं पहुँचा सकते॥ २१—२९॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अद्भुतशान्ति नामक दो सौ अट्ठाईसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २२८॥

दो सौ उन्तीसवाँ अध्याय

उत्पातोंके भेद तथा कतिपय ऋतुस्वभावजन्य शुभदायक अद्भुतोंका वर्णन

मनुरुवाच

अद्भुतानां फलं देव शमनं च तथा वद। त्वं हि वेत्सि विशालाक्ष ज्ञेयं सर्वमशेषतः॥ १॥

मनुने पूछा—विशाल नेत्रोंवाले देव! अब मुझे इन अद्भुतोंका फल तथा उनकी शान्तिका उपाय बतलाइये; क्योंकि आप सभी ज्ञेय विषयोंके पूर्ण ज्ञाता हैं॥ १॥

मत्स्य उवाच

अत्र ते वर्णयिष्यामि यदुवाच महातपाः। अत्रये वृद्धगर्गस्तु सर्वधर्मभृतां वरः॥ २॥
सरस्वत्याः सुखासीनं गर्गं स्रोतसि पार्थिव। पप्रच्छासौ महातेजा अत्रिर्मुनिजनप्रियम्॥ ३॥

मत्स्यभगवान्ने कहा—राजन्! इस विषयमें सभी धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ महातपस्वी वृद्ध गर्गने अत्रिसे जो कुछ कहा था, वह सब मैं तुम्हें बतला रहा हूँ। एक समय मुनिजनोंके प्रिय महर्षि गर्गाचार्य सरस्वती नदीके तटपर सुखपूर्वक बैठे हुए थे, उसी समय महातेजस्वी अत्रिने उनसे प्रश्न किया॥ २—३॥

अत्रिरुवाच

नश्यतां पूर्वरूपाणि जनानां कथयस्व मे। नगराणां तथा राज्ञां त्वं हि सर्वं वदस्व माम्॥ ४॥

अत्रि ऋषिने पूछा—महर्षे! आप मुझे विनाशोन्मुख मनुष्यों, राजाओं तथा नगरोंके सभी पूर्वलक्षण बतलाइये॥

गर्ग उवाच

पुरुषापचारान्नियतमपरज्यन्ति देवताः। ततोऽपरागाद् देवानामुपसर्गः प्रवर्तते॥ ५॥
दिव्यान्तरिक्षभौमं च त्रिविधं सम्प्रकीर्तितम्। ग्रहर्क्षवैकृतं दिव्यमान्तरिक्षं निबोध मे॥ ६॥
उल्कापातो दिशां दाहः परिवेषस्तथैव च। गन्धर्वनगरं चैव वृष्टिश्च विकृता तु या॥ ७॥
एवमादीनि लोकेऽस्मिन्नान्तरिक्षं विनिर्दिशेत्। चरस्थिरभवो भौमो भूकम्पश्चापि भूमिजः॥ ८॥
जलाशयानां वैकृत्यं भौमं तदपि कीर्तितम्। भौमे त्वल्पफलं ज्ञेयं चिरेण च विपच्यते॥ ९॥
अभ्रजं मध्यफलदं मध्यकालफलप्रदम्। अद्भुते तु समुत्पन्ने यदि वृष्टिः शिवा भवेत्॥ १०॥
सप्ताहाभ्यन्तरे ज्ञेयमद्भुतं निष्फलं भवेत्। अद्भुतस्य विपाकश्च विना शान्त्या न दृश्यते॥ ११॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

*

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

त्रिभिर्वर्षैस्तथा ज्ञेयं सुमहद्भयकारकम्। राज्ञः शरीरे लोके च पुरद्वारे पुरोहिते ॥ १२॥
पाकमायाति पुत्रेषु तथा वै कोशवाहने। ऋतुस्वभावाद् राजेन्द्र भवन्त्यद्भुतसंज्ञिताः ॥ १३॥
शुभावहास्ते विज्ञेयास्तांश्च मे गदतः शृणु।

गर्गजी बोले—अत्रिजी ! मनुष्योंके अत्याचारसे निश्चय ही देवता प्रतिकूल हो जाते हैं। तत्पश्चात् उन देवताओंके अप्रसन्न होनेसे उत्पात प्रारम्भ होता है। वह उत्पात दिव्य, आन्तरिक्ष और भौम—तीन प्रकारका कहा गया है। ग्रहों और नक्षत्रोंके विकारको दिव्य उत्पात जानना चाहिये। अब मुझसे आन्तरिक्ष उत्पातका वर्णन सुनिये। उल्कापात, दिशाओंका दाह, मण्डलोंका उदय, आकाशमें गन्धर्व-नगरका दिखायी देना, खण्डवृष्टि, अनावृष्टि या अतिवृष्टि—इस प्रकारके उत्पातोंको इस लोकमें आन्तरिक्ष उत्पात कहना चाहिये। स्थावर-जंगमसे उत्पन्न हुआ उत्पात तथा भूमिजन्य भूकम्प भौम उत्पात हैं। जलाशयोंका विकार भी भौम उत्पात कहलाता है। भौम उत्पात होनेपर उसका थोड़ा फल जानना चाहिये, किंतु वह बहुत देरमें शान्त होता है। आन्तरिक्ष उत्पात मध्यम फल देनेवाला होता है और मध्यमकालमें परिणामदायी होता है। इस महोत्पातके उदय होनेपर यदि कल्याण-कारिणी वृष्टि होती है तो यह समझ लेना चाहिये कि एक सप्ताहके भीतर यह उत्पात निष्फल हो जायगा, किंतु इस महान् उत्पातका अवसान शान्तिके बिना नहीं होता। इसे तीन वर्षोंतक महान् भयदायक मानना चाहिये। इसका परिणाम राजाके शरीर, राज्य, पुरद्वार, पुरोहित, पुत्र, कोश और वाहनोंपर प्रकट होता है। राजेन्द्र ! जो अद्भुतसंज्ञक उत्पात ऋतुओंके स्वभावके अनुकूल होते हैं, उन्हें शुभदायक मानना चाहिये। मैं उनका वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये ॥५–१३½॥

वज्राशनिमहीकम्पसंध्यानिर्घातनिःस्वनाः ॥ १४॥
परिवेषरजोधूमरक्तार्कास्तमयोदयाः । द्रुमोद्भेदकरस्नेहो बहुशः सफलद्रुमः ॥ १५॥
गोपक्षिमधुवृद्धिश्च शुभानि मधुमाधवे। ऋक्षोल्कापातकलुषं कपिलार्केन्दुमण्डलम् ॥ १६॥
कृष्णश्वेतं तथा पीतं धूसरध्वान्तलोहितम्। रक्तपुष्पारुणं सांध्यं नभः क्षुब्धार्णवोपमम् ॥ १७॥
सरितां चाम्बुसंशोषं दृष्ट्वा ग्रीष्मे शुभं वदेत्। शक्रायुधपरीवेषं विद्युदुल्काधिरोहणम् ॥ १८॥
कम्पोद्वर्तनवैकृत्यं हसनं दारणं क्षितेः। नद्युदपानसरसां विधूनतरणप्लवाः ॥ १९॥
शृङ्गिणां च वराहाणां वर्षासु शुभमिष्यते। शीतानिलतुषारत्वं नर्दनं मृगपक्षिणाम् ॥ २०॥
रक्षोभूतपिशाचानां दर्शनं वागमानुषी। दिशो धूमान्धकाराश्च सनभोवनपर्वताः ॥ २१॥
उच्चैः सूर्योदयास्तौ च हेमन्ते शोभनाः स्मृताः। दिव्यस्त्रीरूपगन्धर्वविमानाद्भुतदर्शनम् ॥ २२॥
ग्रहनक्षत्रताराणां दर्शनं वागमानुषी। गीतवादित्रनिर्घोषो वनपर्वतसानुषु ॥ २३॥
सस्यवृद्धी रसोत्पत्तिः शरत्काले शुभाः स्मृताः। हिमपातानिलोत्पातविरूपाद्भुतदर्शनम् ॥ २४॥
कृष्णाञ्जनाभमाकाशं तारोल्कापातपिञ्जरम्।
चित्रगर्भोद्भवः स्त्रीषु गोऽजाश्वमृगपक्षिषु। पत्राङ्कुरलतानां च विकाराः शिशिरे शुभाः ॥ २५॥
ऋतुस्वभावेन विनाद्भुतस्य जातस्य दृष्टस्य तु शीघ्रमेव।
यथागमं शान्तिरनन्तरं तु कार्या यथोक्ता वसुधाधिपेन ॥ २६॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽद्भुतशान्तिकोत्पत्तिर्नामैकोनत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२९॥

वज्र एवं बिजलीका गिरना, पृथ्वीका कम्पन, मण्डलोंका होना, धूलि और धूएँका उद्भव, उदय एवं संध्याके समय वज्रका शब्द, सूर्य तथा चन्द्रमामें अस्तके समय सूर्यकी अतिलालिमा, वृक्षोंके टूट जानेपर

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

उनसे रसका गिरना, फलवाले वृक्षोंकी अधिकता, गौ, पक्षी और मधुकी वृद्धि—ये चैत्र और बैशाख मासमें शुभप्रद हैं। ग्रीष्म ऋतुमें कलुषित नक्षत्रों और ग्रहोंका पतन, सूर्य और चन्द्रके मण्डलोंका कपिल वर्ण होना, सांयकालीन नभके काले और सफेद मिश्रित, पीले, धूसरित, श्यामल, लाल, लाल पुष्पके समान अरुण और क्षुब्ध सागरकी तरह संक्षुब्ध होना तथा नदियोंका जल सूख जाना—इन उत्पातोंको देखकर इन्हें शुभ कहना चाहिये। इन्द्रधनुषका मण्डलाकार उदय, विद्युत् और उल्काका पतन, पृथ्वीका अकस्मात् कम्पन, उलट-पलट, विकृति, ह्रास और फटना, नदियों एवं तालाबोंमें जलकी न्यूनता, नाव, जहाज और पुलका काँपना, सींगवाले जानवरों तथा शूकरोंकी वृद्धि—ये उत्पात वर्षा ऋतुमें मङ्गलकारी हैं। शीतल वायु, तुषार, पशु एवं पक्षियोंका चीत्कार, राक्षस, भूत और पिशाचोंका दर्शन, दैवी वाणी, सूर्यके उदय-अस्तके समय आकाश, वन और पर्वतोंसहित दिशाओंका गाढ़रूपमें धुएँसे अन्धकारित हो जाना—ये उत्पात हेमन्त ऋतुमें उत्तम माने जाते हैं। दिव्य स्त्रीका रूप, गन्धर्व-विमान, ग्रह, नक्षत्र और ताराओंका दर्शन, दैवी वाणी, वनोंमें और पर्वतोंकी चोटियोंपर गाने-बजानेका शब्द सुनायी पड़ना, अन्नोंकी वृद्धि, रसकी विशेष उत्पत्ति—ये उत्पात शरत्कालमें माङ्गलिक कहे गये हैं। हिमपात, वातका बहना, विरूप एवं अद्भुत उत्पातोंका दर्शन, आकाशका काले कज्जलके समान दिखायी पड़ना तथा ताराओं एवं उल्काओंके गिरनेसे पीले रंगका दीख पड़ना, स्त्री, गाय, बकरी, घोड़ी, मृगी और पक्षियोंसे विचित्र प्रकारके बच्चोंका पैदा होना, पत्तों, अङ्कुरों और लताओंमें अनेकों प्रकारके विकारोंका हो जाना—ये उत्पात शिशिर ऋतुमें शुभदायी माने गये हैं। इन ऋतु-स्वभावके अतिरिक्त अन्य उत्पन्न हुए अद्भुत उत्पातके देखे जानेके बाद राजाको शीघ्र ही शास्त्रानुकूल कही गयी शान्तिका विधान करना चाहिये॥ १४—२६॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अद्भुत उत्पातोंकी शान्ति नामक दो सौ उन्तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २२९॥

दो सौ तीसवाँ अध्याय

अद्भुत-उत्पातके लक्षण तथा उनकी शान्तिके उपाय

गर्ग उवाच

देवतार्चाः प्रनृत्यन्ति वेपन्ते प्रज्वलन्ति च। वमन्त्यग्निं तथा धूमं स्नेहं रक्तं तथा वसाम्॥ १॥
आरटन्ति रुदन्त्येताः प्रस्विद्यन्ति हसन्ति च। उत्तिष्ठन्ति निषीदन्ति प्रधावन्ति धमन्ति च॥ २॥
भुञ्जते विक्षिपन्ते वा कोशप्रहरणध्वजान्। अवाङ्मुखा वा तिष्ठन्ति स्थानात् स्थानं भ्रमन्ति च॥ ३॥
एवमाद्या हि दृश्यन्ते विकाराः सहसोत्थिताः। लिङ्गायतनविप्रेषु तत्र वासं न रोचयेत्॥ ४॥
राज्ञो वा व्यसनं तत्र स च देशो विनश्यति। देवयात्रासु चोत्पातान् दृष्ट्वा देशभयं वदेत्॥ ५॥

गर्गजी बोले—जब देव-मूर्तियाँ नाचने लगती हैं, काँपती हैं, जल उठती हैं, अग्नि, धूँआ, तेल, रक्त और चर्बी उगलने लगती हैं, जोर-जोरसे चिल्लाती हैं, रोती हैं, पसीना बहाने लगती हैं, हँसती हैं, उठती हैं, बैठती हैं, दौड़ने लगती हैं, मुँह बजाने लगती हैं, खाती हैं, कोश, अस्त्र और ध्वजाओंको फेंकने लगती हैं, नीचे मुख किये बैठी रहती हैं अथवा एक स्थानसे दूसरे स्थानपर भ्रमण करने लगती हैं—इस प्रकारके सहसा उत्पन्न हुए उत्पात यदि शिव-लिङ्ग, देवमन्दिर तथा ब्राह्मणोंके पुरमें दिखायी पड़ें तो उस

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

स्थानपर निवास नहीं करना चाहिये। ऐसे उत्पातोंके होनेपर या तो राजापर कोई बड़ी आपत्ति आती है अथवा उस देशका विनाश होता है। देवताके दर्शनके लिये जाते समय यदि उपर्युक्त उत्पात दिखायी पड़ें तो उस देशको भय बतलाना चाहिये ॥ १-५ ॥

पितामहस्य हर्म्येषु तत्र वासं न रोचयेत्। पशूनां रुद्रजं ज्ञेयं नृपाणां लोकपालजम् ॥ ६ ॥
ज्ञेयं सेनापतीनां तु यत् स्यात् स्कन्दविशाखजम्। लोकानां विष्णुवस्विन्द्रविश्वकर्मसमुद्भवम् ॥ ७ ॥
विनायकोद्भवं ज्ञेयं गणानां ये तु नायकाः। देवप्रेष्याश्च नृपप्रेष्या देवस्त्रीभिर्नृपस्त्रियः ॥ ८ ॥
वासुदेवोद्भवं ज्ञेयं ग्रहाणामेव नान्यथा। देवतानां विकारेषु श्रुतिवेत्ता पुरोहितः ॥ ९ ॥
देवतार्चां तु गत्वा वै स्नानमाच्छाद्य भूषयेत्। पूजयेच्च महाभाग गन्धमाल्यान्नसम्पदा ॥ १० ॥
मधुपर्केण विधिवदुपतिष्ठेदनन्तरम्।
तल्लिङ्गेन च मन्त्रेण स्थालीपाकं यथाविधि। पुरोधा जुहुयाद् वह्नौ सप्तरात्रमतन्द्रितः ॥ ११ ॥
विप्राश्च पूज्या मधुरान्नपानैः सदक्षिणं सप्तदिनं नरेन्द्र।
प्राप्तेऽष्टमेऽह्नि क्षितिगोप्रदानैः सकाञ्चनैः शान्तिमुपैति पापम् ॥ १२ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽद्भुतशान्तावर्चाधिकारो नाम त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३० ॥

गृहसम्बन्धी उत्पातोंको ब्रह्मासे सम्बद्ध जानना चाहिये, अतः वहाँ निवास न करे। पशुओंके उत्पातोंको रुद्रसे उत्पन्न और राजाओंके उत्पातोंको लोकपालसे उत्पन्न जानना चाहिये। सेनापतियोंके उत्पातोंको स्कन्द तथा विशाखसे उत्पन्न तथा लोकोंके उत्पातोंको विष्णु, वसु, इन्द्र और विश्वकर्मासे उद्भूत समझना चाहिये। जो गणोंके नायक हैं, उनपर घटित होनेवाला उत्पात विनायकसे उद्भूत जानना चाहिये। देव-दूतोंकी अप्रसन्नतासे राजदूतोंपर तथा देवाङ्गनाओंके द्वारा राजपत्नियोंपर उत्पात घटित होते हैं। ग्रहोंके उपद्रवको भगवान् वासुदेवसे उत्पन्न हुआ समझना चाहिये। महाभाग! देवताओंमें उपर्युक्त विकारोंके उत्पन्न होनेपर वेदज्ञ पुरोहित देवमूर्तिके पास जाकर उसे स्नान कराये, वस्त्रादिसे अलंकृत करे तथा चन्दन, पुष्पमाला और भक्ष्यपदार्थसे उसकी पूजा करे। तदनन्तर विधिपूर्वक मधुपर्क निवेदित करे। फिर वह पुरोहित ब्राह्मण सावधानीपूर्वक उक्त प्रतिमाके मन्त्रसे स्थालीपाकद्वारा सात दिनोंतक विधिपूर्वक अग्निमें आहुति डाले। नरेन्द्र! उक्त सातों दिनोंतक मधुर अन्न-पानादि सामग्रियोंद्वारा तथा उत्तम दक्षिणा देकर ब्राह्मणोंकी पूजा करनी चाहिये। आठवें दिन पृथ्वी, सुवर्ण, तथा गौका दान करनेसे पाप शान्त हो जाता है ॥ ६-१२ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके अद्भुत-शान्तिके प्रसङ्गमें पूजाधिकार नामक दो सौ तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २३० ॥

दो सौ एकतीसवाँ अध्याय

अग्निसम्बन्धी उत्पातके लक्षण तथा उनकी शान्तिके उपाय

गर्ग उवाच

अनग्निर्दीप्यते यत्र राष्ट्रे यस्य निरिन्धनः। न दीप्यते चेन्धनवांस्तद्राष्ट्रं पीड्यते नृपैः ॥ १ ॥
प्रज्वलेदप्सु मांसं वा तदर्धं वापि किंचन। प्राकारं तोरणं द्वारं नृपवेश्म सुरालयम् ॥ २ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

एतानि यत्र दीप्यन्ते तत्र राज्ञो भयं भवेत् । विद्युता वा प्रदह्यन्ते तदापि नृपतेर्भयम् ॥ ३ ॥
अनैशानि तमांसि स्युर्विना पांसुरजांसि च । धूमश्चानग्निजो यत्र तत्र विन्द्यान्महाभयम् ॥ ४ ॥
तडित् त्वनभ्रे गगने भयं स्यादृक्षवर्जिते । दिवा सतारे गगने तथैव भयमादिशेत् ॥ ५ ॥

गर्गजीने कहा—जिस देशमें ईंधनके बिना ही अग्नि जल उठती है और ईंधन लगानेपर भी अग्नि प्रज्वलित नहीं होती, वह देश राजाओंसे पीड़ित होता है। जहाँ जलमें मांस जलने लगता है या उसका कोई भाग जल जाता है, किलेकी चहारदीवारी, प्रवेशद्वार, तोरण, राजभवन और देवालय—ये अकस्मात् जल उठते हैं वहाँ राजाको भय प्राप्त होता है। यदि ये उपर्युक्त वस्तुएँ बिजली गिरनेसे जल जाती हैं तब भी राजाको भय प्राप्त होता है। जहाँ रात्रि तथा धूलि एवं रजःकणोंके बिना ही अन्धकार छा जाय और अग्निके बिना धुआँ दिखायी पड़े, वहाँ महाभयकी प्राप्ति जाननी चाहिये। बादल और नक्षत्रोंसे रहित आकाशमें बिजली कौंधने लगे तो भय प्राप्त होता है। इसी प्रकार दिनमें गगनमण्डल तारायुक्त हो जाय तो भी उसी प्रकारका भय कहना चाहिये ॥ १–५ ॥

ग्रहनक्षत्रवैकृत्ये ताराविषमदर्शने । पुरवाहनयानेषु चतुष्पान्मृगपक्षिषु ॥ ६ ॥
आयुधेषु च दीप्तेषु धूमायत्सु तथैव च । निगमत्सु च कोशाच्च संग्रामस्तुमुलो भवेत् ॥ ७ ॥
विनाग्निं विष्फुलिङ्गाश्च दृश्यन्ते यत्र कुत्रचित् । स्वभावाच्चापि पूर्यन्ते धनूंषि विकृतानि च ॥ ८ ॥
विकारश्चायुधानां स्यात् तत्र संग्राममादिशेत् । त्रिरात्रोपोषितश्चात्र पुरोधाः सुसमाहितः ॥ ९ ॥
समिद्भिः क्षीरवृक्षाणां सर्षपैश्च घृतेन च । होमं कुर्यादग्निमन्त्रैर्ब्राह्मणांश्चैव भोजयेत् ॥ १० ॥
दद्यात् सुवर्णं च तथा द्विजेभ्यो गाश्चैव वस्त्राणि तथा भुवं च ।
एवं कृते पापमुपैति नाशं यदग्निवैकृत्यभवं द्विजेन्द्र ॥ ११ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽद्भुतशान्तावग्निवैकृत्यं नामैकत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३१ ॥

ग्रहों और नक्षत्रोंमें विकारका हो जाना, ताराओंमें विषमताका दिखायी पड़ना, ग्राम, वाहन, रथ, चौपाये, मृग, पक्षी तथा शस्त्रास्त्रोंका अपने-आप प्रज्वलित हो उठना अथवा धूमिल हो जाना और कोशसे अस्त्रादिका निकलना तुमुल संग्रामका सूचक है। जहाँ-कहीं भी अग्निके बिना चिनगारियाँ दिखायी पड़ने लगें, स्वभाविक ढंगसे ही धनुषकी डोरियाँ चढ़ जायँ या विकृत हो जायँ तथा शस्त्रास्त्रोंमें विकार उत्पन्न हो जाय तो वहाँ संग्राम बतलाना चाहिये। ऐसी दशामें वहाँका पुरोहित तीन रात्रितक उपवासकर अत्यन्त समाहित-चित्तसे दूधवाले वृक्षोंकी लकड़ियों, सरसों तथा घीसे अग्नि-मन्त्रोंद्वारा हवन करे। तदनन्तर ब्राह्मणोंको भोजन कराये तथा उन्हें सुवर्ण, गौएँ, वस्त्र और पृथ्वीका दान दे। द्विजेन्द्र! ऐसा करनेसे अग्नि-विकार-सम्बन्धी पाप नष्ट हो जाता है ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके अद्भुत-शान्तिके प्रसंगमें अग्निविकार नामक दो सौ एकतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २३१ ॥

दो सौ बत्तीसवाँ अध्याय

वृक्षजन्य उत्पातके लक्षण और उनकी शान्तिके उपाय

गर्ग उवाच

पुरेषु येषु दृश्यन्ते पादपा देवचोदिताः । रुदन्तो वा हसन्तो वा स्रवन्तो वा रसान् बहून् ॥ १ ॥
अरोगा वा विना वातं शाखां मुञ्चन्ति द्रुमाः । फलं पुष्पं तथाकाले दर्शयन्ति त्रिहायनाः ॥ २

Sri Vidya Bharati Book Centre, Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

पूर्ववत् स्वं दर्शयन्ति फलं पुष्पं तथान्तरे। क्षीरं स्नेहं तथा रक्तं मधु तोयं स्रवन्ति च ॥ ३ ॥
शुष्यन्त्यरोगाः सहसा शुष्का रोहन्ति वा पुनः। उत्तिष्ठन्तीह पतिताः पतन्ति च तथोत्थिताः ॥ ४ ॥
तत्र वक्ष्यामि ते ब्रह्मन् विपाकं फलमेव च।

गर्गजीने कहा—ब्रह्मन्! जिन ग्रामोंमें दैव-प्रेरित वृक्ष अपने-आप रोते, हँसते, प्रचुर परिमाणमें रस बहाते हुए किसी रोग अथवा वायुके बिना डालियाँ गिराते हैं, तीन ही वर्षके वृक्ष असमयमें फलने-फूलने लगते हैं, अन्यत्र कोई-कोई वृक्ष ऋतुकालकी भाँति अपनेको फलों और पुष्पोंसे लदे हुए दिखलाते हैं तथा दुग्ध, तैल, रक्त, मधु और जल बहाते हैं, किसी रोगके बिना ही सहसा सूख जाते हैं अथवा सूखे हुए पुनः अङ्कुरित हो जाते हैं, गिरे हुए उठकर खड़े हो जाते हैं तथा खड़े हुए गिर पड़ते हैं, वहाँ होनेवाला परिणाम और फल मैं आपको बतला रहा हूँ, सुनिये ॥ १–४½ ॥

रोदने व्याधिमभ्येति हसने देशविभ्रमम् ॥ ५ ॥
शाखाप्रपतनं कुर्यात् संग्रामे योधपातनम्। बालानां मरणं कुर्युरकाले पुष्पिता द्रुमाः ॥ ६ ॥
स्वराष्ट्रभेदं कुरुते फलपुष्पमथान्तरे। क्षयः सर्वत्र गोक्षीरे स्नेहे दुर्भिक्षलक्षणम् ॥ ७ ॥
वाहनापचयं मद्ये रक्ते संग्राममादिशेत्। मधुस्रावे भवेद् व्याधिर्जलस्रावे न वर्षति ॥ ८ ॥
अरोगशोषणं ज्ञेयं ब्रह्मन् दुर्भिक्षलक्षणम्। शुष्केषु सम्प्ररोहस्तु वीर्यमन्नं च हीयते ॥ ९ ॥
उत्थाने पतितानां च भयं भेदकरं भवेत्। स्थानात् स्थानं तु गमने देशभङ्गस्तथा भवेत् ॥ १० ॥
ज्वलत्स्वपि च वृक्षेषु रुदत्स्वपि धनक्षयम्। एतत्पूजितवृक्षेषु सर्वं राज्ञो विपद्यते ॥ ११ ॥
पुष्पे फले वा विकृते राज्ञो मृत्युं तथाऽऽदिशेत्। अन्येषु चैव वृक्षेषु वृक्षोत्पातेष्वतन्द्रितः ॥ १२ ॥
आच्छादयित्वा तं वृक्षं गन्धमाल्यैर्विभूषयेत्। वृक्षोपरि तथा छत्रं कुर्यात् पापप्रशान्तये ॥ १३ ॥
शिवमभ्यर्चयेद् देवं पशुं चास्मै निवेदयेत्। रुद्रेभ्य इति वृक्षेषु हुत्वा रुद्रं जपेत् ततः ॥ १४ ॥
मध्वाज्ययुक्तेन तु पायसेन सम्पूज्य विप्रांश्च भुवं च दद्यात्।
गीतेन नृत्येन तथार्चयेत्तु देवं हरं पापविनाशहेतोः ॥ १५ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽद्भुतशान्तौ वृक्षोत्पातप्रशमनं नाम द्वात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३२ ॥

ब्रह्मन्! वृक्षोंके रुदन करनेपर व्याधियाँ फैलती हैं, हँसनेपर देशमें संकटकी वृद्धि होती है, शाखाओंके गिरनेसे संग्राममें योद्धाओंका विनाश होता है, असमयमें फूले हुए वृक्ष बालकोंकी मृत्यु सूचित करते हैं, वृक्षसमूहोंमेंसे किसी-किसीके फलने-फूलनेपर अपने राष्ट्रमें भेद उत्पन्न होता है, गायके दूध गिरनेसे चारों ओर विनाश उपस्थित होता है, तेलका गिरना दुर्भिक्षका लक्षण है, मदिराके गिरनेसे वाहनोंका विनाश होता है, रक्त गिरनेपर संग्राम बतलाना चाहिये, मधु चूनेसे व्याधियाँ फैलती हैं, जल गिरनेसे वृष्टि नहीं होती। किसी रोगके बिना वृक्षोंका सूख जाना दुर्भिक्षका लक्षण जानना चाहिये। सूखे हुए वृक्षसे अंकुर फूटनेपर वीर्य (पराक्रम) और अन्नकी हानि होती है। गिरे हुए वृक्षोंके उठनेपर भेदकारी भय होता है तथा एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जानेसे देश-भङ्ग होता है, वृक्षोंके अकस्मात् जलने तथा रुदन करनेपर सम्पत्तिका विनाश होता है। ये उपद्रव यदि पूजित वृक्षोंमें होते हैं तो अवश्य ही राजापर विपत्तियाँ आती हैं। वृक्षोंके फलों तथा फूलोंमें विकार होनेपर राजाकी मृत्यु कहनी चाहिये। इसी प्रकार अन्यान्य वृक्षोंमें भी उपद्रवके लक्षणोंके दिखायी पड़नेपर उत्साही ब्राह्मण उस वृक्षको ऊपरसे

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

ढककर चन्दन और पुष्पमालासे भूषित करे और पापकी शान्तिके लिये वृक्षके ऊपर छत्र लगाये। तदनन्तर शिवकी पूजा करे और पशुको 'रुद्रेभ्यः०' इस संकल्पसे निवेदित कर वृक्षोंके नीचे हवन करनेके पश्चात् शिवका जप करे। फिर मधु तथा घृतयुक्त खीरसे ब्राह्मणोंको संतुष्ट कर उन्हें पृथ्वीका दान दे और उस पापकी शान्तिके लिये गीत तथा नृत्यका आयोजन कराकर भगवान् शंकरकी अर्चना करे ॥ ५–१५ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके अद्भुत-शान्ति-प्रकरणमें वृक्षोत्पात-प्रशमन नामक दो सौ बत्तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २३२ ॥

दो सौ तैंतीसवाँ अध्याय

वृष्टिजन्य उत्पातके लक्षण और उनकी शान्तिके उपाय

गर्ग उवाच

अतिवृष्टिरनावृष्टिर्दुर्भिक्षादि भयं मतम्। अनृतौ तु दिवानन्ता वृष्टिर्ज्ञेया भयानका ॥ १ ॥
अनभ्रे वैकृता चैव विज्ञेया राजमृत्यवे। शीतोष्णानां विपर्यासे नृपाणां रिपुजं भयम् ॥ २ ॥
शोणितं वर्षते यत्र तत्र शस्त्रभयं भवेत्। अङ्गारपांशुवर्षेषु नगरं तद् विनश्यति ॥ ३ ॥
मज्जास्थिस्नेहमांसानां जनमारभयं भवेत्। फलं पुष्पं तथा धान्यं परेणातिभयाय तु ॥ ४ ॥
पांशुजन्तूपलानां च वर्षतो रोगजं भयम्। छिद्रे वान्नप्रवर्षेण सस्यानां भीतिवर्धनम् ॥ ५ ॥
विरजस्के रवौ व्यभ्रे यदा छाया न दृश्यते। दृश्यते तु प्रतीपा वा तत्र देशभयं भवेत् ॥ ६ ॥
निरभ्रे वाथ रात्रौ वा श्वेतं याम्योत्तरेण तु। इन्द्रायुधं तथा दृष्ट्वा उल्कापातं तथैव च ॥ ७ ॥
दिग्दाहपरिवेषौ च गन्धर्वनगरं तथा। परचक्रभयं ब्रूयाद् देशोपद्रवमेव च ॥ ८ ॥
सूर्येन्दुपर्जन्यसमीरणानां यागस्तु कार्यो विधिवद् द्विजेन्द्र।
धनानि गौः काञ्चनदक्षिणा च देया द्विजानामघनाशहेतोः ॥ ९ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽद्भुतशान्तौ वृष्टिवैकृतिप्रशमनं नाम त्रयस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३३ ॥

गर्गजीने कहा—मुने! अतिवृष्टि और अनावृष्टि—ये दोनों दुर्भिक्षादिजन्य भयका कारण मानी गयी हैं। वर्षाऋतुके बिना दिनमें अनन्त वृष्टिका होना अत्यन्त भयानक है। बादलरहित आकाशमें विकृत हुई वृष्टिको राजाकी मृत्युका कारण जानना चाहिये। शीतकालमें गर्मी एवं ग्रीष्ममें सर्दी पड़नेसे राजाओंपर शत्रुपक्षसे भय होता है। जिस स्थानपर आकाशसे रक्तकी वर्षा होती है वहाँ शस्त्रभय प्राप्त होता है। अङ्गार और धूलिकी वृष्टि होनेपर वह नगर विनष्ट हो जाता है। मज्जा, हड्डी, तेल और मांसकी वृष्टि होनेपर प्रजावर्गमें मृत्युका भय उपस्थित होता है। आकाशसे फल, पुष्प तथा अन्नकी वृष्टि शत्रुपक्षसे अत्यन्त भयका द्योतन करती है। धूलि, जन्तु और उपलोंके गिरनेसे रोगजन्य भय प्राप्त होता है। रुक-रुककर अन्नकी वृष्टि होनेसे फसलके भयकी वृद्धि होती है। सूर्यके बादल एवं धूलिसे रहित रहनेपर जब परछाई नहीं दीखती अथवा विपरीत दिखायी पड़ती है, तब सारे देशको भय प्राप्त होता है। बादलरहित रात्रिमें दक्षिण अथवा उत्तर दिशामें श्वेत रंगका इन्द्रधनुष, उल्कापात, दिशाओंमें दाह, सूर्य तथा चन्द्रमामें मण्डल तथा गन्धर्वनगर दिखायी पड़े तो उस समय देशपर शत्रु-पक्षकी सेनाका आक्रमण और देशमें विविध उपद्रवोंके संघटित होनेकी सम्भावना कहनी चाहिये। द्विजेन्द्र! ऐसे अवसरपर सूर्य, चन्द्रमा, मेघ और वायुके उद्देश्यसे विधिपूर्वक यज्ञ करना चाहिये और इस पापके विनाशके लिये ब्राह्मणोंको धन, गौ तथा सुवर्णकी दक्षिणा देनी चाहिये ॥ १–९ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके अद्भुतशान्ति-प्रसंगमें वृष्टि-विकारशमन नामक दो सौ तैंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २३३ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

दो सौ चौंतीसवाँ अध्याय

जलाशयजनित विकृतियाँ और उनकी शान्तिके उपाय

गर्ग उवाच

नगरादपसर्पन्ते समीपमुपयान्ति च। नद्यो ह्रदप्रस्रवाणि विरसाश्च भवन्ति च॥ १॥
विवर्णं कलुषं तप्तं फेनवज्जन्तुसंकुलम्। स्नेहं क्षीरं सुरां रक्तं वहन्ते वाकुलोदकाः॥ २॥
षण्मासाभ्यन्तरे तत्र परचक्रभयं भवेत्। जलाशया नदन्ते वा प्रज्वलन्ति कथंचन॥ ३॥
विमुञ्चन्ति तथा ब्रह्मन् ज्वालाधूमरजांसि च। अखाते वा जलोत्पत्तिः सुसत्त्वा वा जलाशयाः॥ ४॥
संगीतशब्दाः श्रूयन्ते जनमारभयं भवेत्। दिव्यमम्भोमयं सर्पिर्मधुतैलाक्तसेचनम्॥ ५॥
जप्तव्या वारुणा मन्त्रास्तैश्च होमो जले भवेत्॥ ६॥
मध्वाज्ययुक्तं परमान्नमत्र देयं द्विजानां द्विजभोजनार्थम्।
गावश्च देयाः सितवस्त्रयुक्तास्तथोदकुम्भाः सलिलाघशान्त्यै॥ ७॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽद्भुतशान्तौ सलिलाशयवैकृत्यं नाम चतुस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२३४॥

गर्गजीने कहा—ब्रह्मन्! जब नदियाँ, सरोवर या झरने नगरसे दूर हट जाते हैं या अत्यन्त समीप चले आते हैं, सूख जाते हैं, मलिन, कलुषित, संतप्त तथा फेनके समान जन्तुओंसे व्याप्त हो जाते हैं, तेल, दूध, मदिरा और रक्त बहाने लगते हैं अथवा उनका जल विक्षुब्ध हो उठता है, तब छः महीनेके भीतर उस देशपर शत्रुपक्षकी सेनासे भय प्राप्त होनेकी सम्भावना होती है। जब किसी प्रकारसे जलाशय शब्द करने लगते हैं या जलने लगते हैं तथा लपटें, धूआँ एवं धूलि फेंकने लगते हैं, बिना खोदे ही जल निकलने लगता है, जलाशय बड़े-बड़े जन्तुओंसे भर जाते हैं और उनमेंसे संगीतकी ध्वनियाँ सुनायी पड़ने लगती हैं, तब प्रजावर्गके मरणका भय उपस्थित होता है। ऐसे अवसरपर घी, मधु और तैलसे जलाशयोंका अभिषेक कर वरुणके मन्त्रोंका जप करना चाहिये और उन्हीं मन्त्रोंका उच्चारण कर जलमें हवन करना चाहिये। तदनन्तर ब्राह्मणोंको भोजनार्थ मधु तथा घृत मिलाकर श्रेष्ठ अन्न देना चाहिये और जलके महापाप-की शान्तिके लिये श्वेत वस्त्रोंसे युक्त गौएँ और जल रखनेके घड़े दान करने चाहिये॥ १–७॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके अद्भुतशान्ति-प्रकरणमें जलाशय-विकार-शान्ति नामक दो सौ चौंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २३४॥

दो सौ पैंतीसवाँ अध्याय

प्रसवजनित विकारका वर्णन और उसकी शान्ति

गर्ग उवाच

अकालप्रसवा नार्यः कालातीतप्रजास्तथा। विकृतप्रसवाश्चैव युग्मसम्प्रसवास्तथा॥ १॥
अमानुषा ह्यतुण्डाश्च संजातव्यसनास्तथा। हीनाङ्गा अधिकाङ्गाश्च जायन्ते यदि वा स्त्रियः॥ २॥
पशवः पक्षिणश्चैव तथैव च सरीसृपाः। विनाशं तस्य देशस्य कुलस्य च विनिर्दिशेत्॥ ३॥
विवासयेत् तान् नृपतिः स्वराष्ट्रात् स्त्रियश्च पूज्याश्च ततो द्विजेन्द्राः।
किमिच्छकैर्ब्राह्मणतर्पणैश्च लोके ततः शान्तिमुपैति पापम्॥ ४॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽद्भुतशान्तौ प्रसववैकृत्यं नाम पञ्चत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २३५॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

गर्गजीने कहा—ब्रह्मन्! जब स्त्रियाँ बिना समय पूरा हुए अथवा पूरे समयके बहुत बाद प्रसव करती हैं, विकृत एवं जुड़वीं संतान पैदा करती हैं तथा मानवसे भिन्न, मुखहीन, जन्मते ही मर जानेवाले, अङ्गहीन और अधिक अङ्गवाले बच्चोंको जन्म देती हैं, उसी प्रकार वहाँके पशु, पक्षी और रेंगनेवाले जन्तु भी बच्चे देने लगते हैं, तब उस देश और कुलका विनाश कहना चाहिये। ऐसे उपद्रवोंके घटित होनेपर राजा अपने राष्ट्रसे उन पैदा होनेवाली संतानों और स्त्रियोंको निर्वासित कर दे। तदनन्तर ब्राह्मणोंकी विधिवत् पूजा करे। इस प्रकार इच्छानुसार ब्राह्मणोंको संतुष्ट करनेसे लोकमें पाप शान्तिको प्राप्त होता है॥ १—४॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके अद्भुतशान्तिप्रसङ्गमें प्रसववैकृत्य नामक दो सौ पैंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥२३५॥

दो सौ छत्तीसवाँ अध्याय

उपस्कर-विकृतिके लक्षण और उनकी शान्ति

गर्ग उवाच

यान्ति यानान्ययुक्तानि युक्तान्यपि न यान्ति च। चोद्यमानानि तत्र स्यान्महद्भयमुपस्थितम्॥ १॥
वाद्यमाना न वाद्यन्ते वाद्यन्ते चाप्यनाहताः। अचलाश्च चलन्त्येव न चलन्ति चलानि च॥ २॥
आकाशे तूर्यनादाश्च गीतगन्धर्वनिःस्वनाः। काष्ठदर्वीकुठारादि विकारं कुरुते यदि॥ ३॥
गावो लाङ्गूलसङ्घैश्च स्त्रियः स्त्री च विघातयेत्। उपस्कारादिविकृतौ घोरं शस्त्रभयं भवेत्॥ ४॥
वायोस्तु पूजां द्विज सक्तुभिश्च कृत्वा नियुक्तांश्च जपेच्च मन्त्रान्।
दद्यात् प्रभूतं परमान्नमत्र सदक्षिणं तेन शमोऽस्य भूयात्॥ ५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽद्भुतशान्तावुपस्करवैकृत्यं नाम षट्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २३६॥

गर्गजीने कहा—ब्रह्मन्! जिस देशमें रथादि घोड़ोंके बिना जोते ही चलने लगते हैं और घोड़ोंके जोतनेपर एवं उन्हें हाँकनेपर भी नहीं चलते, वहाँ महान् भय उपस्थित होनेवाला है। बिना बजाये ही बाजे बजने लगते हैं और बजानेपर नहीं बजते, अचल वस्तुएँ चलने लगती हैं और चल अचल हो जाती हैं, आकाशमें तुरुहीकी ध्वनि और गन्धर्वोंकी गीतोंका शब्द सुनायी पड़ने लगता है, काष्ठ, करछुल एवं फावड़े आदिमें विकार उत्पन्न हो जाते हैं, गौएँ पूँछसे एक दूसरेको मारने लगती हैं, स्त्रियाँ एक दूसरेकी हत्या करने लगती हैं और घरेलू वस्तुओंमें भी विकार उत्पन्न हो जाते हैं, उस देशमें शस्त्रास्त्रोंसे घोर भय उत्पन्न होता है। ऐसे उत्पातोंके घटित होनेपर सत्तूसे वायुदेवकी पूजा करके उनके मन्त्रोंका जप करना चाहिये और प्रचुरपरिमाणमें दक्षिणा-सहित परमोत्तम अन्नका दान देना चाहिये। इसीसे उस उत्पातका शमन होता है॥ १—५॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके अद्भुतशान्ति-प्रकरणमें उपस्करशान्ति नामक दो सौ छत्तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥२३६॥

दो सौ सैंतीसवाँ अध्याय

पशु-पक्षीसम्बन्धी उत्पात और उनकी शान्ति

गर्ग उवाच

प्रविशन्ति यदा ग्राममारण्या मृगपक्षिणः। अरण्यं यान्ति वा ग्राम्याः स्थलं यान्ति जलोद्भवाः॥ १॥
स्थलजाश्च जलं यान्ति घोरं वाशन्ति निर्भयाः। राजद्वारे पुरद्वारे शिवाश्चाप्यशिवप्रदाः॥ २॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

दिवा रात्रिचरा वापि रात्रावपि दिवाचराः । ग्राम्यास्त्यजन्ति ग्रामं च शून्यतां तस्य निर्दिशेत्॥ ३ ॥
दीप्ता वाशन्ति संध्यासु मण्डलानि च कुर्वते । वाशन्ति विस्वरं यत्र तदाप्येतत्फलं लभेत् ॥ ४ ॥
प्रदोषे कुक्कुटो वाशेद्धेमन्ते वापि कोकिलः । अर्कोदयेऽर्काभिमुखी शिवा रौति भयं वदेत् ॥ ५ ॥
गृहं कपोतः प्रविशेत् क्रव्यादो मूर्ध्नि लीयते । मधु वा मक्षिकाः कुर्युर्मृत्युर्गृहपतेर्भवेत् ॥ ६ ॥
प्राकारद्वारगेहेषु तोरणापणवीथिषु । केतुच्छत्रायुधाद्येषु क्रव्यादं प्रपतेद् यदि ॥ ७ ॥
जायन्ते वाथ वल्मीका मधु वा स्यन्दते यदि । स देशो नाशमायाति राजा वा म्रियते तथा ॥ ८ ॥

गर्गजीने कहा—ब्रह्मन् ! जब जंगली पशु-पक्षी ग्रामोंमें प्रवेश करने लगें या ग्रामीण पशु-पक्षी जंगलोंमें चले जायँ, जलमें रहनेवाले जीव-जन्तु भूमिपर रेंगने लगें या भूमिके जीव जलमें चले जायँ, अमङ्गलदायक श्रृगाल राजद्वार या नगरद्वारपर निर्भय होकर बोलना आरम्भ कर दें, दिनमें घूमनेवाले रात्रिमें और रात्रिमें घूमनेवाले दिनमें घूमने लगें तथा ग्राममें रहनेवाले जीव ग्रामको छोड़ दें, तब उस ग्रामकी शून्यताका निर्देश करना चाहिये । जब ग्रामोंमें पशु आदि जीवगण क्रोधोन्मत्त हो मण्डल बनाकर क्रूर स्वरमें चिल्लाने लगें, तब भी यही फल प्राप्त होता है। सायंकालमें मुर्गा बाँग देने लगे, हेमन्त ऋतुमें कोकिल बोले और सूर्योदयके समय सूर्याभिमुखी हो श्रृगाली चिल्लाये तो भयका आगमन कहना चाहिये । घरमें कबूतर घुस आये, मस्तकपर मांसभक्षी पक्षी बैठ जाय और घरके भीतर मधुमक्खियाँ छत्ते लगायें तो उस घरके स्वामीकी मृत्यु होती है । यदि दुर्गादिके परकोटे, प्रवेशद्वार, राजभवन, तोरण (सिंहद्वार), बाजार, गली, पताका, ध्वज और अस्त्र-शस्त्रादिपर मांसभक्षी पक्षी बैठ जाय अथवा घरमें बिमवट हो जाय या छत्तेसे मधु चूने लगे तो उस देशका विनाश हो जाता है तथा राजाकी मृत्यु हो जाती है ॥१–८॥

मूषकाश्च शलभान् दृष्ट्वा प्रभूतं क्षुद्भयं भवेत् । काष्ठोल्मुकास्थिश्रृङ्गाढ्याः श्वानो मर्कटवेदनाः ॥ ९ ॥
दुर्भिक्षं वेदना ज्ञेया काका धान्यमुखा यदि । जनानभिभवन्तीह निर्भया रणवेदिनः ॥ १० ॥
काको मैथुनसक्तश्च श्वेतस्तु यदि दृश्यते । राजा वा म्रियते तत्र स च देशो विनश्यति ॥ ११ ॥
उलूको वाशते यत्र नृपद्वारे तथा गृहे । ज्ञेयो गृहपतेर्मृत्युर्धननाशस्तथैव च ॥ १२ ॥
मृगपक्षिविकारेषु कुर्याद्धोमं सदक्षिणम् । देवाः कपोता इति वा जप्तव्याः पञ्चभिर्द्विजैः ॥ १३ ॥
गावश्च देया विधिवद् द्विजानां सकाञ्चना वस्त्रयुगोत्तरीयाः ।
एवं कृते शान्तिमुपैति पापं मृगैर्द्विजैर्वा विनिवेदितं यत् ॥ १४ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽद्भुतशान्तौ मृगपक्षिवैकृत्यं नाम सप्तत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३७॥

चूहे और शलभ अधिक परिमाणमें दिखायी पड़ें तो दुर्भिक्ष पड़ता है । लकड़ीके लुआठे, हड्डियाँ, सींगवाले जानवर, कुत्ते और बन्दरोंकी अधिकता होनेपर देशमें व्याधियाँ फैलनेका भय रहता है । यदि कौए चोंचमें अन्न लेकर निर्भयतापूर्वक लोगोंपर टूट पड़ते हों तो दुर्भिक्ष और रण छिड़नेकी सम्भावना समझनी चाहिये । यदि श्वेत कौआ मैथुन करते हुए दिखलायी पड़ जाय तो उस देशका राजा मर जाता है अथवा वह देश विनष्ट हो जाता है । जहाँ राजाके द्वार तथा घरपर उल्लू बोलता हो, वहाँ उस घरके स्वामीकी मृत्यु तथा सम्पत्तिका विनाश जानना चाहिये । इस प्रकार पशु-पक्षीसम्बन्धी उत्पातोंके होनेपर दक्षिणासहित हवन करना चाहिये या पाँच ब्राह्मणोंको **'देवाः कपोता'**— इस मन्त्रका जप करना चाहिये । ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक सुवर्ण तथा दुपट्टेसहित दो वस्त्रोंसे युक्त गौओंका दान करना चाहिये । ऐसा करनेसे पशुओं एवं पक्षियोंद्वारा सूचित किया गया पाप शान्त हो जाता है ॥ ९–१४ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके अद्‌भुतशान्ति-प्रसंगमें पशु-पक्षी-विकार-शान्ति नामक दो सौ सैंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २३७ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-0 In Public Domain. Digitized by eGangotri

दो सौ अड़तीसवाँ अध्याय

राजाकी मृत्यु तथा देशके विनाशसूचक लक्षण और उनकी शान्ति

गर्ग उवाच

प्रासादतोरणाट्टालद्वारप्राकारवेश्मनाम् । निर्निमित्तं तु पतनं दृढानां राजमृत्यवे ॥ १ ॥
रजसा वाथ धूमेन दिशो यत्र समाकुलाः । आदित्यचन्द्रताराश्च विवर्णा भयवृद्धये ॥ २ ॥
राक्षसा यत्र दृश्यन्ते ब्राह्मणाश्च विधर्मिणः । ऋतवश्च विपर्यस्ता अपूज्यः पूज्यते जनैः ॥ ३ ॥
नक्षत्राणि वियोगीनि तन्महद्भयलक्षणम् । केतूदयोपरागो च छिद्रं वा शशिसूर्ययोः ॥ ४ ॥
ग्रहर्क्षविकृतिर्यत्र तत्रापि भयमादिशेत् । स्त्रियश्च कलहायन्ते बाला निघ्नन्ति बालकान् ॥ ५ ॥
क्रियाणामुचितानां च विच्छित्तिर्यत्र जायते । हूयमानस्तु यत्राग्निर्दीप्यते न च शान्तिषु ॥ ६ ॥
पिपीलिकाश्च क्रव्यादा यान्ति चोत्तरतस्तथा । पूर्णकुम्भाः स्रवन्ते च हविर्वा विप्रलुप्यते ॥ ७ ॥
मङ्गल्याश्च गिरो यत्र न श्रूयन्ते समंततः । क्षवथुर्बाधते वाथ प्रहसन्ति नदन्ति च ॥ ८ ॥
न च देवेषु वर्तन्ते यथावद् ब्राह्मणेषु च । मन्दघोषाणि वाद्यानि वाद्यन्ते विस्वराणि च ॥ ९ ॥
गुरुमित्रद्विषो यत्र शत्रुपूजारता नराः । ब्राह्मणान् सुहृदो मान्यान् जनो यत्रावमन्यते ॥ १० ॥
शान्तिमङ्गलहोमेषु नास्तिक्यं यत्र जायते । राजा वा म्रियते तत्र स देशो वा विनश्यति ॥ ११ ॥

गर्गजीने कहा—ब्रह्मन् ! सुदृढ राजभवन, तोरण, अट्टालिका, प्रवेशद्वार, परकोटा और घरका अकारण गिरना राजाकी मृत्युका कारण होता है। जहाँ दिशाएँ धूलि अथवा धूएँसे व्याप्त दिखायी पड़ती हैं तथा सूर्य, चन्द्रमा और ताराओंका रंग बदल जाता है तो यह भी भय-वृद्धिका सूचक है। जहाँ राक्षस दिखायी पड़ते हों, ब्राह्मण विधर्मी हों, ऋतुओंका विपर्यय हो, लोग अपूज्यकी पूजा करते हों और नक्षत्रगण आकाशसे नीचे गिरने लगें तो यह महान् भयका लक्षण है। जहाँ केतुका उदय, ग्रहण, चन्द्र-सूर्यके बिम्बमें छिद्र तथा ग्रह और नक्षत्रोंमें विकार दिखायी दे, वहाँ भी भयकी सम्भावना कहनी चाहिये। जहाँ स्त्रियाँ आपसमें झगड़ने लगें, बालक बच्चोंको मारने लगें, उचित कार्योंका विनाश होने लगे, शान्ति-कर्मोंमें आहुति देनेपर भी अग्नि उद्दीप्त न हो, पिपीलिका और मांसभक्षी पक्षी उत्तर दिशा होकर जायँ, भरे हुए घटोंमें रखी हुई वस्तुओंका चूना, हविका नष्ट हो जाना, चारों ओरसे माङ्गलिक वाणियोंका न सुना जाना, लोगोंमें कास-रोगकी पीड़ा, जनतामें अकारण हँसी और गानेकी अभिरुचि, देवता और ब्राह्मणोंके प्रति उचित बर्तावका अभाव, बाजोंका मन्द एवं विकृत स्वरमें बजना, लोगोंमें गुरु एवं मित्रोंसे द्वेष तथा शत्रुकी पूजामें अभिरुचि, ब्राह्मण, मित्र और माननीय लोगोंका अपमान तथा शान्ति-पाठ, माङ्गलिक कार्य और हवनादिमें नास्तिकताका प्रभाव दिखायी पड़े, वहाँका राजा मर जाता है अथवा वह देश विनष्ट हो जाता है ॥ १-११ ॥

राज्ञो विनाशे सम्प्राप्ते निमित्तानि निबोध मे । ब्राह्मणान् प्रथमं द्वेष्टि ब्राह्मणैश्च विरुध्यते ॥ १२ ॥
ब्राह्मणस्वानि चादत्ते ब्राह्मणांश्च जिघांसति । न च स्मरति कृत्येषु याचितश्च प्रकुप्यति ॥ १३ ॥
रमते निन्दया तेषां प्रशंसां नाभिनन्दति । अपूर्वं तु करं लोभात् तथा पातयते जने ॥ १४ ॥
एतेष्वभ्यर्चयेच्छक्रं सपत्नीकं द्विजोत्तम ।
भोज्यानि चैव कार्याणि सुराणां बलयस्तथा । सन्तो विप्राश्च पूज्याः स्युस्तेभ्यो दानं च दीयताम् ॥ १५ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

गावश्च देया द्विजपुंगवेभ्यो भुवस्तथा काञ्चनमम्बराणि ।
होमश्च कार्योऽमरपूजनं च एवं कृते पापमुपैति शान्तिम् ॥ १६ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽद्भुतशान्तावुत्पातप्रशमनं नामाष्टात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३८ ॥

द्विजोत्तम ! अब मैं राजाका विनाश उपस्थित होनेपर उत्पन्न होनेवाले निमित्तोंको बतला रहा हूँ, सुनिये। वह राजा सर्वप्रथम ब्राह्मणोंसे द्वेष करने लगता है, ब्राह्मणोंसे विरोध करता है, ब्राह्मणोंकी सम्पत्तिको हड़प लेता है, ब्राह्मणोंके मारनेका उपक्रम करता है, उसे सत्कार्योंके सम्पादनका स्मरण नहीं होता, वह माँगनेपर क्रुद्ध होता है, ब्राह्मणोंकी निन्दामें विशेष रुचि रखता है और प्रशंसाका अभिनन्दन नहीं करता, लोभवश लोगोंपर नया-नया कर लगाता है—ऐसे अवसरपर शचीसहित इन्द्रकी पूजा करनी चाहिये तथा ब्राह्मणोंको भोजन और अन्य देवताओंके उद्देश्यसे बलि प्रदान करना चाहिये। सत्पुरुषों एवं ब्राह्मणोंकी पूजा कर उन्हें दान देना चाहिये। श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको गौएँ, पृथ्वी, सुवर्ण और वस्त्रादिका दान, देवताओंकी पूजा तथा हवन करना चाहिये। ऐसा करनेसे पाप शान्त हो जाता है ॥ १२—१६ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके अद्भुतशान्ति-प्रसङ्गमें उत्पात-प्रशमन नामक दो सौ अड़तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २३८ ॥

दो सौ उन्तालीसवाँ अध्याय

ग्रहयागका विधान

मनुरुवाच

ग्रहयज्ञः कथं कार्यो लक्षहोमः कथं नृपैः । कोटिहोमोऽपि वा देव सर्वपापप्रणाशनः ॥ १ ॥
क्रियते विधिना येन यद् दृष्टं शान्तिचिन्तकैः । तत् सर्वं विस्तराद् देव कथयस्व जनार्दन ॥ २ ॥

मनुजीने पूछा—देव ! राजाओंको ग्रहयज्ञ किस प्रकार करना चाहिये ? सभी पापोंको नष्ट करनेवाले लक्षहोम तथा कोटिहोम करनेकी क्या विधि है ? जनार्दन ! यह जिस विधिसे किया जाता है तथा शान्ति-का चिन्तन करनेवाले जिस विधिसे सम्पन्न किये हों, वह सब विस्तारपूर्वक बतलाइये ॥ १—२ ॥

मत्स्य उवाच

इदानीं कथयिष्यामि प्रसङ्गादेव ते नृप । राज्ञा धर्मप्रसक्तेन प्रजानां च हितेप्सुना ॥ ३ ॥
ग्रहयज्ञः सदा कार्यो लक्षहोमसमन्वितः । नदीनां संगमे चैव सुराणामग्रतस्तथा ॥ ४ ॥
सुसमे भूमिभागे च दैवज्ञाधिष्ठितो नृपः । गुरुणा चैव ऋत्विग्भिः सार्धं भूमिं परीक्षयेत् ॥ ५ ॥
खनेत् कुण्डं च तत्रैव सुसमं हस्तमात्रकम् । द्विगुणं लक्षहोमे तु कोटिहोमे चतुर्गुणम् ॥ ६ ॥
युग्मास्तु ऋत्विजः प्रोक्ता अष्टौ वै वेदपारगाः । कन्दमूलफलाहारा दधिक्षीराशिनोऽपि वा ॥ ७ ॥
वेद्यां निधापयेच्चैव रत्नानि विविधानि च । सिक्तापरिवेषाश्च ततोऽग्निं च समिन्धयेत् ॥ ८ ॥
गायत्र्या दशसाहस्रं मानस्तोकेन षड्गुणः । त्रिंशद् ग्रहाणां मन्त्रैश्च चत्वारो विष्णुदैवतैः ॥ ९ ॥
कूष्माण्डैर्जुहुयात् पञ्च कुसुमाद्यैस्तु षोडश । होतव्या दशसाहस्रं बादरैर्जातवेदसि ॥ १० ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

मत्स्यभगवान्ने कहा—राजन् ! इस समय प्रसंग-वश मैं तुम्हें उसे बतला रहा हूँ। धर्मपरायण एवं प्रजाओंके हितेच्छु राजाको लक्षहोमसहित ग्रहयज्ञ सदा करना चाहिये। इस ग्रहयज्ञको नदियोंके संगम तथा देवताओंके समक्ष समतल भूभागपर करना चाहिये। सर्वप्रथम राजा ज्योतिषीसे परामर्श कर गुरु और ऋत्विजोंके साथ भूमिकी परीक्षा करे। वहाँ एक हाथ गहरा चौकोर कुण्ड बनाये। लक्षहोममें यह कुण्ड दुगुना और कोटिहोममें चौगुना बड़ा बनाना चाहिये। इसके लिये सोलह ऋत्विज् बतलाये गये हैं, जो वेदोंके पारगामी विद्वान् कंद-मूल-फलका आहार करनेवाले अथवा दही-दूधका भोजन करनेवाले हों। यजमान राजा यज्ञवेदीपर विविध प्रकारके रत्न स्थापित करे। बालूद्वारा वेदीके चारों ओर मण्डल बनाकर अग्नि प्रज्वलित कराये। फिर गायत्रीमन्त्रद्वारा दस हजार, 'मानस्तोके' (ऋ० ३। १३। ६ वाजसनेयि १६। १६) आदि मन्त्रद्वारा छः हजार, ग्रहोंके मन्त्रोंसे तीस हजार, विष्णुसूक्तसे चार हजार, कोंहड़ेसे पाँच हजार, पुष्प-समूहसे सोलह हजार तथा बेरके फलोंसे दस हजार आहुतियाँ अग्निमें देनी चाहिये ॥ ३—१० ॥

श्रियो मन्त्रेण होतव्याः सहस्राणि चतुर्दश। शेषाः पञ्चसहस्रास्तु होतव्यास्त्विन्द्रदैवतैः ॥ ११ ॥
हुत्वा शतसहस्रं तु पुण्यस्नानं समाचरेत्। कुम्भैः षोडशसंख्यैश्च सहिरण्यैः सुमङ्गलैः ॥ १२ ॥
स्नापयेद् यजमानं तु ततः शान्तिर्भविष्यति। एवं कृते तु यत्किंचिद् ग्रहपीडासमुद्भवम् ॥ १३ ॥
तत् सर्वं नाशमायाति दत्त्वा वै दक्षिणां नृप। तस्मात् सर्वप्रयत्नेन प्रधाना दक्षिणा स्मृता ॥ १४ ॥
हस्त्यश्वरथयानानि भूमिवस्त्रयुगानि च। अनुडुद्गोशतं दद्याद् ऋत्विजां चैव दक्षिणाम् ॥ १५ ॥
यथाविभवसारं तु वित्तशाठ्यं न कारयेत्। मासे पूर्णे समाप्तस्तु लक्षहोमो नराधिप ॥ १६ ॥
लक्षहोमस्य राजेन्द्र विधानं परिकीर्तितम्। इदानीं कोटिहोमस्य शृणु त्वं कथयाम्यहम् ॥ १७ ॥
गङ्गातटेऽथ यमुनासरस्वत्योर्नरेश्वर। नर्मदादेविकायास्तु तटे होमो विधीयते ॥ १८ ॥
तत्रापि ऋत्विजः कार्या रविनन्दन षोडश। सर्वहोमे तु राजर्षे दद्याद् विप्रेऽथवा धनम् ॥ १९ ॥
ऋत्विगाचार्यसहितो दीक्षां सांवत्सरीं स्थितः। चैत्रे मासे तु सम्प्राप्ते कार्तिके वा विशेषतः ॥ २० ॥
प्रारम्भः करणीयो वा वत्सरं वत्सरं नृप।

इसी प्रकार श्रीसूक्तसे चौदह हजार आहुतियाँ देनी चाहिये और शेष पाँच हजार आहुतियाँ इन्द्र देवताके मन्त्रोंसे देनी चाहिये। फिर एक लाख आहुतियोंसे हवन कर पुण्यस्नान† सम्पन्न करे। तत्पश्चात् सुवर्णयुक्त सोलह मङ्गल-कलशोंसे यजमानको स्नान कराये, तब शान्तिकी प्राप्ति होती है। नृप ! ऐसा करके दक्षिणा देनेपर ग्रहपीडासे उत्पन्न जो कुछ कष्ट होता है, वह सब नष्ट हो जाता है। इसीलिये सभी प्रकारसे दक्षिणाको ही प्रधान माना गया है। उस समय राजा अपनी सम्पत्तिके अनुकूल ऋत्विजोंको हाथी, घोड़े, रथ, वाहन, भूमि, जोड़े वस्त्र, बैल तथा सौ गौएँ दक्षिणारूपमें दे, कृपणता न करे। नराधिप ! लक्षहोम एक मासमें समाप्त होता है। राजेन्द्र ! इस प्रकार मैंने लक्षहोमका विधान आपको बतला दिया। अब मैं कोटिहोमका विधान बतला रहा हूँ, आप सुनिये। नरेश्वर ! गङ्गा, यमुना और सरस्वतीके अथवा नर्मदा और देविका (सरयू)के तटपर इस हवनके करनेका विधान है। रविनन्दन ! इस कोटिहोममें भी सोलह ऋत्विजोंका वरण करना चाहिये। राजर्षे ! सभी हवन-कार्योंमें ब्राह्मणोंको धन देना चाहिये। यजमान ऋत्विज् और आचार्यके साथ वर्षभरकी दीक्षा ग्रहण करे। राजन् ! चैत्र अथवा विशेषतया कार्तिकका महीना आनेपर इस यज्ञको प्रारम्भ करना चाहिये। इसी प्रकार प्रतिवर्ष करनेका विधान है ॥ ११—२०½ ॥

† पुण्यस्नानकी विस्तृत विधि बृहत्संहितामें दी गयी है।
Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

यजमानः पयोभक्षी फलाशी च तथानघ ॥ २१ ॥
यवादिव्रीहयो माषास्तिलाश्च सह सर्षपैः । पालाशाः समिधः शस्ता वसोर्धारा तथोपरि ॥ २२ ॥
मासेऽथ प्रथमे दद्याद् ऋग्भ्यः क्षीरभोजनम् । द्वितीये कृसरं दद्याद् धर्मकामार्थसाधनीम् ॥ २३ ॥
तृतीये मासि संयावो देयो वै रविनन्दन । चतुर्थे मोदका देया विप्राणां प्रीतिमावहन् ॥ २४ ॥
पञ्चमे दधिभक्तं तु षष्ठे वै सक्तुभोजनम् । पूपाश्च सप्तमे देया ह्यष्टमे घृतपूपकाः ॥ २५ ॥
षष्ट्योदनं च नवमे दशमे यवषष्टिका । एकादशे समाषं तु भोजनं रविनन्दन ॥ २६ ॥
द्वादशे त्वथ सम्प्राप्ते मासे रविकुलोद्वह । षड्रसैः सह भक्ष्यैश्च भोजनं सार्वकामिकम् ॥ २७ ॥
देया द्विजानां राजेन्द्र मासि मासि च दक्षिणाः । अहतवासः संवीतो दिनार्धे होमयेच्छुचिः ॥ २८ ॥
तस्मात् सदोत्थितैर्भाव्यं यजमानैः सह द्विजैः । इन्द्राद्यादिसुराणां च प्रीणनं सार्वकामिकम् ॥ २९ ॥
कृत्वा सुराणां राजेन्द्र पशुघातसमन्वितम् । सर्वदानानि देवानामग्निष्टोमं च कारयेत् ॥ ३० ॥

अनघ ! (अनुष्ठानके समय) यजमानको दुग्ध अथवा फलका आहार करना चाहिये । जौ आदि अन्न, उड़द, तिल, सरसों और पलाशकी लकड़ी इस होममें प्रशंसित हैं । इसके ऊपर वसुधारा छोड़नी चाहिये । पहले महीनेमें ऋत्विजोंको दुग्धका भोजन देना चाहिये । दूसरे महीनेमें धर्म, अर्थ और कामकी साधिका खिचड़ी खिलानी चाहिये । रविनन्दन ! तीसरे महीनेमें गोझिया देनी चाहिये । चौथे महीनेमें ब्राह्मणोंको प्रसन्न करते हुए लड्डू दे । पाँचवें महीनेमें दही और भात, छठे महीनेमें सत्तूका भोजन, सातवें महीनेमें मालपुआ और आठवें मासमें मालपुआ और घी दे । रविनन्दन ! नवें महीनेमें साठीका भात, दसवेंमें जौ-मिश्रित साठीका भात तथा ग्यारहवें महीनेमें उड़दयुक्त भोजन देना चाहिये । सूर्यकुलोत्पन्न ! बारहवें महीनेके आनेपर छहों रसोंसे युक्त सभी कामनाओंकी पूर्ति करनेवाला भोजन दे । राजेन्द्र ! उन ब्राह्मणोंको प्रतिमास दक्षिणा भी देनी चाहिये । मध्याह्नके समय पवित्र वस्त्र धारण कर हवन करनेका विधान है । इसलिये यजमानको ब्राह्मणोंके साथ सर्वदा यज्ञ करनेके लिये उत्साहयुक्त रहना चाहिये । इन्द्र आदि देवताओंको प्रसन्न करना चाहिये, यह सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला है । राजेन्द्र ! फिर देवताओंके उद्देश्यसे बलि देकर सभी प्रकारके दानकर्मोंको सम्पादित करे । साथ ही अग्निष्टोमका अनुष्ठान करे ॥ २१—३० ॥

एवं कृत्वा विधानेन पूर्णाहुतिः शते शते । सहस्रे द्विगुणा देया यावच्छतसहस्रकम् ॥ ३१ ॥
पुरोडाशस्ततः साध्यो देवतार्थे च ऋत्विजैः । युक्तो वसन् मानवैश्च पुनः प्रातार्चनान् द्विजान् ॥ ३२ ॥
प्रीणयित्वा सुरान् सर्वान् पितॄनेव ततः क्रमात् । कृत्वा शास्त्रविधानेन पिण्डानां च समर्पणम् ॥ ३३ ॥
समाप्तौ तस्य होमस्य विप्राणामथ दक्षिणाम् । समां चैव तुलां कृत्वा बध्वा शिक्यद्वयं पुनः ॥ ३४ ॥
आत्मानं तोलयेत् तत्र पत्नीं चैव द्वितीयकाम् । सुवर्णेन तथाऽऽत्मानं रजतेन तथा प्रियाम् ॥ ३५ ॥
तोलयित्वा ददेद् राजा वित्तशाठ्यविवर्जितः । ददेच्छतसहस्रं तु रूप्यस्य कनकस्य च ॥ ३६ ॥
सर्वस्वं वा ददेत् तत्र राजसूयफलं लभेत् । एवं कृत्वा विधानेन विप्रांस्तांश्च विसर्जयेत् ॥ ३७ ॥
प्रीयतां पुण्डरीकाक्षः सर्वयज्ञेश्वरो हरिः । तस्मिंस्तुष्टे जगत् तुष्टं प्रीणिते प्रीणितं भवेत् ॥ ३८ ॥
एवं सर्वोपघाते तु देवमानुषकारिते । इयं शान्तिस्तवाख्याता यां कृत्वा सुकृती भवेत् ॥ ३९ ॥
न शोचेज्जन्ममरणे कृताकृतविचारणे ।
सर्वतीर्थेषु यत् स्नानं सर्वयज्ञेषु यत्फलम् । तत्फलं समवाप्नोति कृत्वा यज्ञत्रयं नृप ॥ ४० ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे ग्रहयज्ञविधानं नामैकोनचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३९ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

इस प्रकार विधिपूर्वक ग्रहयाग सम्पन्न कर शत होम-में सौ, हजार होममें हजारसे लेकर लक्ष होमतक दो सौ पूर्णाहुतियाँ देनी चाहिये। तत्पश्चात् ऋत्विजोंको देवताओंके लिये पुरोडाश देना चाहिये। उन्हें क्रमशः उन्हीं आगत मनुष्योंमें ही उपस्थित समझना चाहिये। फिर क्रमशः पूजित ब्राह्मणों और देवताओंको प्रसन्न करके सभी पितरोंको शास्त्रोक्त विधिके अनुसार पिण्ड समर्पित करे। इस होमके समाप्त होनेपर ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे। तदुपरान्त राजाको चाहिये कि कृपणताको छोड़कर समान भागवाली तराजू बनवाकर उसमें दो पलड़े बाँध दे और उसपर पत्नी-सहित अपनेको तौले। उस समय अपनेको सुवर्णसे तथा पत्नीको चाँदीसे तौलनेका विधान है। तौलनेके बाद उसे ब्राह्मणको दे देना चाहिये। पुनः चाँदी तथा सुवर्णकी बनी हुई एक लक्ष मुद्राका दान करे अथवा सर्वस्व दान कर दे। ऐसा करनेसे उसे राजसूय-यज्ञका फल प्राप्त होता है। इस प्रकार विधिपूर्वक यज्ञ करके उन ब्राह्मणोंको विदा करे और कहे—'सभी यज्ञोंके स्वामी कमलनेत्र भगवान् विष्णु प्रसन्न हों; क्योंकि उनके संतुष्ट होनेपर समस्त जगत् संतुष्ट और प्रसन्न होनेपर प्रसन्न होता है।' इस प्रकार देवताओं तथा मनुष्योंद्वारा की गयी सभी बाधाओंके लिये यह शान्ति कही गयी है, जिसे मैंने तुम्हें बताया है और जिसका अनुष्ठान करनेसे मनुष्य पुण्यवान् होता है और उसे जन्म-मृत्यु तथा उचित-अनुचितके विचारके समय चिन्ता नहीं करनी पड़ती। राजन्! सभी तीर्थोंमें स्नान करने और सभी यज्ञोंके अनुष्ठानसे जो फल प्राप्त होता है, वह फल इन तीनों यज्ञोंको करनेवाला मनुष्य प्राप्त कर लेता है ॥ ३१-४० ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें ग्रहयज्ञविधान नामक दो सौ उन्तालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २३९ ॥

दो सौ चालीसवाँ अध्याय

राजाओंकी विजयार्थ यात्राका विधान

मनुरुवाच

इदानीं सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रविशारद। यात्राकालविधानं मे कथयस्व महीक्षिताम् ॥ १ ॥

मनुजीने कहा—सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता एवं सर्वशास्त्रविशारद भगवन्! अब आप मुझसे राजाओंके यात्राकालिक विधानका वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

मत्स्य उवाच

यदा मन्येत नृपतिराक्रन्देन बलीयसा। पार्ष्णिग्राहाभिभूतोऽरिस्तदा यात्रां प्रयोजयेत् ॥ २ ॥
योधान् मत्वा प्रभूतांश्च प्रभूतं च बलं मम। मूलरक्षासमर्थोऽस्मि तदा यात्रां प्रयोजयेत् ॥ ३ ॥
अशुद्धपार्ष्णिर्नृपतिर्न तु यात्रां प्रयोजयेत्। पार्ष्णिग्राहाधिकं सैन्यं मूले निक्षिप्य च व्रजेत् ॥ ४ ॥
चैत्र्यां वा मार्गशीर्ष्यां वा यात्रां यायान्नराधिपः। चैत्र्यां पश्येच्च नैदाघं हन्ति पुष्टिं च शारदीम् ॥ ५ ॥
एतदेव विपर्यस्तं मार्गशीर्ष्यां नराधिपः। शत्रोर्वा व्यसने यायात् काल एव सुदुर्लभः ॥ ६ ॥
दिव्यान्तरिक्षक्षितिजैरुत्पातैः पीडितं परम्। षडृक्षपीडासंतप्तं पीडितं च तथा ग्रहैः ॥ ७ ॥
ज्वलन्ती च तथैवोल्का दिशं यां च प्रपद्यते। भूकम्पोल्कादि संयाति यां च केतुः प्रसूयते ॥ ८ ॥
निर्घातश्च पतेद् यत्र तां यायाद् वसुधाधिपः। स्वबलव्यसनोपेतं तथा दुर्भिक्षपीडितम् ॥ ९ ॥
सम्भूतान्तरकोपं च क्षिप्रं प्रायादरिं नृपः। यूकामाक्षिकबहुलं बहुपङ्कं तथाविलम् ॥ १० ॥
नास्तिकं भिन्नमर्यादं तथामङ्गलवादिनम्। अपेतप्रकृतिं चैव निःसारं च तथा जयेत् ॥ ११ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—जिस समय राजा अपनेको किसी भयंकर युद्धसे घिरा हुआ तथा सीमावर्ती शत्रुको पराजित समझ ले, उस समय उसे यात्रा कर देनी चाहिये। साथ ही जब वह यह समझ ले कि हमारे पास बहुसंख्यक योद्धा हैं, हमारी सेना बहुत बड़ी है और मैं अपने दुर्गकी रक्षा करनेमें समर्थ हूँ, उस समय उसके लिये यात्रा करना उचित है। सीमावर्ती राजाके शत्रु बन जानेपर राजाको यात्रा नहीं करनी चाहिये। उस समय वह पार्श्ववर्ती राजासे अधिक सेना प्राप्त कर यात्रा कर सकता है। राजाको चैत्र या मार्गशीर्षकी पूर्णिमाको दिवि-जयार्थ यात्रा करनी चाहिये। चैत्र-पूर्णिमाको यात्रा करनेवाला ग्रीष्म ऋतुका दर्शन करेगा तथा शरत्कालीन शीत-भयसे रहित रहेगा। ठीक इसी प्रकारका परिवर्तन मार्गशीर्ष-पूर्णिमाको यात्रा करनेसे होता है। अथवा शत्रुके आपत्तिमें फँसनेपर यात्रा करे, पर ऐसा समय अत्यन्त दुर्लभ है। जो दिव्य, आन्तरिक्ष एवं पृथ्वीजन्य उत्पातोंसे पीड़ित, हाथ-पैर आदि छः इन्द्रियोंकी पीड़ासे संतप्त तथा ग्रहोंद्वारा पीड़ित हो, ऐसे शत्रु राजापर विजय-यात्रा करनी चाहिये। जिस दिशामें जलती हुई उल्का गिरती है, जिस दिशामें भूकम्पादि उत्पात अधिक होते हैं तथा पुच्छल तारा उदित होता है, उसी दिशामें राजाको विजयार्थ यात्रा करनी चाहिये। जो अपनी सेनाके विद्रोहसे युक्त, दुर्भिक्षसे पीड़ित तथा आन्तरिक विद्रोहसे प्रभावित हो, ऐसे शत्रुपर राजाको तुरंत आक्रमण कर देना चाहिये। जिसके देशमें ढील, मक्खी, कीचड़ और गंदगीकी बहुतायत हो, जो नास्तिक, मर्यादारहित, अमङ्गलवादी, दुश्चरित्र और पराक्रमहीन हो—ऐसे शत्रुको वशमें कर लेना उचित है॥ १–११॥

विद्विष्टनायकं सैन्यं तथा भिन्नं परस्परम्। व्यसनासक्तनृपतिं बलं राजाभियोजयेत्॥ १२॥
सैनिकानां न शस्त्राणि स्फुरन्त्यङ्गानि यत्र च। दुःस्वप्नानि च पश्यन्ति बलं तदभियोजयेत्॥ १३॥
उत्साहबलसम्पन्नः स्वानुरक्तबलस्तथा। तुष्टपुष्टबलो राजा परानभिमुखो व्रजेत्॥ १४॥
शरीरस्फुरणे धन्ये तथा दुःस्वप्ननाशने। निमित्ते शकुने धन्ये जाते शत्रुपुरं व्रजेत्॥ १५॥
ऋक्षेषु षट्सु शुद्धेषु ग्रहेष्वनुगुणेषु च। प्रश्नकाले शुभे जाते परान् यायान्नराधिपः॥ १६॥
एवं तु दैवसम्पन्नस्तथा पौरुषसंयुतः। देशकालोपपन्नां तु यात्रां कुर्यान्नराधिपः॥ १७॥
स्थले नक्रस्तु नागस्य तस्यापि सजले वशे। उलूकस्य निशि ध्वाङ्क्षः स च तस्य दिवा वशे॥ १८॥
एवं देशं च कालं च ज्ञात्वा यात्रां प्रयोजयेत्।

जिस राजाकी प्रजा या सेनानायक उसका शत्रु हो गया हो अथवा उसके मन्त्री-सेना आदिमें भी परस्पर विद्वेष हो, वह स्वयं किसी विपत्तिमें पड़ गया हो, ऐसे शत्रुपर अपनी सेनाको चढ़ाईका आदेश दे देना चाहिये। जिस राजाके सैनिकोंके अस्त्र एवं अङ्ग प्रस्फुरित न होते हों तथा उन्हें बुरे स्वप्न दीख पड़ते हों, उनपर धावा बोल देना चाहिये। उत्साह एवं पराक्रमसे संयुक्त तथा अपनेमें अनुराग करनेवाली, संतुष्ट एवं परिपुष्ट विशाल सेनासे सम्पन्न राजा शत्रुओंपर आक्रमण कर दे। जब शुभ अङ्ग फड़कते हों, दुःस्वप्न न दिखायी पड़ते हों तथा शुभ शकुन दिखायी पड़ रहे हों, उस समय शत्रुकी राजधानीपर चढ़ाई करनी चाहिये। जन्म-नक्षत्र आदि छः नक्षत्रोंके शुद्ध होनेपर, शुभ ग्रहोंकी स्थिति अनुकूल होनेपर तथा प्रश्न करनेपर शुभदायक उत्तर मिलनेपर राजाको शत्रुओंपर आक्रमण करना चाहिये। इस प्रकार दैवबल तथा पराक्रमसे संयुक्त राजा देश एवं कालके अनुसार शत्रुपर चढ़ाई करे। स्थलपर मगर हाथीके वशमें होता है, किंतु जलमें हाथी नाकके वशमें हो जाता है। इसी प्रकार रात्रिमें काक उल्लूके अधीन हो जाता है, किंतु दिनमें उल्लू काकके वशमें होता है। इसी प्रकार राजाको देश एवं कालका विचारकर शत्रुपर विजय-यात्रा करनी चाहिये॥ १२–१८ ½॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

पदातिनागबहुलां सेनां प्रावृषि योजयेत् ॥ १९ ॥
हेमन्ते शिशिरे चैव रथवाजिसमाकुलाम् । खरोष्ट्रबहुलां सेनां तथा ग्रीष्मे नराधिपः ॥ २० ॥
चतुरङ्गबलोपेतां वसन्ते वा शरद्यथ । सेना पदातिबहुला यस्य स्यात् पृथिवीपतेः ॥ २१ ॥
अभियोज्यो भवेत् तेन शत्रुर्विषममाश्रितः । गम्ये वृक्षावृते देशे स्थितं शत्रुं तथैव च ॥ २२ ॥
किञ्चित्पङ्के तथा यायाद् बहुनागो नराधिपः । रथाश्वबहुलो यायाच्छत्रुं समपथस्थितम् ॥ २३ ॥
तमाश्रयन्तो बहुलास्तांस्तु राजा प्रपूजयेत् । खरोष्ट्रबहुलो राजा शत्रुर्बन्धेन संस्थितः ॥ २४ ॥
बन्धनस्थोऽभियोज्योऽरिस्तथा प्रावृषि भूभुजा । हिमपातयुते देशे स्थितं ग्रीष्मेऽभियोजयेत् ॥ २५ ॥
यवसेन्धनसंयुक्तः कालः पार्थिव हैमनः । शरद्वसन्तौ धर्मज्ञ कालौ साधारणौ स्मृतौ ॥ २६ ॥
विज्ञाय राजा हितदेशकालौ दैवं त्रिकालं च तथैव बुद्ध्वा ।
यायात् परं कालविदां मतेन संचिन्त्य सार्धं द्विजमन्त्रविद्भिः ॥ २७ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे यात्रानिमित्तकालयोज्यचिन्ता नाम चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४० ॥

राजाको वर्षा ऋतुमें पैदल और हाथियोंकी सेनाको, हेमन्त और शिशिर ऋतुमें अधिक रथ और घोड़ोंसे सम्पन्न सेनाको, ग्रीष्म ऋतुमें गधे और ऊँटोंसे भरी हुई सेनाको तथा वसन्त और शरद् ऋतुमें चतुरंगिणी सेनाको यात्रामें लगाना उचित है। जिस राजाके पास पैदल सेना अधिक हो, उसे विषम स्थानपर स्थित शत्रुपर आक्रमण करना चाहिये। राजाको चाहिये कि जो शत्रु अधिक वृक्षोंसे युक्त देशमें या कुछ कीचड़वाले स्थानपर स्थित हो, उसपर हाथियोंकी सेनाके साथ चढ़ाई करे। समतल भूमिमें स्थित शत्रुपर रथ और घोड़ोंकी सेना साथ लेकर चढ़ाई करनी चाहिये। जिन शत्रुओंके पास बहुत बड़ी सेना हो, राजाको चाहिये कि उनका आदर-सत्कार करे, अर्थात् उनके साथ संधि कर ले। वर्षा ऋतुमें अधिक संख्यामें गधे और ऊँटोंकी सेना रखनेवाला राजा यदि शत्रुके बन्धनमें पड़ गया हो तो उस अवस्थामें भी उसे वर्षा ऋतुमें चढ़ाई करनी चाहिये। जिस देशमें बरफ गिरती हो, वहाँ राजा ग्रीष्म ऋतुमें आक्रमण करे। पार्थिव! हेमन्त और शिशिर ऋतुओंका समय काष्ठ तथा घास आदि साधनोंसे युक्त होनेसे यात्राके लिये बहुत अनुकूल रहता है। धर्मज्ञ! इसी प्रकार शरद् और वसन्त ऋतुओंके काल भी अनुकूल माने गये हैं। राजाको देश-काल और त्रिकालज्ञ ज्योतिषीसे यात्राकी स्थितिको भलीभाँति समझकर उसी प्रकार पुरोहित और मन्त्रियोंके साथ परामर्श कर विजय-यात्रा करनी चाहिये ॥ १९–२७ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें यात्राकाल-विधान नामक दो सौ चालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २४० ॥

दो सौ एकतालीसवाँ अध्याय

अङ्गस्फुरणके शुभाशुभ फल

मनुरुवाच

ब्रूहि मे त्वं निमित्तानि अशुभानि शुभानि च । सर्वधर्मभृतां श्रेष्ठ त्वं हि सर्वविदुच्यसे ॥ १ ॥

मनुजीने पूछा—सम्पूर्ण धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ भगवन्! आप मुझे शुभाशुभसूचक शकुनोंके लक्षण बतलाइये क्योंकि आप सर्वज्ञ कहे जाते हैं, इसलिये अब ॥ १ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

मत्स्य उवाच

अङ्गदक्षिणभागे तु शस्तं प्रस्फुरणं भवेत्। अप्रशस्तं तथा वामे पृष्ठस्य हृदयस्य च ॥ २ ॥

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—राजन्! शरीरके दाहिने भागमें स्फुरण होना शुभ तथा पीठ, हृदय और बायें भागका स्फुरण अशुभ फलदायक होता है ॥ २ ॥

मनुरुवाच

अङ्गानां स्पन्दनं चैव शुभाशुभविचेष्टितम्। तन्मे विस्तरतो ब्रूहि येन स्यां तद्विदो भुवि ॥ ३ ॥

मनुजीने पूछा—भगवन्! अङ्गोंका स्फुरण जिस शुभाशुभकी सूचना देनेवाला होता है, उसे मुझे विस्तार-पूर्वक बतलाइये, जिससे मैं भूतलपर उसका ज्ञाता हो जाऊँ ॥ ३ ॥

मत्स्य उवाच

पृथ्वीलाभो भवेन्मूर्ध्नि ललाटे रविनन्दन। स्थानं विवृद्धिमायाति भ्रूनसोः प्रियसंगमः ॥ ४ ॥
भृत्यलब्धिश्चाक्षिदेशे दृगुपान्ते धनागमः। उत्कण्ठोपगमो मध्ये दृष्टं राजन् विचक्षणैः ॥ ५ ॥
दृग्बन्धने सङ्गरे च जयं शीघ्रमवाप्नुयात्। योषिद्भोगोऽपाङ्गदेशे श्रवणान्ते प्रियश्रुतिः ॥ ६ ॥
नासिकायां प्रीतिसौख्यं प्रजाप्तिरधरोष्ठजे। कण्ठे तु भोगलाभः स्याद् भोगवृद्धिरथांसयोः ॥ ७ ॥
सुहृत्स्नेहश्च बाहुभ्यां हस्ते चैव धनागमः। पृष्ठे पराजयः सद्यो जयो वक्षःस्थले भवेत् ॥ ८ ॥

मत्स्यभगवान् बोले—रविनन्दन! सिरके स्फुरणसे पृथ्वीका लाभ होता है, ललाटके स्फुरणसे स्थानकी वृद्धि होती है, भौंह और नासिकाके स्फुरणसे प्रियजनोंका समागम होता है। राजन्! नेत्रोंके फड़कनेसे सेवककी तथा नेत्रोंके समीप स्फुरण होनेसे धनकी प्राप्ति होती है। नेत्रोंके मध्य भागमें स्फुरण होनेसे उत्कण्ठा बढ़ती है, ऐसा विचक्षणोंने अनुभव किया है। नेत्र-पलकोंके फड़कनेसे संग्राममें शीघ्र ही विजय प्राप्त होती है। नेत्रापाङ्गोंके स्फुरणसे स्त्री-लाभ, कानके फड़कनेसे प्रियवार्ता-श्रवण, नासिका-स्फुरणसे प्रीति एवं सौख्य, निचले होंठके फड़कनेसे संतान-प्राप्ति, कण्ठ-स्फुरणसे भोग-लाभ तथा दोनों कंधोंके स्फुरणसे भोगकी वृद्धि होती है। बाहुओंके फड़कनेसे मित्र-स्नेहकी प्राप्ति, हाथके स्फुरणसे धनकी प्राप्ति, पीठके फड़कनेसे युद्धमें पराजय तथा छातीके स्फुरणसे विजय-प्राप्ति होती है ॥ ४–८ ॥

कुक्षिभ्यां प्रीतिरुद्दिष्टा स्त्रियाः प्रजननं स्तने। स्थानभ्रंशो नाभिदेशे अन्त्रे चच धनागमः ॥ ९ ॥
जानुसंधौ परैः संधिबलवद्भिर्भवेन्नृप। देशैकदेशनाशोऽथ जङ्घाभ्यां रविनन्दन ॥ १० ॥
उत्तमं स्थानमाप्नोति पद्भ्यां प्रस्फुरणान्नृप। सलाभं चाध्वगमनं भवेत् पादतले नृप ॥ ११ ॥
लाञ्छनं पिटकं चैव ज्ञेयं स्फुरणवत् तथा। विपर्ययेण विहितः सर्वः स्त्रीणां फलागमः ॥ १२ ॥
अप्रशस्ते तदा वामे त्वप्रशस्तं विशेषतः। दक्षिणेऽपि प्रशस्तेऽङ्गे प्रशस्तं स्याद् विशेषतः ॥ १३ ॥
अतोऽन्यथा सिद्धिप्रजल्पनाद् तु फलस्य शस्तस्य च निन्दितस्य।
अनिष्टचिह्नोपगमे द्विजानां कार्यं सुवर्णेन तु तर्पणं स्यात् ॥ १४ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे यात्रानिमित्तकदेहस्पन्दनं नामैकचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४१ ॥

दोनों कुक्षियोंके फड़कनेसे प्रेमकी वृद्धि कही गयी है, स्तनके स्फुरणसे स्त्रीसे संतानोत्पत्ति होती है। राजन्! नाभिके स्फुरणसे स्थानसे च्युत होना पड़ता है, आँतके फड़कनेसे धनकी प्राप्ति तथा जानुके संधिभागके स्फुरणसे

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

बलवान् शत्रुओंके साथ संधि हो जाती है। रविनन्दन ! फिल्लियोंके फड़कनेसे राजाके देशके किसी भागका नाश होता है। नृप ! दोनों पैरोंके स्फुरणसे उत्तम स्थानकी प्राप्ति होती है। राजन् ! पैरोंके तलुओंके फड़कनेसे लाभदायिनी यात्रा होती है। अङ्गस्फुरणके समान ही लक्षण (काले दाग) एवं पिटकों (छोटे मांसपिण्ड, जो जन्मसे ही बालकोंके अङ्गोंमें उत्पन्न होते हैं) के भी फलाफलको जानना चाहिये। स्त्रियोंके लिये ये सभी फलागम विपरीत होते हैं। बायें भागके अप्रशस्त अङ्गोंके स्फुरणसे विशेष अशुभ होता है। इसी प्रकार दाहिने भागमें भी शुभ अङ्गोंके स्फुरणसे विशेष शुभ होता है। इस शुभ एवं अशुभ फलके सिद्धि-कथनके अतिरिक्त अनिष्ट चिह्नके प्रकट होनेपर ब्राह्मणोंको सुवर्णदान देकर संतुष्ट करना चाहिये ॥ ९–१४ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अङ्गस्फुरण नामक दो सौ एकतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २४१ ॥

दो सौ बयालीसवाँ अध्याय

शुभाशुभ स्वप्नोंके लक्षण

मनुरुवाच

स्वप्नाख्यानं कथं देव गमने प्रत्युपस्थिते। दृश्यन्ते विविधाकाराः कथं तेषां फलं भवेत् ॥ १ ॥

मनुजीने पूछा—देव ! यात्राके समयके स्वप्नका वृत्तान्त दिखायी पड़ते हैं, उनका फल कैसा होता है कैसा है ? विविध प्रकारके वैसे यों भी अनेक स्वप्न (बतलायें) ॥ १ ॥

मत्स्य उवाच

इदानीं कथयिष्यामि निमित्तं स्वप्नदर्शने। नाभिं विनान्यगात्रेषु तृणवृक्षसमुद्भवः ॥ २ ॥
चूर्णनं मूर्ध्नि कांस्यानां मुण्डनं नग्नता तथा। मलिनाम्बरधारित्वमभ्यङ्गः पङ्कदिग्धता ॥ ३ ॥
उच्चात् प्रपतनं चैव दोलारोहणमेव च। अर्जनं पङ्कलोहानां हयानामपि मारणम् ॥ ४ ॥
रक्तपुष्पद्रुमाणां च मण्डलस्य तथैव च। वराहर्क्षखरोष्ट्राणां तथा चारोहणक्रिया ॥ ५ ॥
भक्षणं पक्षिमत्स्यानां तलस्य कृसरस्य च। नर्तनं हसनं चैव विवाहो गीतमेव च ॥ ६ ॥
तन्त्रीवाद्यविहीनानां वाद्यानामभिवादनम्। स्रोतोऽवगाहगमनं स्नानं गोमयवारिणा ॥ ७ ॥
पङ्कोदकेन च तथा महीतोयेन चाप्यथ। मातुः प्रवेशो जठरे चितारोहणमेव च ॥ ८ ॥
शक्रध्वजाभिपतनं पतनं शशिसूर्ययोः। दिव्यान्तरिक्षभौमानामुत्पातानां च दर्शनम् ॥ ९ ॥
देवद्विजातिभूपालगुरूणां क्रोध एव च। आलिङ्गनं कुमारीणां पुरुषाणां च मैथुनम् ॥ १० ॥
हानिश्चैव स्वगात्राणां विरेकवमनक्रिया। दक्षिणाशाभिगमनं व्याधिनाभिभवस्तथा ॥ ११ ॥
फलापहानिश्च तथा पुष्पहानिस्तथैव च। गृहाणां चैव पातश्च गृहसम्मार्जनं तथा ॥ १२ ॥
क्रीडा पिशाचक्रव्यादवानरर्क्षनरैरपि। परादभिभवश्चैव तस्माच्च व्यसनोद्भवः ॥ १३ ॥
काषायवस्त्रधारित्वं तद्वत् स्त्रीक्रीडनं तथा। स्नेहपानावगाहौ च रक्तमाल्यानुलेपनम् ॥ १४ ॥
एवमादीनि चान्यानि दुःस्वप्नानि विनिर्दिशेत्। एषां संकथनं धन्यं भूयः प्रस्वापनं तथा ॥ १५ ॥

मत्स्य भगवान्ने कहा—मनो ! अब मैं स्वप्नोंके शुभाशुभ लक्षणोंको बतला रहा हूँ ! नाभिके अतिरिक्त अन्य अङ्गोंमें तृण एवं वृक्षका उगना, मस्तक-पर कांसेका कूटा जाना, मुण्डन, नग्नता, मलिन वस्त्रोंका धारण करना, तेल लगाना, कीचमें धँसना, लेप, ऊँचे स्थानसे गिरना, झूलेपर चढ़ना, कीचड़ और लोहेको इकट्ठा करना, घोड़ोंको मारना, लाल पुष्पवाले वृक्षों, मण्डल, शूकर, रीछ, गधे और ऊँटोंपर चढ़ना,

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

पक्षी, मछली, तेल और खिचड़ीका भोजन, नाचना, हँसना, विवाह, गायन, वीणाको छोड़कर अन्य वाद्योंका स्वागत करना, जलके सोतेमें स्नान करनेके लिये जाना, गोबर लगाकर जलमें स्नान करना, इसी प्रकार कीचड़-युक्त जलमें तथा पृथ्वीके थोड़े जलमें नहाना, माताके उदरमें प्रवेश करना, चितापर चढ़ना, इन्द्रध्वजका गिरना, चन्द्रमा और सूर्यका पतन, दिव्य, आन्तरिक्ष तथा भौम उत्पातोंका दर्शन, देवता, द्विजाति, राजा और गुरुका क्रोध, कुमारी कन्याओंका आलिङ्गन, पुरुषोंके साथ सम्भोग, अपने ही शरीरका नाश, विरेचन, वमन, दक्षिण दिशाकी यात्रा, किसी व्याधिसे पीड़ित होना, फलों तथा पुष्पोंकी हानि, घरोंका गिरना, घरोंकी सफाई होना, पिशाच, मांसभक्षी जीव, वानर, रीछ और मनुष्यके साथ क्रीडा करना, शत्रुसे पराजित होना या उसकी ओरसे किसी प्रकारकी आपत्तिका प्रकट होना, काषाय वस्त्रको धारण करना अथवा वैसे वस्त्रवाली स्त्रीके साथ क्रीडा करना, तेल-पान या उसीमें स्नान करना, लाल पुष्प और लाल चन्दनको धारण करना तथा इनके अतिरिक्त अन्य भी बहुत-से दुःस्वप्न कहे गये हैं। इन्हें देखनेके बाद दूसरेसे कह देना तथा पुनः सो जाना कल्याणकारक है ॥ २-१५ ॥

कल्कस्नानं तिलैर्होमो ब्राह्मणानां च पूजनम्। स्तुतिश्च वासुदेवस्य तथा तस्यैव पूजनम् ॥ १६ ॥
नागेन्द्रमोक्षश्रवणं ज्ञेयं दुःस्वप्ननाशनम्। स्वप्नास्तु प्रथमे यामे संवत्सरविपाकिनः ॥ १७ ॥
षड्भिर्मासैर्द्वितीये तु त्रिभिर्मासैस्तृतीयके। चतुर्थे मासमात्रेण पश्यतो नात्र संशयः ॥ १८ ॥
अरुणोदयवेलायां दशाहेन फलं भवेत्। एकस्यां यदि वा रात्रौ शुभं वा यदि वाशुभम् ॥ १९ ॥
पश्चाद् दृष्टस्तु यस्तत्र तस्य पाकं विनिर्दिशेत्। तस्माच्छोभनके स्वप्ने पश्चात् स्वप्नो न शस्यते ॥ २० ॥

(ऐसे स्वप्न देखनेपर) खली लगाकर स्नान, तिलसे हवन और ब्राह्मणोंका पूजन करे। भगवान् वासुदेवकी स्तुति, उनकी पूजा और गजेन्द्रमोक्षकी कथाका श्रवण आदिको दुःस्वप्नका नाशक समझना चाहिये। रात्रिके पहले पहरमें देखे गये स्वप्न देखनेवालेको निःसंदेह एक वर्षमें, दूसरे पहरमें देखे गये छः महीनेमें, तीसरे पहरमें देखे गये तीन महीनेमें तथा चतुर्थ पहरमें देखे गये एक महीनेमें फल देते हैं। सूर्योदयके समय देखे जानेपर दस दिनमें ही फल प्राप्त होता है। यदि एक ही रातमें शुभ और अशुभ—दोनों प्रकारके स्वप्न दिखायी पड़ें तो उनमें जो पीछे दीख पड़ा हो, उसीका फल कहना चाहिये। इसलिये शुभ स्वप्नके देखनेपर मनुष्यको पुनः नहीं सोना चाहिये ॥ १६-२० ॥

शैलप्रासादनागाश्ववृषभारोहणं हितम्। द्रुमाणां श्वेतपुष्पाणां गमने च तथा द्विज ॥ २१ ॥
द्रुमतृणोद्भवो नाभौ तथैव बहुबाहुता। तथैव बहुशीर्षत्वं फलितोद्भव एव च ॥ २२ ॥
सुशुक्लमाल्यधारित्वं सुशुक्लाम्बरधारिता। चन्द्रार्कताराग्रहणं परिमार्जनमेव च ॥ २३ ॥
शक्रध्वजालिङ्गनं च तदुच्छ्रायक्रिया तथा। भूम्यम्बुधीनां ग्रसनं शत्रूणां च वधक्रिया ॥ २४ ॥
जयो विवादे द्यूते च संग्रामे च तथा द्विज। भक्षणं चार्द्रमांसानां मत्स्यानां पायसस्य च ॥ २५ ॥
दर्शनं रुधिरस्यापि स्नानं वा रुधिरेण च। सुरारुधिरमद्यानां पानं क्षीरस्य चाथ वा ॥ २६ ॥
अन्त्रैर्वा वेष्टनं भूमौ निर्मलं गगनं तथा। मुखेन दोहनं शस्तं महिषीणां तथा गवाम् ॥ २७ ॥
सिंहीनां हस्तिनीनां च वडवानां तथैव च। प्रसादो देवविप्रेभ्यो गुरुभ्यश्च तथा शुभः ॥ २८ ॥

द्विज! पर्वत, राजमहल, हाथी, घोड़ा, वृषभ—इनपर आरोहण करना हितकारक है तथा श्वेत पुष्पोंवाले वृक्षोंपर चढ़ना शुभप्रद है। नाभिमें वृक्ष और तृणका उत्पन्न होना, अनेक बाहुओंका होना, अनेक सिरोंका होना, फलदान, उद्भिजोंका दर्शन, सुन्दर श्वेत माला धारण करना, श्वेत वस्त्र पहनना, चन्द्रमा, सूर्य और ताराओंको हाथसे पकड़ना या उन्हें स्वच्छ करना,

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

इन्द्रधनुषका आलिंगन करना या उसे ऊपर उठाना, पृथ्वी और समुद्रोंको निगलना, शत्रुओंका संहार करना, संग्राम, विवाद और जूएमें जीतना, कच्चा मांस, मछली और खीरका खाना, रक्तका दर्शन या रक्तसे स्नान, मदिरा, रक्त, मद्य अथवा दुग्धका पीना, अपनी आँतोंसे पृथ्वीको बाँधना, निर्मल आकाशको देखना, भैंस, गाय, सिंहिनी, हथिनी तथा घोड़ियोंको मुखसे दुहना, देवता, गुरु और ब्राह्मणोंकी प्रसन्नता—ये स्वप्न शुभदायक होते हैं ॥ २१—२८ ॥

अम्भसा त्वभिषेकस्तु गवां शृङ्गस्रुतेन वा। चन्द्राद् भ्रष्टेन वा राजञ्ज्ञेयो राज्यप्रदो हि सः॥ २९॥
राज्याभिषेकश्च तथा छेदनं शिरसस्तथा। मरणं वह्निदाहश्च वह्निदाहो गृहादिषु॥ ३०॥
लब्धिश्च राज्यलिङ्गानां तन्त्रीवाद्याभिवादनम्। तथोदकानां तरणं तथा विषमलङ्घनम्॥ ३१॥
हस्तिनीवडवानां च गवां च प्रसवो गृहे। आरोहणमथाश्वानां रोदनं च तथा शुभम्॥ ३२॥
वरस्त्रीणां तथा लाभस्तथालिङ्गनमेव च। निगडैर्बन्धनं धन्यं तथा विष्ठानुलेपनम्॥ ३३॥
जीवतां भूमिपालानां सुहृदामपि दर्शनम्। दर्शनं देवतानां च विमलानां तथाम्भसाम्॥ ३४॥
शुभान्यथैतानि नरस्तु दृष्ट्वा प्राप्नोत्ययत्नाद् ध्रुवमर्थलाभम्।
स्वप्नानि वै धर्मभृतां वरिष्ठ व्याधेर्विमोक्षं च तथातुरोऽपि॥ ३५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे यात्रानिमित्ते स्वप्नाध्यायो नाम द्विचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२४२॥

राजन्! गौओंके सींगसे चूनेवाले अथवा चन्द्रमासे गिरे हुए जलसे अभिषेक होना राज्यप्रद समझना चाहिये। राज्याभिषेक, सिरका कटना, मृत्यु, अग्निका प्रज्वलित होना या घरमें आग लगना, राज्यचिह्नोंकी प्राप्ति, वीणाका स्वर सुनायी पड़ना, जलमें तैरना, दुर्गम स्थानोंको पार करना, घरमें हथिनी, घोड़ी तथा गायोंका बच्चा देना, घोड़ेपर सवार होना तथा रोना—ये स्वप्न शुभदायक होते हैं। सुन्दरी स्त्रियोंकी प्राप्ति तथा उनका आलिङ्गन, जंजीरोंद्वारा बन्धन, मलका लेपन, जीवित राजाओं तथा मित्रोंका दर्शन, देवताओं तथा निर्मल जलका दर्शन—ये स्वप्न शुभ कहे गये हैं। धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ राजन्! मनुष्य इन शुभदायक स्वप्नोंको देखकर बिना प्रयासके ही निश्चितरूपमें धन प्राप्त कर लेता है तथा रोगग्रस्त व्यक्ति भी रोगसे मुक्त हो जाता है॥ २९—३५॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें यात्राप्रसंगमें स्वप्नविवेक नामक दो सौ बयालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २४२॥

दो सौ तैंतालीसवाँ अध्याय

शुभाशुभ शकुनोंका निरूपण

मनुरुवाच

गमनं प्रति राज्ञां तु सम्मुखादर्शने च किम्। प्रशस्तांश्चैव सम्भाष्य सर्वानेतांश्च कीर्तय॥ १॥

मनुजीने पूछा—भगवन्! राजाओंके लिये यात्राके अवसरपर सम्मुख देखने या न देखने योग्य कौन-कौन-सी वस्तुएँ प्रशस्त मानी गयी हैं, उन सबका वर्णन कीजिये॥ १॥

मत्स्य उवाच

औषधानि त्वयुक्तानि धान्यं कृष्णं च यद् भवेत्। कार्पासश्च तृणं राजञ्शुष्कं गोमयमेव च॥ २॥
इन्धनं च तथाङ्गारं गुडं तैलं तथाशुभम्। अभ्यक्तं मलिनं मुण्डं तथा नग्नं च मानवम्॥ ३॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

मुक्तकेशं रुजार्तं च काषायाम्बरधारिणम् । उन्मत्तकं तथा सत्त्वं दीनं चाथ नपुंसकम् ॥ ४ ॥
अयः पङ्कस्तथा चर्म केशबन्धनमेव च । तथैवोद्धृतसाराणि पिण्याकादीनि यानि च ॥ ५ ॥
चण्डालश्वपचाश्चैव राजबन्धनपालकाः । वधकाः पापकर्माणो गर्भिणी स्त्री तथैव च ॥ ६ ॥
तुषभस्मकपालास्थि भिन्नभाण्डानि यानि च । रिक्तानि चैव भाण्डानि मृतं शार्ङ्गिकमेव च ॥ ७ ॥
एवमादीनि चान्यानि अशस्तान्यभिदर्शने । अशस्तो वाद्यशब्दश्च भिन्नभैरवजर्जरः ॥ ८ ॥
पुरतः शब्द एहीति शस्यते न तु पृष्ठतः । गच्छेति पश्चाद् धर्मज्ञ पुरस्तात् तु विगर्हितः ॥ ९ ॥
क्व यासि तिष्ठ मा गच्छ किं ते तत्र गतस्य तु । अन्ये शब्दाश्च येऽनिष्टास्ते विपत्तिकरा अपि ॥ १० ॥
ध्वजादिषु तथा स्थानं क्रव्यादानां विगर्हितम् । स्खलनं वाहनानां च वस्त्रसङ्गस्तथैव च ॥ ११ ॥
निर्गतस्य तु द्वारादौ शिरसश्चाभिघातिता । छत्रध्वजानां वस्त्राणां पतनं च तथाशुभम् ॥ १२ ॥
दृष्टे निमित्ते प्रथममममङ्गल्यविनाशनम् । केशवं पूजयेद् विद्वान् स्तवेन मधुसूदनम् ॥ १३ ॥
द्वितीये तु ततो दृष्टे प्रतीपे प्रविशेद् गृहम् ।

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—राजन् ! ओषधियाँ, काला अन्न, कपास, तृण, सूखा गोबर, ईंधन, अङ्गार, गुड़, तेल—ये सब अशुभ वस्तुएँ हैं। तेल लगाया हुआ, मलिन, मुण्डन कराया हुआ, नंगा, खुले बालोंवाला, रोगपीड़ित, काषाय वस्त्रधारी, पागल, दीन तथा नपुंसक व्यक्ति, लोहा, कीचड़, चमड़ा, केशका बन्धन, खली आदि सभी सारहीन वस्तुएँ, चाण्डाल, श्वपच, बन्धनमें डालनेवाले राजाके कर्मचारी, जल्लाद, पापी, गर्भिणी स्त्री, भूसी, राख, खोपड़ी, हड्डी, टूटे हुए सभी पात्र, खाली पात्र, लाश, सींगोंवाले पशु—ये तथा इनके अतिरिक्त और भी वस्तुएँ देखनेमें अशुभ मानी गयी हैं। वाद्योंके भयानक तथा बिना तालके रूखे स्वर भी अशुभ कहे गये हैं। धर्मज्ञ ! सामनेसे 'आओ'—ऐसा शब्द कहना शुभ है, अनुपयुक्त किंतु पीछेसे नहीं। इसी तरह पीछेसे 'जाओ' यह कहना शुभ है, किंतु वही आगेसे कहना अशुभ है। 'कहाँ जा रहे हो, रुको, मत जाओ; तुम्हारे वहाँ जानेसे क्या लाभ ?'—इस प्रकारके जो दूसरे अनिष्ट शब्द हैं, वे सभी विपत्तिकारक हैं। ध्वजा, पताका आदिपर मांसभक्षी पक्षियोंका बैठना, वाहनोंका फिसलना तथा वस्त्रका अटक जाना निन्दित माना गया है। द्वारसे निकलते समय सिरमें चोट लगना तथा छत्र, ध्वजा और वस्त्रादिका गिरना अशुभकारक है। प्रथम बार अपशकुन दीखनेपर विद्वान् राजाको चाहिये कि वह अशुभविनाशक एवं मधुहन्ता भगवान् केशवकी स्तोत्रोंद्वारा पूजा* करे। दूसरी बार पुनः अपशकुन दिखायी पड़नेपर उसे घरमें लौट जाना चाहिये ॥ २–१३½ ॥

अथेष्टानि प्रवक्ष्यामि मङ्गल्यानि तथानघ ॥ १४ ॥
श्वेताः सुमनसः श्रेष्ठाः पूर्णकुम्भास्तथैव च । जलजाः पक्षिणश्चैव मांसमत्स्याश्च पार्थिव ॥ १५ ॥
गावस्तुरंगमा नागा बद्ध एकः पशुस्त्वजः । त्रिदशाः सुहृदो विप्रा ज्वलितश्च हुताशनः ॥ १६ ॥
गणिका च महाभाग दूर्वा चार्द्र च गोमयम् । रुक्मं रूप्यं तथा ताम्रं सर्वरत्नानि चाप्यथ ॥ १७ ॥
औषधानि च धर्मज्ञ यवाः सिद्धार्थकास्तथा । नृवाह्यमानं यानं च भद्रपीठं तथैव च ॥ १८ ॥
खड्गं छत्रं पताका च मृदश्चायुधमेव च । राजलिङ्गानि सर्वाणि शवं रुदितवर्जितम् ॥ १९ ॥
घृतं दधि पयश्चैव फलानि विविधानि च । स्वस्तिकं वर्धमानं च नन्द्यावर्तं सकौस्तुभम् ॥ २० ॥
वादित्राणां सुखः शब्दो गम्भीरः सुमनोहरः । गान्धारषड्जऋषभा ये च शस्तास्तथा स्वराः ॥ २१ ॥
वायुः सशर्करो रूक्षः सर्वत्र समुपस्थितः । प्रतिलोमस्तथा नीचो विज्ञेयो भयकृद् द्विज ॥ २२ ॥

* ऐसे स्तोत्रोंमें विष्णुसहस्रनाम, गजेन्द्रमोक्ष, (महापुरुषविद्या) 'जितं ते पुण्डरीकाक्ष' आदि श्रेष्ठ हैं।

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

अनुकूलो मृदुः स्निग्धः सुखस्पर्शः सुखावहः। रूक्षा रूक्षस्वरा भद्राः क्रव्यादाः परिगच्छताम् ॥ २३ ॥
मेघाः शस्ता घनाः स्निग्धा गजबृंहितनिःस्वनाः। अनुलोमास्तडिच्छस्ताः शक्रचापं तथैव च ॥ २४ ॥
अप्रशस्ते तथा ज्ञेये परिवेषप्रवर्षणे। अनुलोमा ग्रहाः शस्ता वाक्पतिस्तु विशेषतः ॥ २५ ॥
आस्तिक्यं श्रद्धानत्वं तथा पूज्याभिपूजनम्। शस्तान्येतानि धर्मज्ञ यच्च स्यान्मनसः प्रियम् ॥ २६ ॥
मनसस्तुष्टिरेवात्र परमं जयलक्षणम्। एकतः सर्वलिङ्गानि मनसस्तुष्टिरेकतः ॥ २७ ॥
यानोत्सुकत्वं मनसः प्रहर्षः शुभस्य लाभो विजयप्रवादः।
मङ्गल्यलब्धिः श्रवणं च राजन् ज्ञेयानि नित्यं विजयावहानि ॥ २८ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे यात्रानिमित्ते मङ्गलाध्यायो नाम त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४३ ॥

अनघ ! अब मैं शुभ-सूचक अभीष्ट शकुनोंका वर्णन कर रहा हूँ। राजन् ! श्वेत फूल, भरा हुआ घट, जलजन्तु, पक्षी, मांस, मछलियाँ, गौएँ, घोड़े, हाथी, अकेला बँधा हुआ पशु, बकरा, देवता, मित्र, ब्राह्मण, जलती हुई अग्नि, वेश्या, दूर्वा, गीला गोबर, सुवर्ण, चाँदी, ताँबा, सभी प्रकारके रत्न, ओषधियाँ, जौ, पीली सरसों, मनुष्योंको ढोता हुआ वाहन, सुन्दर सिंहासन, तलवार, छत्र, पताका, मिट्टी, हथियार, सभी प्रकारके राजचिह्न, रुदनरहित मुर्दा, घी, दही, दूध, विविध प्रकारके फल, स्वस्तिक[1], वर्धमान[2], नन्द्यावर्त[3], कौस्तुभ मणि, वाद्योंके सुखदायक, मनोहर एवं गम्भीर शब्द, गान्धार, षड्ज तथा ऋषभ आदि स्वर शुभदायक माने गये हैं। द्विज ! यदि बालूके कणोंसे युक्त रूखी वायु सर्वत्र प्रतिकूल दिशामें पृथ्वीका स्पर्श करके बह रही हो तो उसे भयकारी जानना चाहिये। अनुकूल दिशामें बहनेवाली मृदु, शीतल एवं सुखस्पर्शी वायु सुखदायिनी होती है। निष्ठुर एवं रूखे स्वरमें बोलनेवाले मांसभक्षी जीव यात्रियोंके लिये कल्याणकारक होते हैं। हाथियोंकी चिग्घाड़के समान गम्भीर शब्द करनेवाले चिकने घने मेघ शुभदायी होते हैं। पीछेसे चमकनेवाली बिजलीका प्रकाश तथा इन्द्रधनुष प्रशंसनीय हैं। यात्रामें सूर्य एवं चन्द्रमाके मण्डल तथा घनघोर वृष्टिको अशुभ समझना चाहिये। अनुकूल दिशामें उदित हुए ग्रहोंको, विशेषकर बृहस्पतिको शुभसूचक कहा गया है। धर्मज्ञ ! (यात्राकालमें) आस्तिकता, श्रद्धा, पूज्योंके प्रति पूज्यभाव और मनकी प्रसन्नता— ये सभी प्रशंसनीय हैं। यात्राकालमें मनका संतोष विजयका परम लक्षण है। तुलनामें एक ओर सभी शुभ शकुन और एक ओर अपने मनकी प्रसन्नताको मानना चाहिये। राजन् ! वाहनोंकी उत्सुकता, मनका आनन्दातिरेक, शुभ शकुनोंकी प्राप्ति, विजयसूचक प्रवाद, माङ्गलिक वस्तुओंकी उपलब्धि तथा श्रवण—इन्हें नित्य विजयप्रद जानना चाहिये ॥ १४–२८ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके यात्रा-प्रसंगमें मङ्गलाध्याय नामक दो सौ तैंतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २४३ ॥

दो सौ चौवालीसवाँ अध्याय

वामन-प्रादुर्भाव-प्रसङ्गमें श्रीभगवान्‌द्वारा अदितिको वरदान

ऋषय ऊचुः

राजधर्मास्त्वया सूत कथितो विस्तरेण तु। तथैवाद्भुतमङ्गल्यं स्वप्नदर्शनमेव च ॥ १ ॥
विष्णोरिदानीं माहात्म्यं पुनर्वक्तुमिहार्हसि।
कथं स वामनो भूत्वा बबन्ध बलिदानवम्। क्रमतः कीदृशं रूपमासील्लोकत्रये हरेः ॥ २ ॥

१- ऐसा प्रासाद जिसमें पूर्वकी ओर द्वार न हो। (बृहत्संहिता ५३ । ३४)

२--वह प्रासाद जिसमें दक्षिणकी ओर दरवाजा न हो। (वही ३३)

३--एक प्रकारका मकान, जिसमें पश्चिमकी ओर द्वार न हो। (वही ३२)

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

ऋषियोंने पूछा—सूतजी ! आपने विस्तारपूर्वक राजधर्मका वर्णन तो कर दिया, उसी प्रकार अद्भुत शकुन एवं स्वप्नदर्शनका भी निरूपण कर दिया । अब आप पुनः भगवान् विष्णुके माहात्म्यका वर्णन कीजिये । किस प्रकार भगवान्‌ने वामनस्वरूप धारणकर दानवराज बलिको बाँधा था और नापते समय किस प्रकार भगवान्‌का वह शरीर बढ़कर तीनों लोकोंमें व्याप्त हो गया था ? ॥ १-२ ॥

सूत उवाच

एतदेव पुरा पृष्टः कुरुक्षेत्रे तपोधनः । शौनकस्तीर्थयात्रायां वामनायतने पुरा ॥ ३ ॥
यदा समयभेदित्वं द्रौपद्याः पार्थिवं प्रति । अर्जुनेन कृतं तत्र तीर्थयात्रां तदा ययौ ॥ ४ ॥
धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे वामनायतने स्थितः । दृष्ट्वा स वामनं तत्र अर्जुनो वाक्यमब्रवीत् ॥ ५ ॥

सूतजी कहते हैं—मुनिगण ! इसी वृत्तान्तको प्राचीनकालमें तीर्थ-यात्राके समय कुरुक्षेत्रके वामनायतनमें अर्जुनने तपस्वी शौनकजीसे पूछा था । जिस समय उन्होंने द्रौपदीके साथ एकान्तमें बैठे हुए युधिष्ठिरके नियमोंका उल्लङ्घन किया था, उस समय वे उस पापकी शान्तिके लिये तीर्थयात्रामें गये हुए थे । उस समय धर्ममय कुरुक्षेत्रके वामनायतनमें पहुँचकर वामन भगवान्‌का दर्शन कर अर्जुनने इस प्रकार प्रश्न किया था ॥ ३–५ ॥

अर्जुन उवाच

किं निमित्तमयं देवो वामनाकृतिरिज्यते ।
वराहरूपी भगवान् कस्मात् पूज्योऽभवत् पुरा । कस्माच्च वामनस्येदमिष्टं क्षेत्रमजायत ॥ ६ ॥

अर्जुनने पूछा—महर्षे ! किस फलकी प्राप्तिके लिये वामन भगवान्‌की पूजा की जाती है ? प्राचीनकालमें वराहरूपधारी भगवान् किस कारण पूज्य माने गये और किस निमित्तसे यह क्षेत्र भगवान् वामनको प्रिय हुआ है ? ॥

शौनक उवाच

वामनस्य च वक्ष्यामि वराहस्य च धीमतः । त्यक्त्वातिविस्तरं भूयो माहात्म्यं कुरुनन्दन ॥ ७ ॥
पुरा निर्वासिते शक्रे सुरेषु विजितेषु च । चिन्तयामास देवानां जननी पुनरुद्भवम् ॥ ८ ॥
अदितिर्देवमाता च परमं दुश्चरं तपः । तीव्रं चचार वर्षाणां सहस्रं पृथिवीपते ॥ ९ ॥
आराधनाय कृष्णस्य वाग्यता वायुभोजना । दैत्यैर्निराकुलान् दृष्ट्वा तनयान् कुरुनन्दन ॥ १० ॥
वृथापुत्राहमस्मीति निर्वेदात् प्रणता हरिम् ।
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः परमार्थावबोधिनी । देवदेवं हृषीकेशं नत्वा सर्वगतं हरिम् ॥ ११ ॥

शौनकजी बोले—कुरुनन्दन ! मैं भगवान् वामन एवं ज्ञानस्वरूप वराहके माहात्म्यको संक्षेपमें पुनः तुम्हें बतला रहा हूँ । प्राचीनकालमें दानवोंद्वारा देवताओंके पराजित हो जानेपर तथा इन्द्रको निर्वासित कर दिये जानेपर देवमाता अपने पुत्रोंके पुनरुत्थानके लिये चिन्ता करने लगीं । राजन् ! देवमाता अदितिने एक हजार वर्षोंतक परम दुष्कर तप किया । उस समय वे मौन होकर वायुका आहार करती हुई श्रीकृष्णकी आराधनामें तत्पर थीं । कुरुनन्दन ! वे अपने पुत्रोंको दैत्योंद्वारा तिरस्कृत हुआ देखकर 'मैं निष्फल पुत्रवाली हूँ', इस दुःखसे दुःखी होकर श्रीहरिकी शरणागत हुईं । तत्पश्चात् परमार्थको समझनेवाली अदिति देवाधिदेव, इन्द्रियोंके स्वामी, सर्वव्यापी श्रीहरिको नमस्कार कर अभीष्ट वाणीद्वारा उनकी स्तुति करने लगीं ॥ ७–११ ॥

अदितिरुवाच

नमः सर्वार्तिनाशाय नमः पुष्करमालिने । नमः परमकल्याण कल्याणायादिवेधसे ॥ १२ ॥
नमः पङ्कजनेत्राय नमः पङ्कजनाभये । श्रियः कान्ताय दान्ताय परमार्थाय चक्रिणे ॥ १३ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

नमः पङ्कजसम्भूतिसम्भवायात्मयोनये। नमः शङ्खासिहस्ताय नमः कनकरेतसे ॥ १४ ॥
तथाऽऽत्मज्ञानविज्ञानयोगिचिन्त्यात्मयोगिने। निर्गुणायाविशेषाय हरये ब्रह्मरूपिणे ॥ १५ ॥
जगत्प्रतिष्ठितं यत्र जगता यो न दृश्यते। नमः स्थूलातिसूक्ष्माय तस्मै देवाय शार्ङ्गिणे ॥ १६ ॥
यं न पश्यन्ति पश्यन्तो जगदप्यखिलं नराः। अपश्यद्भिर्जगत्यत्र स देवो हृदि संस्थितः ॥ १७ ॥
यस्मिन्नेव विनश्येत यस्यैतदखिलं जगत्। तस्मै समस्तजगतामाधाराय नमो नमः ॥ १८ ॥
आद्यः प्रजापतिपतिर्यः प्रभूणां पतिः परः। पतिः सुराणां यस्तस्मै नमः कृष्णाय वेधसे ॥ १९ ॥
यः प्रवृत्तौ निवृत्तौ च इज्यते कर्मभिः स्वकैः। स्वर्गापवर्गफलदो नमस्तस्मै गदाभृते ॥ २० ॥
यश्चिन्त्यमानो मनसा सद्यः पापं व्यपोहति। नमस्तस्मै विशुद्धाय पराय हरिवेधसे ॥ २१ ॥
यं बुद्ध्वा सर्वभूतानि देवदेवेशमव्ययम्। न पुनर्जन्ममरणे प्राप्नुवन्ति नमामि तम् ॥ २२ ॥
यो यज्ञे यज्ञपरमैरिज्यते यज्ञसंज्ञितः। तं यज्ञपुरुषं विष्णुं नमामि प्रभुमीश्वरम् ॥ २३ ॥

अदिति बोलीं—सभीके दुःखोंका नाश करनेवाले आपको नमस्कार है। कमल-मालाधारीको प्रणाम है। परम कल्याणके भी कल्याणस्वरूप एवं आदिविधाताको अभिवादन है। आप कमलनेत्र, कमलनाभि, लक्ष्मीपति, दमनकर्ता, परमार्थस्वरूप और चक्रधारी हैं, आपको बारंबार नमस्कार है। ब्रह्माकी उत्पत्तिके स्थानस्वरूप एवं आत्मयोनिको प्रणाम है। आप हाथोंमें शङ्ख और खड्ग धारण करनेवाले एवं स्वर्णरेता हैं, आपको बारंबार अभिवादन है। आप आत्मज्ञान-विज्ञानके योगियोंद्वारा चिन्तनीय, आत्मयोगी, निर्गुण, अविशेष, ब्रह्मस्वरूप श्रीहरि हैं। आप समस्त जगत्में स्थित हैं, परंतु जगत्‌द्वारा देखे नहीं जाते, आप स्थूल और अति सूक्ष्मस्वरूप हैं आप शार्ङ्ग-धनुषधारी देवको नमस्कार है। सम्पूर्ण जगत्को देखते हुए भी मनुष्य जिसे देख नहीं पाते, वह देवता इस जगत्में उन्हींके हृदयमें स्थित हैं। यह सारा जगत् उन्हींमें लीन हो जाता है। जिसका यह समस्त जगत् है और जो समस्त जगत्के आधार हैं, उन्हें बारंबार प्रणाम है। जो आद्य प्रजापतियोंमें अग्रगण्य, प्रभुओंके भी प्रभु, परात्पर और देवताओंके स्वामी हैं, उन आदिकर्ता कृष्णको अभिवादन है। जो प्रवृत्ति और निवृत्तिमें अपने कर्मोंद्वारा पूजित होते हैं तथा स्वर्ग और अपवर्गके फलदाता हैं, उन गदाधारीको नमस्कार है। जो मनसे चिन्तन किये जानेपर शीघ्र ही पापको नष्ट कर देते हैं, उन आदिकर्ता परात्पर विशुद्ध हरिको प्रणाम है। समस्त प्राणी जिन अविनाशी देवदेवेश्वरको जानकर पुनः जन्म-मरणको नहीं प्राप्त होते, उन्हें अभिवादन है। जो यज्ञ-परायण लोगोंद्वारा यज्ञमें यज्ञनामसे पूजित होते हैं, उन सामर्थ्यशाली परमेश्वर यज्ञपुरुष विष्णुको मैं नमस्कार करती हूँ ॥ १२—२३ ॥

गीयते सर्ववेदेषु वेदविद्भिर्विदां पतिः। यस्तस्मै वेदवेद्याय विष्णवे जिष्णवे नमः ॥ २४ ॥
यतो विश्वं समुत्पन्नं यस्मिंश्च लयमेष्यति। विश्वागमप्रतिष्ठाय नमस्तस्मै महात्मने ॥ २५ ॥
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं येन विश्वमिदं ततम्। मायाजालं समुत्तर्तुं तमुपेन्द्रं नमाम्यहम् ॥ २६ ॥
यस्तु तोयस्वरूपस्थो बिभर्त्यखिलमीश्वरः। विश्वं विश्वपतिं विष्णुं तं नमामि प्रजापतिम् ॥ २७ ॥
यमाराध्य विशुद्धेन मनसा कर्मणा गिरा। तरन्त्यविद्यामखिलां तमुपेन्द्रं नमाम्यहम् ॥ २८ ॥
विषादतोषरोषाद्यैर्योऽजस्रं सुखदुःखजैः। नृत्यत्यखिलभूतस्थस्तमुपेन्द्रं नमाम्यहम् ॥ २९ ॥
मूर्तं तमोऽसुरमयं तद्वधाद् विनिहन्ति यः। रात्रिजं सूर्यरूपीव तमुपेन्द्रं नमाम्यहम् ॥ ३० ॥
कपिलादिस्वरूपस्थो यश्चाज्ञानमयं तमः। हन्ति ज्ञानप्रदानेन तमुपेन्द्रं नमाम्यहम् ॥ ३१ ॥
यस्याक्षिणी चन्द्रसूर्यौ सर्वलोकशुभाशुभम्। पश्यतः कर्म सततमुपेन्द्रं तं नमाम्यहम् ॥ ३२ ॥
यस्मिन् सर्वेश्वरे सर्वं सत्यमेतन्मयोदितम्। नानृतं तमजं विष्णुं नमामि प्रभवाप्ययम् ॥ ३३ ॥
यच्च तत्सत्यमुक्तं मे भूयांश्चातो जनार्दनः। सत्येन तेन सकलाः पूर्यन्तां मे मनोरथाः ॥ ३४ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

विद्वानोंके स्वामी जो भगवान् वेदवेत्ताओंद्वारा सम्पूर्ण वेदोंमें गाये जाते हैं, उन वेदोंद्वारा जानने योग्य विजयशील विष्णुको प्रणाम है। जिससे विश्व उत्पन्न हुआ है और जिसमें यह लीन हो जायगा, उन वेद-मर्यादाके रक्षक महात्मा विष्णुको अभिवादन है। जिसके द्वारा ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त इस विश्वका विस्तार हुआ है, उन उपेन्द्रको मायाजालसे उद्धार पानेके लिये मैं नमस्कार करती हूँ। जो ईश्वर जलरूपसे स्थित होकर सम्पूर्ण विश्वका भरण-पोषण करते हैं, उन विश्वेश्वर प्रजापति विष्णुको मैं प्रणाम करती हूँ। विशुद्ध मन, वचन एवं कर्मद्वारा जिनकी आराधना कर मनुष्य सम्पूर्ण अविद्याको पार कर जाते हैं, उन उपेन्द्रको मैं अभिवादन करती हूँ। जो सभी चराचर जीवोंमें विद्यमान रहकर सुख-दुःखसे उत्पन्न हुए दुःख, संतोष और क्रोध आदिके वशीभूत हो निरन्तर नाचते रहते हैं, उन उपेन्द्रको मैं नमस्कार करती हूँ। जो रात्रिजन्य अन्धकारको सूर्यकी तरह असुरमय मूर्तिमान् अन्धकारका विनाश करते हैं, उन उपेन्द्रको मैं प्रणाम करती हूँ। जो कपिल आदि महर्षियोंके रूपमें स्थित होकर ज्ञानदानद्वारा अज्ञानान्धकारको दूर करते हैं, उन उपेन्द्रको मैं अभिवादन करती हूँ। जिनके नेत्रस्वरूप चन्द्रमा और सूर्य समस्त संसारके शुभाशुभ कर्मोंको बराबर देखते रहते हैं, उन उपेन्द्रको मैं नमस्कार करती हूँ। जिन सर्वेश्वरके लिये मैंने इन सभी विशेषणोंको सत्यरूपसे वर्णन किया है, मिथ्या नहीं, उन अजन्मा एवं उत्पत्ति-विनाशके कारणभूत विष्णुको मैं प्रणाम करती हूँ। मैंने उनके विषयमें जितनी सत्य बातें कही हैं, जनार्दन उससे भी बढ़कर हैं। इस सत्यके फलस्वरूप मेरे सभी मनोरथ पूर्ण हो जायँ ॥ २४–३४ ॥

शौनक उवाच

एवं स्तुतः स भगवान् वासुदेव उवाच ताम्। अदृश्यः सर्वभूतानां तस्याः संदर्शने स्थितः ॥ ३५ ॥

शौनकजीने कहा—इस प्रकार स्तुति किये जानेपर भगवान् वासुदेव, जो समस्त प्राणियोंके लिये अदर्शनीय हैं, अदितिके समक्ष उपस्थित होकर उनसे इस प्रकार बोले ॥ ३५ ॥

श्रीभगवानुवाच

मनोरथांस्त्वमदिते यानिच्छस्यभिवाञ्छितान्। तांस्त्वं प्राप्स्यसि धर्मज्ञे मत्प्रसादान्न संशयः ॥ ३६ ॥
शृणुष्व सुमहाभागे वरो यस्ते हृदि स्थितः।
तमाशु व्रियतां कामं श्रेयस्ते सम्भविष्यति। मद्दर्शनं हि विफलं न कदाचिद् भविष्यति ॥ ३७ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—धर्मज्ञा अदिते! तुम जिन अभीष्ट मनोरथोंको प्राप्त करना चाहती हो, उन्हें तुम मेरी कृपासे प्राप्त करोगी, इसमें संदेह नहीं है। महाभाग्यशालिनि! सुनो, तुम्हारे हृदयमें जो वरदान स्थित है, उसे शीघ्र ही इच्छानुसार माँग लो। तुम्हारा कल्याण होगा; क्योंकि मेरा दर्शन कभी विफल नहीं होता ॥ ३६–३७ ॥

अदितिरुवाच

यदि देव प्रसन्नस्त्वं मद्भक्त्या भक्तवत्सल। त्रैलोक्याधिपतिः पुत्रस्तदस्तु मम वासवः ॥ ३८ ॥
हृतं राज्यं हृताश्चास्य यज्ञभागा महासुरैः। त्वयि प्रसन्ने वरदे तान् प्राप्नोतु सुतो मम ॥ ३९ ॥
हृतं राज्यं न दुःखाय मम पुत्रस्य केशव। सापत्नाद् दायनिर्भ्रंशो बाधां नः कुरुते हृदि ॥ ४० ॥

अदिति बोलीं—भक्तवत्सल देव! यदि आप मेरी भक्तिसे प्रसन्न हैं तो मेरा पुत्र इन्द्र पुनः त्रिलोकीका स्वामी हो जाय। महान् असुरोंद्वारा मेरे पुत्रका राज्य छीन लिया गया है तथा उसके यज्ञभागोंपर भी अधिकार कर लिया गया है। अब आप-जैसे वरदानीके प्रसन्न हो जानेपर मेरा पुत्र पुनः उन्हें प्राप्त करे। केशव! मेरे पुत्रका छीना हुआ राज्य मुझे उतना कष्ट नहीं दे रहा है, जितना सौतेले पुत्रोंद्वारा मेरे पुत्रोंका अपने हिस्सेसे भ्रष्ट हो जाना मेरे हृदयमें चुभ रहा है ॥ ३८–४० ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

श्रीभगवानुवाच

कृतः प्रसादो हि मया तव देवि यथेप्सितः। स्वांशेन चैव ते गर्भे सम्भविष्यामि कश्यपात् ॥ ४१ ॥
तव गर्भसमुद्भूतस्ततस्ते ये सुरारयः। तानहं निहनिष्यामि निवृत्ता भव नन्दिनि ॥ ४२ ॥

श्रीभगवान‌्ने कहा—देवि ! मैंने तुम्हारे इच्छानुसार तुमपर कृपा की है। मैं अपने अंशसे युक्त कश्यपके सम्पर्कसे तुम्हारे गर्भसे उत्पन्न होऊँगा। इस प्रकार तुम्हारे गर्भसे उत्पन्न होकर मैं देवताओंके उन सभी शत्रुओंका वध करूँगा। नन्दिनि ! अब तुम तपसे निवृत्त हो जाओ ॥ ४१-४२ ॥

अदितिरुवाच

प्रसीद देवदेवेश नमस्ते विश्वभावन। नाहं त्वामुदरे देव वोढुं शक्ष्यामि केशव ॥ ४३ ॥
यस्मिन् प्रतिष्ठितं विश्वं यो विश्वं स्वयमीश्वरः। तमहं नोदरेण त्वां वोढुं शक्ष्यामि दुर्धरम् ॥ ४४ ॥

अदिति बोलीं—जगत्कर्ता देवेश्वर ! आपको नमस्कार है। आप मुझपर कृपा कीजिये। केशव ! मैं आपको गर्भमें धारण करनेमें समर्थ नहीं हो सकती। यह सारा विश्व जिसमें स्थित है तथा जो स्वयं इस विश्वके स्वामी हैं, उन दुर्धर्ष आपको मैं अपने गर्भमें धारण करनेमें सर्वथा असमर्थ हूँ ॥ ४३-४४ ॥

श्रीभगवानुवाच

सत्यमात्थ महाभागे मयि सर्वमिदं जगत्। प्रतिष्ठितं न मां शक्ता वोढुं सेन्द्रा दिवौकसः ॥ ४५ ॥
किंत्वहं सकलाँल्लोकान् सदेवासुरमानुषान्।
जङ्गमान् स्थावरान् सर्वांस्त्वां च देवि सकश्यपाम्। धारयिष्यामि भद्रं ते तदलं सम्भ्रमेण ते ॥ ४६ ॥
न ते ग्लानिर्न ते खेदो गर्भस्थे भविता मयि। दाक्षायणि प्रसादं ते करोम्यन्यैः सुदुर्लभम् ॥ ४७ ॥
गर्भस्थे मयि पुत्राणां तव योऽरिर्भविष्यति। तेजसस्तस्य हानिं च करिष्ये मा व्यथां कृथाः ॥ ४८ ॥

श्रीभगवान‌्ने कहा—महाभागे ! तुम सच कह रही हो। यह सारा जगत् मुझमें स्थित है, अतः इन्द्रसहित समस्त देवता मेरा भार वहन करनेमें समर्थ नहीं हो सकते, किंतु देवि ! मैं देवताओं, असुरों और मनुष्योंसहित सभी लोकोंको, सम्पूर्ण चराचरको तथा कश्यपसहित तुमको धारण करूँगा। तुम्हारा कल्याण हो, अब तुम्हें विकल नहीं होना चाहिये। तुम्हारे गर्भमें मेरे स्थित होनेपर तुम्हें न तो ग्लानि होगी, न खेद होगा। दाक्षायणि ! मैं तुमपर ऐसी कृपा करूँगा, जो दूसरोंके लिये परम दुर्लभ है। मेरे गर्भमें स्थित रहनेपर तुम्हारे पुत्रोंका जो शत्रु होगा, उसके तेजोबलको मैं विनष्ट कर दूँगा। तुम दुःख मत करो ॥ ४५-४८ ॥

शौनक उवाच

एवमुक्त्वा ततः सद्यो यातोऽन्तर्धानमीश्वरः। साथि कालेन तं गर्भमवाप कुरुसत्तम ॥ ४९ ॥
गर्भस्थिते ततः कृष्णे चचाल सकला क्षितिः। चकम्पिरे महाशैलाः क्षोभं जग्मुस्तथाब्धयः ॥ ५० ॥
यतो यतोऽदितिर्याति ददाति ललितं पदम्। ततस्ततः क्षितिः खेदान्ननाम वसुधाधिप ॥ ५१ ॥
दैत्यानामथ सर्वेषां गर्भस्थे मधुसूदने। बभूव तेजसां हानिर्यथोक्तं परमेष्ठिना ॥ ५२ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वामनप्रादुर्भावेऽदितिवरप्रदानं नाम चतुश्चत्वारिंशदधिक-द्विशततमोऽध्यायः ॥ २४४ ॥

शौनकजी बोले—कुरुश्रेष्ठ ! ऐसा कहकर भगवान् तुरंत अन्तर्हित हो गये। समयानुसार अदितिने भी उस गर्भको धारण किया। भगवान् विष्णुके गर्भस्थित होनेपर सारी पृथ्वी डगमगाने लगी, बड़े-बड़े पर्वत काँपने लगे तथा समुद्रमें ज्वार-भाटा उठने लगा। वसुधाधिप ! अदिति जिधर-जिधर जाती थीं और अपना सुन्दर पद

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

रखती थीं, वहाँ-वहाँ भारके कारण पृथ्वी विनम्र हो जाती थी। भगवान् विष्णुके गर्भस्थ होनेपर सभी दैत्योंके तेज बिल्कुल मन्द हो गये, जैसा कि भगवान्ने अदितिसे पहले कहा था ॥ ४९-५२ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें वामनप्रादुर्भाव-प्रसंगमें अदितिको वरदान नामक दो सौ चौवालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २४४ ॥

दो सौ पैंतालीसवाँ अध्याय

बलिद्वारा विष्णुकी निन्दापर प्रह्लादका उन्हें शाप, बलिका अनुनय, ब्रह्माजीद्वारा वामन भगवान्का स्तवन, भगवान् वामनका देवताओंको आश्वासन तथा उनका बलिके यज्ञके लिये प्रस्थान

शौनक उवाच

निस्तेजसोऽसुरान् दृष्ट्वा समस्तानसुरेश्वरः। प्रह्लादमथ पप्रच्छ बलिरात्मपितामहम् ॥ १ ॥

शौनकजीने कहा—असुरराज बलिने समस्त दैत्योंको निस्तेज देखकर अपने पितामह प्रह्लादसे प्रश्न किया ॥ १ ॥

बलिरुवाच

तात निस्तेजसो दैत्या निर्दग्धा इव वह्निना। किमेते सहसैवाद्य ब्रह्मदण्डहता इव ॥ २ ॥
अरिष्टं किं नु दैत्यानां किं कृत्या वैरिनिर्मिता। नाशायैषा समुद्भूता यया निस्तेजसोऽसुराः ॥ ३ ॥

बलिने पूछा—तात ! क्या बात है कि आज सहसा ये दैत्यगण अग्निसे जले हुएके समान निस्तेज और ब्रह्म-दण्डसे मारे हुएकी भाँति निर्बल दिखायी पड़ने लगे हैं ? क्या दैत्योंके ऊपर कोई अरिष्ट आ गया है ? या वैरियों-द्वारा निर्मित कोई कृत्या इनका विनाश करनेके लिये प्रकट हुई है, जिससे ये असुर तेजोहीन हो गये हैं ? ॥ २-३ ॥

शौनक उवाच

इति दैत्यपतिर्धीरः पृष्टः पौत्रेण पार्थिव। चिरं ध्यात्वा जगादेनमसुरेन्द्रं बलिं तदा ॥ ४ ॥

शौनकजीने कहा—राजन् ! इस प्रकार अपने पौत्र बलिद्वारा पूछे जानेपर धैर्यशाली दैत्यपति प्रह्लादने बहुत देरतक ध्यानकर उस असुरनायक बलिसे कहा ॥ ४ ॥

प्रह्लाद उवाच

चलन्ति गिरयो भूमिर्जहाति सहजां धृतिम्। सद्यः समुद्राः क्षुभिता दैत्या निस्तेजसः कृताः ॥ ५ ॥
सूर्योदये यथा पूर्वं तथा गच्छन्ति न ग्रहाः। देवानां च परा लक्ष्मीः कारणैरनुमीयते ॥ ६ ॥
महदेतन्महाबाहो कारणं दानवेश्वर। न ह्यल्पमिति मन्तव्यं त्वया कार्यं सुरार्दन ॥ ७ ॥

प्रह्लाद बोले—दानवराज बलि ! इस समय पर्वत काँप उठे हैं, पृथ्वीने अपनी स्वाभाविक धीरता छोड़ दी है, सभी समुद्र विक्षुब्ध हो उठे हैं और दैत्यगण तेजोहीन कर दिये गये हैं। ग्रहगण सूर्योदय होनेपर जिस प्रकार पहले सूर्यका अनुगमन करते थे, वैसा अब नहीं कर रहे हैं। कुछ कारणोंसे ऐसा अनुमान होता है कि देवताओंकी विशेष अभ्युन्नति होनेवाली है। महाबाहो ! इसका कोई महान् कारण है। सुरार्दन ! तुम्हें इस कार्यको तुच्छ नहीं मानना चाहिये ॥ ५-७ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

शौनक उवाच

इत्युक्त्वा दानवपतिं प्रह्लादः सोऽसुरोत्तमः। अत्यन्तभक्तो देवेशं जगाम मनसा हरिम्॥ ८॥
स ध्यानयोगं कृत्वाथ प्रह्लादः सुमनोहरम्। विचारयामास ततो यतो देवो जनार्दनः॥ ९॥
स ददर्शोदरेऽदित्याः प्रह्लादो वामनाकृतिम्। अन्तःस्थान् बिभ्रतं सप्त लोकानादिप्रजापतिम्॥ १०॥
तदन्तःस्थान् वसून् रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा। साध्यान् विश्वांस्तथादित्यान् गन्धर्वोरगराक्षसान्॥ ११॥
विरोचनं स्वतनयं बलिं चासुरनायकम्। जम्भं कुजम्भं नरकं बाणमन्यांस्तथासुरान्॥ १२॥
आत्मानमुर्वीं गगनं वायुमम्भो हुताशनम्। समुद्रान् वै द्रुमसरित्सरांसि च पशून् मृगान्॥ १३॥
वयोमनुष्यानखिलांस्तथैव च सरीसृपान्।
समस्तलोकस्रष्टारं ब्रह्माणं भवमेव च। ग्रहनक्षत्रनागांश्च दक्षाद्यांश्च प्रजापतीन्॥ १४॥
स पश्यन् विस्मयाविष्टः प्रकृतिस्थः क्षणात् पुनः। प्रह्लादः प्राह दैत्येन्द्रं बलिं वैरोचनिं तदा॥ १५॥

शौनकजीने कहा—परम भक्त असुरश्रेष्ठ प्रह्लाद दानवराज बलिसे ऐसा कहकर मन-ही-मन देवेश्वर श्रीहरिकी शरणमें गये। तत्पश्चात् प्रह्लाद परम मनोहर ध्यानयोगका आश्रय लेकर देवाधिदेव जनार्दनका ध्यान करने लगे। तब उन्होंने अदितिके उदरमें वामनरूपमें उन आदिप्रजापतिको देखा, जिनके भीतर सातों लोक विराजमान थे। उस समय प्रह्लादने भगवान्‌के भीतर वसु, रुद्र, अश्विनीकुमार, मरुद्गण, साध्यगण, विश्वेदेव, आदित्य, गन्धर्व, नाग, राक्षस, अपना पुत्र विरोचन, असुरराज बलि, जम्भ, कुजम्भ, नरक, बाण तथा अन्य असुरगण, स्वयं अपने-आप, पृथ्वी, आकाश, वायु, जल, अग्नि, समुद्र, वृक्ष, नदियाँ, सरोवर, पशु, मृग, पक्षी, मनुष्य, सर्पादि, जीव, सभी लोकोंके सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, शिव, ग्रह, नक्षत्र, नाग तथा दक्ष आदि प्रजापतियोंको भी देखा। यह देखकर प्रह्लाद आश्चर्यचकित हो गये। पुनः क्षणभर बाद स्वस्थ होनेपर उन्होंने विरोचन-पुत्र असुरराज बलिसे इस प्रकार कहा॥ ८—१५॥

प्रह्लाद उवाच

वत्स ज्ञातं मया सर्व यदर्थं भवतामियम्। तेजसो हानिरुत्पन्ना तच्छृणु त्वमशेषतः॥ १६॥
देवदेवो जगद्योनिरयोनिर्जगदादिकृत्। अनादिरादिर्विश्वस्य वरेण्यो वरदो हरिः॥ १७॥
परावराणां परमः परः परवतामपि। प्रमाणं च प्रमाणानां सप्तलोकगुरोर्गुरुः॥ १८॥
प्रभुः प्रभूणां परमः पराणामनादिमध्यो भगवाननन्तः।
त्रैलोक्यमंशेन सनाथमेष कर्तुं महात्मादितिजोऽवतीर्णः॥ १९॥
न यस्य रुद्रो न च पद्मयोनिर्नेन्द्रो न सूर्येन्दुमरीचिमुख्याः।
जानन्ति दैत्याधिप यत्स्वरूपं स वासुदेवः कलयावतीर्णः॥ २०॥
योऽसौ कलांशेन नृसिंहरूपी जघान पूर्व पितरं ममेशः।
यः सर्वयोगीशमनोनिवासः स वासुदेवः कलयावतीर्णः॥ २१॥
यमक्षरं वेदविदो विदित्वा विशन्ति यज्ज्ञानविधूतपापाः।
यस्मिन् प्रविष्टा न पुनर्भवन्ति तं वासुदेवं प्रणमामि नित्यम्॥ २२॥

प्रह्लाद बोले—वत्स! जिस कारण तुम राक्षसोंके तेजकी यह हानि उत्पन्न हुई है, उस सारे रहस्यको मैं जान गया। उसे तुम पूर्णरूपसे सुनो। जो देवाधिदेव, जगत्‌के उत्पत्तिस्थान, अजन्मा, जगत्‌के आदिकर्ता, अनादि, विश्वके आदि, सर्वश्रेष्ठ, वरदायक, पापनाशक परावरोंमें उत्तम, परात्पर, प्रमाणोंके प्रमाण, सातों लोकोंके गुरुके गुरु, प्रभुके प्रभु, पर-से-परे, आदि-मध्य-अन्त रहित तथा महान् आत्मबलसे सम्पन्न हैं, वे भगवान्

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

अपने अंशसे त्रिलोकीको सनाथ करनेके लिये अदितिके गर्भसे अवतीर्ण हो रहे हैं। दैत्यपते! जिनके स्वरूपको रुद्र, पद्मयोनि ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा, मरीचि प्रभृति महर्षिगण नहीं जानते, वे भगवान् वासुदेव अपनी कलासे उत्पन्न हो रहे हैं। जिन भगवान्‌ने पूर्वकालमें अपनी एक कलाद्वारा नृसिंहरूपमें अवतीर्ण होकर मेरे पिता (हिरण्यकशिपु)का वध किया था तथा जो सभी योगिराजोंके मनमें निवास करनेवाले हैं, वे भगवान् वासुदेव अपनी कलासे अवतीर्ण हो रहे हैं। जिनके ज्ञानसे पापमुक्त हुए वेदवेत्ता जिन अव्यय भगवान्‌को जानकर उनमें प्रवेश करते हैं तथा जिनमें प्रवेश कर पुनः जन्म नहीं धारण करते, उन भगवान् वासुदेवको मैं नित्य प्रणाम करता हूँ॥

भूतान्यशेषाणि यतो भवन्ति यथोर्मयस्तोयनिधेरजस्रम्।
लयं च यस्मिन् प्रलये प्रयान्ति तं वासुदेवं प्रणमाम्यचिन्त्यम्॥२३॥
न यस्य रूपं न बलप्रभावौ न यस्य भावः परमस्य पुंसः।
विज्ञायते शर्वपितामहाद्यैस्तं वासुदेवं प्रणमाम्यजस्रम्॥२४॥
रूपस्य चक्षुर्ग्रहणे त्वगिष्टा स्पर्शे ग्रहीत्री रसना रसस्य।
श्रोत्रं च शब्दग्रहणे नराणां घ्राणं च गन्धग्रहणे नियुक्तम्॥२५॥
येनैकदंष्ट्राग्रसमुद्धृतेयं धराचलान् धारयतीह सर्वान्।
यस्मिंश्च शेते सकलं जगच्च तमीशमाद्यं प्रणतोऽस्मि विष्णुम्॥२६॥
न घ्राणचक्षुःश्रवणादिभिर्यः सर्वेश्वरो वेदितुमक्षयात्मा।
शक्यस्तमीड्यं मनसैव देवं ग्राह्यं नतोऽहं हरिमीशितारम्॥२७॥
अंशावतीर्णेन च येन गर्भे हृतानि तेजांसि महासुराणाम्।
नमामि तं देवमनन्तमीशमशेषसंसारतरोः कुठारम्॥२८॥
देवो जगद्योनिरयं महात्मा स षोडशांशेन महासुरेन्द्र।
स देवमातुर्जठरं प्रविष्टो हृतानि वस्तेन बलाद् वपूंषि॥२९॥

समस्त प्राणी समुद्रसे लहरोंकी भाँति जिनसे निरन्तर उत्पन्न होते हैं और प्रलयकालमें पुनः जिनमें लय हो जाते हैं, उन अचिन्त्य वासुदेवको मैं नमस्कार करता हूँ। जिन परम पुरुषके स्वरूप, बल, प्रभाव और भावको शिव तथा ब्रह्मा आदि देवगण भी नहीं समझ पाते, उन भगवान् वासुदेवको मैं सर्वदा नमस्कार करता हूँ। जिन भगवान् वासुदेवने मनुष्योंको स्वरूप देखनेके लिये नेत्र, स्पर्शके लिये चमड़ा, रसास्वादनके लिये जिह्वा, शब्द सुननेके लिये कान तथा सुगन्ध ग्रहण करनेके लिये नासिका दी है, जिन्होंने अपने एक दाँतके अग्रभागपर इस पृथ्वीको, जो सभी पर्वतोंको धारण करती है, धारण किया है, तथा जिनमें यह समस्त जगत् शयन करता है, उन आदिभूत भगवान् विष्णुको मैं नमस्कार करता हूँ। जो अक्षयात्मा सर्वेश्वर नासिका, नेत्र और कान आदि इन्द्रियोंद्वारा जाने नहीं जा सकते, जिन्हें केवल मनद्वारा ग्रहण किया जा सकता है, उन पूज्य परमेश्वर भगवान् विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ। जिन्होंने गर्भमें अपने अंशमात्रसे अवतीर्ण होकर बड़े-बड़े दैत्योंके तेजोंका हरण कर लिया है, जो समस्त संसाररूपी वृक्षके लिये कुठारस्वरूप हैं, उन अनन्त परमात्मदेवको मैं नमस्कार करता हूँ। महासुरेन्द्र! जो ये महान् आत्मबलसे सम्पन्न एवं जगत्‌के उत्पत्तिस्थान भगवान् विष्णु हैं, ये अपने सोलह अंशोंसे माता अदितिके उदरमें प्रविष्ट हुए हैं, उन्होंने ही बलपूर्वक तुमलोगोंके शरीरको निस्तेज कर दिया है॥२३-२९॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

बलिरुवाच

तात कोऽयं हरिर्नाम यतो नो भयमागतम्। सन्ति मे शतशो दैत्या वासुदेवबलाधिकाः ॥ ३०॥
विप्रचित्तिः शिविः शङ्कुरयःशङ्कुस्तथैव च। अयःशिरास्त्वश्वशिरा भङ्गकारी महाहनुः ॥ ३१॥
प्रतापः प्रघसः शुम्भः कुकुरश्च सुदुर्जयः। एते चान्ये च मे सन्ति दैतेया दानवास्तथा ॥ ३२॥
महाबला महावीर्या भूभारोद्धरणक्षमाः। एषामेकैकशः कृष्णो न वीर्यार्धेन सम्मितः ॥ ३३॥

बलिने कहा—तात! यह हरि कौन है, जिससे हम लोगोंको भय प्राप्त हो गया है! मेरे पास तो उस वासुदेवसे भी अधिक बलवान् सैकड़ों दैत्य हैं। विप्रचित्ति, शिवि, शङ्कु, अयःशङ्कु, अयःशिरा, अश्वशिरा, भङ्गकारी, महाहनु, प्रताप, प्रघस, शुम्भ, अत्यन्त कठिनाईसे जीतने योग्य कुकुर—ये तथा इनके अतिरिक्त और भी दैत्य एवं दानव मेरे अधिकारमें हैं। ये सभी महाबली, महान् पराक्रमी तथा पृथ्वीके भारको उठानेमें समर्थ हैं। इनमेंसे एक-एकके आधे पराक्रमसे भी कृष्णकी कोई समानता नहीं है॥ ३०–३३॥

शौनक उवाच

पौत्रस्यैतद् वचः श्रुत्वा प्रह्लादो दैत्यपुंगवः। धिग्धिगित्याह स बलिं वैकुण्ठाक्षेपवादिनम् ॥ ३४॥

शौनकजी बोले—दैत्यश्रेष्ठ प्रह्लाद अपने पौत्रकी यह बात सुनकर भगवान्‌की निन्दा करनेवाले उस बलिको धिक्कारते हुए बोले॥ ३४॥

प्रह्लाद उवाच

विनाशमुपयास्यन्ति मन्ये दैतेयदानवाः। येषां त्वमीदृशो राजा दुर्बुद्धिरविवेकवान् ॥ ३५॥
देवदेवं महाभागं वासुदेवमजं विभुम्। त्वामृते पापसंकल्पः कोऽन्य एवं वदिष्यति ॥ ३६॥
य एते भवता प्रोक्ताः समस्ता दैत्यदानवाः। सब्रह्मकास्तथा देवाः स्थावरानन्तभूमयः ॥ ३७॥
त्वं चाहं च जगच्चेदं साद्रिद्रुमनदीनदम्। समुद्रद्वीपलोकाश्च न समं केशवस्य हि ॥ ३८॥
यस्यातिवन्द्यवन्द्यस्य व्यापिनः परमात्मनः। एकांशेन जगत् सर्वं कस्तमेवं प्रवक्ष्यति ॥ ३९॥
ऋते विनाशाभिमुखं त्वामेकमविवेकिनम्। कुबुद्धिमजितात्मानं वृद्धानां शासनातिगम् ॥ ४०॥
शोच्योऽहं यस्य मे गेहे जातस्तव पिताधमः। यस्य त्वमीदृशः पुत्रो देवदेवस्य निन्दकः ॥ ४१॥
तिष्ठत्वेषा हि संसारसम्भूताघविनाशिनी। कृष्णे भक्तिरहं तावदवेक्ष्यो भवता न किम् ॥ ४२॥

प्रह्लादने कहा—मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि जिनका तुम-जैसा अविवेकी एवं दुर्बुद्धि राजा है, उन दैत्यों और दानवोंका विनाश हो जायगा। तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा कौन ऐसा पापी होगा, जो देवाधिदेव, महाभाग, अजन्मा एवं सर्वव्यापी वासुदेवको ऐसा कहेगा? तुमने जिनका नाम गिनाया है, ये सभी दैत्य-दानव, ब्रह्मासहित देवगण, चराचर जगत्, तुम, मैं, पर्वत, वृक्ष, नदी और नदोंसहित यह संसार, समुद्र, द्वीप और लोक—ये सभी भगवान् केशवकी समानता नहीं कर सकते। जिन सर्वव्यापी एवं वन्दनीयोंके भी वन्दनीय परमात्माके एक अंशसे यह सारा जगत् उत्पन्न हुआ है, उन्हें अकेले तुम-जैसे अविवेकी, विनाशोन्मुख, कुबुद्धि, अजितात्मा, वृद्धोंकी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेवालेके सिवा दूसरा कौन ऐसा कहेगा? अब तो शोचनीय मैं हुआ, जिसके घरमें तुम्हारा नीच पिता उत्पन्न हुआ, जिसके तुम इस प्रकार देवाधिदेव विष्णुकी निन्दा करनेवाले पुत्र हुए। संसारमें जन्म लेकर उपार्जित किये गये पापोंको नष्ट करनेवाली भगवान् कृष्णके चरणोंमें हमारी भक्ति अक्षुण्ण बनी रहे, भले ही मैं तुम्हारे द्वारा अपमानित क्यों न होऊँ!॥ ३५–४२॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

इस समय निम्नलिखित पुस्तकें उपलब्ध हैं

पुस्तकका नाम	मूल्य
रामचरितमानस सटीक बृहदाकार ...	६०.००
रामचरितमानस मोटा टाइप सटीक ...	३०.००
रामचरितमानस सटीक मझला साइज ...	१५.००
रामचरितमानस मूल मझला ,, ...	७.५०
विष्णु-पुराण ...	१५.००
गीता-तत्त्वविवेचनी ...	१२.००
गीता-शांकरभाष्य ...	१२.००
गीता मझोली पदच्छेद सजिल्द ...	४.००
गीताकी राजविद्या ...	४.५०
गीताका ज्ञानयोग ...	४.००
गीताकी विभूति और विश्वरूपदर्शन ...	३.००
गीताका ध्यानयोग ...	२.००
श्रीमद्भागवत सटीक (द्वितीय खण्ड) ...	२५.००
,, ,, मूल गुटका ...	६.५०
संक्षिप्त महाभारत (प्रथम खण्ड) ...	१८.००
वाल्मीकीय रामायण (द्वितीय खण्ड) ...	२५.००
अध्यात्मरामायण ...	१०.००
श्रीप्रेम-सुधासागर ...	१०.००
वेदान्तदर्शन ...	६.००
ईशादि नौ उपनिषद् ...	६.००
ईशावास्योपनिषद् ...	०.६०
केनोपनिषद् ...	२.००
कठोपनिषद् ...	२.५०
तैत्तिरीयोपनिषद् ...	३.००
मानस-शङ्का-समाधान ...	२.००
रामचरितमानस बालकाण्ड सटीक ...	३.५०
,, अयोध्याकाण्ड सटीक ...	३.००
,, अरण्यकाण्ड सटीक ...	०.९०
,, किष्किन्धाकाण्ड सटीक ...	०.६०
,, लंकाकाण्ड सटीक ...	१.५०
,, उत्तरकाण्ड सटीक ...	१.५०
विनय-पत्रिका ...	५.००
गीतावली ...	५.००
कवितावली ...	२.००
स्तोत्ररत्नावली ...	३.००

पुस्तकका नाम	मूल्य
लघुसिद्धान्तकौमुदी ...	३.००
एक महात्माका प्रसाद ...	२.००
सत्संग-सुधा ...	२.००
तत्त्वचिन्तामणि (भाग १) ...	२.००
,, (भाग २) ...	३.००
,, (भाग ३) ...	३.५०
,, (भाग ४) ...	४.००
,, (भाग ५) ...	२.५०
,, (भाग ७) ...	४.००
कर्मयोगका तत्त्व ...	३.००
आत्मोद्धारके साधन ...	२.५०
ज्ञानयोगका तत्त्व ...	२.५०
परमशान्तिका मार्ग ...	२.५०
महत्त्वपूर्ण शिक्षा ...	२.५०
मनुष्यका परम कर्तव्य ...	२.५०
प्रेमयोगका तत्त्व ...	२.००
परम साधन ...	२.००
मनुष्यजीवनकी सफलता ...	२.५०
भक्तियोगका तत्त्व ...	२.५०
परमार्थ पत्रावली भाग १ ...	०.५०
,, भाग २ ...	१.००
,, भाग ३ ...	१.२५
,, भाग ४ ...	१.२५
शिक्षाप्रद पत्र ...	१.५०
अध्यात्मविषयक पत्र ...	१.००
सुखी बननेके उपाय ...	३.५०
व्यवहार और परमार्थ ...	२.००
नारी-शिक्षा ...	१.५०
भवरोगकी रामबाण दवा ...	१.००
कल्याण-कुंज भाग १ ...	१.२०
,, भाग २ ...	१.५०
दिव्यसुखकी सरिता-(कल्याण-कुंज भाग ५)	१.००
सफलताके शिखरकी सीढ़ियाँ (कल्याण-कुंज भाग ६) ...	१.२५

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

पुस्तकका नाम	मूल्य	पुस्तकका नाम	मू
संस्कृति-माला भाग १ ...	०.६०	प्रेमी भक्त ...	१.०
,, भाग २ ...	०.८०	भक्त-सरोज ...	१.०
,, भाग ३ ...	१.००	भक्तसुमन ...	१.०
ब्रह्मचर्य-सन्ध्या-गायत्री ...	०.४०	भक्त-सौरभ ...	१.०
सन्ध्योपासनविधि (पदच्छेद-अन्वयसहित)	०.४०	भक्त-दिवाकर ...	१.०
श्रीराधिकासहस्रनामस्तोत्रम् ...	०.३५	भक्त-सुधाकर ...	१.०
गोविन्ददामोदरस्तोत्र ...	०.३०	भक्त-रत्नाकर ...	१.०
विष्णुसहस्रनाम मूल ...	०.२५	भक्त-कुसुम ...	.८
गीता संस्कृत रोमन अंग्रेजी ...	३.००	भक्तराज हनुमान् ...	.७
भक्त नरसिंह मेहता ...	२.००	प्रेमी भक्त उद्धव ...	.५
भक्त-नारी ...	.५०	भक्तराज ध्रुव ...	.५
भक्त-पञ्चरत्न ...	.६०	बाल-चित्रमय कृष्णलीला ...	१.५
भक्त-चन्द्रिका ...	.७५	बाल-चित्र-रामायण ...	.८
भक्त-महिलारत्न ...	.७५	भगवान् राम ...	१.०
प्राचीन भक्त ...	१.५०	बाल-चित्रमय बुद्धलीला ...	.८
भक्त सप्तरत्न ...	१.००	बाल-चित्रमय चैतन्यलीला ...	.८
आदर्श भक्त ...	१.००	महाभारतके आदर्श पात्र ...	.८
		पद-रत्नाकर ...	१४.०

गीताभवन, स्वर्गाश्रमके सत्सङ्गकी सूचना

प्रतिवर्षकी भाँति इस वर्ष भी गीताभवन, स्वर्गाश्रममें सत्सङ्गके आयोजनकी व्यवस्था है। व वैशाख (अप्रैल) के प्रथम सप्ताहमें परम श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजके पधारनेका विचा है। अन्य साधु एवं विद्वान् भी पधारनेवाले हैं।

यह नम्र निवेदन है कि सत्सङ्गी भाईलोग तथा माताएँ-बहनें अधिकाधिक संख्यामें सत्सङ्ग त भजनके पवित्र उद्देश्यसे ही गीताभवन पधारें। आमोद-प्रमोद (मनोरञ्जन) तथा केवल जलवा परिवर्तनकी दृष्टिसे न जाकर सत्सङ्ग-लाभके उद्देश्यसे ही वहाँ जाना चाहिये एवं यथासाध्य नियमि तथा संयमित साधक-जीवन बिताते हुए सत्सङ्ग, कथा-श्रवण आदिमें भाग लेना चाहिये।

जिन्हें नौकर, रसोइयाकी आवश्यकता हो, उन्हें यथासम्भव उनको अपने साथ लाना चाहिये स्वर्गाश्रममें नौकर, रसोइयोंका मिलना कठिन है। माताएँ-बहनें पीहर या ससुरालवालोंके (अथव अन्य किसी पास निकटके सम्बन्धीके) साथ ही वहाँ जायँ, अकेली न जायँ। अकेली जानेकी दश उन्हें स्थान मिलनेमें कठिनाई होगी।

गहने आदि जोखिमकी वस्तुएँ साथमें बिल्कुल नहीं ले जानी चाहिये। सत्सङ्गी भाइयों बहुत आवश्यक सामान ही साथमें लाना चाहिये। तथा अपने सामानकी पूरी सँभाल स्वयं रखन चाहिये। जहाँतक बन पड़े छोटे बच्चोंको साथमें न ले जायँ। खान-पानकी वस्तुओंका प्रबन्ध यथ साध्य किया जा रहा है, परंतु दूधके प्रबन्धमें बहुत कठिनाई है।

व्यवस्थापक—गीता

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

राम लछुमन जानकी, जै बोलो हनुमान की ।

वर्ष ५९] [संख्या २

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

(संस्करण १,७०,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर चैत्र, श्रीकृष्ण-संवत् ५२१०, मार्च १९८५

अध्याय विषय	पृष्ठ-संख्या
भगवान् वराहविष्णु विश्वकी रक्षा करें	९४५
२४६—बलि-शुक्र-संवाद, वामनका बलिके यज्ञमें पदार्पण, बलिद्वारा उन्हें तीन डग पृथ्वीका दान, वामनद्वारा बलिका बन्धन और वर-प्रदान ···	९४९
२४७—अर्जुनके वाराहावतारविषयक प्रश्न करनेपर शौनकजीद्वारा भगवत्स्वरूपका वर्णन ··· ···	९५७
२४८—वराह भगवान्का प्रादुर्भाव, हिरण्याक्ष-द्वारा रसातलमें ले जायी गयी पृथ्वीदेवीद्वारा यज्ञवराहका स्तवन और भगवान्द्वारा उनका उद्धार ···	९६०
२४९—अमृत-प्राप्तिके लिये समुद्र-मन्थनका उपक्रम और वारुणी-(मदिरा-) का प्रादुर्भाव ··· ···	९६६
२५०—अमृतार्थ समुद्र-मन्थन करते समय चन्द्रमासे लेकर विषतकका प्रादुर्भाव ···	९७२
२५१—अमृतका प्राकट्य, मोहिनीरूपधारी भगवान् विष्णुद्वारा देवताओंका अमृत-पान तथा देवासुरसंग्राम ···	९७७
२५२—वास्तुके प्रादुर्भावकी कथा ···	९८०
२५३—वास्तु-चक्रका वर्णन ···	९८२
२५४—वास्तुशास्त्रके अन्तर्गत राजप्रासाद आदिकी निर्माण-विधि ···	९८६
२५५—वास्तुविषयक वेधका विवरण ···	९९०
२५६—वास्तुप्रकरणमें गृह-निर्माणविधि ···	९९२

चित्र-सूची

१—श्रीहनुमान्जी द्वारा भगवान् रामकी स्तुति (रेखा-चित्र) — आवरण-पृष्ठ

२—देवता एवं ऋषियोंद्वारा वराहभगवान्का संस्तवन (रंगीन चित्र) — मुख-पृष्ठ

प्रत्येक साधारण अङ्कका मूल्य भारतमें १.०० रु० विदेशमें १० पेंस

जय विराट् जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

कल्याणका वार्षि[क] मूल्य भारतमें २४.०[०] विदेशमें ६०.०[०] (४ पौण्ड)

संस्थापक— ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आदिसम्पादक —नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

सम्पादक—राधेश्याम खेमका

गोविन्दभवन-कार्यालयके [लिये] जगदीशप्रसाद जालानद्वारा गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

[भारत-सरकारद्वारा उपलब्ध कराये गये रियायती मूल्यके कागजपर मुद्रित]

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

देवता एवं ऋषियोंद्वारा वराह भगवान्‌का संस्तवन्

Sri Vidya Bharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

कल्याण

ेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते ।
ौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते म्लेच्छान् मूर्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः ॥

५९ } गोरखपुर, सौर चैत्र, श्रीकृष्ण-संवत् ५२१०, मार्च १९८५ ई० { संख्या ३
पूर्ण संख्या ७००

भगवान् वराहविष्णु विश्वकी रक्षा करें

पातु श्रीस्तनपत्रभङ्गमकरीमुद्राङ्कितोरःस्थलो
देवैः सर्वजगत्पतिर्मधुवधूवक्त्राब्जचन्द्रोदयः ।
क्रीडाक्रोडतनोर्नवेन्दुविशदे दंष्ट्राङ्कुरे यस्य भू-
र्भाति स्म प्रलयाब्धिपल्वलतलोत्खातैकमुस्ताकृतिः ॥

(महानाटक १ । ९, हनुमन्नाटक १ । २)

'मधु दैत्यके संहारद्वारा उसकी स्त्रियोंके मुख-कमल (को मलिन करने) के लिये चन्द्रोदयके तुल्य एवं भगवती श्रीलक्ष्मीजीके विग्रहपर रचित चन्दनादिकी मकर-से पत्रिका-चिह्नित-हृदयवाले वे जगदीश्वर भगवान् विष्णु विश्वकी रक्षा करें—जिनके लीला-पूर्वक वराह-शरीर धारण करनेपर उनके द्वितीयाके नवीन चन्द्रके आकारवाले दाढ़के अग्रभागपर स्थित प्रलयकालीन अगाध सागरके अन्तस्तलसे उद्धृत पृथिवी नागरमोथाके समान (लघु) प्रतीत हो रही थी ।'

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

[गताङ्कसे आगे]

न मे प्रियतमः कृष्णादपि देहो महात्मनः। इति जानात्ययं लोको न भवान् दितिजाधम ॥ ४३ ॥
जानन्नपि प्रियतरं प्राणेभ्योऽपि हरिं मम। निन्दां करोषि तस्य त्वमकुर्वन् गौरवं मम ॥ ४४ ॥
विरोचनस्तव गुरुर्गुरुस्तस्याप्यहं बले। ममापि सर्वजगतां गुरोर्नारायणो गुरुः ॥ ४५ ॥
निन्दां करोषि यस्तस्मिन् कृष्णे गुरुगुरोर्गुरौ। यस्मात्तस्मादिहैश्वर्यादचिराद् भ्रंशमेष्यसि ॥ ४६ ॥
मम देवो जगन्नाथो बले तावज्जनार्दनः। भवत्वहमुपेक्ष्यस्ते प्रीतिमानस्तु मे गुरुः ॥ ४७ ॥
एतावन्मात्रमप्येवं निन्दितस्त्रिजगद्गुरुः। नावेक्षितं त्वया यस्मात् तस्माच्छापं ददामि ते ॥ ४८ ॥
यथा मे शिरसश्छेदादिदं गुरुतरं वचः। त्वयोक्तमच्युताक्षेपि राज्यभ्रष्टस्तथा पत ॥ ४९ ॥
यथा च कृष्णान्न परं परित्राणं भवार्णवे। तथाचिरेण पश्येयं भवन्तं राज्यविच्युतम् ॥ ५० ॥

दैत्याधम ! भगवान् (विष्णु)से बढ़कर मुझे अपना शरीर भी प्रिय नहीं है, इसे यह संसार जानता है, किंतु तुम्हें विदित नहीं है। मेरे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय भगवान् विष्णुको जानते हुए भी तुम मेरे गौरवकी रक्षा न करते हुए उनकी निन्दा कर रहे हो। बलि! तुम्हारा गुरु विरोचन है और मैं उसका भी गुरु हूँ तथा मेरे एवं समस्त संसारके गुरुके भी गुरु नारायण हैं। चूँकि तुम उन गुरुओंके गुरु विष्णुकी निन्दा कर रहे हो, इसलिये इस लोकमें शीघ्र ही ऐश्वर्यसे भ्रष्ट हो जाओगे। बलि! जगदीश्वर जनार्दन मेरे देवता हैं। वे मेरे गुरु मुझपर प्रसन्न रहें, भले ही मैं तुम्हारेद्वारा उपेक्षित हो जाऊँ। (इसकी परवा नहीं है।) चूँकि तुमने बिना बिचारे त्रिलो- के गुरु भगवान्‌की जो इस प्रकार इतनी निन्दा की इसीलिये मैं तुम्हें शाप दे रहा हूँ। जिस प्रकार तुमने सिर काट लेनेसे भी बढ़कर यह भगवान् अच्युतकी नि- करनेवाला वचन कहा है, उसी प्रकार तुम राज्यसे होकर (अवनतिके गर्तमें) गिर जाओ। जिस प्र- इस संसारसागरमें विष्णुसे बढ़कर अन्य कोई शा- दाता नहीं है, (मेरी यह बात सत्य है तो) मैं ही तुम्हें राज्यसे च्युत हुआ देखूँ ॥ ४३–५० ॥

शौनक उवाच

इति दैत्यपतिः श्रुत्वा गुरोर्वचनमप्रियम्। प्रसादयामास गुरुं प्रणिपत्य पुनः पुनः ॥ ५१ ॥

शौनकजी बोले—दैत्यराज बलिने अपने पितामह प्रह्लादकी ऐसी अप्रिय बात सुनकर उन्हें बारम्बार प्रणाम कर सभी प्रकारसे प्रसन्न करते हुए इस प्रकार कह- आरम्भ किया ॥ ५१ ॥

बलिरुवाच

प्रसीद तात मा कोपं कुरु मोहहते मयि। बलावलेपमत्तेन मयैतद् वाक्यमीरितम् ॥ ५२ ॥
मोहोपहतविज्ञानः पापोऽहं दितिजोत्तम। यच्छप्तोऽस्मि दुराचारस्तत्साधु भवता कृतम् ॥ ५३ ॥
राज्यभ्रंशं यशोभ्रंशं सम्प्राप्स्यामीति न त्वहम्। विषण्णोऽस्मि यथा तात तवैवाविनये कृते ॥ ५४ ॥
त्रैलोक्यराज्यमैश्वर्यमन्यद्वा नाति दुर्लभम्। संसारे दुर्लभास्ते तु गुरवो ये भवद्विधाः ॥ ५५ ॥
तत् प्रसीद न मे कोपं कर्तुमर्हसि दैत्यप। त्वत्कोपदृष्ट्या ताताहं परितप्ये न शापतः ॥ ५६ ॥

बलिने कहा—तात ! प्रसन्न हो जाइये। अज्ञानसे मारे हुए मुझपर क्रोध मत कीजिये। मैंने बलके गर्वसे उन्मत्त होकर ऐसी बात कह दी है। दैत्यश्रेष्ठ ! मेरा सारा ज्ञान मोहसे नष्ट हो गया है, मैं पापी और दुराचारी हूँ। अतः आपने जो मुझे यह शाप दिया है, वह अच्छा ही किया है। तात ! मैं राज्यसे च्युत और सम्पत्तिसे रहित हो जाऊँगा—इससे मैं उतना दुःखी नहीं हूँ, जितना आपके साथ अविनयपूर्ण व्यवहार कर मुझे कष्ट हो रहा है। त्रिलोकीका राज्य, ऐश्वर्य अ- अन्य कोई भी वस्तु अत्यन्त दुर्लभ नहीं है, परंतु आ- समान जो गुरुजन हैं, वे विश्वमें अवश्य दुर्लभ हैं। इसी- दैत्योंके पालक ! आप प्रसन्न हो जाइये, मुझपर क्रोध कीजिये। तात ! मैं आपकी क्रोधपूर्ण दृष्टिसे दुःखी रहा हूँ, शापसे नहीं ॥ ५२–५६ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

प्रह्लाद उवाच

वत्स कोपेन मोहो मे जनितस्तेन ते मया। शापो दत्तो विवेकश्च मोहेनापहृतो मम ॥ ५७॥
यदि मोहेन मे ज्ञानं नाक्षिप्तं स्यान्महासुर। तत्कथं सर्वगं जानन् हरिं किंचिच्छपाम्यहम् ॥ ५८॥
योऽयं शापो मया दत्तो भवतोऽसुरपुंगव। भाव्यमेतेन नूनं ते तस्मान्मा त्वं विषीद वै ॥ ५९ ॥
अद्यप्रभृति देवेशे भगवत्यच्युते हरौ। भवेथा भक्तिमानीशे स ते त्राता भविष्यति ॥ ६० ॥
शापं प्राप्याथ मां वीर संस्मरेथाः स्मृतस्त्वया। यथा तथा यतिष्येऽहं श्रेयसा योज्यसे यथा ॥ ६१ ॥
एवमुक्त्वा स दैत्येन्द्रं विरराम महामतिः। अजायत स गोविन्दो भगवान् वामनाकृतिः ॥ ६२ ॥
अवतीर्णे जगन्नाथे तस्मिन् सर्वामरेश्वरे। देवाश्च मुमुचुर्दुःखं देवमाताऽदितिस्तथा ॥ ६३ ॥
ववुर्वाताः सुखस्पर्शा विरजस्कमभून्नभः। धर्मे च सर्वभूतानां तदा मतिरजायत ॥ ६४ ॥
नोद्वेगश्चाप्यभूत् तत्र मनुजेन्द्रासुरेष्वपि। तदादि सर्वभूतानां भूव्योमस्वर्दिवौकसाम् ॥ ६५ ॥
तं जातमात्रं भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः।
जातकर्मादिकं कृत्वा कृष्णं दृष्ट्वा च पार्थिव। तुष्टाव देवदेवेशमृषीणां चैव शृण्वताम् ॥ ६६ ॥

प्रह्लाद बोले—वत्स ! कोपके कारण मुझे मोह उत्पन्न हो गया, जिससे अभिभूत होकर मैंने तुम्हें शाप दे दिया; क्योंकि मोहने मेरे विवेकको नष्ट कर दिया था। महासुर ! यदि मोहके द्वारा मेरा ज्ञान नष्ट न हुआ होता तो भगवान् विष्णुको सर्वव्यापी जानता हुआ मैं शाप क्यों देता ? असुरश्रेष्ठ ! मैंने तुम्हें जो यह शाप दिया है, यह तुम्हारे लिये अवश्य घटित होगा, अतः तुम विषाद मत करो। आजसे जो देवेश्वर, कभी च्युत न होनेवाले और शास्ता हैं, उन भगवान् श्रीहरिके प्रति तुम भक्तिमान् हो जाओ। वे ही तुम्हारे रक्षक होंगे। वीर ! इस शापके घटित होनेपर तुम मेरा स्मरण करना। तुम जैसे स्मरण करोगे, वैसे ही मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा कि जिससे तुम कल्याणके भागी होओगे। दैत्यराज बलिसे ऐसा कहकर महामतिमान् प्रह्लाद चुप हो गये। उधर भगवान् गोविन्द वामनरूपमें प्रकट हुए। सम्पूर्ण देवताओंके स्वामी उन जगन्नाथके अवतरित होनेपर देवगण तथा देवमाता अदिति दुःखसे विमुक्त हो गयीं। उस समय सुख-स्पर्शी वायु बहने लगी, आकाश निर्मल हो गया और सभी प्राणियोंकी बुद्धि धर्ममें संलग्न हो गयी। तभीसे राजाओं और राक्षसोंके तथा पृथ्वी, आकाश और स्वर्गमें निवास करनेवाले सभी जीवोंके मनोंमें उद्वेग नहीं हुआ। राजन् ! भगवान्के उत्पन्न होते ही लोकपितामह भगवान् ब्रह्माने उनका जातकर्म आदि संस्कार किया। तत्पश्चात् उन देवदेवेश्वर श्रीविष्णुका दर्शन कर वे ऋषियोंके सुनते हुए उनकी स्तुति करने लगे ॥ ५७—६६ ॥

ब्रह्मोवाच

जयाद्येश जयाजेय जय सर्वात्मकात्मक। जय जन्मजरापेत जयानन्त जयाच्युत ॥ ६७ ॥
जयाजित जयामेय जयाव्यक्तस्थिते जय। परमार्थार्थ सर्वज्ञ ज्ञानज्ञेयात्मनिःसृत ॥ ६८ ॥
जयाशेषजगत्साक्षिन् जगत्कर्तर्जगद्गुरो । जगतोऽस्यन्तकृद् देव स्थितिं पालयितुं जय ॥ ६९ ॥
जय शेष जयाशेष जयाखिलहृदिस्थित। जयादिमध्यान्त जय सर्वज्ञाननिधे जय ॥ ७० ॥
मुमुक्षुभिरनिर्देश्य स्वयंदृष्ट जयेश्वर। योगिनां मुक्तिफलद दमादिगुणभूषण ॥ ७१ ॥
जयातिसूक्ष्म दुर्ज्ञेय जय स्थूल जगन्मय। जय स्थूलातिसूक्ष्म त्वं जयातीन्द्रिय सेन्द्रिय ॥ ७२ ॥
जय स्वमायायोगस्थ शेषभोगशयाक्षर। जयैकदंष्ट्राप्रान्ताग्रसमुद्धृतवसुंधर ॥ ७३ ॥

ब्रह्मा बोले—आदि परमेश्वर ! आपकी जय हो। अजेय ! आपकी जय हो। सर्वात्मस्वरूप ! आपकी जय हो। आप जन्म एवं वृद्धतासे विमुक्त, अन्तरहित तथा कभी च्युत होनेवाले नहीं हैं, आपकी जय हो, जय हो, जय

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

हो। आप अजित, अमेय और अव्यक्त स्थितिवाले हैं, आपकी जय हो, जय हो, जय हो। आप परमार्थके प्रयोजनस्वरूप, सर्वज्ञ, ज्ञानद्वारा जानने योग्य और अपनी महिमासे प्रकट होनेवाले हैं, आपकी जय हो। आप सम्पूर्ण जगत्के साक्षी, जगत्के कर्ता और जगत्के गुरु हैं, आपकी जय हो। देव! आप जगत्की स्थिति, पालन और अन्त करनेवाले हैं, आपकी जय हो। आप शेषरूप, अशेषरूप तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें स्थित रहनेवाले हैं, आपकी जय हो, जय हो, जय हो। आप जगत्के आदि, मध्य और अन्त हैं, आपकी जय हो। सर्वज्ञाननिधे! आपकी जय हो। आप मोक्षार्थीजनो अज्ञात, स्वयंदृष्ट, ईश्वर, योगियोंको मुक्तिरूप फल प्र करनेवाले और दम आदि गुणोंसे विभूषित हैं, आ जय हो। आप अत्यन्त सूक्ष्म, दुर्ज्ञेय, स्थूल, जग इन्द्रियवान् और अतीन्द्रिय हैं, आपकी बारंबार जय आप अपनी योगमायामें स्थित रहनेवाले, शेषना फणपर शयन करनेवाले और अव्यय हैं, आ जय हो। आप एक दाँतके अग्रभागपर वसु को उठाकर रख लेनेवाले (आदिवराह) हैं, आ जय हो॥ ६७–७३॥

नृकेसरिन् जयारातिवक्षःस्थलविदारण। साम्प्रतं जय विश्वात्मन् जय वामन केशव॥ ७
निजमायापटच्छन्न जगन्मूर्ते जनार्दन। जयाचिन्त्य जयानेकस्वरूपैकविध प्रभो॥ ७
वर्धस्व वर्धिताशेषविकारप्रकृते हरे। त्वय्येषा जगतामीशे संस्थिता धर्मपद्धतिः॥ ७
न त्वामहं न चेशानो नेन्द्राद्यास्त्रिदशा हरे। न ज्ञातुमीशा मुनयः सनकाद्या न योगिनः॥ ७
त्वन्मायापटसंवीतो जगत्यत्र जगत्पते। कस्त्वां वेत्स्यति सर्वेश त्वत्प्रसादं विना नरः॥ ७
त्वमेवाराधितो येन प्रसादसुमुख प्रभो। स एव केवलो देव वेत्ति त्वां नेतरे जनाः॥ ७
नन्दीश्वरेश्वरेशान प्रभो वर्धस्व वामन। प्रभवायास्य विश्वस्य विश्वात्मन् पृथुलोचन॥ ८

शत्रुके वक्षःस्थलको विदीर्ण करनेवाले नृसिंह! आपकी जय हो। विश्वात्मन्! इस समय आप वामन रूपमें प्रकट हैं, आपकी जय हो। केशव! आपकी जय हो। जगन्मूर्ति जनार्दन! आप अपनी मायाके आवरणसे छिपे रहते हैं, आपकी जय हो। प्रभो! आप अचिन्त्य, अनेक स्वरूप धारण करनेवाले और एकरूप हैं, आपकी जय हो। हरे! आप सम्पूर्ण प्रकृतिके विकारोंसे युक्त हैं, आपकी वृद्धि हो। आप परमेश्वरमें जगत्की यह धर्म-मर्यादा स्थित है। हरे! न मैं, न शंकर, न इन्द्रादि देवगण, न सनकादि मुनिगण और न योगीजन आपको जाननेमें समर्थ हैं। जगदीश्वर सर्वेश! जगत्में आपकी मायारूपी वस्त्रसे लिपटा हुआ मनुष्य आपकी कृपाके बिना आपको जान सकता प्रसन्नतासे सुन्दर मुखवाले देव! जिसने आ आराधना की है, केवल वही आपको जानता है, अन्य नहीं। विश्वात्मन्! आप बड़े-बड़े नेत्रोंसे सुशोभित नन्दीश्वरके स्वामी शंकररूप हैं। सामर्थ्यशाली वाम आप इस विश्वकी उन्नतिके लिये वृद्धिको प्राप्त हों॥

शौनक उवाच

एवं स्तुतो हृषीकेशः स तदा वामनाकृतिः। प्रहस्य भावगम्भीरमुवाचाब्जसमुद्भवम्॥ ८
स्तुतोऽहं भवता पूर्वमिन्द्राद्यैः कश्यपेन च। मया च वः प्रतिज्ञातमिन्द्रस्य भुवनत्रयम्॥ ८
भूयश्चाहं स्तुतोऽदित्या तस्याश्चापि प्रतिश्रुतम्। यथा शक्राय दास्यामि त्रैलोक्यं हतकण्टकम्॥ ८
सोऽहं तथा करिष्यामि यथेन्द्रो जगतः पतिः। भविष्यति सहस्राक्षः सत्यमेतद् ब्रवीमि वः॥ ८
ततः कृष्णाजिनं ब्रह्मा हृषीकेशाय दत्तवान्। यज्ञोपवीतं भगवान् ददौ तस्मै बृहस्पतिः॥ ८
आषाढमददाद् दण्डं मरीचिर्ब्रह्मणः सुतः। कमण्डलुं वसिष्ठश्च कौशं वेदमथाङ्गिराः॥ ८

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

अक्षसूत्रं च पुलहः पुलस्त्यः सितवाससी। उपतस्थुश्च तं वेदाः प्रणवस्वरभूषणाः ॥ ८७ ॥
शास्त्राण्यशेषाणि तथा सांख्ययोगोक्तयश्च याः। स वामनो जटी दण्डी छत्री धृतकमण्डलुः ॥ ८८ ॥
सर्वदेवमयो भूप बलेरध्वरमभ्यगात्। यत्र यत्र पदं भूयो भूभागे वामनो ददौ ॥ ८९ ॥
ददाति भूमिर्विवरं तत्र तत्रातिपीडिता।
स वामनो जडगतिर्मृदु गच्छन् सपर्वताम्। साब्धिद्वीपवतीं सर्वां चालयामास मेदिनीम् ॥ ९० ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वामनप्रादुर्भावे वामनोत्पत्तिर्नाम पञ्चचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४५ ॥

शौनकजी बोले—राजन्! ब्रह्माद्वारा इस प्रकार तुति किये जानेपर वामनस्वरूपधारी भगवान् हृषीकेशने स समय हँसकर कमलजन्मा ब्रह्मासे भावोंसे युक्त म्भीर वाणीमें कहा—'ब्रह्मन्! प्राचीनकालमें इन्द्रादि वताओंके साथ कश्यपने तथा आपने मेरी स्तुति ी थी, उस समय मैंने आपलोगोंसे इन्द्रको त्रिभुवन दिलानेकी प्रतिज्ञा की थी। पुनः अदितिने भी मेरी तुति की थी और मैंने उससे भी प्रतिज्ञा की थी कि न्द्रको कण्टकरहित त्रिलोकीका राज्य समर्पित करूँगा। ही मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा, जिससे सहस्राक्ष इन्द्र पुनः गत्के अधिपति होंगे, यह मैं आपलोगोंसे सत्य कह हा हूँ।' तदनन्तर ब्रह्माने हृषीकेशको कृष्णमृगका र्म दिया। भगवान् बृहस्पतिने उन्हें यज्ञोपवीत प्रदान किया। ब्रह्माके पुत्र महर्षि मरीचिने उन्हें पलाश-दण्ड, वसिष्ठने कमण्डलु, अङ्गिराने कुशासन और वेद, पुलहने अक्षसूत्र तथा पुलस्त्यने दो श्वेत वस्त्र समर्पित किये। फिर प्रणवके स्वरोंसे विभूषित वेद, सम्पूर्ण शास्त्र और सांख्ययोगकी उक्तियाँ उनके निकट उपस्थित हुईं। राजन्! तत्पश्चात् सर्वदेवमय भगवान् वामन जटा, दण्ड, छत्र और कमण्डलु धारण करके बलिके यज्ञकी ओर प्रस्थित हुए। उस समय भगवान् वामन पृथ्वीतलपर जहाँ-जहाँ अपने चरणोंको रखते थे, वहाँ-वहाँ अत्यन्त पीडित होनेके कारण पृथ्वीमें दरारें पड़ जाती थीं। इस प्रकार धीरे-धीरे मंद गतिसे चलते हुए भगवान् वामनने पर्वतों, समुद्रों और द्वीपोंसहित समूची पृथ्वीको चलायमान कर दिया ॥ ८१—९० ॥

स प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें वामन-प्रादुर्भाव-प्रसंगमें वामन-जन्म नामक दो सौ पैंतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २४५ ॥

दो सौ छियालीसवाँ अध्याय

बलि-शुक्र-संवाद, वामनका बलिके यज्ञमें पदार्पण, बलिद्वारा उन्हें तीन डग पृथ्वीका दान, वामनद्वारा बलिका बन्धन और वरप्रदान

शौनक उवाच

सपर्वतवनामुर्वीं दृष्ट्वा संक्षोभितां बलिः। पप्रच्छोशनसं शुक्रं प्रणिपत्य कृताञ्जलिः ॥ १ ॥
आचार्य क्षोभमायाता साब्धिभूभृद्वना मही। कस्माच्च नासुरान् भागान् प्रतिगृह्णन्ति वह्नयः ॥ २ ॥
इति पृष्टोऽथ बलिना काव्यो वेदविदां वरः। उवाच दैत्याधिपतिं चिरं ध्यात्वा महामतिः ॥ ३ ॥
अवतीर्णो जगद्योनिः कश्यपस्य गृहे हरिः। वामनेनेह रूपेण जगदात्मा सनातनः ॥ ४ ॥
स एष यज्ञमायाति तव दानवपुंगव।
तत्पादन्यासविक्षोभादियं प्रचलिता मही। कम्पन्ते गिरयश्चामी क्षुभितो मकरालयः ॥ ५ ॥
नैनं भूतपतिं भूमिः समर्था वोढुमीश्वरम्। सदेवासुरगन्धर्वयक्षराक्षसकिंनराः ॥ ६ ॥
अनेनैव धृता भूमिरापोऽग्निः पवनो नभः। धारयत्यखिलान् देवो मन्वादींश्च महासुर ॥ ७ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

इयमेव जगद्धेतोर्माया कृष्णस्य गह्वरी। धार्यधारकभावेन यया सम्पीडितं जगत् ॥
तत्संनिधानादसुरा भागार्हा नासुरोत्तम। भुञ्जते नासुरान् भागानमी तेनैव चाग्नयः ॥

शौनकजीने कहा—पर्वतों और काननोंसहित पृथ्वीको क्षुब्ध हुई देख बलिने शुद्धाचारी शुक्राचार्यको हाथ जोड़कर प्रणाम किया और उनसे पूछा—'आचार्य ! किस कारण समुद्र, पर्वत और वनोंसहित पृथ्वी संक्षुब्ध हो उठी है और यज्ञोंमें अग्नियाँ आसुरी भागोंको नहीं ग्रहण कर रही हैं ?' बलिद्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर वेदज्ञोंमें श्रेष्ठ महाबुद्धिमान् शुक्राचार्य कुछ देरतक ध्यान करके दैत्यराज बलिसे बोले—'दानवश्रेष्ठ ! जगत्के उत्पत्तिस्थान विश्वात्मा अविनाशी श्रीहरि वामनरूपसे कश्यपके गृहमें अवतीर्ण हुए हैं। वही इस समय तुम्हारे यज्ञमें पधार रहे हैं। उन्हींके पैर रखनेसे संक्षुब्ध होकर यह पृथ्वी डगमगा रही है, ये पर्वत काँप रहे हैं और समुद्र क्षुब्ध हो उठा है। देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और कि[न्नरोंसे] भरी हुई पृथ्वी समस्त जीवोंके स्वामी इन [ई]श्वरका वहन करनेमें समर्थ नहीं है। महासुर ! इन्हीं परम[ात्माने] पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन और आकाशको धारण कर रखा है तथा ये ही देवेश्वर सम्पूर्ण मनु आदिको [धारण] करते हैं। जगत्के लिये भगवान् विष्णुकी यही माया है, जिसके द्वारा धार्य-धारकभावसे सारा [जगत्] पीड़ित हो रहा है। असुरोत्तम ! उन्हीं भग[वान्के] समीपस्थ होनेसे असुरगण यज्ञमें अपने भ[ागके] अधिकारी नहीं रह गये। यही कारण है कि अग्नियाँ असुरोंके भागोंको ग्रहण नहीं कर[तीं] हैं ॥ १–९ ॥

बलिरुवाच

धन्योऽहं कृतपुण्यश्च यन्मे यज्ञपतिः स्वयम्। यज्ञमभ्यागतो ब्रह्मन्मत्तः कोऽन्योऽधिकः पुमान् ॥
यं योगिनः सदा युक्ताः परमात्मानमव्ययम्। द्रष्टुमिच्छन्ति देवेशं स मेऽध्वरमुपैष्यति ॥
होता भागप्रदोऽयं च यमुद्गाता च गायति। तमध्वरेश्वरं विष्णुं मत्तः कोऽन्य उपैष्यति ॥
सर्वेश्वरेश्वरे कृष्णे मदध्वरमुपागते। यन्मया काव्य कर्तव्यं तन्ममादेष्टुमर्हसि ॥

बलिने कहा—ब्रह्मन् ! मैं धन्य और पुण्यात्मा हूँ, जो मेरे यज्ञमें साक्षात् भगवान् यज्ञपति उपस्थित हो रहे हैं। अब मुझसे बढ़कर दूसरा कौन पुरुष है ? योगाभ्यासमें लगे हुए योगी जिन अविनाशी देवाधिदेव परमात्माको देखनेकी लालसा करते हैं, वे ही भगवान् मेरे यज्ञमें आ रहे हैं। होता जिन्हें यज्ञभाग प्रदान करते हैं [और] उद्गाता जिनका गान करते हैं, उन यज्ञपति [के] निकट मेरे अतिरिक्त दूसरा कौन जा सकता [है ?] शुक्राचार्यजी ! सर्वेश्वरेश्वर भगवान् विष्णुके मेरे यज्ञमें [आनेपर] मेरा जो कर्तव्य हो, उसका मुझे आदेश दी[जिये] ॥ १०–१३ ॥

शुक्र उवाच

यज्ञभागभुजो देवा वेदप्रामाण्यतोऽसुर। त्वया तु दानवा दैत्या मखभागभुजः कृताः ॥
अयं च देवः सत्त्वस्थः करोति स्थितिपालनम्। विसृष्टेरनु चान्नेन स्वयमत्ति प्रजाः प्रभुः ॥
त्वत्कृते भविता नूनं देवो विष्णुः स्थितौ स्थितः। विदित्वैतन्महाभाग कुरु यत्नमनागतम् ॥
त्वया हि दैत्याधिपते स्वल्पकेऽपि हि वस्तुनि। प्रतिज्ञा न हि वोढव्या वाच्यं साम वृथाफलम् ॥
नालं दातुमहं देव दैत्य वाच्यं त्वया वचः। कृष्णस्य देवभूत्यर्थं प्रवृत्तस्य महासुर ॥

शुक्रने कहा—असुर ! वेदोंके प्रमाणानुसार देवगण ही यज्ञ-भागके अधिकारी हैं, किंतु तुमने तो दैत्यों और दानवोंको यज्ञ-भागका अधिकारी बना दिया है। [illegible] सामर्थ्यशाली भगवान् सत्त्वगुणमें स्थित होकर उत्पत्ति और पालन करते हैं तथा प्रलयकालमें प्र[जाओंको] [illegible] बना लेते हैं। महाभाग ! वे भगवा[न्]

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

तुम्हारे लिये ही भूतलपर अवतीर्ण हुए हैं, अतः इसे महासुर ! देवताओंकी उन्नतिके लिये प्रवृत्त हुए जानकर भविष्यके लिये उपाय करो। दैत्याधिपते ! श्रीविष्णुसे तुम्हें ऐसा वचन कहना चाहिये कि तुम उन्हें थोड़ी-सी भी वस्तु देनेकी प्रतिज्ञा न करना, 'देव ! मैं आपको कुछ भी देनेमें समर्थ नहीं हूँ' झूठ-मूठ ही नम्रतापूर्वक कुछ वचन कहना । ॥ १४–१८ ॥

बलिरुवाच

ब्रह्मन् कथमहं ब्रूयामन्येनापि हि याचितः । नास्तीति किमु देवेन संसाराघौघहारिणा ॥ १९ ॥
व्रतोपवासैर्विविधैः प्रतिसंग्राह्यते हरिः । स चेद् वक्ष्यति देहीति गोविन्दः किमतोऽधिकम् ॥ २० ॥
यदर्थमुपहाराढ्यास्तपःशौचगुणान्वितैः । यज्ञाः क्रियन्ते देवेशः स मां देहीति वक्ष्यति ॥ २१ ॥
तत्साधु सुकृतं कर्म तपः सुचरितं मम । यन्मया दत्तमीशेशः स्वयमादास्यते हरिः ॥ २२ ॥
नास्ति नास्तीत्यहं वक्ष्ये तमभ्यागतमीश्वरम् । यदा वञ्चामि तं प्राप्तं वृथा तज्जन्मनः फलम् ॥ २३ ॥
यज्ञेऽस्मिन् यदि यज्ञेशो याचते मां जनार्दनः । निजमूर्धानमप्यत्र तद् दास्याम्यविचारितम् ॥ २४ ॥
नास्तीति यन्मया नोक्तमन्येषामपि याचताम् । वक्ष्यामि कथमायाते तदनभ्यस्तमच्युते ॥ २५ ॥
श्लाघ्य एव हि वीराणां दानादापत्समागमः । नाबाधकारि यद् दानं तदमङ्गलवत् स्मृतम् ॥ २६ ॥
मद्राज्ये नासुखी कश्चिन्न दरिद्रो न चातुरः । नाभूषितो न चोद्विग्नो न स्रगादिविवर्जितः ॥ २७ ॥
हृष्टस्तुष्टः सुगन्धिश्च तृप्तः सर्वसुखान्वितः । जनः सर्वो महाभाग किमुताहं सदा सुखी ॥ २८ ॥

बलिने कहा—ब्रह्मन् ! साधारण याचकोंके याचना करनेपर मैंने उन्हें कभी नकारात्मक उत्तर नहीं दिया, फिर संसारके पापसमूहोंको दूर करनेवाले परमात्माद्वारा याचना किये जानेपर मैं कैसे कहूँगा कि मेरे पास नहीं है। भला, जो श्रीहरि विविध व्रतों और उपवासोंद्वारा प्राप्त किये जाते हैं, वे गोविन्द यदि ऐसा कहेंगे कि 'दो' तो इससे बढ़कर और क्या बात होगी ? जिनकी प्राप्तिके लिये तप और शौच आदि गुणोंसे युक्त याज्ञिक लोग उपहार-सामग्रियोंसे परिपूर्ण यज्ञोंका अनुष्ठान करते हैं, वे ही देवेश मुझसे 'दो' ऐसी याचना करेंगे। यदि देवाधिदेव श्रीहरि मेरेद्वारा दिये गये दानको स्वयं ग्रहण करेंगे, तब तो मेरे कर्म पुण्यमय हो गये और मेरी तपस्या सफल हो गयी। यदि मैं उन परमेश्वरके आनेपर भी 'नहीं है, नहीं है' ऐसा कहूँ और उन्हें ठगूँ, तब तो मेरे जन्म लेनेका फल ही व्यर्थ है। इसलिये इस यज्ञमें यदि यज्ञेश्वर जनार्दन मुझसे मेरा मस्तक भी माँगेंगे तो मैं उसे बिना हिचकिचाहटके दे डालूँगा। जब मैंने अन्य साधारण याचकोंको 'नहीं है' ऐसा कभी नहीं कहा, तब भला भगवान् अच्युतके आनेपर वह अनभ्यस्त शब्द कैसे कहूँगा ? दान देनेसे आनेवाली विपत्तियाँ वीर पुरुषोंके लिये प्रशंसनीय हैं। जो दान देनेके बाद बाधा नहीं पहुँचाता, वह अमङ्गलके समान कहा गया है। महाभाग ! मेरे राज्यमें कोई भी प्राणी दुःखी, दरिद्र, आतुर, भूषारहित, उद्विग्न और माला आदिसे रहित नहीं है, प्रत्युत सभी लोग हृष्ट, संतुष्ट, सुगन्धित द्रव्योंसे विभूषित, तृप्त और सभी सुखोंसे सम्पन्न हैं। फिर मैं सदा सुखी हूँ, इसके लिये तो कहना ही क्या है ? ॥ १९–२८ ॥

एतद्विशिष्टपात्रोऽयं दानबीजफलं मम । विदितं भृगुशार्दूल मयैतत् त्वत्प्रसादतः ॥ २९ ॥
एतद् विजानतो दानबीजं पतति चेद् गुरो । जनार्दनमहापात्रे किं न प्राप्तं ततो मया ॥ ३० ॥
नष्टो दानमवाप्येभ्यो यदि पुष्णाति देवताः । उपभोगाद् दशगुणं दानं श्लाघ्यतमं मम ॥ ३१ ॥
मत्प्रसादपरो नूनं यज्ञेनाराधितो हरिः । तेनाभ्येति न संदेहो दर्शनादुपकारकृत् ॥ ३२ ॥
अथ कोपेन चाभ्येति देवभागोपरोधिनम् । मां निहन्तुमनाश्चैव वधः श्लाघ्यतरोऽच्युतात् ॥ ३३ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

तन्मयं सर्वमेवेदं नाप्राप्यं यस्य विद्यते। स मां याचितुमभ्येति नानुग्रहमृते हरिः ॥ ३४ ॥
यः सृजत्यात्मभूः सर्वं चेतसैव च संहरेत्। स मां हन्तुं हृषीकेशः कथं यत्नं करिष्यति ॥ ३५ ॥
एतद् विदित्वा न गुरो दानविघ्नकरेण च। त्वया भाव्यं जगन्नाथे गोविन्दे समुपस्थिते ॥ ३६ ॥

भृगुवंशसिंह ! मेरे दानरूपी बीजका ही यह फल है, जो मुझे इस प्रकार दान देनेयोग्य विशिष्ट पात्र प्राप्त होगा। यह मुझे आपकी कृपासे ही ज्ञात हुआ है। अतः गुरो ! यह सब जानते हुए यदि मेरा यह दान-बीज जनार्दनरूपी महापात्रमें पड़ जाय तो फिर मुझे क्या नहीं मिला अर्थात् मुझे सब कुछ प्राप्त हो गया। यदि परमेश्वर मुझसे दान लेकर देवताओंका पालन-पोषण करते हैं तो उनके उपभोगसे मेरा दान दसगुना प्रशंसनीय हो जायगा। इसमें सन्देह नहीं कि यज्ञद्वारा आराधित श्रीहरि मुझपर प्रसन्न हो गये हैं, इसी कारण दर्शन देकर उपकार करनेके लिये यहाँ आ रहे हैं। यदि क्रुद्ध होकर देव-भागको रोकनेवाले मुझको मा[रने] डालनेके विचारसे आ रहे हैं तो भगवान्‌के हाथोंसे मे[रा] वध भी प्रशंसनीय है ! यह सब कुछ उन्हींका स्व[रूप] है। जिनके लिये कुछ भी अप्राप्य नहीं है, [वे] ही श्रीहरि यदि मुझसे माँगनेके लिये आ रहे हैं तो य[ह] उनके अनुग्रहके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। [जो] स्वयम्भू परमात्मा सबकी सृष्टि करते हैं और मन[के] कल्पनासे ही उसका विनाश कर देते हैं, वे हृषीके[श] भला मुझे मारनेके लिये क्यों यत्न करेंगे ? गुरो ! ऐस[ा] जानकर मेरे यज्ञमें जगन्नाथ गोविन्दके उपस्थि[त] होनेपर आपको मेरे दानमें विघ्न नहीं करना चाहिये।

शौनक उवाच

इत्येवं वदतस्तस्य सम्प्राप्तः स जगत्पतिः। सर्वदेवमयोऽचिन्त्यो मायावामनरूपधृक् ॥ ३७ ॥
तं दृष्ट्वा यज्ञवाटान्तःप्रविष्टमसुराः प्रभुम्। जग्मुः सभासदः क्षोभं तेजसा तस्य निष्प्रभाः ॥ ३८ ॥
जेपुश्च मुनयस्तत्र ये समेता महाध्वरे। बलिश्चैवाखिलं जन्म मेने सफलमात्मनः ॥ ३९ ॥
ततः संक्षोभमापन्नो न कश्चित्किंचिदुक्तवान्। प्रत्येकं देवदेवेशं पूजयामास चेतसा ॥ ४० ॥
अथासुरपतिं प्रह्वं दृष्ट्वा मुनिवरांश्च तान्। देवदेवपतिः साक्षी विष्णुर्वामनरूपधृक् ॥ ४१ ॥
तुष्टाव यज्ञवह्निं च यजमानमथर्त्विजः। यज्ञकर्माधिकारस्थान् सदस्यान् द्रव्यसम्पदः ॥ ४२ ॥
ततः प्रसन्नमखिलं वामनं प्रति तत्क्षणात्। यज्ञवाटस्थितं वीरः साधु साध्वित्युदीरयन् ॥ ४३ ॥
स चार्घमादाय बलिः प्रोद्भूतपुलकस्तदा। पूजयामास गोविन्दं प्राह चेदं महासुरः ॥ ४४ ॥

शौनकजी बोले—बलि इस प्रकार कह ही रहे थे कि सर्वदेवमय, अचिन्त्य एवं मायासे वामनरूपधारी जगदीश्वर वहाँ आ पहुँचे। यज्ञशालाके भीतर प्रविष्ट हुए उन प्रभुको देखकर सभी सभासद असुरगण क्षुब्ध हो उठे; क्योंकि वामनके तेजसे वे तेजोहीन हो गये थे। उस महान् यज्ञमें आये हुए मुनिगण जप करने लगे। बलिने अपना समस्त जीवन सफल मान लिया। इसके बाद सभी संक्षुब्ध थे, अतः किसीने भी किसीसे कुछ भी नहीं कहा। सभीने हृदयसे देवदेवेशकी पूजा की। तत्पश्चात् देवाधिदेव वामनरूपधारी साक्षात् विष्णुने विनी[त] बलि और उन मुनिवरोंको देखकर यज्ञाग्नि, यज्ञकर्मा[-] धिकारी सदस्यों और यजमान, पुरोहित, कर्ममें प्रस्तुत द्रव्य[-] सम्पत्तियोंकी प्रशंसा की। तदनन्तर यज्ञशालामें स्थि[त] वामन भगवान्‌को अत्यन्त प्रसन्न देखकर उ[सी] समय सदस्यगण 'साधु-साधु'की ध्वनि करने लगे। उसी समय रोमाञ्चित शरीरवाले महासुर बलि[ने] अर्घ्य लेकर गोविन्दकी पूजा की और इस प्रका[र] कहा ॥ ३७—४४ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

बलिरुवाच

सुवर्णरत्नसंघातं गजाश्वममितं तथा । स्त्रियो वस्त्राण्यलङ्कारांस्तथा ग्रामांश्च पुष्कलान् ॥ ४५ ॥
सर्वस्वं सकलामुर्वीं भवतो वा यदीप्सितम् । तद् ददामि वृणुष्व त्वं येनार्थी वामनः प्रियः ॥ ४६ ॥

बलिने कहा—सुवर्ण एवं रत्नोंके समूह, असंख्य हाथी-घोड़े, स्त्रियाँ, वस्त्र, आभूषण, प्रचुर गाँव, सर्वस्व सम्पत्ति तथा सम्पूर्ण पृथ्वी—इनमेंसे जो आपको अभीष्ट हो अथवा जिसके लिये आप वामनरूपसे आये हैं, उसे आप माँगिये । मैं आपको वह प्रदान करूँगा ॥ ४५-४६ ॥

शौनक उवाच

इत्युक्तो दैत्यपतिना प्रीतिगर्भान्वितं वचः । प्राह सस्मितगम्भीरं भगवान् वामनाकृतिः ॥ ४७ ॥

शौनकजी बोले—दैत्यपति बलिके ऐसा कहनेपर गम्भीररूपसे मुसकराते हुए वामनरूपधारी भगवान् प्रेमभरी वाणीमें बोले ॥ ४७ ॥

वामन उवाच

ममाग्निशरणार्थाय देहि राजन् पदत्रयम् । सुवर्णग्रामरत्नानि तदर्थिभ्यः प्रदीयताम् ॥ ४८ ॥

वामनभगवान्‌ने कहा—राजन् ! अग्निस्थापनके लिये मुझे तीन पग पृथ्वी दीजिये । सुवर्ण, ग्राम, रत्न आदि उनके याचकोंको प्रदान कीजिये ॥ ४८ ॥

बलिरुवाच

त्रिभिः प्रयोजनं किं ते पादैः पदवतां वर । शतं शतसहस्राणां पदानां मार्गतां भवान् ॥ ४९ ॥

बलिने कहा—पदधारियोंमें श्रेष्ठ ! तीन पग पृथ्वीसे आपका क्या काम चलेगा ? आप सौ अथवा लाख पदोंके लिये याचना कीजिये ॥ ४९ ॥

वामन उवाच

धर्मबुद्ध्या दैत्यपते कृतकृत्योऽस्मि तावता । अन्येषामर्थिनां वित्तमीहितं दास्यते भवान् ॥ ५० ॥

वामनभगवान्‌ने कहा—दैत्यपते ! मैं धर्मबुद्धिसे उतनेसे ही कृतार्थ हूँ । आप अन्य याचकोंको उनका अभीष्ट धन प्रदान कीजिये ॥ ५० ॥

शौनक उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु गदितं वामनस्य महात्मनः । ददौ तस्मै महाबाहुर्वामनाय पदत्रयम् ॥ ५१ ॥
पाणौ तु पतिते तोये वामनोऽभूदवामनः । सर्वदेवमयं रूपं दर्शयामास तत्क्षणात् ॥ ५२ ॥
चन्द्रसूर्यौ च नयने द्यौर्मूर्धा चरणौ क्षितिः । पादाङ्गुल्यः पिशाचास्तु हस्ताङ्गुल्यश्च गुह्यकाः ॥ ५३ ॥
विश्वेदेवाश्च जानुस्था जङ्घे साध्याः सुरोत्तमाः । यक्षा नखेषु सम्भूता रेखाश्चाप्सरसस्तथा ॥ ५४ ॥
दृष्टौ ऋक्षाण्यशेषाणि केशाः सूर्यांशवः प्रभोः । तारका रोमकूपाणि रोमाणि च महर्षयः ॥ ५५ ॥
बाहवो विदिशस्तस्य दिशः श्रोत्रे महात्मनः । अश्विनौ श्रवणे तस्य नासा वायुर्महात्मनः ॥ ५६ ॥
प्रसादश्चन्द्रमा देवो मनो धर्मः समाश्रितः । सत्यं तस्याभवद् वाणी जिह्वा देवी सरस्वती ॥ ५७ ॥
ग्रीवादितिर्देवमाता विद्यास्तद्वलयस्तथा । स्वर्गद्वारमभून्मेढ्रं त्वष्टा पूषा च वै भ्रुवौ ॥ ५८ ॥
मुखं वैश्वानरश्चास्य वृषणौ तु प्रजापतिः । हृदयं च परं ब्रह्म पुंस्त्वं वै कश्यपो मुनिः ॥ ५९ ॥
पृष्ठेऽस्य वसवो देवा मरुतः सर्वसंधिषु । सर्वसूक्तानि दशना ज्योतींषि विमलप्रभाः ॥ ६० ॥

शौनकजी बोले—महात्मा वामनकी ऐसी बातें सुनकर महाबाहु बलिने उन वामनको तीन पग भूमि देनेका संकल्प कर लिया । हाथमें संकल्पका जल गिरते ही वामन अवामन हो गये और उन्होंने उसी क्षण अपना सर्वदेवमय

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

रूप प्रकट कर दिया। चन्द्र-सूर्य उनके नेत्र, आकाश मस्तक, पृथ्वी दोनों चरण, पिशाचगण पैरोंकी अंगुलियाँ, गुह्यक हाथोंकी अंगुलियाँ, विश्वेदेव घुटने, सुरश्रेष्ठ साध्यगण जंघे थे। नखोंमें यक्ष, रेखाओंमें अप्सराएँ, नेत्रज्योतिमें नक्षत्रगण थे। सूर्यकिरणें केश, ताराएँ रोमकूप, महर्षिगण रोमावलि थे। उन महात्माकी भुजाओंमें दिशाओंके कोण और श्रोत्रोंमें दिशाएँ थीं। श्रवणेन्द्रियमें अश्विनीकुमार और नासिकामें वायुका निवास था। प्रसन्नतामें चन्द्रदेव और मनमें धर्म स्थित थे। सत्य उनकी वाणी और सरस्वती देवी जिह्वा हुईं। देवमाता अदिति ग्रीवा, विद्याएँ वलय, स्वर्गद्वार मैत्री, त्वष्टा और पूषा दोनों भौंह थे। वैश्वानर उनके मुख, प्रजापति अण्डकोष, परब्रह्म हृदय और कश्यप मुनि पुंस्त्व थे। उनके पीठ-भागमें वसुगण और संधिभागोंमें मरुद्गण थे। सभी सूक्त दाँत और निर्मल कान्ति ज्योतिर्गण थे ॥ ५१—६० ॥

वक्षःस्थले महादेवो धैर्ये चास्य महार्णवाः। उदरे चास्य गन्धर्वाः सम्भूताश्च महाबलाः ॥ ६१ ॥
लक्ष्मीर्मेधा धृतिः कान्तिः सर्वविद्याश्च वै कटिः। सर्वज्योतींषि जानीहि तस्य तत्परमं महः ॥ ६२ ॥
तस्य देवाधिदेवस्य तेजः प्रोद्भूतमुत्तमम्। स्तनौ कुक्षी च वेदाश्च उदरं च महामखाः ॥ ६३ ॥
इष्टयः पशुबन्धाश्च द्विजानां चेष्टितानि च। तस्य देवमयं रूपं दृष्ट्वा विष्णोर्महाबलाः ॥ ६४ ॥
उपासर्पन्त दैत्येन्द्राः पतङ्गा इव पावकम्। प्रमथ्य सर्वानसुरान् पादहस्ततलैर्विभुः ॥ ६५ ॥
कृत्वा रूपं महाकायं जहाराशु स मेदिनीम्। तस्य विक्रमतो भूमिं चन्द्रादित्यौ स्तनान्तरे ॥ ६६ ॥
नाभौ विक्रममाणस्य सक्थिदेशस्थितावुभौ। परं विक्रमतस्तस्य जानुमूले प्रभाकरौ ॥ ६७ ॥
विष्णोरास्तां महीपाल देवपालनकर्मणि। जित्वा लोकत्रयं कृत्स्नं हत्वा चासुरपुंगवान् ॥ ६८ ॥
पुरंदराय त्रैलोक्यं ददौ विष्णुरुरुक्रमः। सुतलं नाम पातालमधस्ताद् वसुधातलात् ॥ ६९ ॥
बलेर्दत्तं भगवता विष्णुना प्रभविष्णुना। अथ दैत्येश्वरं प्राह विष्णुः सर्वेश्वरेश्वरः ॥ ७० ॥

उनके वक्षःस्थलमें महादेव और धैर्यमें महासागर थे। उनके उदरमें महाबली गन्धर्व उत्पन्न हुए थे। लक्ष्मी, मेधा, धृति, कान्ति और सभी विद्याएँ उनके कटिप्रदेशमें थीं। सभी ज्योतियोंको उनका परम तेज जानना चाहिये। वहाँ उन देवाधिदेवका अनुपम तेज भासमान हो रहा था। उनके स्तनों और कुक्षियोंमें वेदोंका निवास था तथा उदरमें महायज्ञ, इष्टियाँ, पशुओंके बलिदान और ब्राह्मणोंकी चेष्टाएँ थीं। उन विष्णुके देवमय स्वरूपको देखकर महाबली दैत्यगण अग्निमें पतंगोंकी भाँति उनपर टूट पड़े। तब सर्वव्यापी परमात्माने उन सभी असुरोंको पैरों तथा हाथोंके चपेटसे मसल डाला और शीघ्र ही विशालकाय स्वरूप धारणकर सारी पृथ्वीको अपने वशमें कर लिया। भूलोकको नापते समय चन्द्रमा और सूर्य भगवान्‌के स्तनोंके मध्यभागमें थे, अन्तरिक्षलोक नापते समय वे दोनों नाभिप्रदेशमें और उससे ऊपर जाते समय सक्थि भागमें आ गये। उससे भी ऊपर जाते समय वे दोनों प्रकाश फैलानेवाले चन्द्रमा और सूर्य भगवान् विष्णुके घुटनोंके मूल भागमें स्थित हो गये। महीपाल! इस प्रकार लम्बे डगवाले भगवान् विष्णुने देवहितके लिये समूची त्रिलोकीको जीतकर और असुरश्रेष्ठोंका संहार कर तीनों लोकोंका राज्य इन्द्रको सौंप दिया। साथ ही प्रभावशाली भगवान् विष्णुने भूमितलके नीचे सुतल नामक पाताललोकका राज्य बलिको दे दिया। उस समय सर्वेश्वरेश्वर भगवान् विष्णुने दैत्यराज बलिसे इस प्रकार कहा ॥ ६१—७० ॥

श्रीभगवानुवाच

यत् त्वया सलिलं दत्तं गृहीतं पाणिना मया। कल्पप्रमाणं तस्मात् ते भविष्यत्यायुरुत्तमम् ॥ ७१ ॥
वैवस्वते तथातीते बले मन्वन्तरे पुनः। सावर्णिके तु सम्प्राप्ते भवानिन्द्रो भविष्यति ॥ ७२ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

साम्प्रतं देवराजाय त्रैलोक्यं सकलं मया । दत्तं चतुर्युगाणां च साधिका ह्येकसप्ततिः ॥ ७३ ॥
नियन्तव्या मया सर्वे ये तस्य परिपन्थिनः । तेनाहं परया भक्त्या पूर्वमाराधितो बले ॥ ७४ ॥
सुतलं नाम पातालं त्वमासाद्य मनोरमम् । वसासुर ममादेशं यथावत् परिपालयन् ॥ ७५ ॥
तत्र दिव्यवनोपेते प्रासादशतसंकुले । प्रोत्फुल्लपद्मसरसि स्रवच्छुद्धसरिद्वरे ॥ ७६ ॥
सुगन्धिधूपस्रग्वस्त्रवराभरणभूषितः । स्रक्चन्दनादिमुदितो गेयनृत्यमनोरमे ॥ ७७ ॥
पानान्नभोगान् विविधानुपभुञ्जन् महासुर । ममाज्ञया कालमिमं तिष्ठ स्त्रीशतसंवृतः ॥ ७८ ॥
यावत् सुरैश्च विप्रैश्च न विरोधं करिष्यसि । तावदेतान् महाभोगानवाप्स्यसि महासुर ॥ ७९ ॥
यदा च देवविप्राणां विरोधं त्वं करिष्यसि । बन्धिष्यन्ति तदा पाशा वारुणास्त्वामसंशयम् ॥ ८० ॥
एतद् विदित्वा भवता मयाऽऽज्ञप्तमशेषतः । न विरोधः सुरैः कार्यो विप्रैर्वा दैत्यसत्तम ॥ ८१ ॥

श्रीभगवान् बोले—दैत्यराज बले ! जो तुमने मुझे जलका दान दिया है और मैंने उसे हाथमें ग्रहणकर लिया है, उसके फलस्वरूप तुम एक कल्पतक दीर्घजीवन प्राप्त करोगे और इस वैवस्वत मन्वन्तरके व्यतीत हो जानेपर सावर्णिक मन्वन्तरके आनेपर तुम इन्द्र होओगे । इस समय मैंने एकहत्तर चतुर्युगीतकके लिये त्रिलोकीका सम्पूर्ण राज्य देवराज इन्द्रको दे दिया है । साथ ही इन्द्रके जितने शत्रु होंगे, उन सबका भी मुझे नियन्त्रण करना है; क्योंकि इन्द्रने पूर्वकालमें परम भक्तिपूर्वक मेरी आराधना की है । असुर ! तुम सुतल नामक मनोहर पाताललोकमें जाकर मेरे आदेशका ठीक-ठीक पालन करते हुए निवास करो । महासुर ! जो दिव्य वनोंसे युक्त एवं सैकड़ों महलोंसे समन्वित है, जिसके सरोवरोंमें कमल खिले हुए हैं, जहाँ शुद्ध एवं श्रेष्ठ नदियाँ बह रही हैं, जो नाच-गानसे मनको लुभानेवाला है, उस सुतललोकमें तुम सुगन्धित धूप, माला, वस्त्र और उत्तम आभूषणोंसे विभूषित तथा माला और चन्दनादिसे हर्षित होकर विविध प्रकारके अन्न-पान आदिका उपभोग करो और मेरी आज्ञासे सैकड़ों स्त्रियोंके साथ उतने समयतक निवास करो । महासुर ! जबतक तुम देवताओं और ब्राह्मणोंसे विरोध नहीं करोगे, तबतक तुम इन सभी महाभोगोंको प्राप्त करते रहोगे । जब तुम देवताओं तथा ब्राह्मणोंका विरोध करोगे, तब तुम्हें वरुणके पाश बाँध लेंगे—इसमें संदेह नहीं है । दैत्यश्रेष्ठ ! ऐसा जानकर तुम मेरी आज्ञाओंका पूर्णरूपसे पालन करो ! तुम्हें देवताओं अथवा ब्राह्मणोंके साथ विरोध नहीं करना चाहिये ॥ ७१–८१ ॥

शौनक उवाच

इत्येवमुक्तो देवेन विष्णुना प्रभविष्णुना । बलिः प्राह महाराज प्रणिपत्य मुदा युतः ॥ ८२ ॥

शौनकजी बोले—महाराज ! प्रभावशाली भगवान् विष्णुके द्वारा ऐसा कहे जानेपर बलि प्रमुदित हो प्रणाम करके बोला ॥ ८२ ॥

बलिरुवाच

तत्रासतो मे पाताले भगवन् भवदाज्ञया । किं भविष्यत्युपादानमुपभोगोपपादकम् ॥ ८३ ॥

बलिने पूछा—भगवन् ! आपके आदेशसे उस पाताललोकमें निवास करते समय मेरे सुखभोगोंको प्राप्त करानेवाले कौन-से उपादानकारण लिये होंगे ? ॥ ८३ ॥

श्रीभगवानुवाच

दानान्यविधिदत्तानि श्राद्धान्यश्रोत्रियाणि च । हुतान्यश्रद्धया यानि तानि दास्यन्ति ते फलम् ॥ ८४ ॥
अदक्षिणास्तथा यज्ञाः क्रियाश्चाविधिना कृताः । फलानि तव दास्यन्ति अधीतान्यव्रतानि च ॥ ८५ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

श्रीभगवान्‌ने कहा—जो विधानसे रहित किये गये दान, बिना श्रोत्रिय ब्राह्मणके किये गये श्राद्ध और श्रद्धा-रहित किये हुए हवन हैं, ये सब तुम्हें अपना फल प्रदान करेंगे। दक्षिणाहीन यज्ञ, बिना विधिके की हुई क्रियाएँ और ब्रह्मचर्य-व्रतसे रहित अध्ययन—ये सभी तुम्हें अपना फल देंगे ॥ ८४-८५ ॥

शौनक उवाच

बलेर्वरमिमं दत्त्वा शक्राय त्रिदिवं तथा। व्यापिना तेन रूपेण जगामादर्शनं हरिः ॥ ८६ ॥
प्रशशास यथापूर्वमिन्द्रस्त्रैलोक्यपूजितः। सिषेवे च परान् कामान् बलिः पातालसंस्थितः ॥ ८७ ॥
इहैव देवदेवेन बद्धोऽसौ दानवोत्तमः। देवानां कार्यकरणे भूयोऽपि जगति स्थितः ॥ ८८ ॥
सम्बन्धी ते महाभाग द्वारकायां व्यवस्थितः। दानवानां विनाशाय भारावतरणाय च ॥ ८९ ॥
यतो यदुकुले कृष्णो भवतः शत्रुनिग्रहे। सहायभूतः सारथ्यं करिष्यति बलानुजः ॥ ९० ॥
एतत् सर्वं समाख्यातं वामनस्य च धीमतः। अवतारं महावीर श्रोतुमिच्छोस्तवार्जुन ॥ ९१ ॥

शौनकजीने कहा—बलिको यह वरदान तथा इन्द्रको स्वर्गका राज्य देकर भगवान् विष्णु अपने उस सर्वव्यापक रूपके साथ अदृश्य हो गये। तत्पश्चात् इन्द्र तीनों लोकोंमें पूजित होकर पूर्ववत् शासन करने लगे तथा बलि पातालमें स्थित होकर उत्तम मनोरथोंका सेवन करने लगे। महाभाग! वह दानवराज बलि भगवान् विष्णुद्वारा यहीं बाँधा गया था। वे भगवान् देवताओंका कार्य करनेके लिये फिर इस पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं, जो दानवोंका विनाश तथा पृथ्वीका भार हरण करनेके लिये कृष्णरूपसे यदुकुलमें उत्पन्न होकर विराजमान हैं। वे तुम्हारे सम्बन्धी हैं। बलरामके छोटे भाई वे श्रीकृष्ण तुम्हारे शत्रुओंके निग्रहके समय सारथिरूपसे तुम्हारी सहायता करेंगे। महावीर अर्जुन! बुद्धिमान् वामनके अवतारकी यह सारी कथा मैंने तुमसे वर्णन कर दी, जिसे तुम सुनना चाहते थे ॥ ८६-९१ ॥

अर्जुन उवाच

श्रुतवानिह ते पृष्टं माहात्म्यं केशवस्य च। गङ्गाद्वारमितो यास्याम्यनुज्ञां देहि मे विभो ॥ ९२ ॥

अर्जुन बोले—विभो! भगवान् विष्णुके माहात्म्यको, जिसे मैंने पूछा था, उसे मैं आपके मुखसे सुन चुका। अब मैं यहाँसे गङ्गाद्वार (हरिद्वार) जाना चाहता हूँ, इसके लिये आप मुझे आज्ञा प्रदान कीजिये ॥ ९२ ॥

सूत उवाच

एवमुक्त्वा ययौ पार्थो नैमिषं शौनको गतः।
इत्येतद् देवदेवस्य विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम्। वामनस्य पठेद् यस्तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ९३ ॥
बलिप्रह्लादसंवादं मन्त्रितं बलिशुक्रयोः। बलेर्विष्णोश्च कथितं यः स्मरिष्यति मानवः ॥ ९४ ॥
नाधयो व्याधयस्तस्य न च मोहाकुलं मनः। भविष्यति द्विजश्रेष्ठाः पुंसस्तस्य कदाचन ॥ ९५ ॥
च्युतराज्यो निजं राज्यमिष्टाप्तिं च वियोगवान्। अवाप्नोति महाभागो नरः श्रुत्वा कथामिमाम् ॥ ९६ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वामनप्रादुर्भावो नाम षट्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४६ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! ऐसा कहकर अर्जुन गङ्गाद्वारको चले गये और महर्षि शौनक नैमिषारण्यकी ओर प्रस्थित हुए। इस प्रकार जो देवाधिदेव भगवान् वामनके इस उत्तम माहात्म्यका पाठ करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। द्विजवरो! जो मनुष्य बलि और प्रह्लादके संवाद, बलि और शुक्रकी मन्त्रणा तथा बलि और विष्णुके कथोपकथनका स्मरण करेगा, उस पुरुषको कभी भी न तो किसी प्रकारकी आधि-

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

व्याधि प्राप्त होगी और न उसका मन मोहसे व्याकुल होगा । जो महान् भाग्यशाली मनुष्य इस कथाको सुनता है, वह राज्यच्युत हो तो अपने राज्यको और वियोगी हो तो अपने इष्टको प्राप्त कर लेता है ॥९३—९६॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें वामनप्रादुर्भाव नामक दो सौ छियालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २४६ ॥

दो सौ सैंतालीसवाँ अध्याय

अर्जुनके वाराहावतारविषयक प्रश्न करनेपर शौनकजीद्वारा भगवत्स्वरूपका वर्णन

अर्जुन उवाच

प्रादुर्भावान् पुराणेषु विष्णोरमिततेजसः । सतां कथयतां विप्र वाराह इति नः श्रुतम् ॥ १ ॥
जाने न तस्य चरितं न विधिं न च विस्तरम् । न कर्म गुणसंख्यानं न चाप्यन्तं मनीषिणः ॥ २ ॥
किमात्मको वराहोऽसौ किंमूर्तिः कास्य देवता । किंप्रमाणः किंप्रभावः किं वा तेन पुरा कृतम् ॥ ३ ॥
एतन्मे शंस तत्त्वेन वाराहं श्रुतिविस्तरम् । यथार्हं च समेतानां द्विजातीनां विशेषतः ॥ ४ ॥

अर्जुनने पूछा—विप्रवर ! पुराणोंमें संतोंद्वारा अपरिमित तेजस्वी भगवान् विष्णुके अवतारोंके वर्णनमें हमने वाराह-अवतारकी बात सुनी है, किंतु मैं उन बुद्धिमान् भगवान्‌के चरित्र, विस्तार, कर्म, गुण और आराधना-विधिको नहीं जानता । वे वाराह भगवान् किस प्रकारके हैं ? उनका स्वरूप कैसा है ? उनकी देवशक्ति कैसी है ? उनका क्या प्रमाण और कितना प्रभाव है ? प्राचीन-कालमें उन्होंने क्या कार्य किये हैं ? इसलिये पुराणोंमें कही हुई वाराह-अवतारकी ये सारी बातें मुझे तथा विशेषकर यहाँ आये हुए इन ब्राह्मणोंको तत्त्वपूर्वक बतलाइये ॥१—४॥

शौनक उवाच

एतत् ते कथयिष्यामि पुराणं ब्रह्मसम्मितम् । महावराहचरितं कृष्णस्याद्भुतकर्मणः ॥ ५ ॥
यथा नारायणो राजन् वाराहं वपुरास्थितः । दंष्ट्रया गां समुद्रस्थामुज्जहारारिमर्दनः ॥ ६ ॥
छन्दोगीभिरुदाराभिः श्रुतिभिः समलंकृतः । मनःप्रसन्नतां कृत्वा निबोध विजयाधुना ॥ ७ ॥
इदं पुराणं परमं पुण्यं वेदैश्च सम्मितम् । नानाश्रुतिसमायुक्तं नास्तिकाय न कीर्तयेत् ॥ ८ ॥
पुराणं वेदमखिलं सांख्यं योगं च वेद यः । कार्त्स्न्येन विधिना प्रोक्तं सौख्याय वेदयिष्यति॥ ९ ॥
विश्वेदेवास्तथा साध्या रुद्रादित्यास्तथाश्विनौ । प्रजानां पतयश्चैव सप्त चैव महर्षयः ॥१०॥
मनःसंकल्पजाश्चैव पूर्वजा ऋषयस्तथा । वसवो मरुतश्चैव गन्धर्वा यक्षराक्षसाः ॥११॥
दैत्याः पिशाचा नागाश्च भूतानि विविधानि च । ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा म्लेच्छाश्च ये भुवि ॥१२॥
चतुष्पदानि सर्वाणि तिर्यग्योनिशतानि च । जङ्गमानि च सत्त्वानि यच्चान्यज्जीवसंज्ञितम् ॥१३॥
पूर्णे युगसहस्रे तु ब्राह्मेऽहनि तथागते । निर्वाणे सर्वभूतानां सर्वोत्पातसमुद्भवे ॥१४॥
हिरण्यरेतास्त्रिशिखस्ततो भूत्वा वृषाकपिः । शिखाभिर्विधमँल्लोकानशोषयत वह्निना ॥१५॥

शौनकजी बोले—अर्जुन ! मैं तुमसे अद्भुतकर्मा भगवान् श्रीकृष्णके महावाराह-अवतारके चरित्रको, जो पुराणोंमें वर्णित तथा ब्रह्मसम्मित है, कह रहा हूँ । राजन् ! जिस प्रकार शत्रुसंहारक भगवान् विष्णुने वराह-रूप धारणकर समुद्र-स्थित पृथ्वीका दाढ़ोंपर रखकर उद्धार किया था तथा जिस प्रकार उदार श्रुतियोंने वैदिक वाणीद्वारा उनका अभिनन्दन किया था, यह सब इस समय मनको प्रसन्न करके सुनो ।

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

अर्जुन ! यह पुराण परम पुण्यमय, वेदोंद्वारा अनुमोदित तथा अनेकों श्रुतियोंसे सम्पन्न है, इसे नास्तिक व्यक्तिसे नहीं कहना चाहिये। जो सभी पुराणों, वेदों, सांख्य और योगको पूरी विधिके साथ जानता है, उसीसे इसकी कथा कहनी चाहिये; क्योंकि वही इसके अर्थको जान सकेगा। विश्वेदेवगण, साध्यगण, रुद्रगण, आदित्यगण, अश्विनीकुमार, प्रजापतिगण, सातों महर्षि, ब्रह्माके मानसिक संकल्पसे सर्वप्रथम उत्पन्न हुए सनकादि ब्रह्मर्षि, वसुगण, मरुद्गण, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, दैत्य, पिशाच, नाग, विविध प्रकारके जीव, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, म्लेच्छ आदि जितनी जातियाँ पृथ्वीपर हैं, सभी चौपाये, सैकड़ों तिर्यग्योनियाँ, जङ्गम प्राणी तथा अन्य जो जीव नामधारी हैं—इन सभीको एक हजार युग बीतनेके पश्चात् ब्रह्माका दिन आनेपर जब सभी प्रकारके उत्पात होने लगते हैं और सभी प्राणियोंका विनाश हो जाता है, तब हिरण्यरेता भगवान् जो वृषाकपि नामसे विख्यात हैं, तीन अग्निशिखाओंसे युक्त होकर अपनी उग्र ज्वालाओंद्वारा सभी लोकोंका विनाश करते हुए अग्निके प्रभावसे दग्ध कर देते हैं ॥ ५–१५ ॥

दह्यमानास्ततस्तस्य तेजोराशिभिरुद्गतैः। विवर्णवर्णा दग्धाङ्गा हतार्चिष्मद्भिराननैः ॥ १६ ॥
साङ्गोपनिषदो वेदा इतिहासपुरोगमाः। सर्वविद्याः क्रियाश्चैव सर्वधर्मपरायणाः ॥ १७ ॥
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा प्रभवं विश्वतोमुखम्। सर्वदेवगणाश्चैव त्रयस्त्रिंशत् तु कोटयः ॥ १८ ॥
तस्मिन्नहनि सम्प्राप्ते तं हंसं महदक्षरम्। प्रविशन्ति महात्मानं हरिं नारायणं प्रभुम् ॥ १९ ॥
तेषां भूयः प्रवृत्तानां निधनोत्पत्तिरुच्यते। यथा सूर्यस्य सततमुदयास्तमने इह ॥ २० ॥
पूर्णे युगसहस्रान्ते कल्पो निःशेष उच्यते। यस्मिन् जीवकृतं सर्वं निःशेषं समतिष्ठत ॥ २१ ॥
संहृत्य लोकानखिलान् सदेवासुरमानुषान्। कृत्वा सुसंस्थां भगवानास्त एको जगद्गुरुः ॥ २२ ॥
स स्रष्टा सर्वभूतानां कल्पान्तेषु पुनः पुनः। अव्ययः शाश्वतो देवो यस्य सर्वमिदं जगत् ॥ २३ ॥
नष्टार्ककिरणे लोके चन्द्रग्रहविवर्जिते। त्यक्तधूमाग्निपवने क्षीणयज्ञवषट्क्रिये ॥ २४ ॥
अपक्षिगणसम्पाते सर्वप्राणिहरे पथि। अमर्यादाऽऽकुले रौद्रे सर्वतस्तमसावृते ॥ २५ ॥
अदृश्ये सर्वलोकेऽस्मिन्नभावे सर्वकर्मणाम्। प्रशान्ते सर्वसम्पाते नष्टे वैरपरिग्रहे ॥ २६ ॥
गते स्वभावसंस्थाने लोके नारायणात्मके। परमेष्ठी हृषीकेशः शयनायोपचक्रमे ॥ २७ ॥

उस दिनके प्राप्त होनेपर निकलती हुई तेजोराशिसे जिनके शरीर जल गये थे तथा झुलसे हुए मुखोंसे जिनका रंग बदल गया था, वे छहों अङ्गोंसहित वेद, उपनिषद्, इतिहास, सभी विद्याएँ, सम्पूर्ण धार्मिक क्रियाएँ और तैंतीस करोड़ सभी देवगण सम्पूर्ण विश्वके उत्पत्ति-स्थानरूप ब्रह्माको आगे करके हंसस्वरूप उन भगवान् विष्णुमें, जो सर्वोत्कृष्ट, अविनाशी, महान् आत्मबलसे सम्पन्न और जलशायी हैं, प्रविष्ट हो जाते हैं। उनका पुनः प्रकट होना उसी प्रकार जन्म-मृत्यु कहा जाता है, जैसे इस लोकमें सूर्यका निरन्तर उदय और अस्त होता रहता है। एक हजार युग पूर्ण होनेपर कल्पकी समाप्ति कही जाती है, जिसमें सभी जीवोंके कार्य भी समाप्त हो जाते हैं। उस समय अकेले जगद्गुरु भगवान् विष्णु देवता, असुर और मानवसहित सभी लोकोंका संहार कर और उन्हें अपनेमें समाविष्ट कर विद्यमान रहते हैं। यह सारा जगत् जिनका अंशरूप है, वे सनातन अविनाशी भगवान् प्रत्येक कल्पकी समाप्तिपर बारंबार सभी जीवोंकी सृष्टि करते हैं। जब लोकमें सूर्यकी किरणें नष्ट हो जाती हैं, चन्द्रमा और ग्रह लुप्त हो जाते हैं, धूम, अग्नि और पवन दूर हो जाते हैं, यज्ञोंमें वषट्कारकी ध्वनि अस्त हो जाती है, पक्षिगणोंका उड़ना बंद हो जाता है, मार्गमें सभी प्राणियोंका अपहरण होने लगता है, भीषणता मर्यादाकी सीमाके बाहर पहुँच जाती है,

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

चारों ओर निविड़ अन्धकार छा जाता है, सारा लोक अदृश्य हो जाता है, सभी कर्मोंका अभाव हो जाता है, सारी उत्पत्ति प्रशान्त हो जाती है, वैरभाव नष्ट हो जाता है और सब कुछ नारायणरूपी लोकमें विलीन हो जाता है, उस समय इन्द्रियोंके स्वामी परमेष्ठी शयनके लिये उद्यत होते हैं ॥ १६–२७ ॥

पीतवासा लोहिताक्षः कृष्णो जीमूतसंनिभः । शिखासहस्रविकचजटाभारं समुद्वहन् ॥ २८ ॥
श्रीवत्सलक्षणधरं रक्तचन्दनभूषितम् । वक्षो बिभ्रन्महाबाहुः सविद्युदिव तोयदः ॥ २९ ॥
पुण्डरीकसहस्रेण स्रगस्य शुशुभे शुभा । पत्नी चास्य स्वयं लक्ष्मीर्देहमावृत्य तिष्ठति ॥ ३० ॥
ततः स्वपिति शान्तात्मा सर्वलोकशुभावहः । किमप्यमितयोगात्मा निद्रायोगमुपागतः ॥ ३१ ॥
ततो युगसहस्रे तु पूर्णे स पुरुषोत्तमः । स्वयमेव विभुर्भूत्वा बुध्यते विबुधाधिपः ॥ ३२ ॥
ततश्चिन्तयते भूयः सृष्टिं लोकस्य लोककृत् । नरान् देवगणांश्चैव पारमेष्ठ्येन कर्मणा ॥ ३३ ॥
ततः संचिन्तयन् कार्यं देवेषु समितिंजयः । सम्भवं सर्वलोकस्य विदधाति सतां गतिः ॥ ३४ ॥
कर्ता चैव विकर्ता च संहर्ता वै प्रजापतिः । नारायणः परं सत्यं नारायणः परं पदम् ॥ ३५ ॥
नारायणः परो यज्ञो नारायणः परा गतिः । स स्वयम्भूरिति ज्ञेयः स स्रष्टा भुवनाधिपः॥ ३६ ॥
स सर्वमिति विज्ञेयो ह्येष यज्ञः प्रजापतिः । यद् वेदितव्यस्त्रिदशैस्तदेष परिकीर्त्यते ॥ ३७ ॥

उस समय महाबाहु भगवान् पीताम्बरधारी, लाल नेत्रोंसे युक्त, काले मेघकी-सी कान्तिसे सम्पन्न, हजारों शिखाओंसे युक्त जटाभारको वहन करनेवाले, श्रीवत्सके चिह्नसे सुशोभित एवं लाल चन्दनसे विभूषित वक्षःस्थलको धारण करते हुए बिजलीसहित मेघकी भाँति शोभायमान होते हैं । हजारों कमल-पुष्पोंकी बनी हुई सुन्दर माला उनकी शोभा बढ़ाती है । उनकी पत्नी स्वयं लक्ष्मी उनके शरीरको आच्छादित करके विद्यमान रहती हैं । तत्पश्चात् शान्तात्मा, सभी लोकोंके कल्याणकारी और परम योगी भगवान् कुछ योगनिद्राका आश्रय लेकर शयन करते हैं । फिर एक हजार युग व्यतीत होनेपर देवेश्वर भगवान् पुरुषोत्तम सर्वव्यापी होकर अपने-आप ही जागते हैं । तदनन्तर लोककर्ता भगवान् ब्रह्माके कर्मद्वारा मनुष्यों और देवताओंकी सृष्टिके विषयमें पुनः विचार करते हैं । तत्पश्चात् सत्पुरुषोंके आश्रयरूप एवं रणविजयी भगवान् देवताओंके विषयमें कार्यकी चिन्तना करते हुए सारे लोककी सृष्टि करते हैं । वे ही परमात्मा इस समस्त सृष्टिके कर्ता, विकर्ता, संहर्ता और प्रजापति हैं । नारायण ही परम सत्य, नारायण ही परम पद, नारायण ही परम यज्ञ और नारायण ही परमगति हैं । उन्हें ही स्वयम्भू, सभी भुवनोंका अधीश्वर और स्रष्टा जानना चाहिये । उन्हींको सर्वरूप समझना चाहिये । ये यज्ञस्वरूप और प्रजापति हैं । देवताओंद्वारा जो जाननेयोग्य है, वह ये ही कहे जाते हैं ॥ २८–३७ ॥

यत्तु वेद्यं भगवतो देवा अपि न तद् विदुः । प्रजानां पतयः सर्वे ऋषयश्च सहामरैः ॥ ३८ ॥
नास्यान्तमधिगच्छन्ति विचिन्वन्त इति श्रुतिः । यदस्य परमं रूपं न तत् पश्यन्ति देवताः ॥ ३९ ॥
प्रादुर्भावे तु यद् रूपं तदर्चन्ति दिवौकसः । दर्शितं यदि तेनैव तदवेक्षन्ति देवताः ॥ ४० ॥
यन्न दर्शितवानेष कस्तदन्वेष्टुमीहते । ग्रामणीः सर्वभूतानामग्निमारुतयोर्गतिः ॥ ४१ ॥
तेजसस्तपसश्चैव निधानममृतस्य च । चतुराश्रमधर्मेशश्चातुर्होत्रफलाशनः ॥ ४२ ॥
चतुःसागरपर्यन्तश्चतुर्युगनिवर्तकः ।
तदेष संहृत्य जगत् कृत्वा गर्भस्थमात्मनः । मुमोचाण्डं महायोगी धृतं वर्षसहस्रकम् ॥ ४३ ॥
सुरासुरद्विजभुजगाप्सरोगणैर्द्रुमौषधिक्षितिधरयक्षगुह्यकैः ।
प्रजापतिः श्रुतिभिरसंकुलं किल तदासृजज्जगदिदमात्मना प्रभुः ॥ ४४ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वराहप्रादुर्भावे सप्तचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४७ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

भगवान्‌का जो स्वरूप जाननेयोग्य है, उसे देवगण भी नहीं जानते । सभी प्रजापति, देवतागण और ऋषिगण खोजते रहते हैं, किंतु इनका अन्त नहीं पाते—ऐसी श्रुति है । इस परमात्माका जो परम स्वरूप है, उसे देवतालोग भी नहीं देख पाते । उनके प्रादुर्भावकालमें जिस स्वरूपके दर्शन होते हैं, देवगण उसीकी पूजा करते हैं । यदि उन्होंने स्वयं ही अपने रूपको दिखा दिया तो देवगण उसे देख पाते हैं । वे जिस रूपका दर्शन नहीं कराते, उसकी खोज करनेके लिये कौन तत्पर हो सकता है ? जो सभी जीवोंके नायक, अग्नि और वायुकी गति, तेज, तपस्या और अमृतके निधान, चारों आश्रमधर्मोंके स्वामी, चातुर्होत्र यज्ञके फलका भक्षण करनेवाले, चारों समुद्रोंतक व्याप्त और चारों युगोंकी निवृत्ति करनेवाले हैं, वे ही महायोगी भगवान् इस जगत्‌का संहार कर अपने उदरमें रख लेते हैं और हजार वर्षोंतक धारण करनेके पश्चात् उस अण्डको उत्पन्न कर देते हैं । तत्पश्चात् प्रजापति भगवान् अपने शरीरसे सुर, असुर, द्विज, सर्प, अप्सराओंके समूह, समस्त वृक्ष, ओषधि, पर्वत, यक्ष, गुह्य और श्रुतियोंसे युक्त इस जगत्‌की सृष्टि करते हैं ॥ ३८–४४ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें वराह-प्रादुर्भाव नामक दो सौ सैंतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २४७ ॥

दो सौ अड़तालीसवाँ अध्याय

वराहभगवान्‌का प्रादुर्भाव, हिरण्याक्षद्वारा रसातलमें ले जायी गयी पृथ्वीदेवीद्वारा यज्ञवराहका स्तवन और भगवान्‌द्वारा उनका उद्धार

शौनक उवाच

जगदण्डमिदं पूर्वमासीद् दिव्यं हिरण्मयम् । प्रजापतेरियं मूर्तिरितीयं वैदिकी श्रुतिः ॥ १ ॥
तत्तु वर्षसहस्रान्ते बिभेदोर्ध्वमुखं विभुः । लोकसर्जनहेतोस्तु बिभेदाधोमुखं पुनः ॥ २ ॥
भूयोऽष्टधा बिभेदाण्डं विष्णुर्वै लोकजन्मकृत् । चकार जगतश्चात्र विभागं स विभागकृत् ॥ ३ ॥
यच्छिद्रमूर्ध्वमाकाशं विवराकृतितां गतम् । विहितं विश्वयोगेन यदधस्तद्रसातलम् ॥ ४ ॥
यदण्डमकरोत् पूर्वं देवो लोकचिकीर्षया । तत्र यत् सलिलं स्कन्नं सोऽभवत् काञ्चनो गिरिः ॥ ५ ॥
शैलैः सहस्रैर्महती मेदिनी विषमाभवत् ॥ ६ ॥
तैश्च पर्वतजालौघैर्बहुयोजनविस्तृतैः । पीडिता गुरुभिर्देवी व्यथिता मेदिनी तदा ॥ ७ ॥
महामते भूरिबलं दिव्यं नारायणात्मकम् । हिरण्मयं समुत्सृज्य तेजो वै जातरूपिणम् ॥ ८ ॥
अशक्ता वै धारयितुमधस्तात् प्राविशत् तदा । पीड्यमाना भगवतस्तेजसा तस्य सा क्षितिः ॥ ९ ॥
पृथ्वीं विशन्तीं दृष्ट्वा तु तामधो मधुसूदनः । उद्धारार्थं मनश्चक्रे तस्या वै हितकाम्यया ॥ १० ॥

शौनकजीने कहा—अर्जुन ! यह जगत् पहले दिव्य हिरण्मय अण्डके रूपमें था । यह प्रजापतिकी मूर्ति है—ऐसी वैदिकी श्रुति है । एक हजार वर्ष व्यतीत होनेपर सर्वव्यापी एवं लोकोंके जन्मदाता विष्णुने उस अण्डके ऊर्ध्व मुखका भेदन किया और पुनः लोकसृष्टिके लिये उसके अधोमुखको भी फोड़ दिया । फिर उस अण्डको आठ भागोंमें विभक्त कर दिया । तत्पश्चात् विभागकर्ता विष्णुने जगत्‌का भी विभाजन किया । विश्वस्रष्टा भगवान्‌द्वारा किया गया जो ऊपरका छिद्र था, वह विवरके आकारवाला आकाश और जो नीचेका छिद्र था, वह रसातल हुआ । भगवान्‌ने पूर्वकालमें लोकसृष्टिकी कामनासे जिस अण्डको उत्पन्न किया था, उससे जो जल टपका था, वह स्वर्णमय सुमेरु पर्वत हुआ और हजारों पर्वतोंके संयोगसे विशाल पृथ्वी विषमा अर्थात् ऊँची-नीची हो गयी । उस समय अनेकों योजन विस्तृत उन भारी

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

पर्वतसमूहोंसे पीड़ित हुई पृथ्वी व्याकुल हो गयी। महामते! तब पृथ्वी जो स्वर्णमय तेजसे युक्त, महान् बलसे सम्पन्न और नारायणस्वरूप था, उस दिव्य हिरण्मय अण्डको धारण करनेमें असमर्थ होकर उसे त्यागकर नीचेकी ओर जाने लगीं; क्योंकि वह उन भगवान्‌के तेजसे पीड़ित हो रही थी। तब भगवान् मधुसूदनने पृथ्वीको नीचे प्रवेश करती हुई देखकर लोककल्याण-भावनासे उसके उद्धारका विचार किया ॥ १–१० ॥

श्रीभगवानुवाच

मत्तेजः एषा वसुधा समासाद्य तपस्विनी। रसातलं प्रविशति पङ्के गौरिव दुर्बला ॥ ११ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—यह तपस्विनी पृथ्वी मेरे तेजको प्राप्तकर (धारण करनेमें असमर्थ हो) कीचड़में फँसी हुई दुबली गौकी भाँति रसातलमें प्रवेश कर रही है ॥ ११ ॥

पृथिव्युवाच

त्रिविक्रमायामितविक्रमाय महावराहाय सुरोत्तमाय।
श्रीशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद ॥ १२ ॥
तव देहाज्जगज्जातं पुष्करद्वीपमुत्थितम्। ब्रह्माणमिह लोकानां भूतानां शाश्वतं विदुः ॥ १३ ॥
तव प्रसादाद् देवोऽयं दिवं भुङ्क्ते पुरन्दरः। तव क्रोधाद्धि बलवान् जनार्दन जितो बलिः ॥ १४ ॥
धाता विधाता संहर्ता त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्। मनुः कृतान्तोऽधिपतिर्ज्वलनः पवनो घनः ॥ १५ ॥
वर्णाश्चाश्रमधर्माश्च सागरास्तरवोऽचलाः। नद्यो धर्मश्च कामश्च यज्ञा यज्ञस्य च क्रियाः ॥ १६ ॥
विद्या वेद्यं च सत्त्वं च ह्रीः श्रीः कीर्तिर्धृतिः क्षमा। पुराणं वेदवेदाङ्गं सांख्ययोगौ भवाभवौ ॥ १७ ॥
जङ्गमं स्थावरं चैव भविष्यं च भवच्च यत्। सर्वं तच्च त्रिलोकेषु प्रभावोपहितं तव ॥ १८ ॥
त्रिदशोदारफलदः स्वर्गस्त्रीचारुपल्लवः। सर्वलोकमनःकान्तः सर्वसत्त्वमनोहरः ॥ १९ ॥
विमानानेकविटपस्तोयदाम्बुमधुस्रवः। दिव्यलोकमहास्कन्धः सत्यलोकप्रशाखवान् ॥ २० ॥
सागराकारनिर्यासो रसातलजलाश्रयः। नागेन्द्रपादपोपेतो जन्तुपक्षिनिषेवितः ॥ २१ ॥

पृथ्वीने कहा—जो तीन पगमें पृथ्वीको नाप लेनेवाले वामनरूप, अमित पराक्रमी महावराहरूप, सुरश्रेष्ठ तथा लक्ष्मी, धनुष, चक्र, खड्ग और गदा धारण करनेवाले हैं, ऐसे आपको नमस्कार है। देवश्रेष्ठ! आप मुझपर प्रसन्न हो जाइये। प्रभो! आपके शरीरसे जगत् उत्पन्न हुआ है, पुष्कर द्वीपकी उत्पत्ति हुई है और ब्रह्मा प्रकट हुए हैं, आप सभी लोकों और प्राणियोंके सनातन पुरुष माने जाते हैं। आपकी कृपासे ये देवराज इन्द्र स्वर्गका उपभोग कर रहे हैं। जनार्दन! आपके क्रोधसे बलवान् बलि जीता गया है। आप धाता, विधाता और संहर्ता हैं। आपमें समस्त जगत् प्रतिष्ठित है। मनु, प्रजापति, यम, अग्नि, पवन, मेघ, वर्णधर्म, आश्रमधर्म, समुद्र, वृक्ष, पर्वत, नदियाँ, धर्म, काम, यज्ञ; यज्ञकी क्रियाएँ, विद्या, जाननेयोग्य अन्य बातें, जीवगण, लज्जा, श्री, कीर्ति, धैर्य, क्षमा, पुराण, वेद, वेदाङ्ग, सांख्य, योग, जन्म, मरण, जंगम, स्थावर, भूत और भविष्यत्—ये सभी तीनों लोकोंमें आपके प्रभावसे आच्छादित हैं। आप देवताओंको उत्तम फल देनेवाले, स्वर्गकी रमणियोंके लिये सुन्दर पल्लवरूप, सभी लोगोंके मनको प्रिय लगनेवाले, सभी जीवोंके मनके हरणकर्ता, विमानरूपी अनेक वृक्षोंसे युक्त, मेघोंके जलरूप मधु टपकानेवाले, दिव्य लोकरूप महान् स्कन्धवाले, सत्यलोकरूप शाखाओंसे युक्त, सागररूप रस, रसातलकी तरह जलके आश्रयस्थान, ऐरावतरूप वृक्षसे युक्त तथा जन्तुओं और पक्षियोंसे सुसेवित हैं ॥ १२–२१ ॥

शीलाचारार्यगन्धस्त्वं सर्वलोकमयो द्रुमः। द्वादशार्कमयद्वीपो रुद्रैकादशपत्तनः ॥ २२ ॥
वस्वष्टाचलसंयुक्तस्त्रैलोक्याम्भोमहोदधिः। सिद्धसाध्योर्मिकलिलः सुपर्णानिलसेवितः ॥ २३ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

दैत्यलोकमहाग्राहो रक्षोरगझषाकुलः । पितामहमहाधैर्यः स्वर्गस्त्रीरत्नभूषितः ॥ २४
धीश्रीह्रीकान्तिभिर्नित्यं नदीभिरुपशोभितः । कालयोगमहापर्वप्रयागगतिवेगवान् ॥ २५
त्वं स्वयोगमहावीर्यो नारायण महार्णवः । कालो भूत्वा प्रसन्नाभिरद्भिर्ह्लादयसे पुनः ॥ २६
त्वया सृष्टास्त्रयो लोकास्त्वयैव प्रतिसंहृताः । विशन्ति योगिनः सर्वे त्वामेव प्रतियोजिताः ॥ २७
युगे युगे युगान्ताग्निः कालमेघो युगे युगे । मम भारावताराय देव त्वं हि युगे युगे ॥ २८
त्वं हि शुक्लः कृतयुगे त्रेतायां चम्पकप्रभः । द्वापरे रक्तसंकाशः कृष्णः कलियुगे भवान् ॥ २९
वैवर्ण्यमभिधत्से त्वं प्राप्तेषु युगसंधिषु । वैवर्ण्य सर्वधर्माणामुत्पादयसि वेदवित् ॥ ३०
भासि वासि प्रतपसि त्वं च पासि विचेष्टसे । क्रुद्ध्यसि क्षान्तिमायासि त्वं दीपयसि वर्षसि॥ ३१
त्वं हास्यसि न निर्यासि निर्वापयसि जाग्रसि । निःशेषयसि भूतानि कालो भूत्वा युगक्षये ॥ ३२

आप शील, सदाचार और श्रेष्ठ गन्धसे युक्त, सर्वलोकमय वृक्ष, बारह आदित्योंसे युक्त द्वीप, ग्यारह रुद्ररूप नगर, आठों वसुरूप पर्वत, त्रिलोकीरूप जलसे परिपूर्ण महासागर, सिद्ध और साध्यरूप लहरोंसे युक्त, गरुड़रूप वायुसे सेवित, दैत्यसमूहरूप महान् ग्राह, राक्षस और नागरूपी मछलियोंसे व्याप्त, ब्रह्मारूप महान् धैर्यसम्पन्न, स्वर्गकी अप्सरारूप रत्नसे विभूषित हैं । आप बुद्धि, लक्ष्मी, लज्जा और कान्तिरूपी नदियोंसे नित्य सुशोभित तथा कालके योगसे उत्पन्न होनेवाले महापर्वके समय वेगपूर्वक प्रयागमें गमन करनेवाले हैं । नारायण ! आप अपने योगरूपी महापराक्रमसे सम्पन्न महासागर हैं और पुनः आप ही काल बनकर निर्मल जलसे जगत्को आह्लादित करते हैं । आपने तीनों लोकोंकी सृष्टि की है और आपसे ही उनका संहार होता है । आपके द्वारा नियुक्त किये गये सभी योगी आपमें प्रविष्ट होते हैं । देव ! आप प्रत्येक युगमें प्रलया और प्रत्येक युगमें प्रलयकालीन मेघ हैं तथा मेरा भ उतारनेके लिये आप प्रत्येक युगमें अवतीर्ण होते है आप कृतयुगमें श्वेतवर्ण, त्रेतामें चम्पक-पुष्प-सदृश पी वर्ण, द्वापरमें रक्तवर्ण और कलियुगमें श्यामवर्ण हो ज हैं । वेदज्ञ ! युग-संधियोंके प्राप्त होनेपर आप विवर्ण को धारण करते हैं और सभी धर्मोंमें विपरीतता उत्प कर देते हैं । आप प्रकाशित होते, प्रवाहित होते, तप रक्षा करते और चेष्टा करते हैं । आप क्रोध करते, शा धारण करते, उद्दीप्त करते और वर्षा करते हैं । आ हँसते, स्थिर रहते, मारते और जागते रहते हैं त प्रलयकालमें काल बनकर सभी जीवोंको निःशेष क देते हैं ॥ २२–३२ ॥

शेषमात्मानमालोक्य विशेषयसि त्वं पुनः । युगान्ताग्न्यवलीढेषु सर्वभूतेषु किञ्चन ॥ ३३
यातेषु शेषो भवसि तस्माच्छेषोऽसि कीर्तितः । च्यवनोत्पत्तियुक्तेषु ब्रह्मेन्द्रवरुणादिषु ॥ ३४
यस्मान्न च्यवसे स्थानात् तस्मात् संकीर्त्यसेऽच्युतः । ब्रह्माणमिन्द्रं च यमं रुद्रं वरुणमेव च ॥ ३५
निगृह्य हरसे यस्मात् तस्माद्धरिरिहोच्यसे । संतानयसि भूतानि वपुषा यशसा श्रिया ॥ ३६
परेण वपुषा देव तस्माच्चासि सनातनः । यस्माद् ब्रह्मादयो देवा मुनयश्चोग्रतेजसः ॥ ३७
न तेऽन्तं त्वधिगच्छन्ति तेनानन्तस्त्वमुच्यसे । न क्षीयसे न क्षरसे कल्पकोटिशतैरपि ॥ ३८
तस्मात् त्वमक्षरत्वाच्च अक्षरश्च प्रकीर्तितः । विष्टब्धं यत्त्वया सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ ३९
जगद्विष्टम्भनाच्चैव विष्णुरेवेति कीर्त्यसे । विष्टभ्य तिष्ठसे नित्यं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ४०
यक्षगन्धर्वनगरं सुमहद्भूतपन्नगम् । व्याप्तं त्वयैव विशता त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ४१
तस्माद् विष्णुरिति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा । नारा इत्युच्यते ह्यापो ह्यृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥ ४२
अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः । युगे युगे प्रनष्टां गां विष्णो विन्दसि तत्त्वतः ॥ ४३
गोविन्देति ततो नाम्ना प्रोच्यसे ऋषिभिस्तथा । हृषीकाणीन्द्रियाण्याहुस्तत्त्वज्ञानविशारदाः ॥ ४४
ईशिता च त्वमेतेषां हृषीकेशस्तथोच्यसे ।

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

*

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

फिर अपनेको शेष बचा हुआ देखकर पुनः आप उसकी वृद्धि करते हैं। युगान्तकी अग्निमें सभी भूतोंके दग्ध हो जानेपर एकमात्र आप शेष रहते हैं, इसलिये आप 'शेष' नामसे पुकारे जाते हैं। ब्रह्मा, इन्द्र, वरुण आदि देवता उत्पत्ति और पतनसे युक्त हैं, किंतु आप अपने स्थानसे च्युत नहीं होते, इसीलिये 'अच्युत' कहलाते हैं। चूँकि आप ब्रह्मा, इन्द्र, यम, रुद्र और वरुणका निग्रहपूर्वक हरण करते हैं, इसलिये यहाँ 'हरि' कहे जाते हैं। देव! आप अपने शरीर, यश, श्री और विराट् शरीरद्वारा सभी जीवोंका विस्तार करते हैं, इसलिये 'सनातन' हैं। चूँकि ब्रह्मा आदि देवगण और उग्र तेजस्वी मुनिगण आपका अन्त नहीं जान पाते, इसीलिये आप 'अनन्त' कहे जाते हैं। सैकड़ों करोड़ कल्पोंमें भी न तो आप क्षीण होते हैं और न नष्ट होते हैं, इसलिये विनाशरहित होनेके कारण आप 'अक्षर' कहे गये हैं। आप सम्पूर्ण चराचर जगत्‌को स्तम्भित किये रहते हैं, इसलिये जगत्‌का विष्टम्भन करनेके कारण 'विष्णु' कहे जाते हैं। आप सचराचर त्रिलोकीको नित्य अवरुद्ध करके स्थित रहते हैं तथा आप ही यक्षों एवं गन्धर्वोंके नगरोंसे सम्पन्न और महान् नागोंसे युक्त चराचरसहित त्रिलोकीमें प्रवेश करके उसे व्याप्त किये रहते हैं, इसीलिये स्वयं ब्रह्माने आपको 'विष्णु'नामसे अभिहित किया है। तत्त्वदर्शी ऋषियोंने जलका नाम 'नारा' कहा है और वह पूर्वकालमें आपका निवासस्थान था, इसीसे आप 'नारायण'कहे जाते हैं। विष्णो! प्रत्येक युगमें नष्ट हुई गोरूपिणी पृथ्वीको तत्त्वतः आप ही प्राप्त करते हैं, इसीलिये ऋषिगण आपको 'गोविन्द' नामसे पुकारते हैं। तत्त्वज्ञानमें निपुणजन इन्द्रियोंको हृषीक कहते हैं और आप उन इन्द्रियोंके शासक हैं, अतः 'हृषीकेश' कहे जाते हैं॥ ३३-४४½॥

वसन्ति त्वयि भूतानि ब्रह्मादीनि युगक्षये॥ ४५॥
त्वं वा वससि भूतेषु वासुदेवस्तथोच्यसे। संकर्षयसि भूतानि कल्पे कल्पे पुनः पुनः॥ ४६॥
ततः संकर्षणः प्रोक्तस्तत्त्वज्ञानविशारदैः। प्रतिव्यूहेन तिष्ठन्ति सदेवासुरराक्षसाः॥ ४७॥
प्रविद्युः सर्वधर्माणां प्रद्युम्नस्तेन चोच्यसे। निरोद्धा विद्यते यस्मान्न ते भूतेषु कश्चन॥ ४८॥
अनिरुद्धस्ततः प्रोक्तः पूर्वमेव महर्षिभिः। यत् त्वया धार्यते विश्वं त्वया संह्रियते जगत्॥ ४९॥
त्वं धारयसि भूतानि भुवनं त्वं बिभर्षि च। यत् त्वया धार्यते किंचित् तेजसा च बलेन च॥ ५०॥
मया हि धार्यते पश्चान्नाधृतं धारये त्वया। न हि तद् विद्यते भूतं त्वया यन्नात्र धार्यते॥ ५१॥
त्वमेव कुरुषे देव नारायण युगे युगे। मम भारावतरणं जगतो हितकाम्यया॥ ५२॥
तवैव तेजसाऽऽक्रान्तां रसातलतलं गताम्। त्रायस्व मां सुरश्रेष्ठ त्वामेव शरणं गताम्॥ ५३॥
दानवैः पीड्यमानाहं राक्षसैश्च दुरात्मभिः। त्वामेव शरणं नित्यमुपयामि सनातनम्॥ ५४॥
तावन्मेऽस्ति भयं देव यावन्न त्वां ककुद्मिनम्। शरणं यामि मनसा शतशोऽप्युपलक्षये॥ ५५॥
उपमानं न ते शक्ताः कर्तुं सेन्द्रा दिवौकसः। तत्त्वं त्वमेव तद् वेत्सि निरुत्तरमतः परम्॥ ५६॥

युगान्तके समय ब्रह्मा आदि सभी प्राणी आपमें निवास करते हैं और आप प्राणियोंमें निवास करते हैं, इसीलिये आप 'वासुदेव' कहलाते हैं। प्रत्येक कल्पमें आप पुनः-पुनः प्राणियोंको आकर्षित करते हैं, इसीलिये तत्त्वज्ञानविशारदोंने आपको 'संकर्षण' कहा है। आपके प्रभावसे देवता, असुर और राक्षस अपने-अपने व्यूहोंमें स्थित रहते हैं तथा आप सभी धर्मोंके विशेषज्ञ हैं, अतः 'प्रद्युम्न' नामसे कहे जाते हैं। चूँकि सभी प्राणियोंमें कोई भी आपका निरोध करनेवाला नहीं है, इसीलिये महर्षियोंने पहलेसे ही आपका 'अनिरुद्ध' नाम रख दिया है। आप विश्वको धारण करते हैं, आप ही जगत्‌का संहार भी करते हैं, आप ही प्राणियोंको

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

धारण करते हैं और आप ही भुवनका पालन-पोषण करते हैं। आप अपने तेज और बलसे जो कुछ धारण करते हैं, उसीको पीछे मैं भी धारण करती हूँ। आपके द्वारा धारण न की हुई वस्तुको मैं धारण नहीं करती। ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है, जिसे आपने इस जगत्‌में धारण न किया हो। नारायण देव! आप ही प्रत्येक युगमें संसारकी कल्याण-भावनासे मेरे ऊपर पड़नेवाले असहनीय भारको दूर करते हैं। मैं आपके ही तेजसे आक्रान्त हो रसातलमें पहुँच गयी हूँ। सुरश्रेष्ठ! मैं आपकी शरणागत हूँ, आप मेरी रक्षा कीजिये। मैं दुरात्मा दानवों एवं राक्षसोंसे पीड़ित होकर नित्य आप सनातनकी ही शरणमें जाती हूँ। देव! मेरे लिये भय तभीतक रहता है, जबतक मैं मनसे आप ककुद्मीकी शरणमें नहीं आती हूँ। मैंने सैकड़ों बार ऐसा देखा है। इन्द्रसहित समस्त देवगण आपकी समानता करनेमें समर्थ नहीं हैं। आप ही उस परम तत्त्वके ज्ञाता हैं। इसके बाद अब मुझे कुछ नहीं कहना है॥ ४५-५६॥

शौनक उवाच

ततः प्रीतः स भगवान् पृथिव्यै शार्ङ्गचक्रधृक्। काममस्या यथाकाममभिपूरितवान् हरिः॥ ५७॥
अब्रवीच्च महादेवि माधवीयं स्तवोत्तमम्। धारयिष्यति यो मर्त्यो नास्ति तस्य पराभवः॥ ५८॥
लोकान् निष्कल्मषांश्चैव वैष्णवान् प्रतिपत्स्यते। एतदाश्चर्यसर्वस्वं माधवीयं स्तवोत्तमम्॥ ५९॥
अधीतवेदः पुरुषो मुनिः प्रीतमना भवेत्॥ ६०॥
मा भैर्धरणि कल्याणि शान्तिं व्रज ममाग्रतः। एष त्वामुचितं स्थानं प्रापयामि मनीषितम्॥ ६१॥

शौनकजीने कहा—तदनन्तर शार्ङ्गधनुष और चक्र धारण करनेवाले भगवान् विष्णुने पृथ्वीपर प्रसन्न होकर उसके यथेष्ट मनोरथको पूर्ण कर दिया। तत्पश्चात् उन्होंने कहा—'महादेवि! जो मनुष्य इस उत्तम माधवीय स्तोत्रको धारण करेगा, उसका कभी पराभव नहीं होगा। वह पापरहित वैष्णव-लोकोंको प्राप्त होगा। यह उत्तम माधवीय स्तोत्र सभी आश्चर्योंसे परिपूर्ण है। वेदाध्यायी पुरुष और मुनि इससे प्रसन्न हो जाते हैं। धरणि! तुम भय मत करो। कल्याणि! तुम मेरे सामने शान्ति धारण करो। मैं तुम्हें मनसेप्सित उचित स्थान प्राप्त कराऊँगा॥ ५७-६१॥

शौनक उवाच

ततो महात्मा मनसा दिव्यं रूपमचिन्तयत्। किं नु रूपमहं कृत्वा उद्धरेयं धरामिमाम्॥ ६२॥
जलक्रीडारुचिस्तस्माद्वाराहं वपुरास्थितः। अधृष्यं सर्वभूतानां वाङ्मयं ब्रह्म संस्थितम्॥ ६३॥
शतयोजनविस्तीर्णमुच्छ्रितं द्विगुणं ततः। नीलजीमूतसंकाशं मेघस्तनितनिःस्वनम्॥ ६४॥
गिरिसंहननं भीमं श्वेततीक्ष्णाग्रदंष्ट्रिणम्।
विद्युदग्निप्रतीकाशमादित्यसमतेजसम्। पीनवृत्तायतस्कन्धं दृप्तशार्दूलगामिनम्॥ ६५॥
पीनोन्नतकटीदेशं वृषलक्षणपूजितम्। रूपमास्थाय विपुलं वाराहमजितो हरिः॥ ६६॥
पृथिव्युद्धरणायैव प्रविवेश रसातलम्। वेदपादो यूपदंष्ट्रः क्रतुदन्तश्चितीमुखः॥ ६७॥
अग्निजिह्वो दर्भलोमा ब्रह्मशीर्षो महातपाः। अहोरात्रेक्षणधरो वेदाङ्गश्रुतिभूषणः॥ ६८॥
आज्यनासः स्रुवतुण्डः सामघोषस्वनो महान्। सत्यधर्ममयः श्रीमान् कर्मविक्रमसत्कृतः॥ ६९॥
प्रायश्चित्तनखो घोरः पशुजानुर्मखाकृतिः। उद्गीथहोमलिङ्गोऽथ बीजौषधिमहाफलः॥ ७०॥
वाय्वन्तरात्मा यज्ञास्थिविकृतिः सोमशोणितः। वेदस्कन्धो हविर्गन्धो हव्यकव्यविभागवान्॥ ७१॥
प्राग्वंशकायो द्युतिमान् नानादीक्षाभिरन्वितः। दक्षिणाहृदयो योगी महासत्रमयो महान्॥ ७२॥
उपाकर्मोष्ठरुचकः प्रवर्ग्यावर्तभूषणः।

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

नानाच्छन्दोगतिपथो गुह्योपनिषदासनः। छायापत्नीसहायो वै मणिश‍ृङ्ग इवोच्छ्रितः ॥ ७३ ॥
रसातलतले मग्नां रसातलतलं गताम्। प्रभुर्लोकहितार्थाय दंष्ट्राग्रेणोज्जहार ताम् ॥ ७४ ॥

शौनकजीने कहा—तदनन्तर भगवान् विष्णुने मनमें दिव्य स्वरूपका चिन्तन किया और सोचने लगे कि मैं कौन-सा रूप धारणकर इस पृथ्वीका उद्धार करूँ। ऐसा सोचते हुए उन्हें जलक्रीडाकी रुचि उत्पन्न हो गयी, इसलिये उन्होंने शूकरका शरीर धारण किया। वह रूप सभी प्राणियोंके लिये अजेय, वाङ्मय, ब्रह्मस्वरूप, सौ योजनोंमें विस्तृत, उससे दुगुना ऊँचा, नीले मेघके समान कान्तिमान्, मेघोंकी गड़गड़ाहटके सदृश शब्दसे युक्त, पर्वतके समान सुदृढ़, भयंकर, श्वेत एवं तीखे अग्रभागवाले दाढ़ोंसे युक्त, बिजली एवं अग्निकी भाँति कान्तिमान्, सूर्यके समान तेजस्वी, मोटे एवं चौड़े कंधेसे सुशोभित, गर्वीले सिंहकी-सी चालवाला, मोटे एवं ऊँचे कटिभागसे सम्पन्न और वृषभके लक्षणोंसे युक्त था। तब अजेय भगवान् विष्णुने ऐसा विशाल वराह स्वरूप धारणकर पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये रसातलमें प्रवेश किया। उन महातपस्वी भगवान् वराहके वेद चारों पैर थे, यज्ञ-स्तम्भ उनका दाढ़ें था, यज्ञ उनके दाँत थे, यज्ञका कुण्ड उनका मुख था, अग्नि उनकी जीभ थी, कुश उनके रोएँ थे, ब्रह्म उनका मस्तक था, दिन और रात उनके नेत्र थे, वेदोंके छः अङ्ग कानके आभूषण थे, घृताहुति उनकी नासिका थी, स्रुवा उनका थूथुन था, सामवेदका उच्चस्वर शब्द था, वे सत्य और धर्मसे युक्त, श्रीसम्पन्न और कर्मरूप पराक्रमसे सत्कृत थे। प्रायश्चित्त उनके भीषण नख और पशुगण जानु भाग थे। यज्ञ उनकी आकृति थी। उद्गीथद्वारा किया गया हवन उनका लिङ्ग था, बीज और ओषधियाँ महान् फल थीं, वायु उनका अन्तरात्मा, यज्ञ अस्थिविकार, सोमरस रक्त, वेद कंधे और हवि गन्ध था। वे भगवान् हव्य तथा कव्यके विभाग करनेवाले थे। प्राग्वंश उनका शरीर था। वे कान्तिमान् और अनेकों दीक्षाओंसे दीक्षित थे। दक्षिणा उनका हृदय था, वे परम योगी और महान् यज्ञमय महापुरुष थे। उपाकर्म उनके होठोंके फलक, प्रवर्ग्य सम्पूर्ण आभूषण, समस्त वेद गमन-मार्ग और गोपनीय उपनिषदें उनकी आसन थीं। छाया उनकी पत्नी थी, वे मणि-श‍ृङ्गके समान ऊँचे थे। ऐसे वराह भगवान्ने रसातलमें जाकर डूबी हुई पृथ्वीका लोकहितकी कामनासे अपने दाढ़ोंके अग्रभागपर रखकर उद्धार किया ॥ ६२–७४ ॥

ततः स्वस्थानमानीय वराहः पृथिवीधरः। मुमोच पूर्वं मनसा धारितां च वसुंधराम् ॥ ७५ ॥
ततो जगाम निर्वाणं मेदिनी तस्य धारणात्। चकार च नमस्कारं तस्मै देवाय शम्भवे ॥ ७६ ॥
एवं यज्ञवराहेण भूत्वा भूतहितार्थिना। उद्धृता पृथिवी देवी सागराम्बुगता पुरा ॥ ७७ ॥
अथोद्धृत्य क्षितिं देवो जगतः स्थापनेच्छया। पृथिवीप्रविभागाय मनश्चक्रेऽम्बुजेक्षणः ॥ ७८ ॥
रसां गतामवनिमचिन्त्यविक्रमः सुरोत्तमः प्रवरवराहरूपधृक्।
वृषाकपिः प्रसभमथैकदंष्ट्रया समुद्धरद्धरणिमतुल्यपौरुषः ॥ ७९ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वराहप्रादुर्भावो नामाष्टचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४८ ॥

इसके बाद पृथ्वीको धारण करनेवाले वराह भगवान्ने पहले मनसे धारण की हुई वसुंधराको अपने स्थानपर लाकर छोड़ दिया। उनके धारण करनेसे पृथ्वीने भी शान्ति-लाभ किया और उन कल्याणकारी भगवान्को नमस्कार किया। इस प्रकार पूर्वकालमें भगवान्ने प्राणियोंका हित करनेकी इच्छासे यज्ञवराहरूप धारण कर सागरके जलमें निमग्न हुई पृथ्वीदेवीका उद्धार किया था। इस प्रकार पृथ्वीका उद्धार कर कमलनयन

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

भगवान् विष्णुने जगत्की स्थापनाके लिये पृथ्वीको विभक्त करनेका विचार किया। इस प्रकार अचिन्त्यपराक्रमी, अनुपम पुरुषार्थी, सुरश्रेष्ठ, श्रेष्ठ वराहका रूप धारण करनेवाले भगवान् वृषाकपिने* रसातलमें गयी हुई पृथ्वीका बलपूर्वक अपनी एक दाढ़द्वारा उद्धार किया था ॥ ७५—७९ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें वराह-प्रादुर्भाव नामक दो सौ अड़तालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २४८ ॥

दो सौ उनचासवाँ अध्याय

अमृत-प्राप्तिके लिये समुद्र-मन्थनका उपक्रम और वारुणी (मदिरा) का प्रादुर्भाव

ऋषय ऊचुः

नारायणस्य माहात्म्यं श्रुत्वा सूत यथाक्रमम्। न तृप्तिर्जायतेऽस्माकमतः पुनरिहोच्यताम् ॥ १ ॥
कथं देवा गताः पूर्वममरत्वं विचक्षणाः। तपसा कर्मणा वापि प्रसादात् कस्य तेजसा ॥ २ ॥

ऋषियोंने पूछा—सूतजी ! भगवान् नारायणके माहात्म्यको क्रमशः सुनकर हमलोगोंकी तृप्ति नहीं हो रही है, अतः उसे पुनः बतलाइये। प्राचीनकालमें चतुर देवतालोग तपस्या या कर्मसे अथवा किस देवताकी कृपासे किस प्रकार अमरत्वको प्राप्त हुए थे ? ॥ १—२ ॥

सूत उवाच

यत्र नारायणो देवो महादेवश्च शूलधृक्। तत्रामरत्वे सर्वेषां सहायौ तत्र तौ स्मृतौ ॥ ३ ॥
पुरा देवासुरे युद्धे हताश्च शतशः सुरैः। पुनः संजीवनीं विद्यां प्रयोज्य भृगुनन्दनः ॥ ४ ॥
जीवापयति दैत्येन्द्रान् यथा सुप्तोत्थितानिव। तस्य तुष्टेन देवेन शंकरेण महात्मना ॥ ५ ॥
मृतसंजीवनी नाम विद्या दत्ता महाप्रभा। तां तु माहेश्वरीं विद्यां महेश्वरमुखोद्गताम् ॥ ६ ॥
भार्गवे संस्थितां दृष्ट्वा मुमुदुः सर्वदानवाः। ततोऽमरत्वं दैत्यानां कृतं शुक्रेण धीमता ॥ ७ ॥
या नास्ति सर्वलोकानां देवानां यक्षरक्षसाम्। न नागानामृषीणां च न च ब्रह्मेन्द्रविष्णुषु ॥ ८ ॥
तां लब्ध्वा शंकराच्छुक्रः परां निर्वृतिमागतः। ततो देवासुरो घोरः समरः सुमहानभूत् ॥ ९ ॥
तत्र देवैर्हतान् दैत्याञ् शुक्रो विद्याबलेन च। उत्थापयति दैत्येन्द्राँल्लीलयैव विचक्षणः ॥ १० ॥
एवंविधेन शक्रस्तु बृहस्पतिरुदारधीः। हन्यमानास्ततो देवाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ११ ॥
विषण्णवदनाः सर्वे बभूवुर्विकलेन्द्रियाः।
ततस्तेषु विषण्णेषु भगवान् कमलोद्भवः। मेरुपृष्ठे सुरेन्द्राणामिदमाह जगत्पतिः ॥ १२ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! जहाँ भगवान् विष्णु और शूलधारी शंकरजी वर्तमान हैं, वहाँ वे ही दोनों सभी देवताओंकी अमरत्व-प्राप्तिमें सहायक माने गये हैं। प्राचीनकालमें देवासुर-संग्राममें देवताओंद्वारा मारे गये सैकड़ों राक्षसोंको भृगुनन्दन शुक्राचार्य संजीवनी विद्याका प्रयोग करके जीवित कर देते थे। तब वे दैत्येन्द्र फिर सोकर उठे हुएकी तरह उठकर लड़ने लगते थे। परम कान्तिमती मृत-संजीवनी विद्या शुक्राचार्यको उनपर प्रसन्न हुए भगवान् शंकरने दी थी। महेश्वरके मुखसे निकली हुई उस माहेश्वरी विद्याको शुक्राचार्यमें संस्थित देखकर दानवगण अतिशय प्रमुदित थे। इस विद्याके प्रभावसे बुद्धिमान् शुक्राचार्यने राक्षसोंको अमर कर दिया था। जो विद्या न तो सम्पूर्ण लोकों, देवों, यक्षों और राक्षसोंमें थी, न नागों और ऋषियोंमें तथा न ब्रह्मा, इन्द्र और विष्णुमें थी, उसे

* निरुक्तादिके अनुसार वृषाकपिका अर्थ महादेव, वाराहावतार विष्णु तथा (हनुमान्) आदि है। निरुक्त एवं अन्य वैदिक तथा व्याकरणादि ग्रन्थोंके अनुसार इनकी पत्नी 'वृषाकपायी' कही गयी हैं।

Sri Vidyabharathi Book Centre, Bangalore

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

शंकरजीसे प्राप्तकर शुक्र परम संतुष्ट थे। इसके बाद देवताओं और राक्षसोंमें महान् भीषण युद्ध छिड़ गया। उसमें देवताओंद्वारा मारे गये दैत्येन्द्रोंको परम निपुण आचार्य शुक्र अपनी विद्याके बलसे देखते-ही-देखते तुरंत जीवित कर देते थे। इस प्रकार सैकड़ों-हजारों देवताओंको मारा जाता हुआ देखकर इन्द्र, उदारहृदय बृहस्पति तथा सभी देवताओंके मुख सूख गये और उनकी इन्द्रियाँ विकल हो गयीं। इस प्रकार उनके चिन्तित होनेपर कमलोद्भव जगत्पति भगवान् ब्रह्माने सुमेरु पर्वतपर अवस्थित देवताओंसे इस प्रकार कहा ॥ ३–१२ ॥

ब्रह्मोवाच

देवाः शृणुत मद्वाक्यं तत्तथैव निरूप्यताम्। क्रियतां दानवैः सार्धं सख्यमत्राभिधीयताम् ॥ १३ ॥
क्रियताममृतोद्योगो मथ्यतां क्षीरवारिधिः। सहायं वरुणं कृत्वा चक्रपाणिर्विबोध्यताम् ॥ १४ ॥
मन्थानं मन्दरं कृत्वा शेषनेत्रेण वेष्टितम्। दानवेन्द्रो बलिः स्वामी स्तोककालं निवेश्यताम् ॥ १५ ॥
प्रार्थ्यतां कूर्मरूपश्च पाताले विष्णुरव्ययः। प्रार्थ्यतां मन्दरः शैलो मन्थकार्यं प्रवर्त्यताम् ॥ १६ ॥
तच्छ्रुत्वा वचनं देवा जग्मुर्दानवमन्दिरम्। अलं विरोधेन वयं भृत्यास्तव बलेऽधुना ॥ १७ ॥
क्रियताममृतोद्योगो व्रियतां शेषनेत्रकम्। त्वया चोत्पादिते दैत्य अमृतेऽमृतमन्थने ॥ १८ ॥
भविष्यामोऽमराः सर्वे त्वत्प्रसादान्न संशयः। एवमुक्तस्तदा देवैः परितुष्टः स दानवः ॥ १९ ॥
यथा वदत हे देवास्तथा कार्यं मयाधुना। शक्तोऽहमेक एवात्र मथितुं क्षीरवारिधिम् ॥ २० ॥
आहरिष्येऽमृतं दिव्यममृतत्वाय वोऽधुना। सुदूरादाश्रयं प्राप्तान् प्रणतानपि वैरिणः ॥ २१ ॥
यो न पूजयते भक्त्या प्रेत्य चेह विनश्यति। पालयिष्यामि वः सर्वानधुना स्नेहमास्थितः ॥ २२ ॥
एवमुक्त्वा स दैत्येन्द्रो देवैः सह ययौ तदा। मन्दरं प्रार्थयामास सहायत्वे धराधरम् ॥ २३ ॥
मन्था भव त्वमस्माकमधुनामृतमन्थने। सुरासुराणां सर्वेषां महत्कार्यमिदं यतः ॥ २४ ॥
तथेति मन्दरः प्राह यद्याधारो भवेन्मम। यत्र स्थित्वा भ्रमिष्यामि मथिष्ये वरुणालयम् ॥ २५ ॥
कल्प्यतां नेत्रकार्ये यः शक्तः स्याद् भ्रमणे मम। ततस्तु निर्गतौ देवौ कूर्मशेषौ महाबलौ ॥ २६ ॥
विष्णोर्भागौ चतुर्थांशाद्धरण्या धारणे स्थितौ। ऊचतुर्गर्वसंयुक्तं वचनं शेषकच्छपौ ॥ २७ ॥

ब्रह्माजी बोले—देवगण! आपलोग मेरी बात सुनिये और उसके अनुसार काम कीजिये। इस कार्यमें आप लोग दानवोंके साथ मित्रता कर लें और अमृत-प्राप्तिके लिये उपाय करें। इसके लिये चक्रपाणि भगवान् विष्णुको उद्बोधित कीजिये और वरुणको सहायक तथा शेषनागरूपी रस्सीसे परिवेष्टित मन्दराचलको मथानी बनाकर क्षीरसमुद्रका मन्थन कीजिये। थोड़े समयके लिये दानवेन्द्र बलिको अध्यक्षरूपमें नियुक्त कर दीजिये। पातालमें स्थित कूर्मरूप अव्यय भगवान् विष्णुकी और मन्दराचलकी प्रार्थना कीजिये। तत्पश्चात् समुद्र-मन्थनका कार्य प्रारम्भ कीजिये। उस कथनको सुनकर देवगण दानवराजके महलमें पहुँचे और कहने लगे—'बले! अब विरोध बंद कीजिये, हमलोग तो आपके भृत्य हैं। आप अमृत-प्राप्तिके लिये उद्योग करें और शेषनागको रस्सीके रूपमें वरण करें। दैत्य! अमृतमन्थनरूप कार्यमें आपके द्वारा अमृतके उत्पन्न हो जानेपर आपकी कृपासे हम सभी लोग निःसंदेह अमर हो जायँगे।' देवताओंद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर दानवराज बलि उस समय प्रसन्न हो गया और कहने लगा—'देवगण! जैसा आपलोग कह रहे हैं, मुझे इस समय वैसा ही करना चाहिये। मैं तो अकेला ही क्षीरसागरका मन्थन करनेमें समर्थ हूँ। इस समय मैं आपलोगोंकी अमरताके निमित्त दिव्य अमृत ले आऊँगा। जो सुदूरसे आश्रयके लिये आये हुए शरणागत वैरियोंको भक्तिपूर्वक सम्मानित नहीं करता, उसका यह लोक और परलोक—दोनों नष्ट हो जाते हैं। इस समय मैं आप सभी लोगोंकी स्नेहपूर्वक रक्षा

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

करूँगा।' ऐसा कहकर दैत्येन्द्र बलि देवताओंके साथ तुरंत चल पड़ा और सहायताके लिये मन्दराचलसे प्रार्थना करते हुए बोला—'मन्दर! चूँकि इस समय हम सभी देवताओं और असुरोंका यह महान् कार्य उपस्थित हो गया है, अतः इस अमृत-मन्थनके कार्यमें तुम मथानी बन जाओ।' मन्दराचलने कहा—'यदि मुझे कोई आधार मिले तो मुझे स्वीकार है जिसपर स्थित होकर मैं भ्रमण करूँगा और वरुणालयको मथ डालूँगा। साथ ही मेरे भ्रमण करते समय जो समर्थ हो सके, ऐसा किसीको नेतीके कार्यके लिये चुनिये।' तदनन्तर महाबली कूर्म और शेषनाग—दोनों देवता पातालसे ऊपर आये। ये दोनों भगवान् विष्णुके चतुर्थांश भाग हैं और पृथ्वीको धारण करनेके लिये नियुक्त हैं। तब शेष और कच्छप गर्वपूर्ण वचन बोले॥ १३—२७॥

कूर्म उवाच

त्रैलोक्यधारणेनापि न ग्लानिर्मम जायते। किमु मन्दरकात् क्षुद्राद् गुटिकासंनिभादिह॥ २८॥

कूर्मने कहा—मुझे तो इस त्रिलोकीको धारण करनेपर भी थकावट नहीं होती तो भला इस कार्यमें गुटिकाके समान क्षुद्र मन्दरको धारण करनेकी क्या बात है!॥ २८॥

शेष उवाच

ब्रह्माण्डवेष्टनेनापि ब्रह्माण्डमथनेन वा। न मे ग्लानिर्भवेद् देहे किमु मन्दरवर्तने॥ २९॥
तत उत्पाट्य तं शैलं तत्क्षणात् क्षीरसागरे। चिक्षेप लीलया नागः कूर्मश्चाधःस्थितस्तदा॥ ३०॥
निराधारं यदा शैलं न शेकुर्देवदानवाः। मन्दरभ्रामणं कर्तुं क्षीरोदमथने तथा॥ ३१॥
नारायणनिवासं ते जग्मुर्बलिसमन्विताः। यत्रास्ते देवदेवेशः स्वयमेव जनार्दनः॥ ३२॥
तत्रापश्यन्त तं देवं सितपद्मप्रभं शुभम्। योगनिद्रासुनिरतं पीतवाससमच्युतम्॥ ३३॥
हारकेयूरनद्धाङ्गमहिपर्यङ्कसंस्थितम्। पादपद्मेन पद्मायाः स्पृशन्तं नाभिमण्डलम्॥ ३४॥
स्वपक्षव्यजनेनाथ वीज्यमानं गरुत्मता। स्तूयमानं समन्ताच्च सिद्धचारणकिंनरैः॥ ३५॥
आम्नायैर्मूर्तिमद्भिश्च स्तूयमानं समन्ततः।
सव्यबाहूपधानं तं तुष्टुवुर्देवदानवाः। कृताञ्जलिपुटाः सर्वे प्रणताः सर्वतोदिशम्॥ ३६॥

शेषनागने कहा—जब समस्त ब्रह्माण्डका वेष्टन बनने तथा उसका मन्थन करनेसे मेरे शरीरमें शिथिलता नहीं आती तो मन्दरके घुमानेसे कौन-सा कष्ट होगा! ऐसा कहकर नागने लीलापूर्वक उसी क्षण उस मन्दराचलको उखाड़कर क्षीरसागरमें डाल दिया। उस समय कूर्म उसके नीचे स्थित हुए। किंतु क्षीरसमुद्रका मन्थन आरम्भ होनेपर जब देवता और दानव उस आधारशून्य मन्दराचलको घुमानेमें समर्थ न हो सके, तब वे बलिको साथ लेकर भगवान् नारायणके निवासस्थानपर गये, जहाँ देवाधिदेव भगवान् जनार्दन विराजमान थे। वहाँ उन्होंने श्वेत कमलके समान कान्तिमान् एवं कल्याणकारी भगवान् अच्युतको देखा, जिनके शरीरपर पीताम्बर झलक रहा था, जो योगनिद्रामें निमग्न थे, जिनका शरीर हार और केयूरसे विभूषित था, जो शेषनागकी शय्यापर शयन कर रहे थे और अपने चरणकमलसे लक्ष्मीके नाभिमण्डलका स्पर्श कर रहे थे, गरुड़ अपने डैनेरूपी पंखसे जिनपर हवा कर रहे थे, चारों ओरसे सिद्ध, चारण और किंनर जिनकी स्तुतिमें तन्मय थे, मूर्तिमान् वेद चारों ओरसे जिनकी स्तुति कर रहे थे तथा जो अपनी बायीं भुजाको तकिया बनाये हुए थे। तब वे सभी देव-दानव सब ओरसे हाथ जोड़कर प्रणाम करके उन भगवान्की स्तुति करने लगे॥ २९—३६॥

Sri Vidyadhiraja Book Centre Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

देवदानवा ऊचुः

नमो लोकत्रयाध्यक्ष तेजसा जितभास्कर । नमो विष्णो नमो जिष्णो नमस्ते कैटभार्दन ॥ ३७ ॥
नमः सर्गक्रियाकर्त्रे जगत्पालयते नमः । रुद्ररूपाय शर्वाय नमः संहारकारिणे ॥ ३८ ॥
नमः शूलायुधाधृष्य नमो दानवघातिने । नमः क्रमत्रयाक्रान्त त्रैलोक्यायाभवाय च ॥ ३९ ॥
नमः प्रचण्डदैत्येन्द्रकुलकालमहानल । नमो नाभिह्रदोद्भूतपद्मगर्भ महाबल ॥ ४० ॥
पद्मभूत महाभूत कर्त्रे हर्त्रे जगत्प्रिय । जनिता सर्वलोकेश क्रियाकारणकारिणे ॥ ४१ ॥
अमरारिविनाशाय महासमरशालिने । लक्ष्मीमुखाब्जमधुप नमः कीर्तिनिवासिने ॥ ४२ ॥
अस्माकममरत्वाय ध्रियतां ध्रियतामयम् । मन्दरः सर्वशैलानामयुतायुतविस्तृतः ॥ ४३ ॥
अनन्तबलबाहुभ्यामवष्टभ्यैकपाणिना । मथ्यताममृतं देव स्वधास्वाहार्थकामिनाम् ॥ ४४ ॥
ततः श्रुत्वा स भगवान् स्तोत्रपूर्वं वचस्तदा । विहाय योगनिद्रां तामुवाच मधुसूदनः ॥ ४५ ॥

देवताओं और दैत्योंने कहा—त्रिलोकीनाथ ! आप अपने तेजसे सूर्यको पराजित करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है । विष्णुको प्रणाम है । जिष्णुको अभिवादन है । आप कैटभका वध करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है । सृष्टि-कर्म करनेवालेको प्रणाम है । आप जगत्के पालनकर्ता हैं, आपको अभिवादन है । आप रुद्ररूपसे संहार करनेवाले हैं, आप शर्वको नमस्कार है । त्रिशूलरूप आयुधसे धर्षित न होनेवाले आपको प्रणाम है । दानवोंका वध करनेवाले आपको अभिवादन है । आप तीन पगसे त्रिलोकीको आक्रान्त कर लेनेवाले और अजन्मा हैं, आपको नमस्कार है । आप प्रचण्ड दैत्येन्द्रोंके कुलके लिये कालरूप महान् अग्नि हैं, आपको प्रणाम है । महाबल ! आपके नाभि-कुण्डसे पद्मकी उत्पत्ति हुई है, आपको अभिवादन है । आप पद्मको उत्पन्न करनेवाले, महाभूत, जगत्के कर्ता, हर्ता और प्रिय, सभीके जनक, सभी लोकोंके स्वामी, कार्य और कारण—दोनोंका निर्माण करनेवाले, अमरोंके शत्रुओंका विनाश करनेके लिये महान् समर करनेवाले, लक्ष्मीके मुखकमलके मधुप और यशमें निवास करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है । आप हमलोगोंकी अमरत्व-प्राप्तिके लिये सभी पर्वतोंमें विशाल मन्दराचलको, जो अयुतायुत योजन विस्तृत है, अवश्य धारण कीजिये । देव ! आप अपनी अनन्त बलशालिनी भुजाओंद्वारा पर्वतको रोककर एक हाथसे स्वाहा-स्वधाके अभिलाषी देवताओंके उपकारार्थ अमृतका मन्थन कीजिये । तदनन्तर भगवान् मधुसूदन उस स्तुतिपूर्ण वचनको सुनकर उस योगनिद्राका परित्याग कर इस प्रकार बोले ॥

श्रीभगवानुवाच

स्वागतं विबुधाः सर्वे किमागमनकारणम् । यस्मात् कार्यादिह प्राप्तास्तद् ब्रूत विगतज्वराः ॥ ४६ ॥
नारायणेनैवमुक्ताः प्रोचुस्तत्र दिवौकसः । अमरत्वाय देवेश मथ्यमाने महोदधौ ॥ ४७ ॥
यथामृतत्वं देवेश तथा नः कुरु माधव । त्वया विना न तच्छक्यमस्माभिः कैटभार्दन ॥ ४८ ॥
प्राप्तुं तदमृतं नाथ ततोऽग्रे भव नो विभो । इत्युक्तश्च ततो विष्णुरप्रधृष्योऽरिमर्दनः ॥ ४९ ॥
जगाम देवैः सहितो यत्रासौ मन्दराचलः । वेष्टितो भोगिभोगेन धृतश्चामरदानवैः ॥ ५० ॥
विषभीतास्ततो देवा यतः पुच्छं ततः स्थिताः । मुखतो दैत्यसंघास्तु सैंहिकेयपुरःसराः ॥ ५१ ॥
सहस्रवदनं चास्य शिरः सव्येन पाणिना । दक्षिणेन बलिर्देहं नागस्याकृष्टवांस्तथा ॥ ५२ ॥
दधारामृतमन्थानं मन्दरं चारुकन्दरम् । नारायणः स भगवान् भुजयुग्मद्वयेन तु ॥ ५३ ॥
ततो देवासुरैः सर्वैर्जयशब्दपुरःसरम् । दिव्यं वर्षशतं साग्रं मथितः क्षीरसागरः ॥ ५४ ॥
ततः श्रान्तास्तु ते सर्वे देवा दैत्यपुरःसराः । श्रान्तेषु तेषु देवेन्द्रो मेघो भूत्वाम्बुशीकरान् ॥ ५५ ॥
ववर्षामृतकणांस्तान् ववौ वायुश्च शीतलः ।

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

श्रीभगवान्ने कहा—देवगण! आप सब लोगोंका स्वागत है। आपलोगोंके यहाँ आगमनका क्या उद्देश्य है? आपलोग जिस कार्यके लिये यहाँ आये हैं। उसे निश्चिन्त होकर बतलाइये। नारायणके ऐसा कहनेपर देवताओंने कहा—'देवेश! हमलोग अमरत्व-प्राप्तिके लिये समुद्रका मन्थन करना चाहते हैं। भगवान् माधव! हमें जिस उपायसे अमरत्वकी प्राप्ति हो सके, आप वैसा करें। कैटभशत्रो! आपके बिना हमलोग उस अमृतको प्राप्त नहीं कर सकते, अतः सर्वव्यापी नाथ! आप हमलोगोंके अग्रणी बनें।' उनके ऐसा कहनेपर शत्रुनाशक अजेय भगवान् विष्णु देवताओंके साथ उस स्थानपर गये, जहाँ मन्दराचल था। उस समय वह मन्दराचल शेषनागके फणोंसे लिपटा हुआ था तथा देवता और दानवगण उसे पकड़े हुए थे। उस समय विषके भयसे डरकर देवगण तो नागकी पूँछकी ओर और राहुको अगुआ बनाकर दैत्यगण मुखकी ओर स्थित थे। बलि शेषनागके हजार मुखवाले सिरको बायें हाथसे तथा देहको दाहिने हाथसे पकड़कर खींच रहा था। भगवान् नारायणने सुन्दर कन्दराओंसे सुशोभित अमृतके मन्थन-दण्डस्वरूप मन्दराचलको अपनी दोनों भुजाओंसे पकड़ा। इस प्रकार सभी देवताओं तथा दैत्योंने मिलकर जय-जयकार करते हुए सौ दिव्य वर्षोंसे भी अधिक कालतक क्षीरसागरका मन्थन करते रहे, तब दैत्योंसहित वे सभी देवता थक गये। उन लोगोंके थक जानेपर देवराज इन्द्र मेघरूप धारणकर उनके ऊपर अमृतके समान जलकणोंकी वृष्टि करने लगे और शीतल वायु बहने लगी॥ ४६—५५½॥

भग्नप्रायेषु देवेषु शान्तेषु कमलासनः॥ ५६॥
मथ्यतां मथ्यतां सिन्धुरित्युवाच पुनः पुनः। अवश्यमुद्योगवतां श्रीरपारा भवेत् सदा॥ ५७॥
ब्रह्मप्रोत्साहिता देवा ममन्थुः पुनरम्बुधिम्। भ्राम्यमाणे ततः शैले योजनायुतशेखरे॥ ५८॥
निपेतुर्हस्तियूथानि वराहशरभादयः। श्वापदायुतलक्षाणि तथा पुष्पफलद्रुमाः॥ ५९॥
ततः फलानां वीर्येण पुष्पौषधिरसेन च। क्षीरमम्बुधिजं सर्वं दधिरूपमजायत॥ ६०॥
ततस्तु सर्वजीवेषु चूर्णितेषु सहस्रशः। तदम्बुमेदसोत्सर्गाद् वारुणी समपद्यत॥ ६१॥
वारुणीगन्धमाघ्राय मुमुदुर्दैवदानवाः। तदास्वादेन बलिनो देवदैत्यादयोऽभवन्॥ ६२॥
ततोऽतिवेगाज्जगृहुर्नागेन्द्रं सर्वतोऽसुराः। मन्थानं मन्थयष्टिस्तु मेरुस्तत्राचलोऽभवत्॥ ६३॥
अभवच्चाग्रतो विष्णुर्भुजमन्दरबन्धनः। सवासुकिफणालग्नपाणिः कृष्णो व्यराजत॥ ६४॥
यथा नीलोत्पलैर्युक्तो ब्रह्मदण्डोऽतिविस्तरः। ध्वनिर्मेघसहस्रस्य जलधेरुत्थितस्तदा॥ ६५॥

उस समय प्रायः सभी देवताओंके शिथिल एवं शान्त हो जानेपर ब्रह्मा पुनः-पुनः इस प्रकार कहने लगे—'अरे! समुद्रका मन्थन करते चलो। उद्योगी पुरुषोंको सदा अपार लक्ष्मी अवश्य प्राप्त होती है।' ब्रह्माद्वारा इस प्रकार उत्साहित किये जानेपर देवासुरगण पुनः समुद्रका मन्थन करने लगे। इसके बाद दस हजार योजन विस्तृत शिखरवाले मन्दराचलके घुमाये जानेपर (उसके शिखरोंपरसे) हाथियोंके समूह, शूकर, अष्टापद शरभ करोड़ों हिंसक पशु आदि तथा पुष्पों और फलोंसे लदे हुए वृक्ष समुद्रमें गिरने लगे। उन गिरे हुए फलोंके सामर्थ्य तथा पुष्पों और ओषधियोंके रससे क्षीरसागरका जल दहीके रूपमें परिवर्तित हो गया। तदनन्तर उन सभी जीवोंके हजारों प्रकारसे चूर्ण हो जानेपर उनकी मज्जा और जलके संयोगसे वारुणी उत्पन्न हुई। उस वारुणीकी गन्धको सूँघकर देवता और दानव परम प्रसन्न हुए और उसके आस्वादनसे वे बलवान् हो गये। तब असुरोंने अत्यन्त वेगपूर्वक मथानी और शेषनागको चारों ओरसे पुनः पकड़ा। उस समय सुमेरु पर्वत मथानीका डंडा बना। भगवान् विष्णुने अग्रसर होकर अपनी भुजासे मन्दराचलको बाँध लिया। उस समय वासुकिके फणोंपर रखा हुआ

Sri Vidyabharathi Book Centre, Shimoga

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

नका साँवला हाथ ऐसा शोभायमान हो रहा था तत्पश्चात् समुद्रसे हजारों मेघकी-सी गर्जना उद्भूत नो नीले कमलोंसे युक्त अत्यन्त विशा ब्रह्मदण्ड हो । हुई ॥ ५६–६५ ॥

भागे द्वितीये मघवानादित्यस्तु ततः परम् । ततो रुद्रा महोत्साहा वसवो गुह्यकादयः ॥ ६६ ॥
पुरतो विप्रचित्तिश्च नमुचिर्वृत्रशम्बरौ । द्विमूर्धा वज्रदंष्ट्रश्च सैंहिकेयो बलिस्तथा ॥ ६७ ॥
एते चान्ये च बहवो मुखभागमुपस्थिताः । ममन्थुरम्बुधिं दृप्ता बलतेजोविभूषिताः ॥ ६८ ॥
बभूवात्र महाघोषो महामेघरवोपमः । उदधेर्मथ्यमानस्य मन्दरेण सुरासुरैः ॥ ६९ ॥
तत्र नानाजलचरा विनिर्धूता महाद्रिणा । विलयं समुपाजग्मुः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ७० ॥
वारुणानि च भूतानि विविधानि महीधरः । पातालतलवासीनि विलयं समुपानयत् ॥ ७१ ॥
तस्मिंश्च भ्राम्यमाणेऽद्रौ संघृष्टाश्च परस्परम् । न्यपतन् पतगोपेताः पर्वताग्रान्महाद्रुमाः ॥ ७२ ॥
तेषां संघर्षणाच्चाग्निरर्चिर्भिः प्रज्वलन् मुहुः । विद्युद्भिरिव नीलाभ्रमावृणोन्मन्दरं गिरिम् ॥ ७३ ॥
ददाह कुञ्जरांश्चैव सिंहांश्चैव विनिःसृतान् । विगतासूनि सर्वाणि सत्त्वानि विविधानि च ॥ ७४ ॥

शेषनागके दूसरे भागमें इन्द्र, उसके बाद आदित्य, सके बाद महान् उत्साही रुद्रगण, वसुगण तथा गुह्यक दि थे । आगेकी ओर विप्रचित्ति, नमुचि, वृत्र, शम्बर, मूर्धा, वज्रदंष्ट्र, राहु तथा बलि थे । ये तथा इनके सिवा न्य बहुत-से राक्षस मुखभागमें उपस्थित थे । बल र तेजसे विभूषित एवं गर्वसे भरे हुए वे सभी मुद्रका मन्थन कर रहे थे । देवताओं और दानवोंद्वारा दराचलकी मथानीसे मन्थन किये जाते हुए समुद्रसे घगर्जनके समान भीषण ध्वनि निकलने लगी । वहाँ स महान् मन्दराचलसे पिसे हुए नाना प्रकारके सैकड़ों-हजारों जलचर नष्ट हो गये । उस पर्वतने वरुणलोकके पाताललोकवासी अनेकों प्रकारके प्राणियोंको विनाशके पथपर पहुँचा दिया । उस पर्वतके घुमाये जाते समय उस मन्दराचलके ऊपर उगे हुए विशाल वृक्ष पक्षियों-सहित परस्परके संघर्षणसे टूट-टूटकर गिर रहे थे । उनके संघर्षणसे उत्पन्न हुई अग्निने बारंबार प्रज्वलित होकर अपनी लपटोंसे मन्दराचलको उसी प्रकार आच्छादित कर लिया, जैसे बिजलियाँ नीले मेघको ढक लेती हैं । उस अग्निने पर्वतसे निकले हुए सिंहों और हाथियोंको तथा अनेकों प्रकारके प्राणरहित सभी जीवोंको भस्म कर दिया ॥ ६६–७४ ॥

तमग्निममरश्रेष्ठः प्रदहन्तमितस्ततः । वारिणा मेघजेनेन्द्रः शमयामास सर्वतः ॥ ७५ ॥
ततो नानारसास्तत्र सुस्रुवुः सागराम्भसि । महाद्रुमाणां निर्यासा बहवश्चौषधीरसाः ॥ ७६ ॥
तेषाममृतवीर्याणां रसानां पयसैव च । अमरत्वं सुरा जग्मुः काञ्चनच्छविसंनिभाः ॥ ७७ ॥
अथ तस्य समुद्रस्य तज्जातमुदकं पयः । रसान्तरैर्विमिश्रश्च ततः क्षीरादभूद् घृतम् ॥ ७८ ॥
ततो ब्रह्माणमासीनं देवा वचनमब्रुवन् । श्रान्ताः स्म सुभृशं ब्रह्मन् नोद्भवत्यमृतं च यत् ॥ ७९ ॥
ऋते नारायणात् सर्वे दैत्या देवोत्तमास्तथा । चिरायितमिदं चापि सागरस्य तु मन्थनम् ॥ ८० ॥
ततो नारायणं देवं ब्रह्मा वचनमब्रवीत् । विधत्स्वैषां बलं विष्णो भवानेव परायणम् ॥ ८१ ॥

तब देवश्रेष्ठ इन्द्रने इधर-उधर जलाती हुई उस ग्निको बादलके जलसे चारों ओरसे शान्त कर या । तदनन्तर उस समुद्रके जलमें नाना प्रकारके रस, शाल वृक्षोंके रस और ओषधियोंके रस अधिक मात्रामें पकने लगे । उन अमृतके समान गुणकारी रसोंसे युक्त जलसे सुवर्णकी भाँति देदीप्यमान देवगण अमरताको प्राप्त हो गये । समुद्रका जल दुग्धके रूपमें परिणत हो गया था, पुनः अनेक प्रकारके रसोंके मिश्रणसे वह दुग्धसे घृतके रूपमें परिवर्तित हो गया । तब वहाँ बैठे हुए ब्रह्मासे देवताओंने इस प्रकार कहा—'ब्रह्मन् ! हमलोग

Sri Vidyabharathi Book Centre - Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

बहुत थक गये हैं, किंतु जो अभीतक अमृत नहीं निकला, इसका कारण यह है कि भगवान् विष्णुको छोड़कर हम सभी देवगण तथा दैत्यगण समुद्रको मथनेमें देरी कर रहे हैं।' तब ब्रह्माने भगवान् विष्णुसे इस प्र कहा—'विष्णो! इन सबको बल प्रदान कीजिये; क्यों आप ही इनके शरणदाता हैं' ॥ ७५–८१ ॥

विष्णुरुवाच

बलं ददामि सर्वेषां कर्मैतद् ये समाश्रिताः। क्षुभ्यतां क्रमशः सर्वैर्मन्दरः परिवर्त्यताम् ॥ ८

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽमृतमन्थने एकोनपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४९ ॥

भगवान् विष्णु बोले—इस मन्थन-कार्यमें जितने लोग सम्मिलित हैं, उन सबको मैं बल प्रदान करता हूँ। अब सभी लोग मिलकर क्रमशः मन्दर पर्वतको घु और सागरको क्षुब्ध करें ॥ ८२ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अमृत-मन्थन नामक दो सौ उनचासवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २४९ ॥

दो सौ पचासवाँ अध्याय

अमृतार्थ समुद्र-मन्थन करते समय चन्द्रमासे लेकर विषतकका प्रादुर्भाव

सूत उवाच

नारायणवचः श्रुत्वा बलिनस्ते महोदधौ। तत्पयः सहिता भूत्वा चक्रिरे भृशमाकुलम् ॥ १
ततः शतसहस्रांशुसमान इव सागरात्। प्रसन्नाभः समुत्पन्नः सोमः शीतांशुरुज्ज्वलः ॥ २
श्रीरनन्तरमुत्पन्ना घृतात् पाण्डुरवासिनी। सुरादेवी समुत्पन्ना तुरगः पाण्डुरस्तथा ॥ ३
कौस्तुभश्च मणिर्दिव्यश्चोत्पन्नोऽमृतसम्भवः। मरीचिविकचः श्रीमान् नारायणउरोगतः ॥ ४
पारिजातश्च विकचकुसुमस्तबकाञ्चितः। अनन्तरमपश्यंस्ते धूममम्बरसंनिभम् ॥ ५
आपूरितदिशाभागं दुःसहं सर्वदेहिनाम्। तमाघ्राय सुराः सर्वे मूर्च्छिताः परिलम्बिताः ॥ ६
उपाविशन्नब्धितटे शिरः संगृह्य पाणिना। ततः क्रमेण दुर्वारः सोऽनलः प्रत्यदृश्यत ॥ ७
ज्वालामालाकुलाकारः समन्ताद् भीषणोऽर्चिषा। तेनाग्निना परिक्षिप्ताः प्रायशस्तु सुरासुराः ॥ ८
दग्धाश्चाप्यर्धदग्धाश्च बभ्रमुः सकला दिशः। प्रधाना देवदैत्याश्च भीषितास्तेन वह्निना ॥ ९
अनन्तरं समुद्भूतास्तस्माड् डुण्डुभजातयः। कृष्णसर्पा महादंष्ट्रा रक्ताश्च पवनाशनाः ॥ १०
श्वेतपीतास्तथा चान्ये तथा गोनसजातयः। मशका भ्रमरा दंशा मक्षिकाः शलभास्तथा ॥ ११
कर्णशल्याः कृकलासा अनेके चैव बभ्रमुः। प्राणिनो दंष्ट्रिणो रौद्रास्तथा हि विषजातयः ॥ १२
शार्ङ्गहालाहलामुस्तवत्सकागुरुभस्मगाः।
नीलपत्रादयश्चान्यं शतशो बहुभेदिनः। येषां गन्धेन दह्यन्ते गिरिशृङ्गाण्यपि द्रुतम् ॥ १३

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! भगवान् विष्णुकी बात सुनकर वे बलवान् सम्मिलित होकर उस महासमुद्रमें उसकी जलराशिको अत्यन्त क्षुभित करने लगे। इसके बाद समुद्रसे सौ सूर्योंकी भाँति दीप्तिशाली शीतरश्मि उज्ज्वल चन्द्रमा उत्पन्न हुए। तत्पश्चात् समुद्रके जल*से पीले वस्त्रोंसे शोभित लक्ष्मी उत्पन्न हुईं, फिर सुरादेवी तथा पीले रंगका घोड़ा उत्पन्न हुआ। तदनन्तर नारायणके वक्षःस्थलपर शोभित होनेवाली, किरणोंसे शोभा-सम्पन्न तथा अमृतसे उत्पन्न होनेवाली कौस्तुभमणि उत्पन्न हुई। पुनः अनेक खिले पुष्पोंके गुच्छोंसे व्याप्त पारिजात प्रकट हुआ। तदन देवताओं और दैत्योंने आकाशके समान नीले धुएँको निकलते हुए देखा, जो सभी दिशा परिव्याप्त और सभी प्राणियोंके लिये दुःसह था।

* निरुक्त ७। २४ और नि० निघण्टु १। १२ के अनुसार घृतका जल अर्थ वेदोंमें बहुधा युक्त हुआ है। लक्ष्मी प्राकट्यके समय इसका प्रयोग आवश्यक था।

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

ूबकर देवगण मूर्च्छित होकर गिरने लगे और हाथसे सिरको पकड़कर समुद्र-तटपर बैठ गये। तदनन्तर क्रमशः वह दुःसह अग्नि दिखायी पड़ी। उसका आकार ज्वालाओंसे व्याप्त था तथा चारों ओर फैली हुई लपटोंसे वह भीषण लग रही थी। उस अग्निसे प्रायः सभी देवता और दानवगण विक्षिप्त हो उठे और कुछ जले तथा कुछ अधजले हुए सभी दिशाओंमें घूमने लगे। इस प्रकार सभी प्रधान देव तथा दैत्यगण उस अग्निसे भयभीत हो गये। कुछ देरके बाद उस अग्निसे ण्डुभ जातिके सर्प उत्पन्न हुए। उसी प्रकार काले, विशाल दाढ़ोंवाले, लाल, वायु पीकर रहनेवाले, श्वेत, पीले तथा अन्य गोनस जातिवाले सर्प तथा मशक, भ्रमर, डँसा, मक्खियाँ, पतंगे, कर्णशल्य, गिरगिट आदि अनेकों जीव उत्पन्न होकर इधर-उधर घूमने लगे। इनके अतिरिक्त अति भीषण दाढ़ोंवाले बहुत-से जीव तथा विषकी अनेकों जातियाँ उत्पन्न हुईं—जैसे शार्ङ्ग, हालाहल, मुस्त, वत्स, अगुरु, भस्मग और नील-पत्र आदि। इसी प्रकार अन्य सैकड़ों भेदोपभेदवाले विष उत्पन्न हुए, जिनकी गन्धसे पर्वतोंके शिखर भी तुरंत ही जलने लगे ॥ १–१३ ॥

अनन्तरं नीलरसौघभृङ्गभिन्नाञ्जनाभं विषमं श्वसन्तम्।
कायेन लोकान्तरपूरकेण केशैश्च वह्निप्रतिमैर्ज्वलद्भिः ॥ १४ ॥
सुवर्णमुक्ताफलभूषिताङ्गं किरीटिनं पीतदुकूलजुष्टम्।
नीलोत्पलाभं कुसुमैः कृतार्धं गर्जन्तमम्भोधरभीमवेगम् ॥ १५ ॥
महाम्बुरम्भोनिधिमध्यसंस्थं सविग्रहं देहिभयाश्रयं तम्।
विलोक्य तं भीषणमुग्रनेत्रं भूताश्च वित्रेसुरथापि सर्वे ॥ १६ ॥
केचिद् विलोक्यैव गता ह्यभावं निःसंज्ञतां चाप्यपरे प्रपन्नाः।
वेमुर्मुखेभ्योऽपि च फेनमन्ये केचित् त्ववाप्ता विषमामवस्थाम् ॥ १७ ॥
श्वासेन तस्य निर्दग्धास्ततो विष्णिवन्द्रदानवाः।
दग्धाङ्गारनिभा जाता ये भूता दिव्यरूपिणः। ततस्तु सम्भ्रमाद् विष्णुस्तमुवाच सुरात्मकम्॥ १८ ॥

तदनन्तर देवताओं और दानवोंने सागरके मध्यमें त एक ऐसा स्वरूप देखा, जिसकी शरीर-कान्ति रस, भ्रमर और घिसे हुए अञ्जनके समान काली थी, विषमरूपसे श्वास ले रहा था और शरीरसे लोकान्तर- व्याप्त कर लिया था, जिसके केश जलती हुई ग्निके समान दिखायी पड़ रहे थे, जिसका शरीर र्ण और मोतियोंसे विभूषित था, जो किरीट धारण ये हुए था, जिसके शरीरपर पीताम्बर सुशोभित था र देहकी कान्ति नीले कमलके समान थी, जो ोंद्वारा अलंकृत और मेघकी तरह अत्यन्त भयंकर रूपसे गर्जना कर रहा था तथा प्राणियोंके लिये शरीरधारी भयका आश्रयस्थान था। उस भीषण एवं उग्र नेत्रवाले स्वरूपको देखकर सभी प्राणी भयभीत हो उठे। कितने तो देखते ही चल बसे, कितने मूर्छित हो गये, कुछ मुखसे फेन उगलने लगे और कुछ लोग विषम अवस्थाको प्राप्त हो गये। उसकी श्वाससे विष्णु, इन्द्र और दानव—सभी जलने लगे। थोड़ी देर पहले जो दिव्य रूपवाले थे, वे जले हुए अंगारके समान हो गये। तब भगवान् विष्णुने भयभीत होकर उस सुरात्मकसे इस प्रकार प्रश्न किया ॥ १४–१८ ॥

श्रीभगवानुवाच

को भवानन्तकप्रख्यः किमिच्छसि कुतोऽपि च। किं कृत्वा ते प्रियं जायेदेवमाचक्ष्व मेऽखिलम् ॥ १९ ॥
तच्च तस्य वचः श्रुत्वा विष्णोः कालाग्नि[illegible] मेघकूटरवु भिन्नदुन्दुभिनिःस्वनः ॥ २० ॥

Sri Vidyabharati Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

श्रीभगवान्‌ने पूछा—यमराजके समान आप कौन हैं ? क्या चाहते हैं ? और कहाँसे आ रहे हैं ? क्या करनेसे आपकी कामना पूर्ण होगी ? ये सभी बातें मुझे बताइये । भगवान् विष्णुकी वह बात सु कालाग्निके समान भयंकर एवं फटी हुई दुन् समान बोलनेवाला कालकूट बोला ॥ १९-२० ॥

कालकूट उवाच

अहं हि कालकूटाख्यो विषोऽम्बुधिसमुद्भवः । यदा तीव्रतरामर्षैः परस्परवधैषिभिः ॥
सुरासुरैर्विमथितो दुग्धाम्भोनिधिरद्भुतः । सम्भूतोऽहं तदा सर्वान् हन्तुं देवान् सदानवान् ॥
सर्वानिह हनिष्यामि क्षणमात्रेण देहिनः । मां वा ग्रसत वै सर्वे यात वा गिरिशान्तिकम् ॥
श्रुत्वैतद् वचनं तस्य ततो भीताः सुरासुराः । ब्रह्मविष्णू पुरस्कृत्य गतास्ते शङ्करान्तिकम् ॥
निवेदितास्ततो द्वाःस्थैस्ते गणेशैः सुरासुराः । अनुज्ञाताः शिवेनाथ विविशुर्गिरिशान्तिकम् ॥
मन्दरस्य गुहां हैमीं मुक्तामणिविभूषिताम् । सुस्वच्छमणिसोपानां वैदूर्यस्तम्भमण्डिताम् ॥
तत्र देवासुरैः सर्वैर्जानुभिर्धरणीं गतैः । ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा इदं स्तोत्रमुदाहृतम् ॥

कालकूटने कहा—विष्णो ! मैं समुद्रसे उत्पन्न हुआ कालकूट नामक विष हूँ । जब परस्पर एक-दूसरेके वधके अभिलाषी देवता तथा दैत्योंद्वारा उग्र वेगसे अद्भुत क्षीरसागर मथा गया, तब मैं उन सभी देवताओं और दानवोंका संहार करनेके लिये उत्पन्न हुआ हूँ । मैं क्षणभरमें ही सभी शरीरधारियोंका संहार कर सकता हूँ । अतः ये सभी लोग या तो मुझे निगल जायँ अथवा शंकरकी शरणमें जायँ । कालकूटकी वह बात सुनकर देवता और असुर भयभीत हो गये, तब वे ब्रह्मा और विष्णुको आगे करके शंकरजीके पास जानेके लिये प्रस्थित हुए । वहाँ पहुँचनेपर द्वा गणेश्वरोंने जाकर शिवजीसे देवताओं और आगमनकी सूचना दी । तब शंकरजीसे आज्ञा पा लोग शिवजीके निकट मन्दराचलकी उस सुव गुफामें गये, जो मुक्तामणियोंसे विभूषित थी, स्वच्छ मणिजटित सीढ़ियाँ लगी थीं और जो मणिके स्तम्भसे शोभायमान थी । वहाँ ब्रह्माजीको कर सभी देवताओं और असुरोंने पृथिवीपर टेककर शिवजीको (पञ्चाङ्ग) नमस्कार किया औ वे इस स्तोत्रका पाठ करने लगे ॥ २१-२७ ॥

देवदानवा ऊचुः

नमस्तुभ्यं विरूपाक्ष नमस्ते दिव्यचक्षुषे । नमः पिनाकहस्ताय वज्रहस्ताय धन्विने ।
नमस्त्रिशूलहस्ताय दण्डहस्ताय धूर्जटे । नमस्त्रैलोक्यनाथाय भूतग्रामशरीरिणे ।
नमः सुरारिहन्त्रे च सोमाग्न्यर्काग्र्यचक्षुषे । ब्रह्मणे चैव रुद्राय नमस्ते विष्णुरूपिणे ।
ब्रह्मणे वेदरूपाय नमस्ते देवरूपिणे । सांख्ययोगाय भूतानां नमस्ते शम्भवाय ते ।
मन्मथाङ्गविनाशाय नमः कालक्षयंकर । रंहसे देवदेवाय नमस्ते वसुरेतसे ।
एकवीराय सर्वाय नमः पिङ्गकपर्दिने । उमाभर्त्रे नमस्तुभ्यं यज्ञत्रिपुरघातिने ।
शुद्धबोधप्रबुद्धाय मुक्तकैवल्यरूपिणे । लोकत्रयविधात्रे च वरुणेन्द्राग्निरूपिणे ।
ऋग्यजुःसामरूपाय पुरुषायेश्वराय च । अग्र्याय चैव चोग्राय विप्राय श्रुतिचक्षुषे ।
रजसे चैव सत्त्वाय तमसे तिमिरात्मने । अनित्यनित्यभावाय नमो नित्यचरात्मने ।
व्यक्ताय चैवाव्यक्ताय व्यक्ताव्यक्ताय वै नमः । भक्तानामार्तिनाशाय प्रियनारायणाय च ।
उमाप्रियाय शर्वाय नन्दिवक्त्राञ्चिताय च । ऋतुमन्वन्तकल्पाय पक्षमासदिनात्मने ।
नानारूपाय मुण्डाय वरूथपृथुदण्डिने । नमः कपालहस्ताय दिग्वासाय शिखण्डिने ।

Sri Vidyadhiraja Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

धन्विने रथिने चैव यतये ब्रह्मचारिणे । इत्येवमादिचरितैः स्तुतं तुभ्यं नमो नमः ॥ ४० ॥
एवं सुरासुरैः स्थाणुः स्तुतस्तोषमुपागतः । उवाच वाक्यं भीतानां स्मितान्वितशुभाक्षरम् ॥ ४१ ॥

देवताओं और दानवोंने कहा—विरूपाक्ष ! आपको नमस्कार है । दिव्य नेत्रधारी आपको प्रणाम है । आप अपने हाथोंमें पिनाक, वज्र और धनुष धारण करनेवाले हैं, आपको अभिवादन है । हाथमें त्रिशूल और दण्ड धारण करनेवाले जटाधारीको नमस्कार है । आप त्रिलोकीनाथ और प्राणिसमूहके शरीररूप हैं, आपको प्रणाम है । देव-शत्रुओंका संहार करनेवाले तथा चन्द्रमा, अग्नि और सूर्यरूप नेत्र धारण करनेवालेको अभिवादन है । ब्रह्मा, विष्णु और रुद्ररूप आपको नमस्कार है । आप ब्रह्मस्वरूप, वेदस्वरूप और देवरूप हैं, आपको प्रणाम है । आप सांख्ययोगस्वरूप और प्राणियोंका कल्याण करनेवाले हैं, आपको अभिवादन है । कामदेवके शरीरके विनाशक और कालके क्षयकर्ता आपको नमस्कार है । आप वेगशाली, देवाधिदेव और वसुरेता हैं, आपको प्रणाम है । सर्वश्रेष्ठ वीर, सर्वस्वरूप और पीले रंगकी जटा धारण करनेवालेको अभिवादन है । उमाके पति तथा यज्ञ एवं त्रिपुरका विनाश करनेवाले आपको नमस्कार है । आप शुद्ध ज्ञानसे परिपूर्ण, मुक्त कैवल्यरूप, तीनों लोकोंके विधाता, वरुण, इन्द्र और अग्निके स्वरूप, ऋक्, यजुः और सामवेदरूप, पुरुषोत्तम, परमेश्वर, सर्वश्रेष्ठ, भयंकर, ब्राह्मणस्वरूप, श्रुतिरूप नेत्रवाले, सत्त्व, रजस्, तमस्—तीनों गुणोंसे युक्त अन्धकारस्वरूप, अनित्य और नित्य भावसे सम्पन्न तथा नित्यचरात्मा हैं । आपको प्रणाम है । आप व्यक्त, अव्यक्त और व्यक्ताव्यक्त हैं, आपको अभिवादन है । आप भक्तोंकी पीड़ाके विनाशक, नारायणके मित्र, उमाके प्रियतम, संहारकर्ता, नन्दीके मुखसे सुशोभित, मन्वन्तर-कल्प-ऋतु-मास-पक्ष-दिनरूप, अनेक रूपधारी, मुण्डित सिरवाले, स्थूल दण्ड और कवच धारण करनेवाले, खप्परधारी, दिगम्बर, चूडाधारी, धनुषधारी, महारथी, संन्यासी और ब्रह्मचारी हैं, आपको नमस्कार है । इस प्रकारके अनेकों चरित्रोंसे स्तुत होनेवाले आपको बारंबार प्रणाम है । इस प्रकार देवासुरोंद्वारा स्तवन किये जानेपर शंकरजी प्रसन्न हो गये । तब वे उन भयभीत देवासुरोंसे मुसकराते हुए सुन्दर अक्षरोंसे युक्त वचन बोले ॥ २८—४१ ॥

श्रीशंकर उवाच

किमर्थमागता ब्रूत त्राससम्लानमुखाम्बुजाः ।
किं वाभीष्टं ददाम्यद्य कामं प्रब्रूत मा चिरम् । इत्युक्तास्ते तु देवेन प्रोचुस्तं ससुरासुराः ॥ ४२ ॥

भगवान् श्रीशंकरने कहा—देवता एवं दानवो ! तुम्हारे मुखकमल भयके कारण मलिन दीख रहे हैं, बतलाओ, तुमलोग यहाँ किसलिये आये हो ? मैं आज तुमलोगोंको कौन-सी अभीष्ट वस्तु दूँ, यह निर्भय होकर बतलाओ, देर मत करो । भगवान् शंकरद्वारा ऐसा कहे जानेपर देवासुरोंने उनसे इस प्रकार कहा ॥ ४२ ॥

सुरासुरा ऊचुः

अमृतार्थे महादेव मथ्यमाने महोदधौ । विषमद्भुतमुद्भूतं लोकसंक्षयकारकम् ॥ ४३ ॥
स उवाचाथ सर्वेषां देवानां भयकारकः । सर्वान् वो भक्षयिष्यामि अथवा मा पिबन्त्वथ ॥ ४४ ॥
तमशक्ता वयं ग्रस्तुं सोऽस्मान्प्रशक्तो बलोत्कटः । एष निःश्वासमात्रेण शतपर्वसमद्युतिः ॥ ४५ ॥
विष्णुः कृष्णः कृतस्तेन यमश्च विषमात्मवान् । मूर्च्छिताः पतिताश्चान्ये विप्रणाशं गताः परे ॥ ४६ ॥
अर्थोऽनर्थक्रियां याति दुर्भगाणां यथा विभो । दुर्बलानां च संकल्पो यथा भवति चापदि ॥ ४७ ॥
विषमेतत् समुद्भूतं तस्माद् [illegible] । अस्माद् [illegible] त्वं गतिस्त्वं च परायणम् ॥ ४८ ॥

Maharshi ... Collection ... eGangotri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

भक्तानुकम्पी भावज्ञो भुवनाधीश्वरो विभुः । यज्ञाग्रभुक् सर्वहविः सौम्यः सोमः स्मरान्तकृत् ॥ ४९ ॥
त्वमेको नो गतिर्देव गीर्वाणगणशर्मकृत् । रक्षास्मान् भक्षसंकल्पाद् विरूपाक्ष विषज्वरात् ॥ ५० ॥
तच्छ्रुत्वा भगवानाह भगनेत्रान्तकृद् भवः ॥ ५१ ॥

देवासुर बोले—महादेव ! अमृतके लिये महासागरको मथते समय अद्भुत विष उत्पन्न हुआ है, जो सभी लोकोंका विनाश करनेवाला है । सभी देवताओंको भयभीत करनेवाले उस विषने स्वयं कहा है कि 'मैं तुम सभीको खा जाऊँगा, अन्यथा तुमलोग मुझे पी जाओ ।' ऐसी दशामें हमलोग उस विषको पान करनेमें सर्वथा असमर्थ हैं, किंतु वह महाबली विष हमलोगोंको खा सकता है । उसने अपने निःश्वासमात्रसे सैकड़ों चन्द्रमाके समान कान्तिमान् भगवान् विष्णुको कृष्णवर्ण तथा यमराजको विक्षिप्त कर दिया है । कुछ लोग मूर्छित हो गये हैं और कुछ नष्ट हो गये । भगवन् ! जिस प्रकार अभागोंके अर्थ भी अनर्थके कारण बन जाते हैं तथा आपत्तिकालमें दुर्बलोंके संकल्प विपरीत फल देनेवाले हो जाते हैं, उसी प्रकार अमृतकी अभिलाषासे युक्त हमलोगोंके लिये यह विष उत्पन्न हुआ है । अतः आप इस भयसे हमलोगोंको मुक्त कीजिये, आप ही एकमात्र हम सबके शरणदाता हैं । आप भक्तोंपर अनुकम्पा करनेवाले, मनके भावोंके ज्ञाता, सभी भुवनोंके ईश्वर, सर्वव्यापक, यज्ञोंमें सर्वप्रथम भाग ग्रहण करनेवाले, सकल हवनीय द्रव्यस्वरूप, सौम्य, उमाके साथ स्थित और कामदेवके विनाशक हैं । देवताओंका कल्याण करनेवाले देव ! एकमात्र आप ही हमलोगोंके शरणदाता हैं । विरूपाक्ष ! (सबको) खा लेनेके विचारवाले इस विषके कष्टसे हमलोगोंकी रक्षा कीजिये । यह सुनकर भगदेवताके नेत्रोंका विनाश करनेवाले भगवान् शंकरने कहा ॥ ४३–५१ ॥

देवदेव उवाच

भक्षयिष्याम्यहं घोरं कालकूटं महाविषम् ।
तथान्यदपि यत्कृत्यं कृच्छ्रसाध्यं सुरासुराः । तच्चापि साधयिष्यामि तिष्ठध्वं विगतज्वराः ॥ ५२ ॥
इत्युक्ता हृष्टरोमाणो वाष्पगद्गदकण्ठिनः ।
आनन्दाश्रुपरीताक्षाः सनाथा इव मेनिरे । सुरा ब्रह्मादयः सर्वे समाश्वस्ताः सुमानसाः ॥ ५३ ॥
ततोऽव्रजद् द्रुतगतिना ककुद्मिना हरोऽम्बरे पवनगतिर्जगत्पतिः ।
प्रधावितैरसुरसुरेन्द्रनायकैः स्ववाहनैर्विचलितशुभ्रचामरैः ।
पुरःसरैः स तु शुशुभे शुभाश्रयैः शिवो वशी शिखिकपिशोर्ध्वजूटकः ॥ ५४ ॥
आसाद्य दुग्धसिन्धुं तं कालकूटं विषं यतः । ततो देवो महादेवो विलोक्य विषमं विषम् ॥ ५५ ॥
छायास्थानकमास्थाय सोऽपिबद् वामपाणिना । पीयमाने विषे तस्मिंस्ततो देवा महासुराः ॥ ५६ ॥
जगुश्च ननृतुश्चापि सिंहनादांश्च पुष्कलान् । चक्रुः शक्रमुखाद्याश्च हिरण्याक्षादयस्तथा ॥ ५७ ॥
स्तुवन्तश्चैव देवेशं प्रसन्नाश्चाभवंस्तदा । कण्ठदेशे ततः प्राप्ते विषे देवमथाब्रुवन् ॥ ५८ ॥
विरिञ्चिप्रमुखा देवा बलिप्रमुखतोऽसुराः । शोभते देव कण्ठस्ते गात्रे कुन्दनिभप्रभे ॥ ५९ ॥
भृङ्गमालानिभं कण्ठेऽप्यत्रैवास्तु विषं तव । इत्युक्तः शंकरो देवस्तथा प्राह पुरान्तकृत् ॥ ६० ॥
पीते विषे देवगणान् विमुच्य गतो हरो मन्दरशैलमेव ।
तस्मिन् गते देवगणाः पुनस्तं ममन्थुरब्धिं विविधप्रकारैः ॥ ६१ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽमृतमन्थने कालकूटोत्पत्तिर्नाम पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५० ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

देवाधिदेव बोले—देवासुरगण ! मैं उस कालकूट नामक महान् भयंकर विषको तो पी ही जाऊँगा, इसके अतिरिक्त तुमलोगोंका जो कोई अन्य भी कष्टसाध्य कार्य होगा, उसे भी सिद्ध कर दूँगा, तुम लोग चिन्तारहित हो जाओ। इस प्रकार कहे जानेपर ब्रह्मा आदि सभी देवताओंका मन प्रसन्न हो गया, वे भलीभाँति आश्वस्त हो गये, उनके शरीर रोमाञ्चित हो उठे, कण्ठ आँसुओंसे गद्गद हो गये, नेत्रोंमें आनन्दाश्रु छलक आये और वे उस समय अपनेको सनाथ मानने लगे। तदनन्तर जगत्पति भगवान् शंकर वेगशाली नन्दिकेश्वरपर आरूढ़ होकर वायुके समान वेगसे आकाशमार्गसे उस ओर चले। उस समय असुरों तथा सुरोंके अधिपति गण अपने-अपने वाहनोंपर आरूढ़ हो चमर डुलाते हुए उनके आगे-आगे दौड़ रहे थे। इस प्रकार अग्निकी ज्वालासे भूरे रंगवाली जटासे युक्त इन्द्रियजयी भगवान् शिव मङ्गलके आधारस्वरूप उन देवताओंके साथ शोभायमान हो रहे थे। तदनन्तर वे जहाँसे कालकूट विष उत्पन्न हुआ था, उस क्षीरसागरपर पहुँचे। तत्पश्चात् भगवान् महादेवने उस विषम विषको देखकर एक छायायुक्त स्थानमें बैठकर अपने बायें हाथसे उसे पी लिया। उस विषके पी लिये जानेपर इन्द्रादि देव तथा हिरण्याक्ष प्रभृति असुर हर्षपूर्वक नाचने-गाने और भयंकर सिंहनाद करने लगे तथा देवेशकी स्तुति करते हुए प्रसन्न हो गये। उस समय विषके भगवान् शंकरके गलेमें पहुँचनेपर ब्रह्मादि देवता और बलि आदि असुरोंने उनसे इस प्रकार कहा—'देव ! कुन्दकी-सी उज्ज्वल कान्तिवाले आपके शरीरमें कण्ठकी विचित्र शोभा हो रही है। अब यह भृङ्गावलीकी भाँति काला विष यहीं आपके कण्ठमें स्थित रहे।' इस प्रकार कहे जानेपर त्रिपुरविनाशक भगवान् शंकरने 'तथास्तु—वैसा ही हो' यों कहकर उसे स्वीकार कर लिया। इस प्रकार विषपान कर लेनेके बाद शंकरजी देवताओंको वहीं छोड़ पुनः मन्दराचलको चले गये। उनके चले जानेपर देवगण पुनः उस समुद्रको विविध प्रकारसे मथने लगे ॥ ५२–६१ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके अमृतमन्थन-प्रसंगमें कालकूटोत्पत्ति नामक दो सौ पचासवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥२५०॥

दो सौ इक्यावनवाँ अध्याय

अमृतका प्राकट्य, मोहिनीरूपधारी भगवान् विष्णुद्वारा देवताओंका अमृत-पान तथा देवासुरसंग्राम

सूत उवाच

मथ्यमाने पुनस्तस्मिन् जलधौ समदृश्यत। धन्वन्तरिः स भगवानायुर्वेदप्रजापतिः ॥ १ ॥
मदिरा चायताक्षी सा लोकचित्तप्रमाथिनी। ततोऽमृतं च सुरभिः सर्वभूतभयापहा ॥ २ ॥
जग्राह कमलां विष्णुः कौस्तुभं च महामणिम्। गजेन्द्रं च सहस्राक्षो हयरत्नं च भास्करः ॥ ३ ॥
धन्वन्तरिं च जग्राह लोकारोग्यप्रवर्तकम्। छत्रं जग्राह वरुणः कुण्डले च शचीपतिः ॥ ४ ॥
पारिजाततरुं वायुर्जग्राह मुदितस्तथा। धन्वन्तरिस्ततो देवो वपुष्मानुदतिष्ठत ॥ ५ ॥
श्वेतं कमण्डलुं बिभ्रदमृतं यत्र तिष्ठति। एतदत्यद्भुतं दृष्ट्वा दानवानां समुत्थितः ॥ ६ ॥
अमृतार्थे महानादो ममेदमिति जल्पताम्। ततो नारायणो मायामास्थितो मोहिनीं प्रभुः ॥ ७ ॥
स्त्रीरूपमतुलं कृत्वा दानवानभिसंस्थितः।
ततस्तदमृतं तस्यै ददुस्ते मूढचेतनाः। स्त्रियै दानवदैतेयाः सर्वे तद्गतमानसाः ॥ ८ ॥
अथास्त्राणि च मुख्यानि महाप्रहरणानि च। प्रगृह्याभ्यद्रवन् देवान् सहिता दैत्यदानवाः ॥ ९ ॥
ततस्तदमृतं देवो विष्णुरादाय वीर्यवान्। जहार दानवेन्द्रेभ्यो नरेण सहितः प्रभुः ॥ १० ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! पुनः उस समुद्रके मथे जानेपर आयुर्वेदके प्रजापति भगवान् धन्वन्तरि दीख पड़े। पुनः लोगोंके चित्तको उन्मत्त कर देनेवाली एवं बड़ी आँखोंवाली मदिरा उत्पन्न हुई। तदनन्तर अमृत प्रकट हुआ, फिर सभी प्राणियोंके भयको दूर करनेवाली कामधेनु उत्पन्न हुई। उस समय भगवान् विष्णुने लक्ष्मी और महामणि कौस्तुभको तथा हजार नेत्रोंवाले इन्द्रने गजराज ऐरावतको ग्रहण किया। सूर्यने अश्वरत्न उच्चैःश्रवा और लोकमें आरोग्यके प्रवर्तक धन्वन्तरिको स्वीकार किया। वरुणने छत्रको और शचीपति इन्द्रने दोनों कुण्डलोंको ग्रहण किया। वायुदेवने बड़ी प्रसन्नतासे पारिजात वृक्षको ग्रहण किया। इसके बाद शरीरधारी धन्वन्तरि उठकर खड़े हुए। वे एक श्वेतवर्णका कमण्डलु धारण किए हुए थे, जिसमें अमृत भरा था। उस अत्यन्त अद्भुत पात्रको देखकर अमृतके लिये 'यह मेरा है, यह मेरा है' ऐसा बकनेवाले दानवोंके दलमें महान् कोलाहल मच गया। तब भगवान् विष्णुने मोहिनी मायाका आश्रय लिया। वे स्त्रीका अनुपम रूप धारण कर दानवोंके समीप उपस्थित हुए। तब उन मुग्ध चित्तवाले दैत्योंने अमृतको उस स्त्रीके हाथोंमें समर्पित कर दिया; क्योंकि उन सभी दैत्यों और दानवोंका मन उसपर मोहित हो गया था। तदनन्तर वे सभी दैत्य-दानव संगठित होकर मुख्य-मुख्य महान् शस्त्रास्त्रोंको लेकर देवताओंपर टूट पड़े। इस समय नरके साथ-साथ पराक्रमी एवं सामर्थ्यशाली भगवान् विष्णुने उस अमृतको दानवेन्द्रोंसे छीन लिया ॥ १–१० ॥

ततो देवगणाः सर्वे पपुस्तदमृतं तदा। विष्णोः सकाशात् सम्प्राप्य संग्रामे तुमुले सति ॥ ११ ॥
ततः पिबत्सु तत्कालं देवेष्वमृतमीप्सितम्। राहुर्विबुधरूपेण दानवोऽप्यपिबत् तदा ॥ १२ ॥
तस्य कण्ठमनुप्राप्ते दानवस्यामृते तदा। आख्यातं चन्द्रसूर्याभ्यां सुराणां हितकाम्यया ॥ १३ ॥
ततो भगवता तस्य शिरश्छिन्नमलंकृतम्। चक्रायुधेन चक्रेण पिबतोऽमृतमोजसा ॥ १४ ॥
तच्छैलशृङ्गप्रतिमं दानवस्य शिरो महत्। चक्रेणोत्कृत्तमपतच्चालयद् वसुधातलम् ॥ १५ ॥
ततो वैरविनिर्बन्धः कृतो राहुमुखेन वै। शाश्वतश्चन्द्रसूर्याभ्यां प्रसत्याद्यापि बाधते ॥ १६ ॥
विहाय भगवांश्चापि स्त्रीरूपमतुलं हरिः।
नानाप्रहरणैर्भीमैर्दानवान् समकम्पयत्। प्रासाः सुविपुलास्तीक्ष्णाः पतन्तश्च सहस्रशः ॥ १७ ॥
तेऽसुराश्चक्रनिर्भिन्ना वमन्तो रुधिरं बहु। असिशक्तिगदाभिन्ना निपेतुर्धरणीतले ॥ १८ ॥
भिन्नानि पट्टिशैश्चापि शिरांसि युधि दारुणैः। तप्तकाञ्चनमाल्यानि निपेतुरनिशं तदा ॥ १९ ॥
रुधिरेणावलिप्ताङ्गा निहताश्च महासुराः। अद्रीणामिव कूटानि धातुरक्तानि शेरते ॥ २० ॥
ततो हलहलाशब्दः सम्बभूव समन्ततः। अन्योन्यं छिन्दतां शस्त्रैरादित्ये लोहितायति ॥ २१ ॥
परिघैश्चायसैः पातैः सन्निकर्षैश्च मुष्टिभिः। निघ्नतां समरेऽन्योन्यं शब्दो दिवमिवास्पृशत् ॥ २२ ॥
छिन्धि भिन्धि प्रधावेति पातयाभिसरेति वै। विश्रूयन्ते महाघोराः शब्दास्तत्र समन्ततः ॥ २३ ॥
एवं सुतुमुले युद्धे वर्तमाने महाभये। नरनारायणौ देवौ समाजग्मतुराहवम् ॥ २४ ॥
तत्र दिव्यं धनुर्दृष्ट्वा नरस्य भगवानपि। चिन्तयामास वै चक्रं विष्णुर्दानवसूदनः ॥ २५ ॥

तदनन्तर सभी देवता उस तुमुल युद्धके बीच ही विष्णु भगवान्‌से उस अमृतको लेकर पान करने लगे। उस अभिलषित अमृतको पीते समय देवताओंके मध्यमें देवरूपधारी राहु नामक दानव भी अमृतका पान करने लगा। वह अमृत उसके कण्ठदेशतक ही पहुँच पाया था कि देवताओंकी कल्याण-भावनासे प्रेरित होकर चन्द्रमा और सूर्यने उसके भेदको प्रकट कर दिया। तब अमृत पीते हुए उस दानवके अलंकृत सिरको भगवान्‌ने अपने पराक्रमसे चक्रद्वारा काट दिया। फिर तो अ... दानवका चक्रसे कटा हुआ पर्वतशिखरकी भाँति विशाल

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

*

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

मस्तक वसुधातलको कँपाता हुआ भूतलपर गिर पड़ा। तभीसे राहुके उस मुखने चन्द्रमा और सूर्यके साथ अटूट वैर निश्चित कर लिया, जो आज भी उन्हें पीड़ा पहुँचाता है। तत्पश्चात् विष्णु भी उस अनुपम स्त्री-रूपको त्यागकर विविध प्रकारके भयंकर शस्त्रास्त्रोंद्वारा दानवोंको प्रकम्पित करने लगे। उस समय विशाल और तीखी धारवाले हजारों भाले दानवोंपर गिरने लगे। भगवान्‌के चक्रसे छिन्न-भिन्न अङ्गोंवाले राक्षसगण अत्यधिक रक्त वमन करते हुए तलवार और गदाके प्रहारसे घायल होकर पृथ्वीतलपर गिरने लगे। उस समय उस युद्धमें तपाये हुए स्वर्णकी मालाओंसे सुशोभित असुरोंके सिर भीषण पट्टिशोंके प्रहारसे विदीर्ण होकर निरन्तर गिर रहे थे। वहाँ रक्तसे लथपथ हुए अङ्गोंवाले मारे गये महान् असुर गेरूसे रँगे हुए पर्वतोंके शिखरोंकी भाँति सो रहे थे। तदनन्तर सूर्यके लाल हो जानेपर परस्पर एक-दूसरेको शस्त्रोंद्वारा काटनेवालोंका महान् कोलाहल चारों ओर गूँज उठा। उस समरमें लोहनिर्मित परिघों और मुष्टियोंके प्रहारसे एक-दूसरेको मारनेवालोंका शब्द आकाश-मण्डलका स्पर्श-सा कर रहा था। उस समय वहाँ चारों ओर 'काट डालो, विदीर्ण कर दो, दौड़ो, गिरा दो, आगे बढ़ो'—इस प्रकारके महान् भयंकर शब्द सुनायी पड़ रहे थे। इस प्रकार महान् भयकारक घमासान युद्धके चलते समय भगवान् नर-नारायण युद्धस्थलमें उपस्थित हुए। वहाँ नरके दिव्य धनुषको देखकर दैत्यसूदन भगवान् नारायणने भी अपने सुदर्शन चक्रका स्मरण किया ॥ ११—२५ ॥

ततोऽम्बराच्चिन्तितमात्रमागतं महाप्रभं चक्रममित्रनाशनम्।
विभावसोस्तुल्यमकुण्ठमण्डलं सुदर्शनं भीममसह्यविक्रमम् ॥ २६ ॥
तदागतं ज्वलितहुताशनप्रभं भयंकरः करिकरबाहुरच्युतः।
महाप्रभं दनुकुलदैत्यदारणं तथोज्ज्वलज्ज्वलनसमानविग्रहम् ॥ २७ ॥
मुमोच वै तदतुलमुग्रवेगवान् महाप्रभं रिपुनगरावदारणम्।
संवर्तकज्वलनसमानवर्चसं पुनःपुनर्न्यपतत वेगवत् तदा ॥ २८ ॥
व्यदारयद् दितितनयान् सहस्रशः करेरितं पुरुषवरेण संयुगे।
दहत् क्वचिज्ज्वलन इवानिलेरितः प्रसह्य तानसुरगणानकृन्तत ॥ २९ ॥
तत्प्रेरितं वियति मुहुः क्षितौ तदा पपौ रणे रुधिरमथो पिशाचवत्।
अथासुरा गिरिभिरदीनमानसा मुहुर्मुहुः सुरगणमर्दयंस्तदा ॥ ३० ॥
महाबला विगलितमेघवर्चसः सहस्रशो गगनमहाप्रपातिनः।
अथासुरा भयजननाः प्रपेदिरे सपादपा बहुविधमेघरूपिणः ॥ ३१ ॥
महाद्रयः प्रविगलिताग्रसानवः परस्परं द्रुतमभिपत्य सस्वराः।
ततो मही प्रचलितसाद्रिकानना तदाद्रिपाताभिहता समन्ततः ॥ ३२ ॥
परस्परं समभिनिगर्जतां मुहु रणाजिरे भृशमभिसम्प्रवर्तिते।
नरस्ततो वरकनकाग्रभूषणैर्महेषुभिः पवनपथं समावृणोत् ॥ ३३ ॥
विदारयन् गिरिशिखराणि पत्रिभिर्महाभये सुरगणविग्रहे तदा।
ततो महीं लवणजलं च सागरं महासुराः प्रविविशुरर्दिताः सुरैः ॥ ३५ ॥
वियद्गतं ज्वलितहुताशनप्रभं सुदर्शनं परिकुपितं निशम्य च।
ततः सुरैर्विजयमवाप्य मन्दरः स्वमेव देशं गमितः सुपूजितः ॥ ३५ ॥
वितत्य खं दिवमथ चैव सर्वशस्ततो गताः सलिलधरा यथागतम्।

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

ततोऽमृतं सुनिहितमेव चक्रिरे सुराः परां मुदमभिगम्य पुष्कलाम् ।
दृदृशुश्च तं निधिममृतस्य रक्षितं किरीटिने बलिभिरथामरैः सह ॥ ३

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽमृतमन्थनं नामैकपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५१ ॥

तदनन्तर स्मरण करते ही वह असह्य प्रभावशाली, अत्यन्त कान्तिमान्, शत्रुनाशक, सूर्यके समान तेजस्वी, विस्तृत मण्डलोंवाला भयंकर सुदर्शन चक्र आकाशमार्गसे नीचे उतरा। तब हाथीकी शुण्डके समान बाहुवाले उग्र वेगशाली भगवान् विष्णुने प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी दानवकुलसंहारक धधकती हुई अग्निके सदृश शरीरवाले परम कान्तिशाली भयंकर चक्रको आया हुआ देखकर उसे दैत्यसेनापर चला दिया। फिर तो रिपुके नगरोंका विध्वंस करनेवाला, संवर्तक नामक प्रलयाग्निके समान तेजस्वी, अनुपम कान्तिमान् वह सुदर्शन चक्र बारंबार वेगपूर्वक शत्रुओंपर प्रहार करने लगा। युद्धभूमिमें पुरुषोत्तमके हाथसे छोड़े गये उस चक्रने हजारों दैत्योंको विदीर्ण कर दिया। उसने वायुसे प्रेरित अग्निकी भाँति कहीं सेनाओंको भस्म कर दिया तो कहीं उन असुरोंको बलपूर्वक काट डाला। रणभूमिमें भगवान्‌के हाथसे प्रेरित वह सुदर्शन चक्र बारंबार आकाशमें तथा पृथ्वी-तलपर पिशाचके समान रक्तपान करने लगा। इसके बाद निर्भय चित्तवाले असुर पर्वतोंद्वारा बारंबार देवताओंकी सेनाको नष्ट करने लगे। हजारों महाबलवान् असुर जलरहित मेघोंके समान आकाशमण्डलसे नीचे गिर रहे थे, जिससे वे अतिशय भयंकर हो गये थे। उनके द्वारा फेंके गये वृक्ष मेघोंके समान दिखायी प[ड़ते] थे। विशाल पर्वत, जिनकी चोटियाँ छिन्न-भिन्न हो [गयी] थीं, शब्द करते हुए एक-दूसरेसे टकरा रहे थे। [उन] पर्वतोंके गिरनेसे अभिहत हुई पर्वत-वनोंसहित [यह] पृथ्वी कम्पायमान हो गयी। इस प्रकार जब युद्धस[्थलमें] एक-दूसरेपर भीषण गर्जन करते हुए बारंबार [प्र]तिघात होने लगा और दानवोंने देव-सेनाओं[को] आतंकित कर दिया, तब नरने सुन्दर सुवर्ण[जटित] अग्रभागवाले अपने विशाल बाणोंसे वायुमार्गको अव[रुद्ध] कर दिया और बाणोंके प्रहारसे पर्वत-शिखरोंको वि[दीर्ण] कर दिया। इस प्रकार देवताओंद्वारा ताड़ित किये [गये] बड़े-बड़े असुर योद्धा पाताल एवं खारे समुद्रमें प्र[विष्ट] हो गये। जलती हुई अग्निके समान कान्तिमान् [एवं] अतिशय कोपमें भरे हुए सुदर्शन चक्रको आकाशमें [गया] हुआ सुनकर देवगण विजयी हुए। तदनन्तर मन्[दरा]चलको आदरपूर्वक अपने स्थानपर स्थापित कर दि[या] गया और सभी दिशाओं तथा आकाशमें फैले हुए बाद[ल] समूह भी जैसे आये थे वैसे ही चले गये। तत्पश्[चात्] देवगण परम हर्षपूर्वक अमृतको सुरक्षित कर लिये [और] उसकी संचित निधिको बलवान् देवताओंके [साथ] किरीटधारी भगवान्‌को सुरक्षाके लिये सौंप दिया गया।

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अमृतमन्थन नामक दो सौ इक्यावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २५१ ॥

दो सौ बावनवाँ अध्याय

वास्तुके प्रादुर्भावकी कथा

ऋषय ऊचुः

प्रासादभवनादीनां निवेशं विस्तराद् वद । कुर्यात् केन विधानेन कश्च वास्तुरुदाहृतः ॥ १

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! अब आप हमलोगोंको [प्रासाद एवं] राजभवन आदिके संनिवेशकी [विधि] विस्तारपूर्वक बतलाइये। साथ ही वास्[तु] और उनके बनाये जानेकी [विधि क्या कहलाता] है, इसपर भी प्रकाश डालिये ॥ १ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre Bangalore

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

सूत उवाच

भृगुरत्रिर्वसिष्ठश्च विश्वकर्मा मयस्तथा । नारदो नग्नजिच्चैव विशालाक्षः पुरंदरः ॥ २ ॥
ब्रह्मा कुमारो नन्दीशः शौनको गर्ग एव च । वासुदेवोऽनिरुद्धश्च तथा शुक्रबृहस्पती ॥ ३ ॥
अष्टादशैते विख्याता वास्तुशास्त्रोपदेशकाः । संक्षेपेणोपदिष्टं यन्मनवे मत्स्यरूपिणा ॥ ४ ॥
तदिदानीं प्रवक्ष्यामि वास्तुशास्त्रमनुत्तमम् । पुरान्धकवधे घोरे घोररूपस्य शूलिनः ॥ ५ ॥
ललाटस्वेदसलिलमपतद् भुवि भीषणम् । करालवदनं तस्माद् भूतमुद्भूतमुल्बणम् ॥ ६ ॥
ग्रसमानमिवाकाशं सप्तद्वीपां वसुंधराम् । ततोऽन्धकानां रुधिरमपिबत् पतितं क्षितौ ॥ ७ ॥
तेन तत् समरे सर्वं पतितं यन्महीतले । तथापि तृप्तिमगमन्न तद् भूतं यदा तदा ॥ ८ ॥
सदाशिवस्य पुरतस्तपश्चक्रे सुदारुणम् । क्षुधाविष्टं तु तद् भूतमाहर्तुं जगतीत्रयम् ॥ ९ ॥
ततः कालेन संतुष्टो भैरवस्तस्य चाह वै । वरं वृणीष्व भद्रं ते यदभीष्टं तवानघ ॥ १० ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! भृगु, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वकर्मा, मय, नारद, नग्नजित्, भगवान् शंकर इन्द्र, ब्रह्मा, कुमार, नन्दीश्वर, शौनक, गर्ग, वासुदेव, अनिरुद्ध, शुक्र तथा बृहस्पति—ये अठारह वास्तुशास्त्र*के उपदेष्टा माने गये हैं। जिसे मत्स्यरूपधारी भगवान्‌ने संक्षेपमें मनुके प्रति उपदेश किया था, उसी श्रेष्ठ वास्तुशास्त्रको मैं आपलोगोंसे बतला रहा हूँ। प्राचीन कालमें भयंकर अन्धक-वधके समय विकराल रूपधारी भगवान् शंकरके ललाटसे पृथ्वीपर स्वेदविन्दु गिरे थे। उससे एक भीषण एवं विकराल मुखवाला उत्कट प्राणी उत्पन्न हुआ। वह ऐसा प्रतीत होता था मानो सातों द्वीपोंसहित वसुंधरा तथा आकाशको निगल जायगा। तत्पश्चात् वह पृथ्वीपर गिरे हुए अन्धकोंके रक्तका पान करने लगा। इस प्रकार वह उस युद्धमें पृथ्वीपर गिरे हुए सारे रक्तको पान कर गया। किंतु इतनेपर भी जब वह तृप्त न हुआ, तब भगवान् सदाशिवके सम्मुख अत्यन्त घोर तपस्यामें संलग्न हो गया। भूखसे व्याकुल होनेपर जब वह पुनः त्रिलोकीको भक्षण करनेके लिये उद्यत हुआ, तब उसकी तपस्यासे संतुष्ट होकर भगवान् शंकर उससे बोले—'निष्पाप ! तुम्हारा कल्याण हो, अब तुम्हारी जो अभिलाषा हो, वह वर माँग लो' ॥ २–१० ॥

तमुवाच ततो भूतं त्रैलोक्यग्रसनक्षमम् । भवामि देवदेवेश तथेत्युक्तं च शूलिना ॥ ११ ॥
ततस्तत् त्रिदिवं सर्वं भूमण्डलमशेषतः । स्वदेहेनान्तरिक्षं च रुन्धानं प्रपतद् भुवि ॥ १२ ॥
भीतभीतैस्ततो देवैर्ब्रह्मणा चाथ शूलिना । दानवासुररक्षोभिरवष्टब्धं समन्ततः ॥ १३ ॥
येन यत्रैव चाक्रान्तं स तत्रैवावसत् पुनः । निवासात् सर्वदेवानां वास्तुरित्यभिधीयते ॥ १४ ॥
अवष्टब्धेन तेनापि विज्ञप्ताः सर्वदेवताः । प्रसीदध्वं सुराः सर्वे युष्माभिर्निश्चलीकृतः ॥ १५ ॥
स्थास्याम्यहं किमाकारो ह्यवष्टब्धो ह्यधोमुखः । ततो ब्रह्मादिभिः प्रोक्तं वास्तुमध्ये तु यो बलिः ॥ १६ ॥
आहारो वैश्वदेवान्ते नूनमस्य भविष्यति । वास्तूपशमनो यज्ञस्तवाहारो भविष्यति ॥ १७ ॥
यज्ञोत्सवादौ च बलिस्तवाहारो भविष्यति । वास्तुपूजामकुर्वाणस्तवाहारो भविष्यति ॥ १८ ॥
अज्ञानात् तु कृतो यज्ञस्तवाहारो भविष्यति ।
एवमुक्तस्ततो हृष्टः स वास्तुरभवत् तदा । वास्तुयज्ञः स्मृतस्तस्मात् ततः प्रभृति शान्तये ॥ १९ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वास्तुभूतोद्भवो नाम द्विपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५२ ॥

* वास्तुके अर्थ बसनेकी जगह, घर, गाँव नींव, आदि हैं। इसपर समराङ्गणसूत्रधार, वास्तुराजवल्लभ, बृहत्संहिता, शिल्परत्न, गृहरत्नभूषण आदि ग्रन्थोंमें पूर्ण विचार है। पुराणोंमें अग्नि, विष्णुधर्म आदिमें ऐसी ही चर्चा है। इस विद्याका संक्षिप्त उल्लेख ऋग्वेद, शतपथ ब्राह्मण, श्रौतसूत्रों [illegible] आदिमें भी है। इसके मुख्य प्रवर्तक एवं ज्ञाता-कर्ता विश्वकर्मा एवं मय दानव हैं।

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

तब उस प्राणीने शिवजीसे कहा—'देवदेवेश ! मैं तीनों लोकोंको ग्रस लेनेके लिये समर्थ होना चाहता हूँ।' इसपर त्रिशूलधारी शिवजीने कहा—'ऐसा ही होगा'। फिर तो वह प्राणी अपने विशाल शरीरसे स्वर्ग, सम्पूर्ण भूमण्डल और आकाशको अवरुद्ध करता हुआ पृथ्वीपर आ गिरा। तब भयभीत हुए देवताओं तथा ब्रह्मा, शिव, दानव, दैत्य और राक्षसोंद्वारा वह स्तम्भित कर दिया गया। उस समय जिसने उसे जहाँपर आक्रान्त कर रखा था, वह वहीं निवास करने लगा। इस प्रकार सभी देवताओंके निवास करनेके कारण वह वास्तु नामसे विख्यात हुआ। तब उस दबे हुए प्राणीने भी सभी देवताओंसे निवेदन किया—'देवगण ! आपलोग मुझपर प्रसन्न हों। आपलोगोंद्वारा मैं दबाकर निश्चल बना दिया गया हूँ। भला इस प्रकार अवरुद्ध कर दिये जानेपर नीचे मुख किये हुए मैं किस तरह कबतक स्थित रह सकूँगा।' उसके ऐसा निवेदन करनेपर ब्रह्मा आदि देवताओंने कहा—'वास्तुके प्रसङ्गमें तथा वैश्वदेवके अन्तमें जो बलि दी जायगी, वह निश्चय ही तुम्हारा आहार होगी। वास्तु-शान्तिके लिये जो यज्ञ होगा, वह भी तुम्हें आहारके रूपमें प्राप्त होगा। यज्ञोत्सवमें दी गयी बलि भी तुम्हें आहार रूपमें प्राप्त होगी। वास्तु-पूजा न करनेवाले भी तुम्हारे आहार होंगे। अज्ञानसे किया गया यज्ञ भी तुम्हें आहाररूपमें प्राप्त होगा।' ऐसा कहे जानेपर वह वास्तु नामक प्राणी प्रसन्न हो गया। इसी कारण तबसे शान्तिके लिये वास्तु-यज्ञका प्रवर्तन हुआ ॥ ११–१९ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें वास्तु-प्रादुर्भाव नामक दो सौ बावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २५२ ॥

दो सौ तिरपनवाँ अध्याय

वास्तु-चक्रका वर्णन

सूत उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि गृहकालविनिर्णयम्। यथा कालं शुभं ज्ञात्वा सदा भवनमारभेत् ॥ १
चैत्रे व्याधिमवाप्नोति यो गृहं कारयेन्नरः। वैशाखे धेनुरत्नानि ज्येष्ठे मृत्युं तथैव च ॥ २
आषाढे भृत्यरत्नानि पशुवर्गमवाप्नुयात्। श्रावणे भृत्यलाभं तु हानिं भाद्रपदे तथा ॥ ३
पत्नीनाशोऽश्विने विद्यात् कार्तिके धनधान्यकम्। मार्गशीर्षे तथा भक्तं पौषे तस्करतो भयम् ॥ ४
लाभं च बहुशो विन्द्यादग्निं माघे विनिर्दिशेत्। फाल्गुने काञ्चनं पुत्रानिति कालबलं स्मृतम् ॥ ५
अश्विनी रोहिणी मूलमुत्तरात्रयमैन्दवम्। स्वाती हस्तोऽनुराधा च गृहारम्भे प्रशस्यते ॥ ६
आदित्यभौमवर्ज्यास्तु सर्वे वाराः शुभावहाः। वर्ज्यं व्याघातशूले च व्यतीपातातिगण्डयोः ॥ ७
विष्कम्भगण्डपरिघवज्रयोगे न कारयेत्। श्वेते मैत्रेऽथ माहेन्द्रे गान्धर्वाभिजिति रौहिणे ॥ ८
तथा वैराजसावित्रे मुहूर्ते गृहमारभेत्। चन्द्रादित्यबलं लब्ध्वा शुभलग्नं निरीक्षयेत् ॥ ९
स्तम्भोच्छ्रायादि कर्तव्यमन्यत्तु परिवर्जयेत्। प्रासादेष्वेवमेवं स्यात् कूपवापीषु चैव हि ॥ १०

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! अब मैं गृहनिर्माणके उस समयका निर्णय बतला रहा हूँ, जिस शुभ समयको जानकर मनुष्यको सर्वदा भवनका आरम्भ करना चाहिये। जो मनुष्य चैत्र मासमें घर बनाता है, वह व्याधि ... वैशाखमें घर बनानेवाला धेनु और रत्न तथा ज्येष्ठ ... मृत्युको प्राप्त होता है। आषाढ़में नौकर, रत्न और प...

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

समूहकी और श्रावणमें नौकरोंकी प्राप्ति तथा भाद्रपदमें हानि होती है। आश्विनमें घर बनानेसे पत्नीका नाश होता है। कार्तिक मासमें धन-धान्यादिकी तथा मार्गशीर्षमें श्रेष्ठ भोज्यपदार्थोंकी प्राप्ति होती है। पौषमें चोरोंका भय और माघ मासमें अनेक प्रकारके लाभ होते हैं, किंतु अग्निका भी भय रहता है। फाल्गुनमें सुवर्ण तथा अनेक पुत्रोंकी प्राप्ति होती है। इस प्रकार समयका फल एवं बल बतलाया जाता है। गृहारम्भमें अश्विनी, रोहिणी, मूल, तीनों उत्तरा, मृगशिरा, स्वाती, हस्त और अनुराधा—ये नक्षत्र प्रशस्त कहे गये हैं। रविवार और मङ्गलवारको छोड़कर शेष सभी दिन शुभदायक हैं। व्याघात, शूल, व्यतीपात; अतिगण्ड, विष्कम्भ, गण्ड, परिघ और वज्र—इन योगोंमें गृहारम्भ नहीं करना चाहिये। श्वेत, मैत्र, माहेन्द्र, गान्धर्व, अभिजित, रौहिण, वैराज और सावित्र—इन मुहूर्तोंमें गृहारम्भ करना चाहिये। चन्द्रमा और सूर्यके बलके साथ-ही-साथ शुभ लग्नका भी निरीक्षण करना चाहिये। सर्वप्रथम अन्य कार्योंको छोड़कर स्तम्भारोपण करना चाहिये। यही विधि प्रासाद, कूप एवं बावलियोंके लिये भी मानी गयी है॥ १—१०॥

पूर्वं भूमिं परीक्षेत पश्चाद्वास्तुं प्रकल्पयेत्। श्वेता रक्ता तथा पीता कृष्णा चैवानुपूर्वशः॥ ११॥
विप्रादेः शस्यते भूमिरतः कार्यं परीक्षणम्। विप्राणां मधुरास्वादा कटुका क्षत्रियस्य तु॥ १२॥
तिक्ता कषाया च तथा वैश्यशूद्रेषु शस्यते। अरत्निमात्रे वै गर्ते स्वनुलिप्ते च सर्वशः॥ १३॥
घृतमामशरावस्थं कृत्वा वर्त्तिचतुष्टयम्। ज्वालयेद् भूपरीक्षार्थं तत्पूर्णं सर्वदिङ्मुखम्॥ १४॥
दीप्तौ पूर्वादि गृह्णीयाद् वर्णानामनुपूर्वशः। वास्तुः सामूहिको नाम दीप्यते सर्वतस्तु यः॥ १५॥
शुभदः सर्ववर्णानां प्रासादेषु गृहेषु च। रत्निमात्रमधोगर्त्ते परीक्ष्यं खातपूरणे॥ १६॥
अधिके श्रियमाप्नोति न्यूने हानिं समे समम्। फालकृष्टेऽथवा देशे सर्वबीजानि वापयेत्॥ १७॥
त्रिपञ्चसप्तरात्रे च यत्रारोहन्ति तान्यपि। ज्येष्ठोत्तमा कनिष्ठा भूर्वर्जनीयतरा सदा॥ १८॥
पञ्चगव्यौषधिजलैः परीक्षित्वा च सेचयेत्। एकाशीतिपदं कृत्वा रेखाभिः कनकेन च॥ १९॥
पश्चात् पिष्टेन चालिप्य सूत्रेणालोड्य सर्वतः। दश पूर्वायता लेखा दश चैवोत्तरायताः॥ २०॥
सर्ववास्तुविभागेषु विज्ञेया नवका नव। एकाशीतिपदं कृत्वा वास्तुवित् सर्ववास्तुषु॥ २१॥

पहले भूमिकी परीक्षाकर फिर बादमें वहाँ गृहका निर्माण करना चाहिये। श्वेत, लाल, पीली और काली—इन चार वर्णोंवाली पृथिवी क्रमशः ब्राह्मणादि चारों वर्णोंके लिये प्रशंसित मानी गयी है। इसके बाद उसके स्वादकी परीक्षा करनी चाहिये। ब्राह्मणके लिये मधुर स्वादवाली, क्षत्रियके लिये कड़वी, वैश्यके लिये तिक्त तथा शूद्रके लिये कसैली स्वादवाली पृथ्वी उत्तम मानी गयी है। तत्पश्चात् भूमिकी पुनः परीक्षाके लिये एक हाथ गहरा गड्ढा खोदकर उसे सब ओरसे भलीभाँति लीप-पोतकर स्वच्छ कर दे। फिर एक कच्चे पुरवेमें घी भरकर उसमें चार बत्तियाँ जला दे और उसे उसी गड्ढेमें रख दे। उन बत्तियोंकी लौ क्रमशः चारों दिशाओंकी ओर हों। यदि पूर्व दिशाकी बत्ती अधिक कालतक जलती रहे तो ब्राह्मणके लिये उसका फल शुभ होता है। इसी प्रकार क्रमशः उत्तर, पश्चिम और दक्षिणकी बत्तियोंको क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रोंके लिये कल्याणकारक समझना चाहिये। यदि वह वास्तुदीपक चारों दिशाओंमें जलता रहे तो प्रासाद एवं साधारण गृह-निर्माणके लिये वहाँकी भूमि सभी वर्णोंके लिये शुभदायिनी है। एक हाथ गहरा गड्ढा खोदकर उसे उसी मिट्टीसे पूर्ण करते समय इस प्रकार परीक्षा करे कि यदि मिट्टी शेष रह जाय तो श्रीकी प्राप्ति होती है, न्यून हो जाय तो

Sri Vidya Peetham Book Centre Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

हानि होती है तथा सम रहनेसे समभाव होता है। अथवा भूमिको हलद्वारा जुतवाकर उसमें सभी प्रकारके बीज बो दे। यदि वे बीज तीन, पाँच तथा सात रातोंमें अङ्कुरित हो जाते हैं तो उनके फल इस प्रकार जानने चाहिये। तीन रातवाली भूमि उत्तम, पाँच रातवाली भूमि मध्यम तथा सात रातवाली कनिष्ठ है। कनिष्ठ भूमिको सर्वथा त्याग देना चाहिये। इस प्रकार भूमि-परीक्षा कर पञ्चगव्य और ओषधियोंके जलसे भूमिको सींच दे और सुवर्णकी सलाईद्वारा रेखा खींचकर इक्यासी कोष्ठ बनावे। (कोष्ठ बनानेका ढंग इस प्रकार है—) पिष्टकसे चुपड़े हुए सूतसे दस रेखाएँ पूर्वसे पश्चिम तथा दस रेखाएँ उत्तरसे दक्षिणकी ओर खींचे। सभी प्रकारके वास्तु-विभागोंमें इस नव-नव (९×९) अर्थात् इक्यासी* कोष्ठका वास्तु जानना चाहिये। वास्तुशास्त्रको जाननेवाला सभी प्रकारके वास्तुसम्बन्धी कार्योंमें इसका उपयोग करे॥ ११—२१॥

पदस्थान् पूजयेद् देवांस्त्रिंशत् पञ्चदशैव तु। द्वात्रिंशद् बाह्यतः पूज्याः पूज्याश्चान्तस्त्रयोदश॥ २२॥
नामतस्तान् प्रवक्ष्यामि स्थानानि च निबोधत। ईशानकोणादिषु तान् पूजयेद्धविषा नरः॥ २३॥
शिखी चैवाथ पर्जन्यो जयन्तः कुलिशायुधः। सूर्यसत्यौ भृशश्चैव आकाशो वायुरेव च॥ २४॥
पूषा च वितथश्चैव †बृहत्क्षतयमावुभौ। गन्धर्वो भृङ्गराजश्च मृगः पितृगणस्तथा॥ २५॥
दौवारिकोऽथ सुग्रीवः पुष्पदन्तो जलाधिपः। असुरः शोषपापौ च रोगोऽहिर्मुख्य एव च॥ २६॥
भल्लाटः सोमसर्पौ च अदितिश्च दितिस्तथा। बहिर्द्वात्रिंशदेते तु तदन्तस्तु ततः शृणु॥ २७॥
ईशानादिचतुष्कोणसंस्थितान् पूजयेद् बुधः। आपश्चैवाथ सावित्रो जयो रुद्रस्तथैव च॥ २८॥
मध्ये नवपदे ब्रह्मा तस्याष्टौ च समीपगान्। साध्यानेकान्तरान् विद्यात् पूर्वाद्यान् नामतः शृणु॥ २९॥
अर्यमा सविता चैव विवस्वान् विबुधाधिपः। मित्रोऽथ राजयक्ष्मा च तथा पृथ्वीधरः स्मृतः॥ ३०॥
अष्टमश्चापवत्सस्तु परितो ब्रह्मणः स्मृताः। आपश्चैवापवत्सश्च पर्जन्योऽग्निर्दितिस्तथा॥ ३१॥
पदिकानां तु वर्गोऽयमेवं कोणेष्वशेषतः। तन्मध्ये तु बहिर्विंशद् द्विपदास्ते तु सर्वशः॥ ३२॥
अर्यमा च विवस्वांश्च मित्रः पृथ्वीधरस्तथा। ब्रह्मणः परितो दिक्षु त्रिपदास्ते तु सर्वशः॥ ३३॥

फिर उन कोष्ठोंमें स्थित पैंतालीस देवताओंकी पूजा करे। उनमें बत्तीसकी बाहरसे तथा तेरहकी भीतरसे पूजा करनी चाहिये। मैं उनके नाम और स्थान बतला रहा हूँ, आपलोग सुनिये। (इन्हें जानकर) मनुष्यको ईशान आदि कोणोंमें हविष्यद्वारा उन-उन देवताओंकी पूजा करनी चाहिये। शिखी, पर्जन्य, जयन्त, इन्द्र, सूर्य, सत्य, भृश, अन्तरिक्ष, वायु, पूषा, वितथ, बृहत्क्षत, यम, गन्धर्व, भृङ्गराज, मृग, पितृगण, दौवारिक, सुग्रीव, पुष्पदन्त, जलाधिप, असुर, शोष, पाप, रोग, अहि, मुख्य, भल्लाट, सोम, सर्प, अदिति और दिति—ये बत्तीस बाह्य देवता हैं। बुद्धिमान् पुरुषको ईशान आदि चारों कोणोंमें स्थित इन देवताओंकी पूजा करनी चाहिये। अब वास्तु चक्रके भीतरी देवताओंके नाम सुनिये—आप, सावित्र, जय, रुद्र—ये चार चारों ओरसे तथा मध्यके नौ कोष्ठोंमें ब्रह्मा और उनके समीप अन्य आठ देवताओंकी भी पूजा करनी चाहिये। (ये सब मिलकर मध्यके तेरह देवता होते हैं।) ब्रह्माके चारों ओर स्थित ये आठ देवता, जो क्रमशः पूर्वादि दिशाओंमें दो-दोके क्रमसे स्थित रहते हैं, साध्यनामसे कहे जाते हैं। उनके नाम सुनिये—अर्यमा, सविता, विवस्वान्, विबुधाधिप, मित्र, राजयक्ष्मा, पृथ्वीधर तथा आठवें आपवत्स। आप, आपवत्स, पर्जन्य, अग्नि तथा दिति—ये पाँच देवताओंके वर्ग हैं। (इनकी पूजा अग्निकोणमें करनी चाहिये।) उनके बाहर बीस देवता हैं, जो दो पदोंमें रहते हैं। अर्यमा, विवस्वान्, मित्र और पृथ्वीधर—ये चार ब्रह्माके चारों ओर तीन-तीन पदोंमें स्थित रहते हैं॥ २२—३३॥

* वास्तुचक्र तीन प्रकारके होते हैं—एक सौ पदका, दूसरा ८१ पदका और तीसरा ६४ पदका। यहाँ ८१ पदका ही वर्णन है। † 'बृहत्क्षत' इति बृहत्संहितायां (५३।४४) स्वः पाठः।
Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

वंशानिदानीं वक्ष्यामि ऋजूनपि पृथक् पृथक्। वायुं यावत् तथा रोगात् पितृभ्यः शिखिनं पुनः ॥ ३४ ॥
मुख्याद् भृशं तथा शोषाद् वितथं यावदेव तु। सुग्रीवाददितिं यावन्मृगात् पर्जन्यमेव च ॥ ३५ ॥
एते वंशाः समाख्याताः क्वचिच्च जयमेव तु। एतेषां यस्तु सम्पातः पदं मध्यं समं तथा ॥ ३६ ॥
मर्म चैतत् समाख्यातं त्रिशूलं कोणगं च यत्। स्तम्भन्यासेषु वर्ज्यानि तुलाविधिषु सर्वदा ॥ ३७ ॥
कीलोच्छिष्टोपघातादि वर्जयेद् यत्नतो जनः। सर्वत्र वास्तुर्निर्दिष्टो पितृवैश्वानरायतः ॥ ३८ ॥
मूर्धन्यग्निः समादिष्टो मुखे चापः समाश्रितः। पृथ्वीधरोऽर्यमा चैव स्कन्धयोस्तावधिष्ठितौ ॥ ३९ ॥
वक्षःस्थले चापवत्सः पूजनीयः सदा बुधैः। नेत्रयोर्दितिपर्जन्यौ श्रोत्रेऽदितिजयन्तकौ ॥ ४० ॥
सर्पेन्द्रावंससंस्थौ तु पूजनीयौ प्रयत्नतः। सूर्यसोमादयस्तद्वद् बाह्वोः पञ्च च पञ्च च ॥ ४१ ॥
रुद्रश्च राजयक्ष्मा च वामहस्ते समास्थितौ। सावित्रः सविता तद्वद्धस्तं दक्षिणमास्थितौ ॥ ४२ ॥
विवस्वानथ मित्रश्च जठरे संव्यवस्थितौ। पूषा च पापयक्ष्मा च हस्तयोर्मणिबन्धने ॥ ४३ ॥
तथैवासुरशोषौ च वामपार्श्वं समाश्रितौ। पार्श्वे तु दक्षिणे तद्वद् वितथः सबृहत्क्षतः ॥ ४४ ॥
ऊर्वोऽर्यमाम्बुपौ ज्ञेयौ जान्वोर्गन्धर्वपुष्पकौ। जङ्घयोर्भृङ्गसुग्रीवौ स्फिक्स्थौ दौवारिको मृगः ॥ ४५ ॥
जयशक्रौ तथा मेढ्रे पादयोः पितरस्तथा। मध्ये नवपदे ब्रह्मा हृदये स तु पूज्यते ॥ ४६ ॥

अब मैं उनके वंशोंको पृथक्-पृथक् संक्षेपमें कह रहा हूँ। वायुसे लेकर रोगपर्यन्त, पितृगणसे शिखीपर्यन्त, मुख्यसे भृशपर्यन्त, शोषसे वितथपर्यन्त, सुग्रीवसे अदितिपर्यन्त तथा मृगसे पर्जन्यपर्यन्त—ये ही वंश कहे जाते हैं। कहीं-कहीं मृगसे लेकर जयपर्यन्त वंश कहा गया है। पदके मध्यमें इनका जो सम्पात है, वह पद, मध्य तथा सम नामसे प्रसिद्ध है। त्रिशूल और कोणगामी मर्मस्थल कहे जाते हैं, जो सर्वदा स्तम्भन्यास और तुलाकी विधिमें वर्जित माने गये हैं। मनुष्यके लिये यत्नपूर्वक देवताके पदोंपर कीलें गाड़ना, जूँठन फेंकना तथा चोटें पहुँचाना वर्जित है। यह वास्तु-चक्र, सर्वत्र पितृवर्गीय वैश्वानरके अधीन माना गया है। उसके मस्तकपर अग्नि और मुखमें जलका निवास है, दोनों स्कन्धोंपर पृथ्वीधर तथा अर्यमा अधिष्ठित हैं। बुद्धिमान्को वक्षःस्थलपर आपवत्सकी पूजा करनी चाहिये। नेत्रोंमें दिति और पर्जन्य तथा कानोंमें अदिति और जयन्त हैं। कंधोंपर सर्प और इन्द्रकी प्रयत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिये। इसी प्रकार बाहुओंमें सूर्य और चन्द्रमासे लेकर पाँच-पाँच देवता स्थित हैं। रुद्र और राजयक्ष्मा—ये दोनों बायें हाथपर अवस्थित हैं। उसी प्रकार सावित्र और सविता दाहिने हाथपर स्थित हैं। विवस्वान् और मित्र—ये उदरमें तथा पूषा और पापयक्ष्मा—ये हाथोंके मणिबन्धोंमें स्थित हैं। उसी प्रकार असुर और शोष—ये बायें पार्श्वमें तथा दाहिने पार्श्वमें वितथ और बृहत्क्षत स्थित हैं। ऊरुभागोंपर यम और वरुण, घुटनोंपर गन्धर्व और पुष्पक, दोनों जंघोंपर क्रमशः भृङ्ग और सुग्रीव, दोनों नितम्बोंपर दौवारिक और मृग, लिङ्गस्थानपर जय और शक्र तथा पैरोंपर पितृगण स्थित हैं। मध्यके नौ पदोंमें, जो हृदय कहलाता है, ब्रह्माकी पूजा होती है ॥ ३४—४६ ॥

चतुःषष्टिपदो वास्तुः प्रासादे ब्रह्मणा स्मृतः। ब्रह्मा चतुष्पदस्तत्र कोणेष्वर्धपदस्तथा ॥ ४७ ॥
बहिष्कोणेषु वास्तौ तु सार्धाश्चोभयसंस्थिताः। विंशतिर्द्विपदाश्चैव चतुःषष्टिपदे स्मृताः ॥ ४८ ॥
गृहारम्भेषु कण्डूतिः स्वाम्यङ्गे यत्र जायते। शल्यं त्वपनयेत् तत्र प्रासादे भवने तथा ॥ ४९ ॥
सशल्यं भयदं यस्मादशल्यं शुभदायकम्। हीनाधिकाङ्गतां वास्तोः सर्वथा तु विवर्जयेत् ॥ ५० ॥
नगरग्रामदेशेषु सर्वत्रैवं विवर्जयेत्।
चतुःशालं त्रिशालं च द्विशालं चैकशालकम्। नामतस्तान् प्रवक्ष्यामि स्वरूपेण द्विजोत्तमाः ॥ ५१ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे एकाशीतिपदवास्तुनिर्णयो नाम त्रिपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५३ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Srirangam

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

ब्रह्माने प्रासादके निर्माणमें चौंसठ पदोंवाले वास्तुको श्रेष्ठ बतलाया है। उसके चार पदोंमें ब्रह्मा तथा उनके कोणोंमें आपवत्स, सविता आदि आठ देवगण स्थित हैं। वास्तुके बाहरवाले कोणोंमें भी अग्नि आदि आठ देवताओंका निवास है तथा दो पदोंमें जयन्त आदि बीस देवता स्थित हैं। इस प्रकार चौंसठ पदवाले वास्तुचक्रमें देवताओंकी स्थिति बतलायी गयी है। गृहारम्भके समय गृहपतिके जिस अङ्गमें खुजली जान पड़े, महल तथा भवनमें वास्तुके उसी अङ्गपर गड़ी हुई शल्य या कीलको निकाल देना चाहिये; क्योंकि शल्यसहित गृह भयदायक और शल्यरहित कल्याणकारक होता है। वास्तुका अधिक एवं हीन अङ्गका होना सर्वथा त्याज्य है। इसी प्रकार नगर, ग्राम और देश—सभी जगहपर इन दोषोंका परित्याग करना चाहिये। द्विजवरो! अब मैं चतुःशाल, त्रिशाल, द्विशाल तथा एकशालवाले भवनोंके नाम और स्वरूपका वर्णन करूँगा॥ ४७—५१॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें इक्यासीपद निर्णय नामक दो सौ तिरपनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २५३॥

दो सौ चौवनवाँ अध्याय

वास्तुशास्त्रके अन्तर्गत राजप्रासाद आदिकी निर्माण-विधि

सूत उवाच

चतुःशालं प्रवक्ष्यामि स्वरूपान्नामतस्तथा। चतुःशालं चतुर्द्वारैरलिन्दैः सर्वतोमुखम्॥ १॥
नाम्ना तत् सर्वतोभद्रं शुभं देवनृपालये। पश्चिमद्वारहीनं च नन्द्यावर्तं प्रचक्षते॥ २॥
दक्षिणद्वारहीनं तु वर्धमानमुदाहृतम्। पूर्वद्वारविहीनं तत् स्वस्तिकं नाम विश्रुतम्॥ ३॥
रुचकं चोत्तरद्वारविहीनं तत् प्रचक्षते। सौम्यशालाविहीनं यत् त्रिशालं धान्यकं च तत्॥ ४॥
क्षेमवृद्धिकरं नृणां बहुपुत्रफलप्रदम्। शालया पूर्वया हीनं सुक्षेत्रमिति विश्रुतम्॥ ५॥
धन्यं यशस्यमायुष्यं शोकमोहविनाशनम्। शालया याम्यया हीनं यद् विशालं तु शालया॥ ६॥
कुलक्षयकरं नृणां सर्वव्याधिभयावहम्। हीनं पश्चिमया यत् तु पक्षघ्नं नाम तत् पुनः॥ ७॥
मित्रबन्धुसुतान् हन्ति तथा सर्वभयावहम्। याम्यापराभ्यां शालाभ्यां धनधान्यफलप्रदम्॥ ८॥
क्षेमवृद्धिकरं नृणां तथा पुत्रफलप्रदम्। यमसूर्यं च विज्ञेयं पश्चिमोत्तरशालकम्॥ ९॥
राजाग्निभयदं नृणां कुलक्षयकरं च यत्। उदक्पूर्वे तु शाले दण्डाख्ये यत्र तद् भवेत्॥ १०॥
अकालमृत्युभयदं परचक्रभयावहम्। धनाख्यं पूर्वयाम्याभ्यां शालाभ्यां यद् द्विशालकम्॥ ११॥
तच्छस्त्रभयदं नृणां पराभवभयावहम्। चुल्ली पूर्वापराभ्यां तु सा भवेन्मृत्युसूचनी॥ १२॥
वैधव्यदायकं स्त्रीणामनेकभयकारकम्। कार्यमुत्तरयाम्याभ्यां शालाभ्यां भयदं नृणाम्॥ १३॥
सिद्धार्थवज्रवर्ज्याणि द्विशालानि सदा बुधैः।

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! अब मैं चतुःशाल* (त्रिशाल, द्विशाल आदि) भवनोंके स्वरूप, उनके विशिष्ट नामोंके साथ बतला रहा हूँ। चतुःशाल चारों ओर भवन, द्वार तथा बरामदोंसे युक्त हो, उसे 'सर्वतोभद्र' कहा जाता है। वह देव-मन्दिर तथा राजभवनके लिये मङ्गलकारक होता है। वह चतुःशाल यदि पश्चिम द्वारसे हीन हो तो 'नन्द्यावर्त', दक्षिणद्वारसे हीन हो तो 'वर्धमान', पूर्वद्वारसे रहित हो तो 'स्वस्तिक', उत्तरद्वारसे विहीन हो तो 'रुचक' कहा जाता है।

* रावणादिके ऐसे चतुःशाल, त्रिशाल आदि भवनोंका उल्लेख वाल्मीकीय रामायण, सुन्दरकाण्ड, राजतरङ्गिणी ३। १२, मृच्छकटिकनाटक ३। ७ तथा बृहत्संहिता अ० ५३ आदिमें आता है। शिल्परत्न, समराङ्गण, काश्यपशिल्पादिमें इनकी रचनाका विस्तृत विधान है।

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

(अब त्रिशाल भवनोंके भेद बतलाते हैं।) उत्तर दिशाकी शालासे रहित जो त्रिशाल भवन होता है, उसे 'धान्यक' कहते हैं। वह मनुष्योंके लिये कल्याण एवं वृद्धि करनेवाला तथा अनेक पुत्ररूप फल देनेवाला होता है। पूर्वकी शालासे विहीन त्रिशाल भवनको 'सुक्षेत्र' कहते हैं। वह धन, यश और आयु प्रदान करनेवाला तथा शोक-मोहका विनाशक होता है। जो दक्षिणकी शालासे विहीन होता है, उसे 'विशाल' कहते हैं। वह मनुष्योंके कुलका क्षय करनेवाला तथा सब प्रकारकी व्याधि और भय देनेवाला होता है। जो पश्चिमशालासे हीन होता है, उसका नाम 'पक्षघ्न' है, वह मित्र, बन्धु और पुत्रोंका विनाशक तथा सब प्रकारका भय उत्पन्न करनेवाला होता है। (अब 'द्विशालों'के भेद कहते हैं—) दक्षिण एवं पश्चिम—दो शालाओंसे युक्त भवनको धनधान्यप्रद कहते हैं। वह मनुष्योंके लिये कल्याणका वर्धक तथा पुत्रप्रद कहा गया है। पश्चिम और उत्तरशालावाले भवनको 'यमसूर्य' नामक शाल जानना चाहिये। वह मनुष्योंके लिये राजा और अग्निसे भयदायक और कुलका विनाशक होता है। जिस भवनमें केवल पूर्व और उत्तरकी ही दो शालाएँ हों, उसे 'दण्ड' कहते हैं। वह अकालमृत्यु तथा शत्रुपक्षसे भय उत्पन्न करनेवाला होता है। जो पूर्व और दक्षिण-की शालाओंसे युक्त द्विशाल भवन हो, उसे 'धन' कहते हैं। वह मनुष्योंके लिये शस्त्र तथा पराजयका भय उत्पन्न करनेवाला होता है। इसी प्रकार केवल पूर्व तथा पश्चिमकी ओर बना हुआ 'चुल्ली' नामक द्विशालभवन मृत्युसूचक है। वह स्त्रियोंको विधवा करनेवाला तथा अनेकों प्रकारका भय उत्पन्न करनेवाला होता है। केवल उत्तर एवं दक्षिणकी शालाओंसे युक्त द्विशाल भवन मनुष्योंके लिये भयदायक होता है। अतः ऐसे भवनको नहीं बनवाना चाहिये। बुद्धिमानोंको सदा सिद्धार्थ* और वज्रसे† भिन्न द्विशालभवन बनवाना चाहिये॥ १-१३½॥

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि भवनं पृथिवीपतेः॥ १४॥
पञ्चप्रकारं तत् प्रोक्तमुत्तमादिविभेदतः। अष्टोत्तरं हस्तशतं विस्तरश्चोत्तमो मतः॥ १५॥
चतुर्ष्वन्येषु विस्तारो हीयते चाष्टभिः करैः। चतुर्थांशाधिकं दैर्घ्यं पञ्चस्वपि निगद्यते॥ १६॥
युवराजस्य वक्ष्यामि तथा भवनपञ्चकम्। षड्भिः षड्भिस्तथाशीतिर्हीयते तत्र विस्तरात्॥ १७॥
त्र्यंशेन चाधिकं दैर्घ्यं पञ्चस्वपि निगद्यते। सेनापतेः प्रवक्ष्यामि तथा भवनपञ्चकम्॥ १८॥
चतुःषष्टिस्तु विस्तारात् षड्भिः षड्भिस्तु हीयते। पञ्चस्वेतेषु दैर्घ्यं च षड्भागेनाधिकं भवेत्॥ १९॥
मन्त्रिणामथ वक्ष्यामि तथा भवनपञ्चकम्। चतुश्चतुर्भिर्हीना स्यात् करषष्टिः प्रविस्तरे॥ २०॥
अष्टांशेनाधिकं दैर्घ्यं पञ्चस्वपि निगद्यते। सामन्तामात्यलोकानां वक्ष्ये भवनपञ्चकम्॥ २१॥
चत्वारिंशत् तथाष्टौ च चतुर्भिर्हीयते क्रमात्। चतुर्थांशाधिकं दैर्घ्यं पञ्चस्वेतेषु शस्यते॥ २२॥
शिल्पिनां कञ्चुकीनां च वेश्यानां गृहपञ्चकम्। अष्टाविंशत् कराणां तु विहीनं विस्तरे क्रमात्॥ २३॥
द्विगुणं दैर्घ्यमेवोक्तं मध्यमेष्वेवमेव तत्।

अब मैं राजभवनके विषयमें वर्णन कर रहा हूँ। वह उत्तम आदि भेदसे पाँच प्रकारका कहा गया है। एक सौ आठ हाथके विस्तारवाला राजभवन उत्तम माना गया है। अन्य चार प्रकारके भवनोंमें विस्तार क्रमशः आठ-आठ हाथ कम होता जाता है; किंतु पाँचों प्रकारके भवनोंमें लम्बाई विस्तारके चतुर्थांशसे अधिक होती

* एक प्रकारका स्तम्भ जिसमें ८ पहल या कोण होते हैं।
† जिस द्विशालमें केवल दक्षिण और पश्चिमकी ओर भवन हों (बृहत्संहिता ५३।३९)।

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

है। अब मैं युवराजके पाँच प्रकारके भवनोंका वर्णन कर रहा हूँ। इसमें उत्तम भवनकी चौड़ाई अस्सी हाथकी होती है। अन्य चारकी चौड़ाई क्रमशः छः-छः हाथ कम होती जाती है। इन पाँचों भवनोंकी लम्बाई चौड़ाईसे एक तिहाई अधिक कही गयी है। इसी प्रकार अब मैं सेनापतिके पाँच प्रकारके भवनोंका वर्णन कर रहा हूँ। उसके उत्तम भवनकी चौड़ाई चौंसठ हाथकी मानी गयी है। अन्य चार भवनोंकी चौड़ाई क्रमशः छः-छः हाथ कम होती जाती है। इन पाँचोंकी लम्बाई चौड़ाईके षष्ठांशसे अधिक होनी चाहिये। अब मैं मन्त्रियोंके भी पाँच प्रकारके भवन बतला रहा हूँ। उनमें उत्तम भवनका विस्तार साठ हाथ होता है तथा अन्य चार क्रमशः चार-चार हाथ कम चौड़े होते हैं। इन पाँचोंकी लम्बाई चौड़ाईके अष्टांशसे अधिक कही गयी है। अब मैं सामन्त, छोटे राजा और अमात्य (छोटे मन्त्री) लोगोंके पाँच प्रकारके भवनोंको बतलाता हूँ। इनमें उत्तम भवनकी चौड़ाई अड़तालीस हाथकी होनी चाहिये तथा अन्य चारोंकी चौड़ाई क्रमशः चार-चार हाथ कम कही गयी है। इन पाँचों भवनोंकी लम्बाई चौड़ाईकी अपेक्षा सवाया अधिक कही गयी है। अब शिल्पकार, कंचुकी और वेश्याओंके पाँच प्रकारके भवनोंको सुनिये। इन सभी भवनोंकी चौड़ाई अट्ठाईस हाथ कही गयी है। अन्य चारों भवनोंकी चौड़ाईमें क्रमशः दो-दो हाथकी न्यूनता होती है। लम्बाई चौड़ाईसे दुगुनी कही गयी है॥ १४—२३½॥

दूतीकर्मान्तिकादीनां वक्ष्ये भवनपञ्चकम्॥ २४॥
चतुर्थांशाधिकं दैर्घ्यं विस्तारो द्वादशैव तु। अर्धार्धकरहानिः स्याद् विस्ताराद् पञ्चशः क्रमात्॥ २५॥
दैवज्ञगुरुवैद्यानां सभास्तारपुरोधसाम्। तेषामपि प्रवक्ष्यामि तथा भवनपञ्चकम्॥ २६॥
चत्वारिंशत् तु विस्ताराच्चतुर्भिर्हीयते क्रमात्। पञ्चस्वेतेषु दैर्घ्यं च षड्भागेनाधिकं भवेत्॥ २७॥
चतुर्वर्णस्य वक्ष्यामि सामान्यं गृहपञ्चकम्। द्वात्रिंशतः कराणां तु चतुर्भिर्हीयते क्रमात्॥ २८॥
आषोडशादिति परं नूनमन्त्यावसायिनाम्। दशांशेनाष्टभागेन त्रिभागेनाथ पादिकम्॥ २९॥
अधिकं दैर्घ्यमित्याहुर्ब्राह्मणादेः प्रशस्यते। सेनापतेर्नृपस्यापि गृहयोरन्तरेण तु॥ ३०॥
नृपवासगृहं कार्यं भाण्डागारं तथैव च।
सेनापतेर्गृहस्यापि चातुर्वर्ण्यस्य चान्तरे। वासाय च गृहं कार्यं राजपूज्येषु सर्वदा॥ ३१॥
अन्तरप्रभवाणां च स्वपितुर्गृहमिष्यते। तथा हस्तशतादर्धं गदितं वनवासिनाम्॥ ३२॥
सेनापतेर्नृपस्यापि सप्तत्या सहितेऽन्विते। चतुर्दशहृते व्यासे शालान्यासः प्रकीर्तितः॥ ३३॥
पञ्चत्रिंशान्विते तस्मिन्नलिन्दः समुदाहृतः। तथा षट्त्रिंशद्धस्ता तु सप्ताङ्गुलसमन्विता॥ ३४॥
विप्रस्य महती शाला न दैर्घ्यं परतो भवेत्। दशाङ्गुलाधिका तद्वत् क्षत्रियस्य विधीयते॥ ३५॥

अब मैं दूती-कर्म करनेवालों तथा परिवारके अन्य लोगोंके पाँच प्रकारके भवनोंको बतला रहा हूँ। उनकी चौड़ाई बारह हाथकी तथा लम्बाई उससे सवाया अधिक होती है। शेष चार गृहोंकी चौड़ाई क्रमशः आधा-आधा हाथ न्यून होती है। अब मैं ज्योतिषी, गुरु, वैद्य, सभापति और पुरोहित—इन सभीके पाँच प्रकारके भवनोंका वर्णन कर रहा हूँ। उनके उत्तम भवनकी चौड़ाई चालीस हाथकी होती है। शेषकी क्रमसे चार-चार हाथकी कम होती है। इन पाँचों भवनोंकी लम्बाई चौड़ाईके षष्ठांशसे अधिक होती है। अब फिर साधारणतया चारों वर्णोंके लिये पाँच प्रकारके गृहोंका वर्णन करता हूँ। उनमें ब्राह्मणके घरकी चौड़ाई बत्तीस हाथकी होनी चाहिये। अन्य जातियोंके लिये क्रमशः चार-चार हाथकी कमी होनी चाहिये। (अर्थात् ब्राह्मणके उत्तम गृहकी चौड़ाई बत्तीस हाथ, क्षत्रियके घरकी अट्ठाईस हाथ, वैश्यके घरकी चौबीस हाथ तथा सत्-शूद्रके घरकी बीस हाथ और असत्-शूद्रके घरकी सोलह हाथ होनी चाहिये।) किंतु सोलह

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

हाथसे कमकी चौड़ाई अन्त्यजोंके लिये है। ब्राह्मणके घरकी लम्बाई चौड़ाईसे दशांश, क्षत्रियके घरकी अष्टमांश, वैश्यके घरकी तिहाई और शूद्रके घरकी चौथाई भाग अधिक होनी चाहिये। यही विधि श्रेष्ठ मानी गयी है। सेनापति और राजाके गृहोंके बीचमें राजाके रहनेका गृह बनाना चाहिये। उसी स्थानपर भाण्डागार भी रहना चाहिये। सेनापतिके तथा चारों वर्णोंके गृहोंके मध्य भागमें सर्वदा राजाके पूज्य लोगोंके निवासार्थ गृह बनवाना चाहिये। इसके अतिरिक्त विभिन्न जातियोंके लिये एवं वनेचरोंके लिये शयन करनेका घर पचास हाथका बनवाना चाहिये। सेनापति और राजाके गृहके परिमाणमें सत्तरका योग करके चौदहका भाग देनेपर व्यासमें शालाका न्यास कहा गया है। उसमें पैंतीस हाथपर बरामदेका स्थान कहा गया है। छत्तीस हाथ सात अङ्गुल लम्बी ब्राह्मणकी बड़ी शाला होनी चाहिये। उसी प्रकार दस अङ्गुल अधिक क्षत्रियकी शाला होनी चाहिये ॥ २४—३५ ॥

पञ्चत्रिंशत्करा वैश्ये ह्यङ्गुलानि त्रयोदश। तावत्करैव शूद्रस्य युता पञ्चदशाङ्गुलैः ॥ ३६ ॥
शालायास्तु त्रिभागेन यस्याग्रे वीथिका भवेत्। सोष्णीषं नाम तद्वास्तु पश्चाच्छ्रेयोच्छ्रयं भवेत् ॥ ३७ ॥
पार्श्वयोर्वीथिका यत्र सावष्टम्भं तदुच्यते। समन्ताद्वीथिका यत्र सुस्थितं तदिहोच्यते ॥ ३८ ॥
शुभदं सर्वमेतत् स्याच्चातुर्वर्ण्ये चतुर्विधम्। विस्तरात् षोडशो भागस्तथा हस्तचतुष्टयम् ॥ ३९ ॥
प्रथमो भूमिकोच्छ्राय उपरिष्टात् प्रहीयते। द्वादशांशेन सर्वासु भूमिकासु तथोच्छ्रयः ॥ ४० ॥
पक्वेष्टका भवेद् भित्तिः षोडशांशेन विस्तरात्। दारवैरपि कल्प्या स्यात् तथा मृन्मयभित्तिका ॥ ४१ ॥
गर्भमानेन मानं तु सर्ववास्तुषु शस्यते। गृहव्यासस्य पञ्चाशदष्टादशभिरङ्गुलैः ॥ ४२ ॥
संयुतो द्वारविष्कम्भो द्विगुणश्चोच्छ्रयो भवेत्। द्वारशाखासु बाहुल्यमुच्छ्रायकरसम्मितैः ॥ ४३ ॥
अङ्गुलैः सर्ववास्तूनां शस्यते पृथुत्वं बुधैः। उदुम्बरोत्तमाङ्गं च तदर्धार्धप्रविस्तरात् ॥ ४४ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वास्तुविद्यासु गृहमाननिर्णयो नाम चतुःपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५४ ॥

वैश्यके लिये पैंतीस हाथ तेरह अङ्गुल लम्बी शाला होनी चाहिये। उतने ही हाथ तथा पंद्रह अङ्गुल शूद्रकी शालाका परिमाण है। शालाकी लम्बाईके तीन भागपर यदि सामनेकी ओर गली बनी हो तो वह 'सोष्णीष' नामक वास्तु है। पीछेकी ओर गली हो तो वह 'श्रेयोच्छ्रय' कहलाता है। यदि दोनों पार्श्वोंमें वीथिका हो तो वह 'सावष्टम्भ' तथा चारों ओर वीथिका हो तो 'सुस्थित' नामक वास्तु कहा जाता है। ये चारों प्रकारकी वीथियाँ चारों वर्णोंके लिये मङ्गलदायी हैं। शालाके विस्तारका सोलहवाँ भाग तथा चार हाथ— यह पहले खण्डकी ऊँचाईका मान है। अधिक ऊँचा करनेसे हानि होती है। उसके बाद अन्य सभी खण्डोंकी ऊँचाई बारहवें भागके बराबर रखनी चाहिये। यदि पक्की ईंटोंकी दीवाल बनायी जा रही हो तो गृहकी चौड़ाईके सोलहवें भागके परिमाणके बराबर मोटाई होनी चाहिये। वह दीवाल लकड़ी तथा मिट्टीसे भी बनायी जा सकती है। सभी वास्तुओंमें भीतरके मानके अनुसार लम्बाई-चौड़ाईका मान श्रेष्ठ माना गया है। गृहके व्याससे पचास अङ्गुल विस्तार तथा अठारह अङ्गुल वेधसे युक्त द्वारकी चौड़ाई रखनी चाहिये और उसकी ऊँचाई चौड़ाईसे दुगुनी होनी चाहिये। जितनी ऊँचाई द्वारकी हो उतनी ही दरवाजेमें लगी हुई शाखाओंकी भी होनी चाहिये। ऊँचाई जितने हाथोंकी हो उतने ही अङ्गुल उन शाखाओंकी मोटाई होनी चाहिये—यही सभी वास्तुविद्याके ज्ञाताओंने बताया है। द्वारके ऊपरका कलश (बुर्ज) तथा नीचेकी देहली (चौखट)—ये दोनों शाखाओंसे आधे अधिक मोटे हों, अर्थात् इन्हें शाखाओंसे ड्योढ़ा मोटा रखना चाहिये ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें वास्तुप्रकरणमें गृह-मान-निर्णय नामक दो सौ चौवनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २५४ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

दो सौ पचपनवाँ अध्याय

वास्तुविषयक वेधका विवरण

सूत उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि स्तम्भमानविनिर्णयम्। कृत्वा स्वभवनोच्छ्रायं सदा सप्तगुणं बुधैः ॥ १ ॥
अशीत्यंशः पृथुत्वे स्यादग्रे नवगुणे सति। रुचकश्चतुरः स्यात् तु अष्टास्रो वज्र उच्यते ॥ २ ॥
द्विवज्रः षोडशास्रस्तु द्वात्रिंशास्रः प्रलीनकः। मध्यप्रदेशे यः स्तम्भो वृत्तो वृत्त इति स्मृतः ॥ ३ ॥
एते पञ्च महास्तम्भाः प्रशस्ताः सर्ववास्तुषु। पद्मवल्लीलताकुम्भपत्रदर्पणरूपिताः ॥ ४ ॥
स्तम्भस्य नवमांशेन पद्मकुम्भान्तराणि तु। स्तम्भतुल्या तुला प्रोक्ता हीना चोपतुला ततः ॥ ५ ॥
त्रिभागेनेह सर्वत्र चतुर्भागेन वा पुनः। हीनं हीनं चतुर्थांशात् तथा सर्वासु भूमिषु ॥ ६ ॥
वासगेहानि सर्वेषां प्रविशेद् दक्षिणेन तु। द्वाराणि तु प्रवक्ष्यामि प्रशस्तानीह यानि तु ॥ ७ ॥
पूर्वेणेन्द्रं जयन्तं च द्वारं सर्वत्र शस्यते। याम्यं च वितथं चैव दक्षिणेन विदुर्बुधाः ॥ ८ ॥
पश्चिमे पुष्पदन्तं च वारुणं च प्रशस्यते। उत्तरेण तु भल्लाटं सौम्यं तु शुभदं भवेत् ॥ ९ ॥
तथा वास्तुषु सर्वत्र वेधं द्वारस्य वर्जयेत्। द्वारे तु रथ्यया विद्धे भवेत् सर्वकुलक्षयः ॥ १० ॥
तरुणा द्वेषबाहुल्यं शोकः पङ्केन जायते। अपस्मारो भवेन्नूनं कूपवेधेन सर्वदा ॥ ११ ॥
व्यथा प्रस्रवणेन स्यात् कीलेनाग्निभयं भवेत्। विनाशो देवताविद्धे स्तम्भेन स्त्रीकृतो भवेत् ॥ १२ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! अब मैं स्तम्भके परिमाणके विषयमें बतला रहा हूँ। बुद्धिमान् पुरुषोंको चाहिये कि वे अपने गृहकी ऊँचाईके मानको सातसे गुणाकर उसके अस्सीवें भागके बराबर खम्भेकी मोटाई रखें। उसकी मोटाईमें नौसे गुणा कर अस्सीवें भागके बराबर खम्भेका मूलभाग रखना चाहिये। चार कोणवाला स्तम्भ 'रुचक', आठ कोणवाला 'वज्र', सोलह कोणवाला 'द्विवज्र' तथा बत्तीस कोणवाला 'प्रलीनक' कहा जाता है। मध्य प्रदेशमें जो खम्भा वृत्ताकार रहता है, उसे 'वृत्त' कहा गया है। ये पाँच प्रकारके स्तम्भ सभी प्रकारके वास्तु-कार्यमें प्रशंसनीय कहे गये हैं। ये सभी स्तम्भ पद्म, वल्ली, लता, कुम्भ, पत्र एवं दर्पणसे चित्रित रहने चाहिये। इन कमलों तथा कुम्भोंमें स्तम्भके नवें अंशके बराबर अन्तर रहना चाहिये। स्तम्भके बराबर ऊँचाईको 'तुला' तथा उससे न्यूनको 'उपतुला' कहते हैं। मानके तृतीय या चतुर्थ भागसे हीन जो तुला है, वही 'उपतुला' है। यह उपतुला सभी भूमियोंमें रहती है। सभी वास-गृहोंमें दाहिनी ओर प्रवेशद्वार रखना चाहिये। अब मैं गृहके जो प्रशस्तद्वार हैं, उन्हें बतला रहा हूँ। पूर्व दिशामें इन्द्र और जयन्तद्वार सभी गृहोंमें श्रेष्ठ माने गये हैं। बुद्धिमान् लोग दक्षिण द्वारोंमें याम्य और वितथको श्रेष्ठ मानते हैं। पश्चिम द्वारोंमें पुष्पदन्त और वरुण प्रशंसित हैं। उत्तर द्वारोंमें भल्लाट तथा सौम्य शुभदायक होते हैं। सभी वास्तुओंमें द्वारवेधको बचाना चाहिये। गली, सड़क या मार्गद्वारा द्वार-वेध होनेपर पूरे कुलका क्षय हो जाता है। वृक्षके द्वारा वेध होनेपर द्वेषकी अधिकता होती है। कीचड़से वेध होनेपर शोक होता है और कूपद्वारा वेध होनेपर अवश्य ही सदाके लिये मिरगीका रोग होता है। नाबदान या जलप्रवाहसे वेध होनेपर व्यथा होती है, कीलसे वेध होनेपर अग्निभय होता है, देवतासे विद्ध होनेपर विनाश तथा स्तम्भसे विद्ध होनेपर स्त्रीद्वारा क्लेशकी प्राप्ति होती है॥ १—१२ ॥

गृहभर्तुर्विनाशः स्याद् गृहेण च गृहे कृते। अमेध्यावस्करैर्विद्धे गृहिणी बन्धकी भवेत् ॥ १३ ॥
तथा यक्षभयं विन्द्यादन्त्यजस्य गृहेण तु। उच्छ्रायाद् द्विगुणां भूमिं त्यक्त्वा वेधो न जायते ॥ १४ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

स्वयमुद्घाटिते द्वारे उन्मादो गृहवासिनाम् । स्वयं वा पिहिते विद्यात् कुलनाशं विचक्षणः ॥ १५ ॥
मानाधिके राजभयं न्यूने तस्करतो भवेत् । द्वारोपरि च यद् द्वारं तदन्तकमुखं स्मृतम् ॥ १६ ॥
अध्वनो मध्यदेशे तु अधिको यस्य विस्तरः । वज्रं तु संकटं मध्ये सद्यो भर्तुर्विनाशनम् ॥ १७ ॥
तथान्यपीडितं द्वारं बहुदोषकरं भवेत् । मूलद्वारात् तथान्यत् तु नाधिकं शोभनं भवेत् ॥ १८ ॥
कुम्भश्रीपर्णिवल्लीभिर्मूलद्वारं तु शोभयेत् । पूजयेच्चापि तन्नित्यं बलिना चाक्षतोदकैः ॥ १९ ॥
भवनस्य वटः पूर्वे दिग्भागे सार्वकामिकः । उदुम्बरस्तथा याम्ये वारुण्यां पिप्पलः शुभः ॥ २० ॥
प्लक्षश्चोत्तरतो धन्यो विपरीतास्त्वसिद्धये । कण्टकी क्षीरवृक्षश्च आसनः सफलो द्रुमः ॥ २१ ॥
भार्याहानौ प्रजाहानौ भवेतां क्रमशस्तदा । न च्छिन्द्याद् यदि तानन्यानन्तरे स्थापयेच्छुभान् ॥ २२ ॥
पुन्नागाशोकबकुलशमीतिलकचम्पकान् । दाडिमीपिप्पलीद्राक्षास्तथा कुसुममण्डपान् ॥ २३ ॥
जम्बीरपूगपनसद्रुमकेतकीभिर्जातीसरोजशतपत्रिकमल्लिकाभिः ।
यन्नारिकेलकदलीदलपाटलाभिर्युक्तं तदत्र भवनं श्रियमातनोति ॥ २४ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वास्तुविद्यासु वेधपरिवर्जनं नाम पञ्चपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५५ ॥

एक घरसे दूसरे घरमें वेध पड़नेपर गृहपतिका विनाश होता है तथा अपवित्र द्रव्यादिद्वारा वेध होनेपर घरकी स्वामिनी वन्ध्या हो जाती है । अन्त्यजके घरके द्वारा वेध होनेपर हथियारसे भय प्राप्त होता है । गृहकी ऊँचाईसे दुगुनी भूमिकी दूरीपर वेधका दोष नहीं होता । जिस घरके द्वार बिना हाथ लगाये स्वयं खुल जाते हैं, उस घरके निवासियोंको उन्मादका रोग होता है । इसी प्रकार स्वयं बंद हो जानेपर कुलका नाश हो जाता है—ऐसा विद्वान् लोग बतलाते हैं । गृहके द्वार यदि अपने मानसे अधिक ऊँचे हैं तो राजभय तथा यदि नीचे हैं तो चोरोंका भय होता है । द्वारके ऊपर जो द्वार बनता है, वह यमराजका मुख कहा जाता है । मार्गके बीचमें बने हुए जिस गृहकी चौड़ाई बहुत अधिक होती है, वह वज्रके समान शीघ्र ही गृहपतिके विनाशका कारण होता है । यदि मुख्यद्वार अन्य द्वारोंसे निकृष्ट हो तो वह बहुत बड़ा दोषकारक होता है । अतः मुख्यद्वारकी अपेक्षा अन्य द्वारोंका बड़ा होना शुभकारक नहीं है । घट, श्रीपर्णी और लताओंसे मूलद्वारको सुशोभित रखना चाहिये और उसकी नित्य बलि, अक्षत और जलसे पूजा करनी चाहिये । घरकी पूर्व दिशामें बरगदका वृक्ष सभी प्रकारकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला होता है । दक्षिणमें गूलर और पश्चिममें पीपलका पेड़ शुभकारक होता है । इसी तरह उत्तरमें पाकड़का पेड़ मङ्गलकारी है । इससे विपरीत दिशामें रहनेपर ये वृक्ष विपरीत फल देनेवाले होते हैं । घरके समीप यदि काँटे या दूधवाले वृक्ष, असनाका वृक्ष एवं फलदार वृक्ष हों तो उनसे क्रमशः स्त्री और संतानकी हानि होती है । यदि कोई उन्हें काट न सके तो उनके समीप अन्य शुभदायक वृक्षोंको लगा दे । पुंनाग, अशोक, मौलसिरी, शमी, तिलक, चम्पा, अनार, पीपली, दाख, अर्जुन, जंबीर, सुपारी, कटहल, केतकी, मालती, कमल, चमेली, मल्लिका, नारियल, केला एवं पाटल—इन वृक्षोंसे सुशोभित घर लक्ष्मीका विस्तार करता है ॥ १३–२४ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके वास्तु-विद्या-प्रसङ्गमें वेधविवरण नामक दो सौ पचपनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २५५ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

दो सौ छप्पनवाँ अध्याय

वास्तुप्रकरणमें गृह-निर्माणविधि

सूत उवाच

उदगादिप्लवं वास्तु समानशिखरं तथा। परीक्ष्य पूर्ववत् कुर्यात् स्तम्भोच्छ्रायं विचक्षणः ॥ १ ॥
न देवधूर्तसचिवचत्वराणां समीपतः। कारयेद् भवनं प्राज्ञो दुःखशोकमयं ततः ॥ २ ॥
तस्य प्रदेशाश्चत्वारस्तथोत्सर्गोऽग्रतः शुभः। पृष्ठतः पृष्ठभागस्तु सव्यावर्तः प्रशस्यते ॥ ३ ॥
अपसव्यो विनाशाय दक्षिणे शीर्षकस्तथा। सर्वकामफलो नृणां सम्पूर्णो नाम वामतः ॥ ४ ॥
एवं प्रदेशमालोक्य यत्नेन गृहमारभेत्। अथ सांवत्सरप्रोक्ते मुहूर्ते शुभलक्षणे ॥ ५ ॥
रत्नोपरि शिलां कृत्वा सर्वबीजसमन्विताम्। चतुर्भिर्ब्राह्मणैः स्तम्भं कारयित्वा सुपूजितम् ॥ ६ ॥
शुक्लाम्बरधरः शिल्पिसहितो वेदपारगः। स्नापितं विन्यसेत् तद्वत् सर्वौषधिसमन्वितम् ॥ ७ ॥
नानाक्षतसमोपेतं वस्त्रालङ्कारसंयुतम्। ब्रह्मघोषेण वाद्येन गीतमङ्गलनिःस्वनैः ॥ ८ ॥
पायसं भोजयेद् विप्रान् होमं तु मधुसर्पिषा। वास्तोष्पते प्रतिजानीहि मन्त्रेणानेन सर्वदा ॥ ९ ॥
सूत्रपाते तथा कार्यमेवं स्तम्भोदये पुनः। द्वारवंशोच्छ्रये तद्वत् प्रवेशसमये तथा ॥ १० ॥
वास्तूपशमने तद्वद् वास्तुयज्ञस्तु पञ्चधा। ईशाने सूत्रपातः स्यादाग्नेये स्तम्भरोपणम् ॥ ११ ॥
प्रदक्षिणं च कुर्वीत वास्तोः पदविलेखनम्। तर्जनी मध्यमा चैव तथाङ्गुष्ठस्तु दक्षिणे ॥ १२ ॥
प्रवालरत्नकनकफलं पिष्ट्वा कृतोदकम्। सर्ववास्तुविभागेषु शस्तं पदविलेखने ॥ १३ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! बुद्धिमान् पुरुष उत्तरकी ओर झुकी हुई या समान भागवाली भूमिकी परीक्षा कर पूर्व कही गयी रीतिसे स्तम्भकी ऊँचाई आदिका निर्माण कराये। बुद्धिमान् पुरुषको देवालय, धूर्त, सचिव या चौराहेके समीप अपना घर नहीं बनवाना चाहिये; क्योंकि इससे दुःख, शोक और भय बना रहता है। घरके चारों ओर तथा द्वारके सम्मुख और पीछे कुछ भूमिको छोड़ देना शुभकारक है। पिछला भाग दक्षिणावर्त रहना ठीक है; क्योंकि वामावर्त विनाशकारक होता है। दक्षिण भागमें ऊँचा रहनेवाला घर 'सम्पूर्ण' वास्तुके नामसे अभिहित किया जाता है। वह मनुष्योंकी सभी कामनाओंको पूर्ण करता है। इस प्रकारके प्रदेशको देखकर प्रयत्नपूर्वक गृह आरम्भ करना चाहिये। सर्वप्रथम वेदज्ञ पुरोहित श्वेत वस्त्र धारणकर कारीगरके साथ ज्योतिषीके कथनानुसार शुभ मुहूर्तमें सभी बीजोंसे युक्त आधार-शिलाको रत्नके ऊपर स्थापित करे। पुनः चार ब्राह्मणोंद्वारा उस स्तम्भकी भलीभाँति पूजा कराकर उसे धो-पोंछकर अक्षत, वस्त्र, अलंकार और सर्वौषधिसे पूजितकर पूर्ववत् मन्त्रोच्चारण, बाजा और माङ्गलिक गीत आदिके शब्दके साथ स्थापित कर दे। ब्राह्मणोंको खीरका भोजन कराये और 'वास्तोष्पते प्रतिजानीहि'* (ऋक्संहिता ७। ५४। १) इस मन्त्रके द्वारा मधु और घीसे हवन करे। वास्तुयज्ञ पाँच प्रकारके हैं—सूत्रपात, स्तम्भारोपण, द्वारवंशोच्छ्रय (चौखट-स्थापन), गृहप्रवेश और वास्तु-शान्ति। इन सभीमें पूर्ववत् कार्य करनेका विधान है। ईशानकोणमें सूत्रपात और अग्निकोणमें स्तम्भारोपण होता है। वास्तुके पदचिह्नोंको बनाकर उसकी प्रदक्षिणा करनी चाहिये। सभी वास्तु-विभागोंमें दाहिने हाथकी तर्जनी, मध्यमा और अङ्गूठेसे मूँगा, रत्न और सुवर्णके चूर्णसे मिश्रित जलद्वारा पद-चिह्न बनाना श्रेष्ठ माना गया है ॥ १–१३ ॥

—क्रमशः

* यह पूरा मन्त्र इस प्रकार है—वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान्त्स्वावेशो अनमीवो भवा नः। यत् त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे॥ (ऋ० ७। ५४। १, तैत्ति० ३। ४। १०। १)।

Sri Vidya Lakshmi Book Centre, Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

श्रीगीता-रामायण-परीक्षा-समितिकी पाठ्य पुस्तकें एवं नियमावली

शिशु-परीक्षा—

१–किष्किन्धाकाण्ड सटीक

२–विनयपत्रिकाके १५ पद

प्रथमा-परीक्षा—

१–अरण्यकाण्ड सटीक

२–सुन्दरकाण्ड सटीक

३–विनयपत्रिकाके १५ पद

४–दोहावलीके ४० दोहे

मध्यमा-परीक्षा—

१–अयोध्याकाण्ड सटीक

२–लङ्काकाण्ड सटीक

३–रामायण मध्यमा

४–मानस-शङ्का-समाधान

उत्तमा-परीक्षा—

१–बालकाण्ड सटीक

२–उत्तरकाण्ड सटीक

३–विनयपत्रिकाके २० पद

४–दोहावली

५–कवितावली

परीक्षा-केन्द्र-व्यवस्थापकोंसे निवेदन है कि वे कृपया निम्नलिखित नियमोंका पालन अनिवार्य-रूपसे करें।

१–केन्द्र-व्यवस्थापकको अपना पूरा नाम, पद एवं पूर्ण पता स्पष्ट अक्षरोंमें लिखकर भेजना चाहिये।

२–प्रतिवर्ष नवीन परीक्षा-केन्द्र-स्थापन-हेतु आवेदन-पत्र परीक्षा-समितिके कार्यालयमें १५ जुलाई-तक प्राप्त हो जाना चाहिये, जिससे समयपर स्वीकृति दी जा सके एवं परीक्षाके कार्यमें विलम्ब न हो।

३–प्रत्येक केन्द्र-व्यवस्थापकको (चाहे केन्द्र नवीन हो अथवा पुराना) जुलाई मासके अन्ततक श्रीरामायण एवं गीता-परीक्षा-हेतु जितने आवेदन-पत्रोंकी आवश्यकता हो उसकी सूचना समितिके कार्यालयको देनी चाहिये।

४–परीक्षाकी उत्तरपुस्तिकाएँ एवं प्रश्नपत्र आदिकी प्राप्तिकी सूचना अविलम्ब भेजनी चाहिये।

५–समितिद्वारा धनादेश (मनीआर्डर) द्वारा जो केन्द्र-व्यय अथवा पुरस्कार भेजे जाते हैं, उनकी प्राप्तिके कूपनपर हस्ताक्षरके नीचे अपना पूर्ण नाम, केन्द्रका नाम एवं कितनी धनराशि प्राप्त हुई तथा वह केन्द्र-व्ययकी है या पुरस्कारकी है—यह स्पष्टरूपसे लिखनेकी कृपा करें।

६–प्रमाण-पत्रोंकी प्राप्तिकी सूचना अविलम्ब भेजनी चाहिये।

७–श्रीगीता-परीक्षाके आवेदनपत्र अनिवार्यरूपसे समिति-कार्यालयमें अगस्त माहके अन्ततक प्राप्त हो जाने चाहिये। उसके उपरान्त विलम्बशुल्क (लेट फीस) सहित वे केवल १५ सितम्बरतक ही स्वीकार किये जायँगे। उसके बाद प्राप्त होनेवाले आवेदनपत्र स्वीकार नहीं किये जायँगे।

८–श्रीरामायणपरीक्षाके आवेदनपत्र अनिवार्यरूपसे १५ अक्टूबरतक समिति-कार्यालयमें प्राप्त हो जाने चाहिये, उसके उपरान्त लेट फीससहित वे केवल ३१ अक्टूबरतक ही स्वीकार किये जायँगे। इसके बाद प्राप्त होनेवाले आवेदनपत्र स्वीकार नहीं किये जायँगे।

९–निर्धारित तिथिपर ही परीक्षाका सम्पन्न होना अनिवार्य है। उत्तरपुस्तिकाओंका अधिक-से-अधिक १५ दिनके अंदर समस्त केन्द्रोंसे समिति-कार्यालयको प्राप्त हो जाना अति आवश्यक है, जिससे उनका मूल्याङ्कन करके परीक्षा-फल यथासमय घोषित किया जा सके।

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

श्रीहनुमान्‌जीद्वारा भगवान् रामका संस्तवन

चैत्र शुक्ल प्रतिपद्से नववर्ष एवं वासन्तीय नवरात्रका आरम्भ होता है। इसमें प्रथम दिन मङ्गलमय स्थापन, वत्सरपूजन, पञ्चाङ्गश्रवणके साथ मानस, वाल्मीकीय रामायण आदिके नवाह्नपाठ और दुर्गासप्तशतीके पाठ प्रारम्भ होते हैं। नवमीको रामजीका एवं मानस-जन्म मनाते हैं, साथमें हनुमान्‌जीकी भी पूजा चलती है। पाठके हनुमान्‌जीद्वारा की गयी भगवान् रामकी श्रेष्ठ स्तुतिका प्रतिदिन पाठ भी परम लाभकर है। स्तुति इस प्रकार है—

यत्तद्विशुद्धानुभवमात्रमेकं स्वतेजसा ध्वस्तगुणव्यवस्थम्।
प्रत्यक् प्रशान्तं सुधियोपलम्भनं ह्यनामरूपं निरहं प्रपद्ये॥
मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं रक्षोवधायैव न केवलं विभोः।
कुतोऽन्यथा स्याद्रमतः स्व आत्मनः सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य॥
न वै स आत्माऽऽत्मवतां सुहृत्तमः सक्तस्त्रिलोक्यां भगवान् वासुदेवः।
न स्त्रीकृतं कश्मलमश्नुवीत न लक्ष्मणं चापि विहातुमर्हति॥
न जन्म नूनं महतो न सौभगं न वाङ् न बुद्धिर्नाकृतिस्तोषहेतुः।
तैर्यद्विसृष्टानपि नो वनौकसश्चकार सख्ये बत लक्ष्मणाग्रजः॥
सुरोऽसुरो वाप्यथ वानरो नरः सर्वात्मना यः सुकृतज्ञमुत्तमम्।
भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं य उत्तराननयत् कोसलान् दिवमिति॥*

(श्रीमद्भागवत ५।१९।४-८)

'भगवन्! आप विशुद्ध बोधस्वरूप, अद्वितीय, अपने स्वरूपके प्रकाशसे गुणोंके कार्यरूप जाग्रदादि सम्पूर्ण अवस्थाओंका निरास करनेवाले, सर्वान्तरात्मा, परम शान्त, शुद्ध-बुद्धिसे ग्रहण किये जानेयोग्य, नाम-रूपसे रहित और अहङ्कारशून्य हैं, मैं आपकी शरणमें हूँ। प्रभो! आप मर्यादापुरुषोत्तमका मनुष्यावतार मात्र राक्षसोंके वधके लिये ही नहीं है, प्रत्युत इसका मुख्य उद्देश्य तो मनुष्योंको आचरणकी शिक्षा देना है; अन्यथा अपने स्वरूपमें ही रमण करनेवाले साक्षात् जगदात्मा जगदीश्वरको सीताजीके वियोगमें इतना दुःख कैसे हो सकता था! आप धीर पुरुषोंके आत्मा और प्रियतम भगवान् वासुदेव हैं; त्रिलोकीकी किसी भी वस्तुमें आपकी आसक्ति नहीं है। आप न तो सीताजीके लिये मोहको ही प्राप्त हो सकते हैं और न लक्ष्मणजीका त्याग ही कर सकते हैं। आपके ये व्यापार केवल लोकशिक्षाके लिये ही हैं। लक्ष्मणाग्रज! उत्तम कुलमें जन्म, सुन्दरता, वाक्चातुरी, बुद्धि और श्रेष्ठ योनि—इनमेंसे कोई भी गुण आपकी प्रसन्नताका कारण नहीं हो सकता, यह बात दिखानेके लिये ही आपने इन सब गुणोंसे रहित हम वनवासी वानरोंसे मित्रता की है। देवता, असुर, वानर अथवा मनुष्य—कोई भी हो, उसे सब प्रकारसे श्रीरामरूप आपका ही भजन करना चाहिये; क्योंकि आप नररूपमें साक्षात् श्रीहरि ही हैं और थोड़े कियेको भी बहुत अधिक मानते हैं। आप ऐसे आश्रितवत्सल हैं कि जब स्वयं दिव्यधामको सिधारे थे, तब समस्त उत्तरकोसलवासियोंको भी अपने साथ ही ले गये थे।'

* ऐसी कई स्तुतियाँ रामार्चन-चन्द्रिकादिमें भी हैं। पर शुकदेवजीकी वाणीसे प्रस्फुटित होनेसे इसका महत्त्व और विशेष बढ़ गया है।

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

कल्याण

र्ष ५१] 'पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना !' [संख्या ४

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण १,७०,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर वैशाख, श्रीकृष्ण-संवत् ५२११, अप्रैल १९८५

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
	अर्धनारीश्वर महादेव	९९३
२५७	गृहनिर्माण-(वास्तुकार्य-) में ग्राह्य काष्ठ	९९५
२५८	देव-प्रतिमाका प्रमाण-निरूपण	९९७
२५९	प्रतिमाओंके लक्षण, मान, आकार आदिका कथन	१००३
२६०	विविध देवताओंकी प्रतिमाओंका वर्णन	१००६
२६१	सूर्यादि विभिन्न देवताओंकी प्रतिमाके स्वरूप, प्रतिष्ठा और पूजा आदिकी विधि	१०११
२६२	पीठिकाओंके भेद, लक्षण और फल	१०१५
२६३	शिवलिङ्गके निर्माणकी विधि	१०१७
२६४	प्रतिमा-प्रतिष्ठाके प्रसङ्गमें यज्ञाङ्गरूप कुण्डादिके निर्माणकी विधि	१०२०
२६५	प्रतिमाके अधिवासन आदिकी विधि	१०२३
२६६	प्रतिमा-प्रतिष्ठाकी विधि	१०२७
२६७	देव-(प्रतिमा-) प्रतिष्ठाके अङ्गभूत अभिषेक-स्नानका निरूपण	१०३२
२६८	वास्तुशान्तिकी विधि	१०३५
२६९	प्रासादोंके भेद और उनके निर्माणकी विधि	१०३८

चित्र-सूची

१–प्रह्लादकी अग्निसे रक्षा	(रेखा-चित्र)	आवरण-पृष्ठ
२–अर्धनारीश्वर	(रंगीन चित्र)	मुख्य-पृष्ठ

प्रत्येक साधारण अङ्कका मूल्य
भारतमें १.०० रु०
विदेशमें १० पेंस

जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

कल्याणका वार्षिक मूल्य
भारतमें २४.००
विदेशमें ६०.००
(४ पौण्ड)

संस्थापक—ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

सम्पादक—राधेश्याम खेमका

गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये जगदीशप्रसाद जालानद्वारा गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

[भारत-सरकारद्वारा उपलब्ध कराये गये रियायती मूल्यके कागजपर मुद्रित]

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

अर्धनारीश्वर

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

कल्याण

वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते ।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते म्लेच्छान् मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः ॥

वर्ष ५९ } गोरखपुर, सौर वैशाख, श्रीकृष्ण-संवत् ५२११, अप्रैल १९८५ ई० { संख्या ४ पूर्ण संख्या ७०१

अर्धनारीश्वर महादेव

अर्धेन देवदेवस्य नारीरूपं सुशोभनम् । ईशार्धे तु जटाभागो बालेन्दुकलया युतः ॥
उमार्धे चापि दातव्यौ सीमन्ततिलकावुभौ । वासुकिं दक्षिणे कर्णे वामे कुण्डलमादिशेत् ॥
बालिका चोपरिष्टात्तु कपालं दक्षिणे करे । त्रिशूलं वाऽपि कर्तव्यं देवदेवस्य शूलिनः ॥
वामतो दर्पणं दद्यादुत्पलं च विशेषतः । वामबाहुश्च कर्तव्यः केयूरवलयान्वितः ॥

'अर्धनारीश्वर-मूर्तिमें भगवान् शंकरकी बायीं ओर आधे भागमें अति सुन्दर नारीका रूप होता है । दाहिनी ओरके पुरुषभागमें प्रतिमार्ध जटाजूट तथा बालचन्द्रकी कलासे युक्त रहती है । उमाके अर्धभागमें मस्तकपर माँगमें सिन्दूर और ललाटपर तिलक होना चाहिये । दाहिने कानमें वासुकि नाग और बाँएँ कानमें कुण्डलकी रचना करनी चाहिये । सिरपर दाहिनी ओर केशोंके आभूषण तथा कानमें बाली हो । शिवके हाथमें कपाल या त्रिशूल तथा बायें (पार्वतीके) हाथमें दर्पण और कमल रहता है । इसी प्रकार बायें बाहुको बाजूबंद और कङ्कणसे युक्त बनाना चाहिये और दाहिनी ओर यज्ञोपवीत । (मत्स्यपुराण २६० । १–५)

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

कोड १२६–१२७

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

(गताङ्कसे आगे)

न भस्माङ्गारकाष्ठेन नखशस्त्रेण चर्मभिः। न श्रृङ्गास्थिकपालैश्च क्वचिद् वास्तु विलेखयेत्॥ १४॥
एभिर्विलिखितं कुर्याद् दुःखशोकभयादिकम्। यदा गृहप्रवेशः स्याच्छिल्पी तत्रापि लक्षयेत्॥ १५॥
स्तम्भसूत्रादिकं तद्वच्छुभाशुभफलप्रदम्। आदित्याभिमुखं रौति शकुनिः परुषं यदि॥ १६॥
तुल्यकालं स्पृशेदङ्गं गृहभतुर्यदात्मनः। वास्त्वङ्गे तद् विजानीयान्नरशल्यं भयप्रदम्॥ १७॥
अङ्कनानन्तरं यत्र हस्त्यश्वश्वापदं भवेत्। तदङ्गसम्भवं विन्द्यात् तत्र शल्यं विचक्षणः॥ १८॥
प्रसार्यमाणे सूत्रे तु श्वा गोमायुर्विलङ्घते। तत्तु शल्यं विजानीयात् खरशब्देऽतिभैरवे॥ १९॥
यदीशाने तु दिग्भागे मधुरं रौति वायसः। धनं तत्र विजानीयाद् भागे वा स्वाम्यधिष्ठिते॥ २०॥
सूत्रच्छेदे भवेन्मृत्युर्व्याधिः कीले त्वधोमुखे। अङ्गारेषु तथोन्मादं कपालेषु च सम्भ्रमम्॥ २१॥
कम्बुशल्येषु जानीयात्पौंश्चल्यं स्त्रीषु वास्तुवित्। गृहभर्तुर्गृहस्यापि विनाशः शिल्पिसम्भ्रमे॥ २२॥
स्तम्भे स्कन्धच्युते कुम्भे शिरोरोगं विनिर्दिशेत्। कुम्भापहारे सर्वस्य कुलस्यापि क्षयो भवेत्॥ २३॥
मृत्युः स्थानच्युते कुम्भे भग्ने बन्धं विदुर्बुधाः। करसंख्याविनाशे तु नाशं गृहपतेर्विदुः॥ २४॥
बीजौषधिविहीने तु भूतेभ्यो भयमादिशेत्। ततः प्रदक्षिणेनान्यान्न्यसेत् स्तम्भान् विचक्षणः॥ २५॥
यस्माद् भयंकरा नृणां योजिता ह्यप्रदक्षिणम्।

राख, अंगार, काष्ठ, नख, शास्त्र, चर्म, सींग, हड्डी, कपाल—इन वस्तुओंद्वारा कहीं भी वास्तुके चिह्न नहीं बनाना चाहिये; क्योंकि इनके द्वारा बनाया गया चिह्न दुःख, शोक और भय आदि उत्पन्न करता है। जिस समय गृहप्रवेश हो, उस समय कारीगर का भी रहना उचित है। स्तम्भारोपण और सूत्रपातके समय पूर्ववत् शुभ एवं अशुभ फल देनेवाले शुक होते हैं। यदि ऐसे अवसरोंपर कोई पक्षी सूर्यकी ओर मुख कर कठोर वाणी बोलता है या उस समय गृहपति अपने शरीरके किसी अङ्गपर हाथ रखता है तो समझ लेना चाहिये कि वास्तुके उसी पर भय प्रदान करनेवाली मनुष्यकी हड्डी पड़ी हुई है। सूत्र अङ्कित कर देनेके बाद यदि गृहपति अपने किसी अङ्गका स्पर्श करता है तो वास्तुके उसी अङ्गमें हाथी, अश्व तथा कुत्तेकी हड्डियाँ हैं, ऐसा बुद्धिमान् पुरुषको समझ लेना चाहिये। सूत्रको फैलाते समय उसे श्रृगाल या कुत्ता लाँघ जाता है और गदहा अत्यन्त भयंकर चीत्कार करता है तो ठीक उस स्थानपर हड्डी जाननी चाहिये। यदि सूत्रपातके समय ईशान कोणमें कौआ मीठे स्वरसे बोलता हो तो वास्तुके उस भागमें या जहाँ गृहपति खड़ा है, वहाँ धन है—ऐसा जानना चाहिये। सूत्रपातके समय यदि सूत्र टूट जाता है तो गृहपतिकी मृत्यु होती है। वास्तुवेत्ताको ऐसा समझना चाहिये कि कीलके नीचेकी ओर झुक जानेपर व्याधि, अंगार दिखायी पड़नेपर उन्माद, कपाल दीख पड़नेपर भय और शङ्ख या घोंघेकी हड्डी मिलनेपर कुलाङ्गनाओंमें व्यभिचारकी सम्भावना रहती है। भवन-निर्माणके समय कारीगरके पागल हो जानेपर गृहपति और घरका विनाश हो जाता है। स्थापित किये हुए स्तम्भ या कुम्भके कंधेपर गिर जानेसे गृहपतिके सिरमें रोग होता है तथा कलशकी चोरी हो जानेपर समूचे कुलका विनाश हो जाता है। कुम्भके अपने स्थानसे च्युत हो जानेपर गृहस्वामीकी मृत्यु होती है तथा फूट जानेपर वह बन्धनमें पड़ता है—ऐसा पण्डितोंने कहा है। गृहारम्भके समय हाथोंकी परिमाण-संख्या नष्ट हो जानेपर गृहपतिका नाश समझना चाहिये। बीज और ओषधियोंसे विहीन होनेपर भूतोंसे भय होता है। अतः विचारवान् पुरुष प्रदक्षिण-क्रमसे अन्य स्तम्भोंकी स्थापना करे; क्योंकि प्रदक्षिणक्रमके बिना स्थापित किये गये स्तम्भ मनुष्योंके लिये भयदायक होते हैं॥ १४–२५½॥

रक्षां कुर्वीत यत्नेन स्तम्भोपद्रवनाशिनीम्॥ २६॥
तथा फलवतीं शाखां स्तम्भोपरि निवेशयेत्। प्रागुदक्प्रवणं कुर्याद् दिङ्मूढं तु न कारयेत्॥ २७॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

स्तम्भं वा भवनं वापि द्वारं वासगृहं तथा । दिङ्मूढे* कुलनाशः स्यान्न च संवर्धयेद् गृहम् ॥२८॥
यदि संवर्धयेद् गेहं सर्वदिक्षु विवर्धयेत् । पूर्वेण वर्धितं वास्तु कुर्याद् वैराणि सर्वदा ॥ २९ ॥
दक्षिणे वर्धितं वास्तु मृत्यवे स्यान्न संशयः । पश्चाद् विवृद्धं यद् वास्तु तदर्थक्षयकारकम् ॥ ३० ॥
वर्धापितं तथा सौम्ये बहुसन्तापकारकम् । आग्नेये यत्र वृद्धिः स्यात् तदग्निभयदं भवेत् ॥ ३१ ॥
वर्धितं राक्षसे कोणे शिशुक्षयकरं भवेत् । वर्धापितं तु वायव्ये वातव्याधिप्रकोपकृत् ॥ ३२ ॥
ईशान्यामन्नहानिः स्याद् वास्तौ संवर्धिते सदा । ईशाने देवतागारं तथा शान्तिगृहं भवेत् ॥ ३३ ॥
महानसं तथाग्नेये तत्पार्श्वे चोत्तरे जलम् । गृहस्योपस्करं सर्वं नैर्ऋत्ये स्थापयेद् बुधः ॥ ३४ ॥
बन्धस्थानं बहिः कुर्यात् स्नानमण्डपमेव च ।
धनधान्यं च वायव्ये कर्मशालां ततो बहिः । एवं वास्तुविशेषः स्याद् गृहभर्तुः शुभावहः ॥ ३५ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वास्तुविद्यायां गृहनिर्णयो नाम षट्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५६ ॥

स्तम्भके उपद्रवोंका विनाश करनेवाली रक्षा-विधि भी यत्नपूर्वक सम्पन्न करनी चाहिये । इसके लिये स्तम्भके ऊपर फलोंसे युक्त वृक्षकी शाखा डाल देनी चाहिये । स्तम्भ उत्तर या पूर्वकी ओर ढालू होना चाहिये, अस्पष्ट दिशामें नहीं कराना चाहिये । इस बातका ध्यान भवन, स्तम्भ, निवासगृह तथा द्वार निर्माणके समय भी स्थापन रखना चाहिये; क्योंकि दिशाकी अस्पतासे कुलका नाश हो जाता है । घरके किसी अंशको पिण्डसे आगे नहीं बढ़ाना चाहिये । यदि बढ़ाना ही हो तो सभी दिशामें बढ़ावे । पूर्व दिशामें बढ़ाया गया वास्तु सर्वदा वैर पैदा करता है, दक्षिण दिशाकी ओर बढ़ाया हुआ वास्तु मृत्युकारी होता है, इसमें संदेह नहीं है । जो वास्तु पश्चिम-की बढ़ाया जाता है, वह धनक्षयकारी होता है तथा उत्तरकी ओर बढ़ाया हुआ दुःख एवं सन्तापकी वृद्धि करता है । जहाँ अग्निकोणमें वृद्धि होती है, वहाँ वह अग्निका भय देनेवाला नैर्ऋत्यकोण बढ़ानेपर शिशुओंका विनाशक वायव्य कोणमें बढ़ानेपर बात-व्याधि-उत्पादक, ईशान कोणमें बढ़ानेपर अन्नके लिये हानि कारक होता है । गृहके ईशान कोणमें देवताका स्थान और शान्तिगृह, अग्निकोणमें रसोई घर और उसके बगलमें उत्तर दिशामें जलस्थान होना चाहिये । बुद्धिमान् पुरुष सभी घरेलू सामग्रियोंको नैर्ऋत्य कोणमें करे । पशुओं आदिके बाँधनेका स्थान और स्नानागार गृहके बाहर बनाये । वायव्य कोणमें अन्नादिका स्थान बनाये । इसी प्रकार कार्यशाला भी निवास-स्थानसे बाहर बनानी चाहिये । इस ढंगसे बना हुआ भवन गृहपतिके लिये मङ्गलकारी होता है ॥ २८–३५ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें वास्तुविद्याके प्रसङ्गमें गृहनिर्णय कथन नामक दो सौ छप्पनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥२५६॥

दो सौ सत्तावनवाँ अध्याय

गृहनिर्माण (वास्तुकार्य) में ग्राह्य काष्ठ

सूत उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि दार्वाहरणमुत्तमम् । धनिष्ठापञ्चकं मुक्त्वा त्विष्टयादिकमतः परम् ॥ १ ॥
ततः सांवत्सरादिष्टे दिने यायाद् वनं बुधः । प्रथमं बलिपूजां च कुर्याद् वृक्षस्य सर्वदा ॥ २ ॥
पूर्वोत्तरेण पतितं गृहदारु प्रशस्यते । अन्यथा न शुभं विन्द्याद् याम्योपरि निपातनम् ॥ ३ ॥
क्षीरवृक्षोद्भवं दारु न गृहे विनिवेशयेत् । कृताधिवासं विहगैरनिलानलपीडितम् ॥ ४ ॥
गजावरुग्णं च तथा विद्युन्निर्घातपीडितम् । अर्धशुष्कं तथा दारु भग्नशुष्कं तथैव च ॥ ५ ॥

* वाल्मी० ३ । ६० । ६, बृहत्संहि० ५३ । ११५ के अनुसार जहाँ कोई निशान प्रतीत हो, वे भवनादि विमूढ कहे गये हैं ।

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

चैत्यदेवालयोत्पन्नं नदीसङ्गमजं तथा। श्मशानकूपनिलयं तडागादिसमुद्भवम् ॥ ६ ॥
वर्जयेत् सर्वथा दारु यदीच्छेद् विपुलां श्रियम्। तथा कण्टकिनो वृक्षान् नीपनिम्बविभीतकान् ॥ ७ ॥
श्लेष्मातकानाम्रतरून्वर्जयेद्गृहकर्मणि। आसनाशोकमधुकसर्जशालाः शुभावहाः ॥ ८ ॥
चन्दनं पनसं धन्यं सुरदारु हरिद्रवः। द्वाभ्यामेकेन वा कुर्यात् त्रिभिर्वा भवनं शुभम् ॥ ९ ॥
बहुभिः कारितं यस्मादनेकभयदं भवेत्। एकैकशिंशपा धन्या श्रीपर्णी तिन्दुकी तथा ॥ १० ॥
एता नान्यसमायुक्ताः कदाचिच्छुभकारकाः। स्यन्दनः पनसस्तद्वत् सरलार्जुनपद्मकाः ॥ ११ ॥
एते नान्यसमायुक्ता वास्तुकार्यफलप्रदाः।

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! अब मैं उत्तम काष्ठ लानेकी विधि बतलाता हूँ। धनिष्ठा आदि पाँच नक्षत्रों और इसके बाद भद्रा आदिको छोड़कर ज्योतिषी-द्वारा बताये गये शुभ दिनमें बुद्धिमान् पुरुष काष्ठ लानेके लिये वनको प्रस्थान करे। सर्वप्रथम ग्रहण किये जानेवाले वृक्षकी बलिपूजा करनी चाहिये। पूर्व तथा उत्तर दिशाकी ओर गिरनेवाले वृक्षका काष्ठ गृहनिर्माणमें मङ्गलकारी होता है तथा दक्षिणकी ओर गिरा हुआ अशुभ होता है। दूधवाले वृक्षोंका काष्ठ घरमें नहीं लगाना चाहिये। जो वृक्ष पक्षियोंद्वारा अधिष्ठित तथा वायु और अग्निसे पीड़ित हो, हाथीसे तोड़ा हुआ हो, बिजली गिरनेसे जल गया हो, जिसका आधा भाग सूख गया हो या कुछ अंश टूट-फूट गया हो, अश्वत्थवृक्ष समाधि या देव-मन्दिरसे निकले वृक्ष, नदीके संगमपर स्थित वृक्षोंको अथवा जो श्मशानभूमि तालाब आदि जलाशयोंपर उगा हुआ हो, ऐसे वृक्षोंको विपुल लक्ष्मीकी इच्छा करनेवाले व्यक्ति[को] छोड़ देना चाहिये। इसी प्रकार काँटेदार वृक्ष, कदम्ब, निम्ब, बहेड़ा, ढेरा और आमके वृक्षोंको भी गृहकार्य[में] नहीं लेना चाहिये। असना, अशोक, महुआ, सर्ज और साखूके काष्ठ मङ्गलप्रद हैं। चन्दन, कटहल, देवदारु तथा दारुव्दीके काष्ठ धनप्रद कहे गये हैं। एक, दो या तीन प्रकारके काष्ठोंद्वारा बनाया गया भवन शुभ होता है; क्योंकि अनेक प्रकारके काष्ठोंसे बना[या] हुआ भवन अनेकों भय देनेवाला होता है। धनदा[यक] शीशम, श्रीपर्णी तथा तिन्दुकीके काष्ठको अकेले [ही] लगाना चाहिये; क्योंकि ये अन्य किसी काष्ठके सा[थ] सम्मिलित कर देनेसे कभी मङ्गलकारी नहीं होते। इसी प्रकार धव, कटहल, चीड़, अर्जुन और प[द्मक] वृक्ष भी अन्य काष्ठोंके साथ सम्मिलित होनेपर गृह का[र्यके] लिये शुभदायक नहीं होते ॥ १–११½ ॥

तरुच्छेदे महापीते गोधा विन्द्याद्विचक्षणः ॥ १२ ॥
मञ्जिष्ठवर्णे भेकः स्यान्नीले सर्पादि निर्दिशेत्। अरुणे सरटं विद्यान्मुक्ताभे शुकमादिशेत् ॥ १३ ॥
कपिले मूषकान् विद्यात्खाङ्गभे जलमादिशेत्। एवंविधं सगर्भं तु वर्जयेद् वास्तुकर्मणि ॥ १४ ॥
पूर्वच्छिन्नं तु गृह्णीयान्निमित्तशकुनैः शुभैः। व्यासेन गुणिते दैर्घ्ये अष्टाभिर्वै हृते तथा ॥ १५ ॥
यच्छेषमायतं विन्द्यादष्टभेदं वदामि वः। ध्वजो धूमश्च सिंहश्च श्वा वृष एव च ॥ १६ ॥
हस्ती ध्वाङ्क्षश्च पूर्वाद्याः करशेषा भवन्त्यमी। ध्वजः सर्वमुखो धन्यः प्रत्यग्द्वारो विशेषतः ॥ १७ ॥
उदङ्मुखो भवेत् सिंहः प्राङ्मुखो वृषभो भवेत्। दक्षिणाभिमुखो हस्ती सप्तभिः समुदाहृतः ॥ १८ ॥
एकेन ध्वज उद्दिष्टस्त्रिभिः सिंहः प्रकीर्तितः। पञ्चभिर्वृषभः प्रोक्तो विकोणस्थांश्च वर्जयेत् ॥ १९ ॥
तमेवाष्टगुणं कृत्वा करराशिं विचक्षणः। सप्तविंशाहृते भागे ऋक्षं विद्याद् विचक्षणः ॥ २० ॥
अष्टभिर्भाजिते ऋक्षे यः शेषः स व्ययो मतः।
व्ययाधिकं न कुर्वीत यतो दोषकरं भवेत्। आयाधिके भवेच्छान्तिरित्याह भगवान् हरिः ॥ २१ ॥
कृत्वाग्रतो द्विजवरानथ पूर्णकुम्भं दध्यक्षताम्रदलपुष्पफलोपशोभम्।
दत्त्वा हिरण्यवसनानि तदा द्विजेभ्यो माङ्गल्यशान्तिनिलयाय गृहं विशेत ॥ २२ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

गृह्योक्तहोमविधिना बलिकर्म कुर्यात् प्रासादवास्तुशमने च विधिर्य उक्तः।
संतर्पयेद् द्विजवरानथ भक्ष्यभोज्यैः शुक्लाम्बरः स्वभवनं प्रविशेत् सधूपम् ॥ २३ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वास्तुविद्यानुकीर्तनं नाम सप्तपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५७ ॥

वृक्ष काटते समय विचक्षण पुरुषको यदि पीले वर्णका चिह्न मिले तो भावी गृहमें गोहका, मंजीठ रंगका मिलनेपर मेढकका, नीला रंग मिलनेपर सर्पका, अरुण रंगसे गिरगिटका, मोतीके समान श्वेत चिह्नसे शुकका, कपिल वर्णसे चूहेका और तलवारकी भाँति चिह्न मिलनेपर जलका भय जानना चाहिये। इस प्रकारके गर्भवाले वृक्षको वास्तुकर्ममें त्याग देना चाहिये। पहलेसे कटे हुए वृक्षको शुभदायी निमित्त शकुनोंके साथ ग्रहण किया जा सकता है। घरके व्याससे लम्बाईके मानमें गुणाकर आठका भाग दे, जो शेष बचे उसे आयत जानना चाहिये। अब मैं आपलोगोंको आठका भेद बतला रहा हूँ। उन करशेषोंकी क्रमशः ध्वज, धूम, सिंह, खर, श्वान, वृषभ, हस्ती और काक संज्ञा होती है। चारों ओर मुखवाला तथा विशेषतया पश्चिम द्वारवाला ध्वज शुभकारी होता है। सिंहका उत्तर, वृषभका पूर्व, हाथीका दक्षिण मुख दुःखदायी होता है। सात विभागोंद्वारा इसे कहा जा चुका है। एक हाथसे ध्वजको, तीन हाथसे सिंहको और पाँच हाथसे वृषभको तो कहा गया। इनके अतिरिक्त जो त्रिकोणस्थ हों उन्हें व्यवहारमें नहीं लाना चाहिये। विचक्षण पुरुष उक्त करराशिके अंकको आठसे गुणाकर सत्ताईसका भाग देनेपर शेषको नक्षत्र माने। पुनः उस नक्षत्रमें आठका भाग देनेसे जो शेष बचता है, वह व्यय माना गया है। जिसमें व्यय अधिक निकले, उसे नहीं करना चाहिये; क्योंकि वह दोषकारक होता है। आय अधिक होनेपर शान्ति होती है, ऐसा भगवान् हरिने कहा है। गृह पूर्ण हो जानेपर उसमें माङ्गलिक शान्तिकी स्थितिके लिये श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको आगे कर दही, अक्षत, आमके पल्लव, पुष्प तथा फलादिसे सुशोभित जलपूर्ण कलशको देकर तथा अन्य ब्राह्मणोंको सुवर्ण और वस्त्र देकर उस भवनमें गृहपतिको प्रवेश करना चाहिये। उस समय गृह्यसूत्रोंमें प्रासाद एवं वास्तुकी शान्तिके लिये जो विधि कही गयी है, उसके अनुसार हवन एवं बलि-कर्म करे। फिर भक्ष्य एवं भोज्य पदार्थोंद्वारा ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट करे। तत्पश्चात् श्वेत वस्त्र धारणकर धूपादि द्रव्योंके साथ भवनमें प्रवेश करना चाहिये ॥ १२-२३ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें वास्तुविद्यानुकीर्तन नामक दो सौ सत्तावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २५७ ॥

दो सौ अट्ठावनवाँ अध्याय

देव-प्रतिमाका प्रमाण-निरूपण

ऋषय ऊचुः

क्रियायोगः कथं सिध्येद् गृहस्थादिषु सर्वदा। ज्ञानयोगसहस्राद्धि कर्मयोगो विशिष्यते ॥ १ ॥

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! गृहस्थादि आश्रमोंमें सभी युगोंमें क्रियायोगकी* सिद्धि किस प्रकार सम्भव है, क्योंकि क्रिया (भक्ति) योगको हजारों ज्ञान-योगकी अपेक्षा विशिष्ट माना गया है ॥ १ ॥

* यह पाद्मीय क्रियायोग-खण्डका सारांश तथा भाग० ११। २७ के क्रियायोगका कुछ विस्तृत रूप है। यहाँ

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

सूत उवाच

क्रियायोगं प्रवक्ष्यामि देवतार्चानुकीर्तनम्। भुक्तिमुक्तिप्रदं यस्मान्नान्यल्लोकेषु विद्यते ॥ २ ॥
प्रतिष्ठायां सुराणां तु देवतार्चानुकीर्तनम्। देवयज्ञोत्सवं चापि बन्धनाद् येन मुच्यते ॥ ३ ॥
विष्णोस्तावत् प्रवक्ष्यामि यादृग्रूपं प्रशस्यते। शङ्खचक्रधरं शान्तं पद्महस्तं गदाधरम् ॥ ४ ॥
छत्राकारं शिरस्तस्य कम्बुग्रीवं शुभेक्षणम्। तुङ्गनासं शुक्तिकर्णं प्रशान्तोरुभुजक्रमम् ॥ ५ ॥
क्वचिदष्टभुजं विद्यात्चतुर्भुजमथापरम्। द्विभुजश्चापि कर्तव्यो भवनेषु पुरोधसा ॥ ६ ॥
देवस्याष्टभुजस्यास्य यथास्थानं निबोधत। खड्गो गदा शरः पद्मं देयं दक्षिणतो हरेः ॥ ७ ॥
धनुश्च खेटकं चैव शङ्खचक्रे च वामतः। चतुर्भुजस्य वक्ष्यामि यथैवायुधसंस्थितिम् ॥ ८ ॥
दक्षिणेन गदा पद्मं वासुदेवस्य कारयेत्। वामतः शङ्खचक्रे च कर्तव्ये भूतिमिच्छता ॥ ९ ॥
कृष्णावतारे तु गदा वामहस्ते प्रशस्यते। यथेच्छया शङ्खचक्रे चोपरिष्टात् प्रकल्पयेत् ॥ १० ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! अब मैं देवार्चन-कथनरूप क्रियायोगका वर्णन कर रहा हूँ। यह भोग और मोक्ष—दोनोंको देनेवाला है तथा भूलोकके अतिरिक्त इसकी अन्य लोकोंमें सत्ता नहीं है। इस देवताओंकी प्रतिमा-प्रतिष्ठाके प्रसङ्ग-क्रममें प्रतिमा-निर्माण और उनके अङ्गभूत यज्ञकी विधि भी निर्दिष्ट है, जिसके अनुष्ठानसे प्राणी बन्धनसे मुक्त हो जाता है। अब भगवान् विष्णुकी जैसी प्रतिमा श्रेष्ठ मानी जाती है, उसका वर्णन कर रहा हूँ। उनकी प्रतिमाका रूप शान्त हो, हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्म धारण किये हुए हो, उसका सिर छत्रके समान गोल, गला शङ्खके समान, आँखें सुन्दर, नासिका कुछ ऊँची, कान सीपी-सदृश, भुजाएँ विशाल और ऊरु प्रशान्त—चढ़ाव-उतारवाले होने चाहिये। विष्णु भगवान्की प्रतिमा कहीं तो आठ भुजाओंवाली होती है और कहीं चार भुजाओंवाली; किंतु गृहस्थको अपने भवनमें दो भुजाओंकी (विष्णु-) प्रतिमा पुरोहितद्वारा स्थापित करानी चाहिये। अष्टभुज मूर्तिमें आयुधोंके यथास्थान क्रमको सुनिये—भगवान् श्रीहरिके दाहिनी ओरके चार हाथोंमें क्रमशः (नीचेसे ऊपरकी ओर) खड्ग, गदा, बाण और कमल तथा बायें हाथमें क्रमशः (नीचेसे ऊपर) धनुष, ढाल, शङ्ख और चक्र स्थापित करना चाहिये। अब चतुर्भुजमूर्तिके हाथोंमें आयुधकी स्थिति बतला रहा हूँ। समृद्धिकी इच्छा रखनेवालेको भगवान् वासुदेवकी प्रतिमामें दाहिनी ओरके दोनों हाथोंमें क्रमशः नीचेसे ऊपर गदा और पद्म तथा बायीं ओर क्रमशः नीचेसे ऊपर शङ्ख और चक्र रखना चाहिये। कृष्णावतारकी प्रतिमामें बायें हाथमें गदा ठीक मानी गयी है। दाहिने हाथमें स्वेच्छानुसार शङ्ख और चक्रको ऊपर-नीचे रखना चाहिये ॥ २-१० ॥

अधस्तात् पृथिवी तस्य कर्तव्या पादमध्यतः। दक्षिणे प्रणतं तद्वद् गरुत्मन्तं निवेशयेत् ॥ ११ ॥
वामतस्तु भवेल्लक्ष्मीः पद्महस्ता शुभानना। गरुत्मानग्रतो वापि संस्थाप्यो भूतिमिच्छता ॥ १२ ॥
श्रीश्च पुष्टिश्च कर्तव्ये पार्श्वयोः पद्मसंयुते। तोरणं चोपरिष्टात् तु विद्याधरसमन्वितम् ॥ १३ ॥

क्रियायोगका तात्पर्य देवपरक भगवद्भक्ति एवं देवार्चनसे है। मन्दिर, प्रतिमा-निर्माण, प्रतिष्ठादिका यह प्रकरण भारतीय धर्म-संस्कृति एवं कला-कौशलका प्राण है। इसकी विस्तृत जानकारीके लिये 'विष्णुधर्मोत्तर,' 'शिल्परत्न' 'वास्तुराजवल्लभ'—'प्रतिमा-प्रसादमण्डन' 'काश्यपशिल्प' 'अपराजित-पृच्छा' 'समराङ्गणसूत्रधार' 'प्रतिष्ठामहोदधि' आदि महान् ग्रन्थ भी अनुसंधेय हैं।

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

देवदुन्दुभिसंयुक्तं गन्धर्वमिथुनान्वितम् । पत्रवल्लीसमोपेतं सिंहव्याघ्रसमन्वितम् ॥ १४ ॥
तथा कल्पलतोपेतं स्तुवद्भिरमरेश्वरैः । एवंविधो भवेद्विष्णोस्त्रिभागेनास्य पीठिका ॥ १५ ॥
नवतालप्रमाणास्तु देवदानवकिंनराः । अतः परं प्रवक्ष्यामि मानोन्मानं विशेषतः ॥ १६ ॥
जालान्तरप्रविष्टानां भानूनां यद्रजः स्फुटम् । त्रसरेणुः स विज्ञेयो बालाग्रं तैरथाष्टभिः ॥ १७ ॥
तदष्टकेन लिक्ष्या तु यूका लिक्ष्याष्टकैर्मता । यवो यूकाष्टकं तद्वदष्टभिस्तैस्तदङ्गुलम् ॥ १८ ॥
स्वकीयाङ्गुलिमानेन मुखं स्याद् द्वादशाङ्गुलम् । मुखमानेन कर्तव्या सर्वावयवकल्पना ॥ १९ ॥

विष्णु भगवान्‌के दोनों चरणोंके मध्यमें नीचेकी ओर पृथ्वीकी मूर्ति और दाहिनी ओर प्रणाम करते हुए गरुड़की मूर्ति रखनी चाहिये । बायीं ओर हाथमें कमल लिये हुए सुन्दर मुखवाली लक्ष्मीकी स्थापना करनी चाहिये । कल्याणकामी पुरुष गरुड़को आगे भी स्थापित कर सकता है । प्रतिमाके दोनों ओर हाथमें कमल लिये श्री और पुष्टिकी मूर्ति भी बनानी चाहिये । प्रतिमाके ऊपर विद्याधरोंसे चित्रित गोलाकार तोरणका निर्माण करना चाहिये । देवताओंके नगाड़े बजाते हुए गन्धर्व-दम्पतिको भी वहाँ चित्रित करना चाहिये। साथमें वहीं यह लता और पत्तोंसे युक्त, कल्पलतासे समन्वित हो और व्याघ्र-सिंहोंकी भी प्रतिमासे सम्पन्न । स्तुति करते हुए बड़े-बड़े देवगण सामने खड़े हों । इस प्रकार विष्णुकी प्रतिमा हो तथा प्रतिमाकी पीठिकाका विस्तार प्रतिमामानके तृतीयांशसे निर्मित हो । देवता, दानव तथा किन्नरोंकी प्रतिमा नौ ताल* परिमाणकी होनी चाहिये । अब मैं कौन-सी प्रतिमा कितनी ऊँची, नीची, मोटी और लम्बी हो, यह बतलानेके लिये मापविवरण बतला रहा हूँ । जालीके भीतरसे सूर्यकी किरणोंके प्रविष्ट होनेपर जो उड़ता धूलिकण स्पष्ट दिखायी पड़ता है, उसे 'त्रसरेणु' कहते हैं । इन आठ त्रसरेणुओंके बराबर एक बालाग्र होता है । उससे आठगुने बड़े आकारके पदार्थकी लिक्ष्या और आठ लिक्ष्याकी एक यूका होती है । आठ यूकाका एक यव और आठ यवोंके मापका एक अंगुल होता है । अपनी अँगुलीके परिमाणसे बारह अंगुलका मुख होता है और मुखके परिमाणानुसार ही देवताके सभी अवयवोंकी कल्पना करनी चाहिये ॥ ११–१९ ॥

सौवर्णी राजती वापि ताम्री रत्नमयी तथा । शैली दारुमयी चापि लोहसीसमयी तथा ॥ २० ॥
रीतिकाधातुयुक्ता वा ताम्रकांस्यमयी तथा । शुभदारुमयी वापि देवतार्चा प्रशस्यते ॥ २१ ॥
अङ्गुष्ठपर्वादारभ्य वितस्तिर्यावदेव तु । गृहेषु प्रतिमा कार्या नाधिका शस्यते बुधैः ॥ २२ ॥
आषोडशा तु प्रासादे कर्तव्या नाधिका ततः । मध्योत्तमकनिष्ठा तु कार्या वित्तानुसारतः ॥ २३ ॥
द्वारोच्छ्रायस्य यन्मानमष्टधा तत्तु कारयेत् । भागमेकं ततस्त्यक्त्वा परिशिष्टं तु यद् भवेत् ॥ २४ ॥
भागद्वयेन प्रतिमा त्रिभागीकृत्य तत्पुनः । पीठिका भागतः कार्या नातिनीचा न चोच्छ्रिता॥ २५ ॥
प्रतिमामुखमानेन नव भागान् प्रकल्पयेत् । चतुरङ्गुला भवेद् ग्रीवा भागेन हृदयं पुनः ॥ २६ ॥
नाभिस्तस्मादधः कार्या भागेनैकेन शोभना । निम्नत्वे विस्तरत्वे च अङ्गुलं परिकीर्तितम् ॥ २७ ॥
नाभेरधस्तथा मेढ्रं भागेनैकेन कल्पयेत् । द्विभागेनायतावूरू जानुनी चतुरङ्गुले ॥ २८ ॥
जङ्घे द्विभागे विख्याते पादौ च चतुरङ्गुलौ । चतुर्दशाङ्गुलस्तद्वन्मौलिरस्य प्रकीर्तितः ॥ २९ ॥
ऊर्ध्वमानमिदं प्रोक्तं पृथुत्वं च निबोधत । सर्वावयवमानेषु विस्तारं शृणुत द्विजाः ॥ ३० ॥

देव-प्रतिमा सुवर्ण, चाँदी, ताँबा, रत्न, पत्थर, देवदारु, लोहा-सीसा, पीतल, ताँबा और काँस- मिश्रित अथवा शुभ काष्ठोंकी बनी हुई प्रशस्त मानी गयी है ।† गृहस्थोंके घरोंमें अँगूठेके एक पर्वसे

* अंगूठेसे मध्यमा अंगुलीतक फैले करतलको ताल कहते हैं ।

† भागवतीय क्रियायोगोंमें भी कहा है—
'शैली दारुमयी लौही लेप्यालेख्या च सैकती । मनोमयी मणिमयी प्रतिमाष्टविधा स्मृता ॥ (११ । २७ । १२)

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

लेकर एक बीते प्रमाणमात्र ही प्रतिमा स्थापित करनी चाहिये; क्योंकि विद्वानोंने इससे बड़ीको गृहस्थके लिये प्रशस्त नहीं माना है। किंतु देव-मन्दिरोंमें सोलह बीतेतककी प्रतिमा प्रतिष्ठित की जा सकती है, पर उससे बड़ी वहाँ भी नहीं। इन प्रतिमाओंको अपनी आर्थिक स्थितिके अनुसार उत्तम मध्यम और कनिष्ठ कोटिकी बनानी चाहिये। मन्दिरके प्रवेशद्वारकी जो ऊँचाई हो, उसे आठ भागोंमें विभक्त कर दे। उसमें एक भाग छोड़कर शेष दो भागोंसे प्रतिमा बनवाये। फिर उन दो भागोंकी संख्याको तीन भागोंमें विभक्त कर दे। उसके एक भागके बराबर पीठिका बनाये। वह न बहुत ऊँची हो, न बहुत नीची। फिर प्रतिमाके मुखमानको नौ भागोंमें विभक्त करे। उसमें चार अंगुलमें ग्रीवा तथा एक भागके द्वारा हृदय होना चाहिये। उसके नीचेके एक भागमें सुन्दर नाभि बनानी चाहिये। वह गहराई और विस्तारमें एक अंगुलकी कही गयी है। नाभिके नीचे एक भागमें लिंग, दो भागोंमें विस्तृत ऊरु, चार अंगुलमें घुटने, दो भागसे जंघे और चार अंगुलके पैर हों। उसी प्रकार मूर्तिका सिर चौदह अंगुलका बनाना चाहिये। यह तो मूर्तिकी ऊँचाई बतायी गयी, अब उसकी मोटाई सुनिये। ब्राह्मणगण! अब क्रमशः के सभी अवयवोंका विस्तार सुनिये ॥ २०–३० ॥

चतुरङ्गुलं ललाटं स्यादूर्ध्वं नासा तथैव च। द्व्यङ्गुलस्तु हनुर्ज्ञेय ओष्ठौ द्व्यङ्गुलसम्मितौ ॥ ३१ ॥
अष्टाङ्गुलं ललाटं च तावन्मात्रे भ्रुवौ मते। अर्धाङ्गुला भ्रुवोर्लेखा मध्ये धनुरिवानता ॥ ३२ ॥
उन्नताग्रा भवेत् पार्श्वे श्लक्ष्णतीक्ष्णा प्रशस्यते। अक्षिणी द्व्यङ्गुलायामे तदर्धं चैव विस्तरे ॥ ३३ ॥
उन्नतोदरमध्ये तु रक्तान्ते शुभलक्षणे। तारकार्धविभागेन दृष्टिः स्यात् पञ्चभागिकी ॥ ३४ ॥
द्व्यङ्गुलं तु भ्रुवोर्मध्ये नासामूलमथाङ्गुलम्। नासाग्रविस्तरं तद्वत् पुटद्वयमथानतम् ॥ ३५ ॥
नासापुटबिलं तद्वदर्धाङ्गुलमुदाहृतम्। कपोले द्व्यङ्गुले तद्वत् कर्णमूलाद् विनिर्गते ॥ ३६ ॥
हन्वग्रमङ्गुलं तद्वद् विस्तारो द्व्यङ्गुलो भवेत्। अर्धाङ्गुला भ्रुवो राजी प्रणालसदृशी समा ॥ ३७ ॥
अर्धाङ्गुलसमस्तद्वदुत्तरोष्ठस्तु विस्तरे। निष्पावसदृशं तद्वन्नासापुटदलं भवेत् ॥ ३८ ॥
सृक्किणी ज्योतिस्तुल्ये तु कर्णमूलात् षडङ्गुले। कर्णौ तु भ्रूसमौ ज्ञेयावूर्ध्वं तु चतुरङ्गुलौ ॥ ३९ ॥
द्व्यङ्गुलौ कर्णपार्श्वौ तु मात्रामेकां तु विस्तृतौ। कर्णयोरुपरिष्टाच्च मस्तकं द्वादशाङ्गुलम् ॥ ४० ॥

प्रतिमाके ललाटकी मोटाई चार अंगुल, नासिकाकी चार अंगुल, दाढ़ीकी दो अंगुल और ओठकी भी दो अंगुल जाननी चाहिये। यदि ललाटका विस्तार आठ अंगुल हो तो उतनेमें ही दोनों भौंहोंको भी बनानी चाहिये। भौंहोंकी रेखा आधे अंगुलकी हो। वह बीचमें धनुषाकार हो। दोनों छोरोंपर उसके अग्रभाग उठे हुए हों, बनावट चिकनी तथा सुन्दर होनी चाहिये। आँखोंकी लम्बाई दो अंगुल, चौड़ाई एक अंगुल, उनके मध्य भागमें ऊँची रक्ताभ एवं शुभ लक्षणोंसे युक्त पुतलियाँ होनी चाहिये। तारकाके आधे भागसे पाँचगुनी दृष्टि बनानी चाहिये। दोनों भौंहोंके मध्यमें दो अंगुलका अन्तर रखना चाहिये, नासिकाका मूलभाग एक अंगुलमें रहे। इसी प्रकार नीचेकी ओर झुकी हुई नासिकाके अग्रभाग एवं दोनों पुटोंको बनाना चाहिये। नासिकाके पुटोंके छिद्र आधे अंगुलके बताये गये हैं। कपोल दो अंगुलके हों, जो कानोंके मूल भागतक विस्तृत हों। ठुड्डीका अग्रभाग एक अंगुलमें तथा विस्तार दो अंगुलमें होना चाहिये। आधे अंगुलमें भौंहोंकी रेखा होनी चाहिये, जो प्रणालीके समान हो। नीचे तथा ऊपरके ओठ आधे-आधे अंगुलके हों। उसी प्रकार नासिकाके दोनों पुट निष्पाव (सेमके बीज)के तुल्य मापके बनाये जायँ। ओठके बगलमें मुखका कोना और ज्योति दोनों समान आकारका हो और

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

कानके मूलसे छः अंगुल दूरपर बनावे। दोनों कानोंकी बनावट भौंहोंके समान हो और उनकी ऊँचाई चार अंगुलकी हो। कानोंके पार्श्वभाग दो अंगुलके हों और उनका विस्तार एक अंगुल मात्रका हो। दोनों कानोंके ऊपर मस्तकका विस्तार बारह अंगुलका होना चाहिये ॥ ३१–४० ॥

ललाटात् पृष्ठतोऽर्धेन प्रोक्तमष्टादशाङ्गुलम्। षट्त्रिंशदङ्गुलश्चास्य परिणाहः शिरोगतः ॥ ४१ ॥
सकेशनिचयो यस्य द्विचत्वारिंशदङ्गुलः। केशान्ताद्धनुका तद्वदङ्गुलानि तु षोडश ॥ ४२ ॥
ग्रीवामध्यपरीणाहश्चतुर्विंशतिकाङ्गुलः। अष्टाङ्गुला भवेद् ग्रीवा पृथुत्वेन प्रशस्यते ॥ ४३ ॥
स्तनग्रीवान्तरं प्रोक्तमेकतालं स्वयम्भुवा। स्तनयोरन्तरं तद्वद् द्वादशाङ्गुलमिष्यते ॥ ४४ ॥
स्तनयोर्मण्डलं तद्वद् द्व्यङ्गुलं परिकीर्तितम्। चूचुकौ मण्डलस्यान्तर्यवमात्रावुभौ स्मृतौ ॥ ४५ ॥
द्वितालं चापि विस्ताराद् वक्षःस्थलमुदाहृतम्। कक्षे षडङ्गुले प्रोक्ते बाहुमूलस्तनान्तरे ॥ ४६ ॥
चतुर्दशाङ्गुलौ पादावङ्गुष्ठौ तु त्र्यङ्गुलौ। पञ्चाङ्गुलपरीणाहमङ्गुष्ठाग्रं तथोन्नतम् ॥ ४७ ॥
अङ्गुष्ठकसमा तद्वदायामा स्यात् प्रदेशिनी। तस्याः षोडशभागेन हीयते मध्यमाङ्गुली ॥ ४८ ॥
अनामिकाष्टभागेन कनिष्ठा चापि हीयते। पर्वत्रयेण चाङ्गुल्यौ गुल्फौ द्व्यङ्गुलकौ मतौ ॥ ४९ ॥
पार्ष्णिद्व्यङ्गुलमात्रस्तु कलयोच्चैः प्रकीर्त्तितः। द्विपर्वाङ्गुष्ठकः प्रोक्तः परीणाहश्च द्व्यङ्गुलः ॥ ५० ॥
प्रदेशिनीपरीणाहस्त्र्यङ्गुलः समुदाहृतः। कनिष्ठिकाष्टभागेन हीयते क्रमशो द्विजाः ॥ ५१ ॥
अङ्गुलेनोच्छ्रयः कार्यो ह्यङ्गुष्ठस्य विशेषतः। तदर्धेन तु शेषाणामङ्गुलीनां तथोच्छ्रयः ॥ ५२ ॥

ललाटके पीछेका आधा भाग अठारह अंगुलका कहा गया है और इसके मस्तकतकका विस्तार छत्तीस अंगुल होता है। केश-समूहका विस्तार बयालीस अंगुलका होता है। केशोंके अन्तर्भागसे दाढ़ीतकका विस्तार सोलह अंगुलका होता है। दोनों कंधोंका विस्तार चौबीस अंगुलका हो। ग्रीवाकी मोटाई आठ अंगुलकी उत्तम मानी गयी है। ब्रह्माने स्तन और ग्रीवाका मध्यभाग एक तालके बराबर बताया है। दोनों स्तनोंमें बारह अंगुलका अन्तर माना जाता है। स्तनोंके मण्डल दो अंगुल कहे गये हैं। दोनों चूचुक उस मण्डलके भीतर यवके बराबर बताये जाते हैं। वक्षःस्थलकी चौड़ाई दो ताल कही गयी है। दोनों कक्ष बाहु (भुजा) और स्तनके मध्यमें छः अंगुलके होने चाहिये। दोनों पैर चौदह अंगुल तथा उनके अँगूठे तीन अंगुल हों। अँगूठेका अग्रभाग उन्नत होना चाहिये और उसका विस्तार पाँच अंगुलका हो। उसी प्रकार अँगूठेके समान ही प्रदेशिनी अंगुलीको भी लम्बी बनाना चाहिये। उससे सोलहवें अंशसे अधिक मध्यमा अंगुली हो, अनामिका मध्यमा अंगुलीकी अपेक्षा आठवाँ भाग न्यून हो और अनामिकासे आठवें भागमें न्यून कनिष्ठिका हो। इन दोनों अंगुलियोंमें तीन पर्व बनाने चाहिये। पैरोंकी गाँठ दो अंगुलकी मानी गयी है। दोनों एड़ियाँ दो-दो अंगुलमें रहनी चाहिये, किंतु गाँठकी अपेक्षा इसमें एक कला अधिक रहे। अँगूठेमें दो पोर बनने चाहिये, उसका विस्तार दो अंगुलका हो। प्रदेशिनीका विस्तार तीन अंगुलका बताया गया है। द्विजगण! कनिष्ठिका क्रमशः आठवें भागसे कम रहे। विशेषतया अँगूठेकी मोटाई एक अंगुलकी हो। शेष अंगुलियोंकी मोटाई उसके आधे भागके तुल्य रखनी चाहिये ॥ ४१–५२ ॥

जङ्घाग्रे परिणाहस्तु अङ्गुलानि चतुर्दश। जङ्घामध्ये परीणाहस्तथैवाष्टादशाङ्गुलः ॥ ५३ ॥
जानुमध्ये परीणाह एकविंशतिरङ्गुलः। जानूच्छ्रयोऽङ्गुलः प्रोक्तो मण्डलं तु त्र्यङ्गुलम् ॥ ५४ ॥
ऊरुमध्ये परीणाहो ह्यष्टाविंशतिकाङ्गुलः। एकत्रिंशोपरिष्टाच्च वृषणौ तु त्र्यङ्गुलौ ॥ ५५ ॥
द्व्यङ्गुलं च तथा मेढ्रं परीणाहः षडङ्गुलः। मणिबन्धादधो विद्यात् केशरेखास्तथैव च ॥ ५६ ॥
मणिकोशपरीणाहश्चतुरङ्गुल इष्यते। विस्तरेण भवेत् तद्वत् कटिरष्टादशाङ्गुला ॥ ५७ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

द्वाविंशति तथा स्त्रीणां स्तनौ च द्वादशाङ्गुलौ। नाभिमध्यपरीणाहो द्विचत्वारिंशदङ्गुलः ॥ ५८ ॥
पुरुषे पञ्चपञ्चाशत् कट्यां चैव तु वेष्टनम्। कक्षयोरुपरिष्टात् तु स्कन्धौ प्रोक्तौ षडङ्गुलौ ॥ ५९ ॥
अष्टाङ्गुलां तु विस्तारे ग्रीवां चैव विनिर्दिशेत्। परीणाहे तथा ग्रीवां कला द्वादश निर्दिशेत् ॥ ६० ॥

जाँघके आगेके भाग चौदह अंगुल और मध्यभाग अठारह अंगुल रहे। घुटनेका मध्यभाग इक्कीस अंगुलका हो। घुटनेकी ऊँचाई एक अंगुल तथा मण्डल तीन अंगुल विस्तृत हो। ऊरुओंका मध्यभाग अट्ठाईस अंगुल हो। इसके एकतीस अंगुल ऊपर अण्डकोश तीन अंगुल और लिंग दो अंगुल हो तथा उसका विस्तार छः अंगुल हो। मणिबन्धसे नीचे केशोंकी रेखा रखनी चाहिये। मणिकोशका विस्तार चार अंगुलका हो। कटिप्रदेशका विस्तार अठारह अंगुल हो। स्त्रियोंकी मूर्तिमें कटिका विस्तार बाईस अंगुलका तथा स्तनोंका बारह अंगुल होना चाहिये। नाभिका मध्यभाग बयालीस अंगुलका होना चाहिये। पुरुषके कटिप्रदेश पचपन अंगुल तथा दोनों कक्षोंके ऊपर छः अंगुलके स्कन्धोंके बनानेकी विधि है। आठ अंगुलके विस्तारमें ग्रीवाका निर्माण कहा गया है और इसकी लम्बाई बारह कलाकी होनी चाहिये ॥ ५३-६० ॥

आयामो भुजयोस्तद्वद् द्विचत्वारिंशदङ्गुलः। कार्यं तु बाहुशिखरं प्रमाणे षोडशाङ्गुलम् ॥ ६१ ॥
ऊर्ध्वं यद्बाहुपर्यन्तं विद्यादष्टादशाङ्गुलम्। तथैकाङ्गुलहीनं तु द्वितीयं पर्व उच्यते ॥ ६२ ॥
बाहुमध्ये परीणाहो भवेदष्टादशाङ्गुलः। षोडशोक्तः प्रबाहुस्तु षट्कलोऽग्रकरो मतः ॥ ६३ ॥
सप्ताङ्गुलं करतलं पञ्च मध्याङ्गुली मता। अनामिका मध्यमायाः सप्तभागेन हीयते ॥ ६४ ॥
तस्यास्तु पञ्चभागेन कनिष्ठा परिहीयते। मध्यमायास्तु हीना वै पञ्चभागेन तर्जनी ॥ ६५ ॥
अङ्गुष्ठस्तर्जनीमूलादधः प्रोक्तस्तु तत्समः। अङ्गुष्ठपरिणाहस्तु विज्ञेयश्चतुरङ्गुलः ॥ ६६ ॥
शेषाणामङ्गुलीनां तु भागो भागेन हीयते। मध्यमापर्वमध्यं तु अङ्गुलद्वयमायतम् ॥ ६७ ॥
यवो यवेन सर्वासां तस्यास्तस्याः प्रहीयते। अङ्गुष्ठपर्वमध्यं तु तर्जन्याः सदृशं भवेत् ॥ ६८ ॥
यवद्वयाधिकं तद्वदग्रपर्व उदाहृतम्। पर्वार्धे तु नखान् विद्यादङ्गुलीषु समन्ततः ॥ ६९ ॥
स्निग्धं श्लक्ष्णं प्रकुर्वीत ईषद्रक्तं तथाग्रतः। निम्नपृष्ठं भवेन्मध्ये पार्श्वतः कलयोच्छ्रितम् ॥ ७० ॥
तथैव केशवल्लीयं स्कन्धोपरि दशाङ्गुला। स्त्रियः कार्यास्तु तन्वङ्ग्यः स्तनोरुजघनाधिकाः ॥ ७१ ॥
चतुर्दशाङ्गुलायाममुदरं तासु निर्दिशेत्। नानाभरणसम्पन्नाः किञ्चिच्छ्लक्ष्णभुजास्ततः ॥ ७२ ॥
किञ्चिद् दीर्घं भवेद् वक्त्रमलकावलिरुत्तमा। नासा ग्रीवा ललाटं च सार्धमात्रं त्रिरङ्गुलम् ॥ ७३ ॥
अध्यर्धाङ्गुलविस्तारः शस्यतेऽधरपल्लवः।
अधिकं नेत्रयुग्मं तु चतुर्भागेन निर्दिशेत्। ग्रीवाबलिश्च कर्तव्या किञ्चिदर्धाङ्गुलोच्छ्रयः ॥ ७४ ॥
एवं नारीषु सर्वासु देवानां प्रतिमासु च। नवतालमिदं प्रोक्तं लक्षणं पापनाशनम् ॥ ७५ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे देवार्चानुकीर्तने प्रमाणानुकीर्तनं नामाष्टपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५८ ॥

दोनों भुजाओंकी लम्बाई बयालीस अंगुल हो। बाहुके मूलभाग सोलह अंगुलके होने चाहिये। बाहुके ऊपरी अंशतक अठारह अंगुल होना चाहिये। दूसरा पर्व (पोर) इसकी अपेक्षा एक अंगुल कम कहा गया है। बाहुके मध्यभागका विस्तार अठारह अंगुल तथा नीचेका हाथ (करतलके पूर्वतक) सोलह अंगुलका कहा गया है। हाथके अग्रभागका मान छः कलाका माना गया है। हथेलीका विस्तार सात अंगुल हो और उसमें पाँच अंगुलियाँ बनी हों। अनामिका अंगुली मध्यमाकी अपेक्षा सप्तमांश कम रहती है। कनिष्ठा उससे भी पञ्चमांश न्यून तथा मध्यमाके पाँचवें भागसे न्यून तर्जनी होनी चाहिये। अँगूठा तर्जनीके उद्गमसे नीचा

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

होना चाहिये, किंतु लम्बाईमें उतना ही होना चाहिये। अँगूठेका विस्तार चार अंगुलका जानना चाहिये। शेष अंगुलियोंके विस्तार क्रमशः एक-एक भागसे न्यून होते हैं। मध्यमा अंगुलीके पोरोंके मध्यभागमें दो अंगुलका अन्तर रहना चाहिये। इसी प्रकार अन्य अंगुलियोंके पोरोंमें एक-एक यवकी कमी होती जाती है। अंगूठेके पोरोंका मध्यभाग तर्जनीके समान ही रहना चाहिये। अगला पोर दो यवसे अधिक कहा गया है। अंगुलियोंके पर्वार्धमें नखोंको चिकना, सुन्दर तथा आगेकी ओर कुछ लालिमायुक्त बनाना चाहिये। मयध्भागमें पीछेकी ओर कुछ नीचा तथा बगलमें अंशमात्र ऊँचा बनावे। उसी प्रकार कंधोंके ऊपर दस अंगुलमें केशोंकी बल्लीका निर्माण करना चाहिये। स्त्री-प्रतिमाओंको कुछ पतली तथा उनके स्तन, ऊरु एवं जाँघोंको स्थूल बनाना चाहिये। उनके उदरप्रदेशकी लम्बाई चौदह अंगुल तथा वे अनेक आभूषणोंसे विभूषित हों और उनकी भुजाओंको कुछ मृदु एवं मनोहर आकृतियुक्त बनाना चाहिये। मुखाकृति अपेक्षाकृत लम्बी हो। अलकावलि उत्तम ढंगसे रचित हो। नासिका, ग्रीवा और ललाट साढ़े तीन अंगुल होने चाहिये। अधर-पल्लवोंका विस्तार आधे अंगुलका प्रशस्त माना गया है। दोनों नेत्र अधर-पल्लवोंसे चार गुने अधिक होने चाहिये। ग्रीवाकी वलि आधे अंगुलकी ऊँची बनानी चाहिये। इस प्रकार सभी देवताओंकी प्रतिमाओं एवं स्त्री-प्रतिमाओंके निर्माणमें नौ तालका परिमाण बतलाया गया, जो समस्त पापोंको नष्ट करनेवाला कहा गया है॥ ६१—७५॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें देवपूजा-प्रसंगमें प्रतिमा-प्रमाण-कीर्तन नामक दो सौ अट्ठावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २५८॥

दो सौ उनसठवाँ अध्याय

प्रतिमाओंके लक्षण, मान, आकार आदिका कथन

सूत उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि देवाकारान् विशेषतः। दशतालः स्मृतो रामो बलिर्वैरोचनिस्तथा॥ १॥
वाराहो नारसिंहश्च सप्ततालस्तु वामनः। मत्स्यकूर्मौ च निर्दिष्टौ यथाशोभं स्वयम्भुवा॥ २॥
अतः परं प्रवक्ष्यामि रुद्राद्याकारमुत्तमम्। स पीनोरुभुजस्कन्धस्तप्तकाञ्चनसप्रभः॥ ३॥
शुक्लोऽर्करश्मिसंघातश्चन्द्राङ्कितजटो विभुः। जटामुकुटधारी च द्व्यष्टवर्षाकृतिश्च सः॥ ४॥
बाहू वारणहस्ताभौ वृत्तजङ्घोरुमण्डलः। ऊर्ध्वकेशश्च कर्तव्यो दीर्घायतविलोचनः॥ ५॥
व्याघ्रचर्मपरीधानः कटिसूत्रत्रयान्वितः। हारकेयूरसम्पन्नो भुजङ्गाभरणस्तथा॥ ६॥
बाहवश्चापि कर्तव्या नानाभरणभूषिताः। पीनोरुगण्डफलकः कुण्डलाभ्यामलङ्कृतः॥ ७॥
आजानुलम्बबाहुश्च सौम्यमूर्तिः सुशोभनः। खेटकं वामहस्ते तु खड्गं चैव तु दक्षिणे॥ ८॥
शक्तिं दण्डं त्रिशूलं च दक्षिणेषु निवेशयेत्। कपालं वामपार्श्वे तु नागं खट्वाङ्गमेव च॥ ९॥
एकश्च वरदो हस्तस्तथाक्षवलयोऽपरः।

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! इसके बाद मैं देवताओंकी मूर्तियोंके आकारके विषयमें विशेषरूपसे बतला रहा हूँ। इस विषयमें ब्रह्माने बताया है कि राम*, विरोचनके पुत्र बलि, वाराह और नृसिंहकी

* 'राम' शब्दसे यहाँ दशरथनन्दन राम, परशुराम तथा बलराम तीनों ही माह्य हैं।

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

मूर्तियोंकी ऊँचाई दस ताल* होनी चाहिये। वामनकी प्रतिमा सात ताल की हो तथा मत्स्य और कूर्मकी प्रतिमाएँ जितनेमें सुन्दर दीख सकें, उसी परिमाणकी बनानी चाहिये। अब मैं शिव आदिकी मूर्तियोंके आकारका वर्णन कर रहा हूँ। रुद्रकी मूर्ति तपाये हुए सुवर्णकी भाँति कान्तिमती तथा स्थूल ऊरुओं, भुजाओं और स्कन्धोंसे युक्त होनी चाहिये। उनका वर्ण सूर्यकी किरणोंके समान श्वेत और जटा चन्द्रमासे विभूषित हो। वे जटा-मुकुटधारी हों तथा उनकी अवस्था सोलह वर्षकी होनी चाहिये। उनकी दोनों भुजाएँ हाथीके शुण्डादण्डकी तरह तथा जंघा और ऊरुमण्डल गोलाकार हों। उनके केश ऊपरकी ओर उठे हुए तथा नेत्र दीर्घ एवं चौड़े बनाये जाने चाहिये। उनके वस्त्रके स्थानपर व्याघ्रचर्म तथा कमरमें तीन सूत्रोंकी मेखला बनायी जाय। उन्हें हार और केयूरसे सुशोभित तथा सर्पोंके आभूषणोंसे अलंकृत करना चाहिये। उनकी भुजाओंको विविध प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित तथा उभरे हुए कपोलोंको दो कुण्डलोंसे अलंकृत करना चाहिये। उनकी भुजाएं घुटनेतक लम्बी, मूर्ति सौम्य, परम सुन्दर, बायें हाथमें ढाल, दाहिने हाथमें तलवार, दाहिनी ओर शक्ति, दण्ड और त्रिशूल तथा बायीं ओरके हाथोंमें कपाल, नाग और खट्वाङ्गको रखना चाहिये। एक हाथ वरद-मुद्रासे सुशोभित और दूसरा हाथ रुद्राक्षकी माला धारण किये हुए हो ॥ १–९½ ॥

वैशाखस्थानकं कृत्वा नृत्याभिनयसंस्थितः ॥ १० ॥
नृत्यन् दशभुजः कार्यो गजचर्मधरस्तथा। तथा त्रिपुरदाहे च बाहवः षोडशैव तु ॥ ११ ॥
शङ्खं चक्रं गदा शार्ङ्गं घण्टा तत्राधिका भवेत्। तथा धनुः पिनाकञ्च शरो विष्णुमयस्तथा ॥ १२ ॥
चतुर्भुजोऽष्टबाहुर्वा ज्ञानयोगेश्वरो मतः। तीक्ष्णनासाग्रदशनः करालवदनो महान् ॥ १३ ॥
भैरवः शस्यते लोके प्रत्यायतनसंस्थितः। न मूलायतने कार्यो भैरवस्तु भयंकरः ॥ १४ ॥
नारसिंहो वराहो वा तथान्येऽपि भयङ्कराः। नाधिकाङ्गा न हीनाङ्गाः कर्तव्या देवताः क्वचित् ॥ १५ ॥
स्वामिनं घातयेन्न्यूना करालवदना तथा। अधिका शिल्पिनं हन्यात् कृशा चैवार्थनाशिनी ॥ १६ ॥
कृशोदरी तु दुर्भिक्षं निर्मांसा धननाशिनी। वक्रनासा तु दुःखाय संक्षिप्ताङ्गी भयङ्करी ॥ १७ ॥
चिपिटा दुःखशोकाय अनेत्रा नेत्रनाशिनी। दुःखदा हीनवक्त्रा तु पाणिपादकृशा तथा ॥ १८ ॥
हीनाङ्गा हीनजङ्घा च भ्रमोन्मादकरी नृणाम्। शुष्कवक्त्रा तु राजानं कटिहीना च या भवेत् ॥ १९ ॥
पाणिपादविहीना या जायते मारको महान्। जङ्घाजानुविहीना च शत्रुकल्याणकारिणी ॥ २० ॥

दस भुजाओंवाली शिवकी नटराज-मूर्तिको विशाख† स्थानयुक्त बनायी जानी चाहिये। वह नाचती हुई तथा गजचर्म धारण किये हुए हो। त्रिपुरान्तक प्रतिमामें सोलह भुजाएँ बनायी जानी चाहिये। उस समय उनके हाथमें शङ्ख, चक्र, गदा, सींग, घण्टा, पिनाक, धनुष, त्रिशूल और विष्णुमय शर—ये आठ वस्तुएँ अधिक रहेंगी। शिवकी ज्ञानयोगेश्वर प्रतिमामें चार या आठ भुजाएँ बनायी जाती हैं। भैरव-मूर्ति तीक्ष्ण दाँत तथा नुकीली नासिकासे युक्त होती है। उनका मुख महान् भयंकर होता है। ऐसी मूर्तिको प्रत्यायतन अर्थात् मुख्य मन्दिरके सामनेके मन्दिर या बरामदेमें स्थापित करना शुभदायक होता है। मुख्य मन्दिरमें भैरवकी स्थापना नहीं करनी चाहिये; क्योंकि ये भयकारी देवता हैं। इसी प्रकार नृसिंह, वराह तथा अन्य

* दस तालका तात्पर्य प्रायः पाँच हाथ या साढ़े सात फीटकी ऊँचाईसे है।

† विशाखस्थान नृत्य या युद्धमें खड़े होनेकी वह मुद्रा है, जिसमें दोनों पैरोंके बीचमें एक हाथ जगह खाली रहती है।

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

भयंकर देवताओंके लिये भी करना चाहिये। देव-प्रतिमाओंको कहीं भी हीन अङ्गोंवाली अथवा अधिक अङ्गोंवाली नहीं बनानी चाहिये। न्यून अङ्ग तथा भयानक मुखवाली प्रतिमा स्वामीका विनाश करती है, अधिक अङ्गोंवाली प्रतिमा शिल्पकारका हनन करती है और दुर्बल प्रतिमा धनका नाश करती है। दुबले उदरवाली प्रतिमा दुर्भिक्षप्रदा, कंकाल-सरीखी धन-नाशिनी, टेढ़ी नासिकावाली दुःखदायिनी, सूक्ष्माङ्गी भय पहुँचानेवाली, चिपटी दुःख और शोक प्रदान करनेवाली, नेत्रहीना नेत्रकी विनाशिका, मुखविहीना दुःखदायिनी तथा दुर्बल हाथ-पैरवाली या अन्य किन्हीं अङ्गोंसे हीन अथवा विशेषकर जंघेसे हीन प्रतिमा मनुष्योंके लिये भ्रम और उन्माद उत्पन्न करनेवाली कही गयी है। सूखे मुखवाली तथा कटिभागसे हीन प्रतिमा राजाको कष्ट देनेवाली कही गयी है। हाथ-पाँवसे विहीन प्रतिमा महामारीका भय उत्पन्न करनेवाली तथा जंघा और घुटनेसे विहीन शत्रुका कल्याण करनेवाली कही गयी है॥ १०-२०॥

पुत्रमित्रविनाशाय हीनवक्षःस्थला तु या। सम्पूर्णावयवा या तु आयुर्लक्ष्मीप्रदा सदा॥ २१॥
एवं लक्षणमासाद्य कर्तव्यः परमेश्वरः। स्तूयमानः सुरैः सर्वैः समन्ताद् दर्शयेद् भवम्॥ २२॥
शक्रेण नन्दिना चैव महाकालेन शंकरम्। प्रणता लोकपालास्तु पार्श्वे तु गणनायकाः॥ २३॥
नृत्यद्भृङ्गिरिटिश्चैव भूतवेतालसंवृताः। सर्वे हृष्टास्तु कर्तव्याः स्तुवन्तः परमेश्वरम्॥ २४॥
गन्धर्वविद्याधरकिन्नराणामथाप्सरोगुह्यकनायकानाम्।
गणैरनेकैः शतशो महेन्द्रैर्मुनिप्रवीरैरपि नम्यमानम्॥ २५॥
धृताक्षसूत्रैः शतशः प्रवालपुष्पोपहारप्रचयं ददद्भिः।
संस्तूयमानं भगवन्तमीड्यं नेत्रत्रयेणामरमर्त्यपूज्यम्॥ २६॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रतिमालक्षणे एकोनषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २५९॥

जो वक्षःस्थलसे विहीन होती है, वह पुत्रों और मित्रोंकी विनाशिका तथा सम्पूर्ण अङ्गोंसे परिपूर्ण प्रतिमा सर्वदा आयु और लक्ष्मी प्रदान करनेवाली कही गयी है। इस प्रकारके लक्षणोंसे युक्त भगवान् शंकरकी प्रतिमा निर्मित करानी चाहिये। उनकी प्रतिमाके चारों ओर सभी देवगणोंको स्तुति करते हुए प्रदर्शित करना चाहिये। शंकरकी मूर्तिको इन्द्र, नन्दीश्वर एवं महाकालसे युक्त बनाना चाहिये। उनके पार्श्व-भागमें विनम्र भावसे स्थित लोकपालों और गणेश्वरोंको दिखलाना चाहिये। भृंगी और भूत-वेतालोंकी मूर्तियाँ उनके बगलमें नाचती-गाती हुई बनायी जानी चाहिये, जो सभी हर्षपूर्वक परमेश्वर शिवकी स्तुतिमें लीन रहें। रुद्राक्षकी माला धारण करनेवाले, प्रवाल (मूँगे) आदिकी माला तथा पुष्पादिरूप उपहारोंको समर्पित करनेवाले गन्धर्व, विद्याधर, किन्नर, अप्सरा और गुह्यकोंके अधीश्वरोंके अनेकों गणों तथा इन्द्र आदि सैकड़ों देवताओं और मुनिवरोंद्वारा नमस्कार एवं स्तुति किये जाते हुए तथा देवताओं और मनुष्योंके लिये पूजनीय त्रिनेत्रधारी स्तवनीय भगवान् शंकरकी प्रतिमा बनायी जानी चाहिये॥ २१-२६॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें प्रतिमालक्षण नामक दो सौ उनसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २५९॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

दो सौ साठवाँ अध्याय

विविध देवताओंकी प्रतिमाओंका वर्णन

सूत उवाच

अधुना सम्प्रवक्ष्यामि अर्धनारीश्वरं परम्। अर्धेन देवदेवस्य नारीरूपं सुशोभनम्॥ १॥
ईशार्धे तु जटाभागो बालेन्दुकलया युतः। उमार्धे चापि दातव्यौ सीमन्ततिलकावुभौ॥ २॥
वासुकिं दक्षिणे कर्णे वामे कुण्डलमादिशेत्।
बालिका चोपरिष्टात् तु कपालं दक्षिणे करे। त्रिशूलं वापि कर्तव्यं देवदेवस्य शूलिनः॥ ३॥
वामतो दर्पणं दद्यादुत्पलं तु विशेषतः। वामबाहुश्च कर्तव्यः केयूरवलयान्वितः॥ ४॥
उपवीतं च कर्तव्यं मणिमुक्तामयं तथा॥ ५॥
स्तनभारं तथार्धे तु वामे पीतं प्रकल्पयेत्। परार्धमुज्ज्वलं कुर्याच्छ्रोण्यर्धं तु तथैव च॥ ६॥
लिङ्गार्धमूर्ध्वगं कुर्याद् व्यालाजिनकृताम्बरम्। वामे लम्बपरीधानं कटिसूत्रत्रयान्वितम्॥ ७॥
नानारत्नसमोपेतं दक्षिणे भुजगान्वितम्। देवस्य दक्षिणं पादं पद्मोपरि सुसंस्थितम्॥ ८॥
किञ्चिदूर्ध्वं तथा वामं भूषितं नूपुरेण तु। रत्नैर्विभूषितान् कुर्यादङ्गुलीष्वङ्गुलीयकान्॥ ९॥
सालक्तकं तथा पादं पार्वत्या दर्शयेत् सदा। अर्धनारीश्वरस्येदं रूपमस्मिन्नुदाहृतम्॥ १०॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! अब मैं भगवान् शिवके अर्धनारीश्वर रूपका वर्णन कर रहा हूँ। इसमें देवाधिदेव शंकरकी बायीं ओर आधे भागमें अत्यन्त सुन्दर स्त्रीका रूप होता है तथा अर्धभागमें दाहिनी ओर पुरुषरूप। पुरुष-भागमें प्रतिमाको जटाजूट तथा बालचन्द्रकी कलासे युक्तकर उमाके अर्धभागमें मस्तकपर सीमन्त (माँग)में सिन्दूर और ललाटपर तिलक निर्मित करे। दाहिने कानमें वासुकि नाग और बायें कानमें कुण्डलकी रचना की जानी चाहिये। वहीं ऊपरकी ओर केशोंके आभूषण तथा कानमें बाली बनानी चाहिये। देवदेवेश्वर शिवके दाहिने हाथमें कपाल या त्रिशूल तथा बायें हाथमें दर्पण और कमल बनाये। विशेषतया बायें बाहुको बाजूबंद और कङ्कणसे युक्त बनाना चाहिये और दाहिनी ओरके भागमें मणियों और मोतियोंका यज्ञोपवीत बनाना चाहिये। प्रतिमाके बायें भागकी ओर स्तन तथा दाहिना भाग पीले वर्णका बनाये। ऊपरका आधा भाग उज्ज्वल हो, नितम्बका आधा भाग श्वेतवर्णका होना चाहिये। लिंगसे ऊपरका भाग सिंहके चर्मसे आवृत हो। बायें भागमें नाना प्रकारके रत्नोंसे बनी हुई तीन लड़ियोंवाली करधनी और साड़ी पहनानी चाहिये। दाहिना भाग सर्पोंसे युक्त हो। शिवजीका दाहिना पैर कमलके ऊपर स्थापित हो तथा नूपुरसे विभूषित बायाँ पैर उससे कुछ ऊपरकी ओर हो। उसकी अंगुलियोंको रत्ननिर्मित अँगूठियोंसे विभूषित करे। पार्वतीके चरण सर्वदा महावरसे युक्त प्रदर्शित किये जायँ। इस प्रकार इस प्रसङ्गमें मैंने अर्धनारीश्वरके रूपका वर्णन किया॥

उमामहेश्वरस्यापि लक्षणं शृणुत द्विजाः। संस्थानं तु तयोर्वक्ष्ये लीलाललितविभ्रमम्॥ ११॥
चतुर्भुजं द्विबाहुं वा जटाभारेन्दुभूषितम्। लोचनत्रयसंयुक्तमुमैकस्कन्धपाणिनम्॥ १२॥
दक्षिणेनोत्पलं शूलं वामे कुचभरे करम्। द्वीपिचर्मपरीधानं नानारत्नोपशोभितम्॥ १३॥
सुप्रतिष्ठं सुवेषं च तथार्धेन्दुकृताननम्। वामे तु संस्थिता देवी तस्योरौ बाहुगूहिता॥ १४॥
शिरोभूषणसंयुक्तैरलकैर्ललितानना। सबालिका कर्णवती ललाटतिलकोज्ज्वला॥ १५॥
मणिकुण्डलसंयुक्ता कर्णिकाभरणा क्वचित्। हारकेयूरबहुला हरवक्त्रावलोकिनी॥ १६॥
वामांसं देवदेवस्य स्पृशन्ती लीलया ततः। दक्षिणं तु बहिः कृत्वा बाहुं दक्षिणतस्तथा॥ १७॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

स्कन्धे वा दक्षिणे कुक्षौ स्पृशन्त्यङ्गुलिजैः क्वचित्। वामे तु दर्पणं दद्यादुत्पलं वा सुशोभनम्॥ १८॥
कटिसूत्रत्रयं चैव नितम्बे स्यात् प्रलम्बकम्। जया च विजया चैव कार्तिकेयविनायकौ॥ १९॥
पार्श्वयोर्दर्शयेत् तत्र तोरणे गणगुह्यकान्। माला विद्याधरांस्तद्वद्वीणावानप्सरोगणः॥ २०॥
एतद् रूपमुमेशस्य कर्तव्यं भूतिमिच्छता।

ब्राह्मणो! अब आपलोग उमामहेश्वर-मूर्तिके लक्षण सुनिये। मैं उन दोनोंकी स्थितिका वर्णन कर रहा हूँ। उमामहेश्वरकी प्रतिमा मनोहर लीलाओंसे युक्त हो। उसे जटाओंके भार और चन्द्रमासे विभूषित दो या चार बाहुओं तथा तीन नेत्रोंसे युक्त बनाना चाहिये। उसमें भगवान् शिवका एक हाथ उमाके कंधेपर विराजमान होना चाहिये। मूर्तिके दाहिने हाथमें कमल या शूल हो, बायाँ हाथ स्तनपर न्यस्त होना चाहिये। उसे विविध प्रकारके रत्नोंसे विभूषित, व्याघ्रचर्मसे युक्त, सुन्दर वेषोंसे सुसज्जित, मुखमण्डलको अर्धचन्द्रमासे विभूषित तथा उचित रूपसे प्रतिष्ठित करना चाहिये। उसके बायें भागमें देवीकी मूर्ति होगी, जिसके दोनों ऊरुभाग बाहुओंसे छिपे रहेंगे। सिरके आभूषणों तथा अलकावलियोंद्वारा मुखभाग ललित हो और बालियोंसे कान तथा तिलकसे ललाट शोभायमान हो रहा हो। कहीं-कहीं कानोंको अलंकृत करनेके लिये मणिनिर्मित कुण्डल पहनाये जाते हैं। उसे हार और केयूरसे सुसज्जित कर शिवजीके मुखका अवलोकन करनेवाली बनावे। वे लीलापूर्वक देवदेव शंकरके बायें कंधेका स्पर्श कर रही हों तथा उनका दाहिना हाथ दाहिने भागसे बाहरकी ओर बना हो। या किसी-किसी प्रतिमामें दाहिने कंधे अथवा कुक्षिभागमें नखोंसे स्पर्श कर रही हों, बायें हाथमें दर्पण अथवा सुन्दर कमल रहना चाहिये। नितम्बभागपर तीन लड़ियोंवाला कटिसूत्र लटकता रहना चाहिये। पार्वतीके दोनों ओर जया, विजया, स्वामि-कार्तिकेय और गणेशको तथा तोरणद्वारपर गुह्यक गणोंको प्रदर्शित करना चाहिये। उसी प्रकार वहाँ माला, विद्याधर और वीणासे सुशोभित अप्सराओंको बनाना चाहिये। समृद्धिकामीको उमापति शिवकी प्रतिमा इस प्रकारकी बनवानी चाहिये॥ ११–२०½॥

शिवनारायणं वक्ष्ये सर्वपापप्रणाशनम्॥ २१॥
वामार्धे माधवं विद्याद् दक्षिणे शूलपाणिनम्। बाहुद्वयं च कृष्णस्य मणिकेयूरभूषितम्॥ २२॥
शङ्खचक्रधरं शान्तमारक्ताङ्गुलिविभ्रमम्। चक्रस्थाने गदां वापि पाणौ दद्यादधस्तले॥ २३॥
शङ्खं चैवोत्तरे दद्यात् कट्यर्धे भूषणोज्ज्वलम्। पीतवस्त्रपरीधानं चरणं मणिभूषणम्॥ २४॥
दक्षिणार्धे जटाभारमर्धेन्दुकृतभूषणम्। भुजङ्गहारवलयं वरदं दक्षिणं करम्॥ २५॥
द्वितीयं चापि कुर्वीत त्रिशूलवरधारिणम्। व्यालोपवीतसंयुक्तं कट्यर्धे कृत्तिवाससम्॥ २६॥
मणिरत्नैश्च संयुक्तं पादं नागविभूषितम्। शिवनारायणस्यैवं कल्पयेद् रूपमुत्तमम्॥ २७॥
महावराहं वक्ष्यामि पद्महस्तं गदाधरम्। तीक्ष्णदंष्ट्राग्रघोणास्यं मेदिनी वामकूर्परम्॥ २८॥
दंष्ट्राग्रेणोद्धृतां दान्तां धरणीमुत्पलान्विताम्। विस्मयोत्फुल्लवदनामुपरिष्टात् प्रकल्पयेत्॥ २९॥
दक्षिणं कटिसंस्थं तु करं तस्याः प्रकल्पयेत्। कूर्मोपरि तथा पादमेकं नागेन्द्रमूर्धनि॥ ३०॥
संस्तूयमानं लोकेशैः समन्तात्परिकल्पयेत्।

अब मैं सभी पापोंके विनाशक शिवनारायणकी प्रतिमाकी विधि बता रहा हूँ। इस प्रतिमाकी बायीं ओर आधे भागमें भगवान् विष्णु तथा दाहिनी ओर आधे भागमें शूलपाणि शिवको बनाना चाहिये। कृष्णकी दोनों भुजाएँ मणिनिर्मित केयूरसे विभूषित होनी चाहिये। दोनों भुजाओंमें शङ्ख और चक्र धारण किये हों, शान्त-रूप हों तथा मनोहर अंगुलियाँ लाल वर्णकी हों। हाथके निचले भागमें चक्रके स्थानमें गदा भी देनी चाहिये। ऊपरी

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

भागमें शङ्ख, कटिभागमें उज्ज्वल आभूषण और पीताम्बर धारण किये हुए हों तथा चरण मणिनिर्मित नूपुरोंसे विभूषित हों । इसका दाहिना आधा भाग जटाभार तथा अर्धचन्द्रसे विभूषित होना चाहिये । दाहिने हाथको वरद-मुद्रासे युक्त तथा सर्पोंके हार और कङ्कणसे सुशोभित तथा दूसरे हाथको त्रिशूलसे विभूषित बनाना चाहिये । उसे सर्पके यज्ञोपवीतसे युक्त और उसके कटिप्रदेशको गजचर्मसे आच्छादित कर दे । चरण मणि और रत्नोंसे अलंकृत तथा नागसे विभूषित हों । इस प्रकार शिवनारायणके उत्तम स्वरूपकी कल्पना करनी चाहिये । अब मैं महावराहका वर्णन कर रहा हूँ । उनके हाथोंमें पद्म और गदा हों, उनके दाढ़ोंके अर्धभाग तीक्ष्ण हों, थूथुनवाला मुख हो, बायीं केहुनीपर पृथ्वी हो, वह पृथ्वी दाढ़के अग्रभागपर रखी हुई कमलयुक्त और शान्त हो तथा उसका मुख विस्मयसे उत्फुल्ल हो, ऐसी मूर्तिको ऊपरकी ओर बनाना चाहिये । उस मूर्तिका दाहिना हाथ कटिप्रदेशपर हो । उनका एक पैर शेषनागके मस्तकपर और दूसरा कूर्मपर स्थित हो तथा लोकपालगण चारों ओरसे उनकी स्तुति कर रहे हों, ऐसी मूर्ति बनानी चाहिये ॥ २१-३०½ ॥

नारसिंहं तु कर्तव्यं भुजाष्टकसमन्वितम् ॥ ३१ ॥
रौद्रं सिंहासनं तद्वद् विदारितमुखेक्षणम् । स्तब्धपीनसटाकर्णं दारयन्तं दितेः सुतम् ॥ ३२ ॥
विनिर्गतान्त्रजालं च दानवं परिकल्पयेत् । वमन्तं रुधिरं घोरं भ्रुकुटीवदनेक्षणम् ॥ ३३ ॥
युध्यमानश्च कर्तव्यः क्वचित् करणबन्धनैः । परिश्रान्तेन दैत्येन तर्ज्यमानो मुहुर्मुहुः ॥ ३४ ॥
दैत्यं प्रदर्शयेत् तत्र खड्गखेटकधारिणम् । स्तूयमानं तथा विष्णुं दर्शयेदमराधिपैः ॥ ३५ ॥
तथा त्रिविक्रमं वक्ष्ये ब्रह्माण्डक्रमणोल्बणम् । पादपार्श्वे तथा बाहुमुपरिष्टात् प्रकल्पयेत् ॥ ३६ ॥
अधस्ताद् वामनं तद्वत् कल्पयेत् सकमण्डलुम् । दक्षिणे छत्रिकां दद्यान्मुखं दीनं प्रकल्पयेत् ॥ ३७ ॥
भृङ्गारधारिणं तद्वद् बलिं तस्य च पार्श्वतः । बन्धनं चास्य कुर्वन्तं गरुडं तस्य दर्शयेत् ॥ ३८ ॥
मत्स्यरूपं तथा मत्स्यं कूर्मं कूर्माकृतिं न्यसेत् । एवंरूपस्तु भगवान् कार्यो नारायणो हरिः ॥ ३९ ॥

भगवान् नृसिंहकी प्रतिमा आठ भुजाओंसे युक्त बनायी जानी चाहिये । उसी प्रकार उनका सिंहासन भी भयंकर हो, मुख और नेत्र फैले हुए हों, गरदनके लम्बे बाल कानोंतक बिखरे हों तथा वे नखसे दिति-पुत्र हिरण्यकशिपुको फाड़ रहे हों । जिसकी आँतें बाहर निकल गयी हों, मुखसे रुधिर गिर रहा हो, भृकुटी, मुख और नेत्र विकराल हों, ऐसे दानवराज हिरण्यकशिपुकी मूर्ति बनानी चाहिये । कहीं नृसिंह-प्रतिमा युद्धके उपकरणोंसे युक्त दैत्योंसे युद्ध करती हुई बनायी जाती है और कहीं थके हुए दैत्यसे बारंबार धमकायी जाती हुई बनानी चाहिये । वहाँ दैत्यको तलवार और ढाल धारण किये हुए प्रदर्शित करना चाहिये तथा देवेश्वरोंद्वारा स्तुति किये जाते हुए विष्णुको दिखाना चाहिये । अब मैं वामनका वर्णन कर रहा हूँ । वे ब्रह्माण्डको नापनेके लिये तत्पर दीखते हों । उनके चरणोंके समीपमें ऊपरकी ओर बाहुका निर्माण करे । उसके नीचेकी ओर बायें हाथमें कमण्डलु धारण किये हुए वामनकी रचना करे । दाहिने हाथमें एक छोटी-सी छतरी होनी चाहिये । उनका मुख दीनतासे युक्त हो । उन्हींकी बगलमें जलका गेडुआ लिये हुए बलिका निर्माण होना चाहिये । उसी स्थलपर बलिको बाँधते हुए गरुड़को भी दिखाना चाहिये । इसी प्रकार मत्स्यभगवान्की प्रतिमा मछलीके आकारकी तथा कूर्म भगवान्की प्रतिमा कछुएके समान बनानी चाहिये । इस प्रकार भगवान् विष्णु तथा उनके अवतारोंकी प्रतिमाओंका निर्माण होना चाहिये ॥ ३१-३९ ॥

ब्रह्मा कमण्डलुधरः कर्तव्यः स चतुर्मुखः । हंसारूढः क्वचित् कार्यः क्वचिच्च कमलासनः ॥ ४० ॥
वर्णतः पद्मगर्भाभश्चतुर्बाहुः [illegible] । कमण्डलुं वामकरे स्रुवं हस्ते तु दक्षिणे ॥ ४१ ॥

Sri Vidyapeetham Book Centre, Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

वामे दण्डधरं तद्वत् स्रुवञ्चापि प्रदर्शयेत्। मुनिभिर्देवगन्धर्वैः स्तूयमानं समंततः ॥ ४२ ॥
कुर्वाणमिव लोकांस्त्रीञ् शुक्लाम्बरधरं विभुम्। मृगचर्मधरं चापि दिव्ययज्ञोपवीतिनम् ॥ ४३ ॥
आज्यस्थालीं न्यसेत् पार्श्वे वेदांश्च चतुरः पुनः। वामपार्श्वेऽस्य सावित्रीं दक्षिणे च सरस्वतीम् ॥ ४४ ॥
अग्रे च ऋषयस्तद्वत् कार्याः पैतामहे पदे।

ब्रह्माको कमण्डलु लिये हुए चार मुखोंसे युक्त बनावे। उनकी प्रतिमा कहीं हंसपर बैठी हुई तथा कहीं कमलपर विराजमान रहती है। उनकी प्रतिमा कमलके भीतरी भागके समान अरुण, चार भुजाओंसे युक्त और सुन्दर नेत्रवाली हो। उनके नीचेके बायें हाथमें कमण्डलु और दाहिने हाथमें स्रुवा हो। उनके ऊपरके बायें हाथमें दण्ड तथा दाहिने हाथमें भी स्रुवा* धारण किये हुए प्रदर्शित करना चाहिये। उनके चारों ओर देवता, गन्धर्व और मुनिगणोंद्वारा स्तुति किये जाते हुए दिखाना चाहिये। ऐसी भूमिका भी दिखाये, मानो वे तीनों लोकोंकी रचनामें प्रवृत्त हैं। वे श्वेत वस्त्रधारी, ऐश्वर्यसम्पन्न, मृगचर्म तथा दिव्य यज्ञोपवीतसे युक्त हों। उनके बगलमें आज्यस्थाली रहे और सामने चारों वेदोंकी मूर्तियाँ हों। उनकी बायीं ओर सावित्री, दाहिनी ओर सरस्वती तथा उनके अग्रभागमें मुनियोंके समूह हों ॥ ४०–४४½ ॥

कार्तिकेयं प्रवक्ष्यामि तरुणादित्यसप्रभम् ॥ ४५ ॥
कमलोदरवर्णाभं कुमारं सुकुमारकम्। दण्डकैश्चीरकैर्युक्तं मयूरवरवाहनम् ॥ ४६ ॥
स्थापयेत् स्वेष्टनगरे भुजान् द्वादश कारयेत्। चतुर्भुजः खर्वटे स्याद् वने ग्रामे द्विबाहुकः ॥ ४७ ॥
शक्तिः पाशस्तथा खड्गः शरः शूलं तथैव च। वरदश्चैकहस्तः स्यादथ चाभयदो भवेत् ॥ ४८ ॥
एते दक्षिणतो ज्ञेयाः केयूरकटकोज्ज्वलाः। धनुः पताका मुष्टिश्च तर्जनी तु प्रसारिता ॥ ४९ ॥
खेटकं ताम्रचूडं च वामहस्ते तु शस्यते। द्विभुजस्य करे शक्तिर्वामे स्यात् कुक्कुटोपरि ॥ ५० ॥
चतुर्भुजे शक्तिपाशौ वामतो दक्षिणे त्वसिः। वरदोऽभयदो वापि दक्षिणः स्यात् तुरीयकः ॥ ५१ ॥

अब मैं कार्तिकेयकी प्रतिमाका वर्णन कर रहा हूँ। उनकी प्रतिमाको मध्यकालीन सूर्यकी भाँति परम तेजोमय, कमलके मध्यभागके समान अरुण, मयूरपर आरूढ़, दण्डों और चीरोंसे सुशोभित, सुकुमार शरीरसे युक्त और बारह भुजाओंवाली बनाना चाहिये। उसे अपने इष्ट नगरमें स्थापित करना चाहिये। खर्वट (पर्वतके समीपके ग्राम)-में इनकी चार भुजाओंवाली और वन अथवा ग्राममें दो बाहुवाली प्रतिमा स्थापित करानी चाहिये। (बारह भुजाओंवाली प्रतिमामें) उनकी दाहिनी ओरके छः हाथोंमें शक्ति, पाश, तलवार, बाण और शूल शोभायमान हों। एक हाथमें अभयमुद्रा अथवा वरदमुद्रा बनानी चाहिये। ये सभी केयूर तथा कटकसे विभूषित उज्ज्वल वर्णके होने चाहिये। बायीं ओरके छः हाथ क्रमशः धनुष, पताका, मुष्टि, फैली हुई तर्जनी, ढाल, मुर्गा—इन वस्तुओंसे युक्त और उसी वर्णके होने चाहिये। दो भुजाओंवाली प्रतिमाके बायें हाथमें शक्ति और दाहिना हाथ कुक्कुटपर न्यस्त रहना चाहिये। चतुर्भुज प्रतिमाकी बायीं ओरके दो हाथोंमें शक्ति और पाश तथा दाहिनी ओरके तीसरे हाथमें तलवार हो और चौथा हाथ अभय अथवा वरद-मुद्रासे युक्त हो ॥ ४५–५१ ॥

विनायकं प्रवक्ष्यामि गजवक्त्रं त्रिलोचनम्। लम्बोदरं चतुर्बाहुं व्यालयज्ञोपवीतिनम् ॥ ५२ ॥
ध्वस्तकर्णं बृहत्तुण्डमेकदंष्ट्रं पृथूदरम्। स्वदन्तं दक्षिणकरे उत्पलं चापरे तथा ॥ ५३ ॥

* कहीं-कहीं उनके ऊपरके दाहिने हाथमें वेदग्रन्थ या स्रुच् भी निर्दिष्ट है।

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

मोदकं परशुं चैव वामतः परिकल्पयेत् । बृहत्त्वात्क्षिप्तवदनं पीनस्कन्धाङ्घ्रिपाणिकम् ॥ ५४॥
युक्तं तु सिद्धिबुद्धिभ्यामधस्तान्मूषकान्वितम् । कात्यायन्याः प्रवक्ष्यामि रूपं दशभुजं तथा ॥ ५५॥
त्रयाणामपि देवानामनुकारानुकारिणीम् । जटाजूटसमायुक्तामर्धेन्दुकृतशेखराम् ॥ ५६॥
लोचनत्रयसंयुक्तां पूर्णेन्दुसदृशाननाम् । अतसीपुष्पवर्णाभां सुप्रतिष्ठां सुलोचनाम् ॥ ५७॥
नवयौवनसम्पन्नां सर्वाभरणभूषिताम् । सुचारुदशनां तद्वत् पीनोन्नतपयोधराम् ॥ ५८॥
त्रिभङ्गस्थानसंस्थानां महिषासुरमर्दिनीम् । त्रिशूलं दक्षिणे दद्यात् खड्गं चक्रं क्रमादधः ॥ ५९॥
तीक्ष्णबाणं तथा शक्तिं वामतोऽपि निबोधत । खेटकं पूर्णचापं च पाशमङ्कुशमेव च ॥ ६०॥
घण्टां वा परशुं वापि वामतः संनिवेशयेत् । अधस्तान्महिषं तद्वद् विशिरस्कं प्रदर्शयेत् ॥ ६१॥
शिरश्छेदोद्भवं तद्वद् दानवं खड्गपाणिनम् । हृदि शूलेन निर्भिन्नं निर्यदन्त्रविभूषितम् ॥ ६२॥
रक्तरक्तीकृताङ्गं च रक्तविस्फुरितेक्षणम् । वेष्टितं नागपाशेन भ्रुकुटीभीषणाननम् ॥ ६३॥
सपाशवामहस्तेन धृतकेशं च दुर्गया ।

अब मैं गणेशजीकी प्रतिमाका विधान बता रहा हूँ। उनकी प्रतिमामें हाथी-सा मुख, तीन नेत्र, लम्बा उदर, चार भुजाएँ, सर्पका यज्ञोपवीत, सिमटा हुआ कान, विशाल शुण्ड, एक दाँत और तोंद स्थूल हो। उनके ऊपरके दाहिने हाथमें अपना दाँत और निचले हाथमें कमल होना चाहिये। बायीं ओरके ऊपरके हाथमें मोदक तथा निचले हाथमें परशु हों। बृहत् होनेके कारण मुख नीचेकी ओर विस्तृत तथा स्कन्ध, पाद और हाथ मोटे होने चाहिये। वह सिद्धि-बुद्धिसे युक्त हो, उसके नीचेकी ओर मूषक बना हो। अब मैं भगवती कात्यायनीकी मूर्तिका वर्णन कर रहा हूँ। वह दस भुजाओंसे युक्त, तीनों देवताओंकी आकृतियोंका अनुकरण करनेवाली, जटा-जूटसे विभूषित, सिरपर अर्धचन्द्रसे सुशोभित, तीन नेत्रोंसे युक्त, पूर्णचन्द्रके समान मुखवाली, अलसी-पुष्पके समान नीलवर्णा, तेजोमय, सुन्दर नेत्रोंसे विभूषित, नवयौवनसम्पन्ना, सभी आभूषणोंसे विभूषित, अत्यन्त सुन्दर दाँतोंसे युक्त, स्थूल एवं उन्नत स्तनोंवाली, त्रिभंगी रूपसे स्थित, महिषासुरनाशिनी आदि चिह्नोंसे युक्त हो। दाहिने हाथोंमें क्रमशः ऊपरसे नीचेकी ओर त्रिशूल, खड्ग, चक्र, तीक्ष्ण बाण और शक्ति तथा बायें हाथोंमें ढाल, धनुष, पाश, अङ्कुश, घण्टा अथवा परशु धारण कराना चाहिये। प्रतिमाके नीचे सिररहित महिषासुरको प्रदर्शित करना चाहिये। वह दानव सिर कटनेपर शरीरसे निकलता हुआ दीख पड़े तथा हाथमें खड्ग, हृदय शूलसे विदीर्ण और बाहर निकलती हुई अँतड़ियोंसे विभूषित हो। वह रक्तसे लथपथ शरीरवाला, विस्फारित लाल नेत्रोंसे युक्त, नागपाशसे परिवेष्टित, टेढ़ी भृकुटीके कारण भीषण मुखाकृति और दुर्गाद्वारा पाशयुक्त बायें हाथसे पकड़ा गया केशवाला हो ॥ ५२-६३½ ॥

वमद्रुधिरवक्त्रं च देव्याः सिंहं प्रदर्शयेत् ॥ ६४॥
देव्यास्तु दक्षिणं पादं समं सिंहोपरि स्थितम् । किंचिदूर्ध्वं तथा वाममङ्गुष्ठं महिषोपरि ॥ ६५॥
स्तूयमानं च तद्रूपममरैः संनिवेशयेत् । इदानीं सुरराजस्य रूपं वक्ष्ये विशेषतः ॥ ६६॥
सहस्रनयनं देवं मत्तवारणसंस्थितम् । पृथूरुवक्षोवदनं सिंहस्कन्धं महाभुजम् ॥ ६७॥
किरीटकुण्डलधरं पीवरोरुभुजेक्षणम् । वज्रोत्पलधरं तद्वन्नानाभरणभूषितम् ॥ ६८॥
पूजितं देवगन्धर्वैरप्सरोगणसेवितम् । छत्रचामरधारिण्यः स्त्रियः पार्श्वे प्रदर्शयेत् ॥ ६९॥
सिंहासनगतं चापि गन्धर्वगणसंयुतम् । इन्द्राणीं वामतश्चास्य कुर्यादुत्पलधारिणीम् ॥ ७०॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रतिमालक्षणे षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६० ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

*

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

देवीके सिंहको मुखसे रक्त उगलते हुए प्रदर्शित करना चाहिये। देवीका दाहिना पैर सिंहके ऊपर समानरूपसे स्थित हो तथा बायाँ कुछ ऊपरकी ओर उठा हो, उसका अंगूठा महिषासुरपर लगा हुआ हो। उनकी प्रतिमाको देवगणोंद्वारा स्तुति किये जाते हुए दिखाना चाहिये। (यहाँसे अष्टदिक्पाल या लोकपालोंकी प्रतिमाका वर्णन है) अब मैं देवराज इन्द्रके रूपको विशेष रूपसे कह रहा हूँ। हजार नेत्रोंवाले देवेन्द्रको मत्त गयन्दपर विराजमान बनाना चाहिये। उनके ऊरु, वक्षःस्थल और मुख विशाल हों, कंधे सिंहके समान हों, उनकी भुजाएँ विशाल हों, वे किरीट और कुण्डल धारण किये हों, उनके जघनस्थल, भुजाएँ तथा आँखें स्थूल हों, वे वज्र और कमल धारण किये हों तथा विविध आभूषणोंसे विभूषित हों, देवता और गन्धर्वोंद्वारा पूजित और अप्सराओंद्वारा सेवित हों। उनके पार्श्वमें छत्र और चामर धारण करनेवाली स्त्रियोंको प्रदर्शित करना चाहिये। वे सिंहासनपर विराजमान हों, उनकी बायीं ओर कमल धारण किये हुए इन्द्राणी स्थित हों, वे गन्धर्वोंसे घिरे हों॥ ६४—७०॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें प्रतिमा-लक्षण नामक दो सौ साठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २६०॥

दो सौ एकसठवाँ अध्याय

सूर्यादि विभिन्न देवताओंकी प्रतिमाके स्वरूप, प्रतिष्ठा और पूजा आदिकी विधि

सूत उवाच

प्रभाकरस्य प्रतिमामिदानीं शृणुत द्विजाः। रथस्थं कारयेद् देवं पद्महस्तं सुलोचनम्॥ १॥
सप्ताश्वं चैकचक्रं च रथं तस्य प्रकल्पयेत्। मुकुटेन विचित्रेण पद्मगर्भसमप्रभम्॥ २॥
नानाभरणभूषाभ्यां भुजाभ्यां धृतपुष्करम्। स्कन्धस्थे पुष्करे ते तु लीलयैव धृते सदा॥ ३॥
चोलकच्छन्नवपुषं क्वचिच्चित्रेषु दर्शयेत्। वस्त्रयुग्मसमोपेतं चरणौ तेजसावृतौ॥ ४॥
प्रतीहारौ च कर्तव्यौ पार्श्वयोर्दण्डिपिङ्गलौ। कर्तव्यौ खड्गहस्तौ तौ पार्श्वयोः पुरुषावुभौ॥ ५॥
लेखनीकृतहस्तं च पार्श्वे धातारमव्ययम्। नानादेवगणैर्युक्तमेवं कुर्याद् दिवाकरम्॥ ६॥
अरुणः सारथिश्चास्य पद्मिनीपत्रसंनिभः। अश्वौ सुवलयग्रीवावन्तस्थौ तस्य पार्श्वयोः॥ ७॥
भुजङ्गरज्जुभिर्बद्धाः सप्ताश्वा रश्मिसंयुताः। पद्मस्थं वाहनस्थं वा पद्महस्तं प्रकल्पयेत्॥ ८॥

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणगण! अब आपलोग भगवान् सूर्यकी* प्रतिमाके निर्माणकी विधि सुनिये। भगवान् सूर्यदेवको रथपर स्थित, सुन्दर नेत्रोंसे सुशोभित और दोनों हाथोंमें कमल धारण किये हुए बनाना चाहिये। उनके रथमें सात घोड़े और एक पहिया होनी चाहिये। उन्हें विचित्र मुकुटसे युक्त तथा कमलके मध्यवर्ती भागके समान लालवर्णका बनाना चाहिये। वे विविध आभूषणोंसे विभूषित दोनों भुजाओंमें कमल धारण किये हों, वे कमल सदा लीलापूर्वक ऊपर कंधोंतक उठे हुए हों। उनका स्वरूप विशेषकर पैर दो वस्त्रोंसे आवृत हो। प्रायः चित्रोंमें भी उनकी प्रतिमा दो वस्त्रोंसे ढकी हुई प्रदर्शितकी जानी चाहिये। उनके दोनों चरण तेजसे आवृत हों। मूर्तिके दोनों ओर दण्डी और पिङ्गल नामक दो प्रतीहारोंको रखना चाहिये। उन दोनों पार्श्ववर्ती पुरुषोंके हाथोंमें तलवार बनायी जानी चाहिये। उनके पार्श्वमें एक हाथमें लेखनी लिये हुए अविनाशी

* सूर्यप्रतिमाकी विधि अग्निपुराण, अध्याय ५१, भविष्य, नारद, साम्बादिपुराणों, सुप्रभेदागम, शिल्परत्न, शारदा, विष्णुधर्म तथा टी० गोपीनाथ राव, स्टीलकर्मरिश, बनर्जी आदिके ग्रंथोंमें सानुसंधान विस्तारपूर्वक निर्दिष्ट है। तुलनात्मक अध्ययन तथा जिज्ञासाशान्त्यर्थ ये सभी तथा पुराणोंमें ... भी द्रष्टव्य हैं। मतान्तरसे सूर्य भी पूर्व दिशाके स्वामी हैं।

Sri ... Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

धाताकी मूर्ति हो। भगवान् भास्कर अनेकों देवगणोंसे युक्त हों। इस प्रकार भगवान् सूर्यकी प्रतिमाका निर्माण करना चाहिये। सूर्यदेवके सारथि अरुण हैं, जो कमलदलके सदृश लाल वर्णके हैं। उनके दोनों बगलमें चलते हुए लंबी गरदनवाले अश्व हों। उन सातों अश्वोंको सर्पकी रस्सीसे बाँधकर लगामयुक्त रखना चाहिये। सूर्य-मूर्तिको हाथोंमें कमल लिये हुए कमलपर या वाहनपर स्थित रखना चाहिये॥ १—८॥

वह्नेस्तु लक्षणं वक्ष्ये सर्वकामफलप्रदम्। दीप्तं सुवर्णवपुषमर्धचन्द्रासने स्थितम्॥ ९॥
बालार्कसदृशं तस्य वदनं चापि दर्शयेत्। यज्ञोपवीतिनं देवं लम्बकूर्चधरं तथा॥ १०॥
कमण्डलुं वामकरे दक्षिणे त्वक्षसूत्रकम्। ज्वालावितानसंयुक्तमजवाहनमुज्ज्वलम्॥ ११॥
कुण्डस्थं वापि कुर्वीत मूर्ध्नि सप्तशिखान्वितम्। तथा यमं प्रवक्ष्यामि दण्डपाशधरं विभुम्॥ १२॥
महामहिषमारूढं कृष्णाञ्जनचयोपमम्। सिंहासनगतं चापि दीप्ताग्निसमलोचनम्॥ १३॥
महिषश्चित्रगुप्तश्च करालाः किंकरास्तथा। समन्ताद् दर्शयेत् तस्य सौम्यासौम्यान् सुरासुरान्॥ १४॥
राक्षसेन्द्रं तथा वक्ष्ये लोकपालं च नैर्ऋतम्। नरारूढं महाकायं रक्षोभिर्बहुभिर्वृतम्॥ १५॥
खड्गहस्तं महानीलं कज्जलाचलसंनिभम्। नरयुक्तविमानस्थं पीताभरणभूषितम्॥ १६॥
वरुणं च प्रवक्ष्यामि पाशहस्तं महाबलम्। शङ्खस्फटिकवर्णाभं सितहाराम्बरावृतम्॥ १७॥
झषासनगतं शान्तं किरीटाङ्गदधारिणम्। वायुरूपं प्रवक्ष्यामि धूम्रं तु मृगवाहनम्॥ १८॥
चित्राम्बरधरं शान्तं युवानं कुञ्चितभ्रुवम्। मृगाधिरूढं वरदं पताकाध्वजसंयुतम्॥ १९॥

अब मैं सभी प्रकारके अभीष्ट फलोंको देनेवाले अग्निकी प्रतिमाका स्वरूप बतला रहा हूँ। अग्निकी प्रतिमा कनकके समान उद्दीप्त कान्तिवाली बनानी चाहिये। वह अर्धचन्द्राकार आसनपर स्थित हो। उनका मुख उदयकालीन सूर्यकी भाँति दिखाना चाहिये। अग्निदेवको यज्ञोपवीत तथा लम्बी दाढ़ीसे युक्त बनाना चाहिये। उनके बायें हाथमें कमण्डलु और दाहिने हाथमें रुद्राक्षकी माला हो। उनका वाहन बकरा ज्वाला-मण्डलसे विभूषित और उज्ज्वल होना चाहिये। मस्तकपर (या मुखमें) सात जिह्वारूपिणी ज्वालाओंसे युक्त इस प्रतिमाको देवमन्दिर अथवा अग्निकुण्डके मध्यमें स्थापित करना चाहिये। अब मैं यमराजकी प्रतिमाके निर्माणकी विधि बतला रहा हूँ। उनके शरीरका रंग काले अंजनके समान हो। वे दण्ड और पाश धारण करनेवाले, ऐश्वर्ययुक्त और विशाल महिषपर आरूढ़ हों अथवा सिंहासनासीन हों। उनके नेत्र प्रदीप्त अग्निके समान हों। उनके चारों ओर महिष, चित्रगुप्त, विकराल अनुचरवर्ग, मनोहर आकृतिवाले देवताओं तथा विकृत असुरोंकी प्रतिमाओंको भी प्रदर्शित करना चाहिये। अब मैं लोकपाल राक्षसेन्द्र निर्ऋतिकी प्रतिमाकी निर्माण-विधि बतला रहा हूँ। वे मनुष्यपर आरूढ़, विशालकाय, राक्षससमूहोंसे घिरे हुए और हाथमें तलवार लिये हुए हों। उनका वर्ण अत्यन्त नील और कज्जलगिरिके समान दिखायी पड़ता हो। उन्हें पालकीपर सवार और पीले आभूषणोंसे विभूषित बनाना चाहिये। अब मैं महाबली वरुणकी प्रतिमाका वर्णन करता हूँ। वे हाथमें पाश धारण किये हुए स्फटिकमणि और शङ्खके समान श्वेत कान्तिसे युक्त, उज्ज्वल हार और वस्त्रसे विभूषित, झष* (बड़ी मछली) पर आसीन, शान्त मुद्रासे सम्पन्न तथा बाजूबन्द और किरीटसे सुशोभित हों। अब मैं वायुदेवकी प्रतिमाका स्वरूप बतला रहा हूँ। उन्हें धूम्र वर्णसे युक्त, मृगपर आसीन, चित्र-विचित्र वस्त्रधारी, शान्त, युवावस्थासे सम्पन्न, तिरछी भौंहोंसे युक्त, वरदमुद्रा और ध्वज-पताकासे विभूषित बनाना चाहिये॥ ९—१९॥

* शतपथ १। ८। ४ आदिके अनुसार बड़ी मछली ही झष है।

Sri Vidyadhara Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

कुबेरं च प्रवक्ष्यामि कुण्डलाभ्यामलङ्कृतम्। महोदरं महाकायं निध्यष्टकसमन्वितम्॥ २०॥
गुह्यकैर्बहुभिर्युक्तं धनव्ययकरैस्तथा। हारकेयूररचितं सिताम्बरधरं सदा॥ २१॥
गदाधरं च कर्तव्यं वरदं मुकुटान्वितम्। नरयुक्तविमानस्थमेवं रीत्या च कारयेत्॥ २२॥
तथैवेशं प्रवक्ष्यामि धवलं धवलेक्षणम्। त्रिशूलपाणिनं देवं त्र्यक्षं वृषगतं प्रभुम्॥ २३॥
मातृणां लक्षणं वक्ष्ये यथावदनुपूर्वशः। ब्रह्माणी ब्रह्मसदृशी चतुर्वक्त्रा चतुर्भुजा॥ २४॥
हंसाधिरूढा कर्तव्या साक्षसूत्रकमण्डलुः। महेश्वरस्य रूपेण तथा माहेश्वरी मता॥ २५॥
जटामुकुटसंयुक्ता वृषस्था चन्द्रशेखरा। कपालशूलखट्वाङ्गवरदाढ्या चतुर्भुजा॥ २६॥
कुमाररूपा कौमारी मयूरवरवाहना। रक्तवस्त्रधरा तद्वच्छूलशक्तिधरा मता॥ २७॥
हारकेयूरसम्पन्ना कृकवाकुधरा तथा। वैष्णवी विष्णुसदृशी गरुडे समुपस्थिता॥ २८॥
चतुर्बाहुश्च वरदा शङ्खचक्रगदाधरा। सिंहासनगता वापि बालकेन समन्विता॥ २९॥
वाराहीं च प्रवक्ष्यामि महिषोपरि संस्थिताम्। वराहसदृशी देवी शिरश्चामरधारिणी॥ ३०॥
गदाचक्रधरा तद्वद् दानवेन्द्रविनाशिनी। इन्द्राणीमिन्द्रसदृशीं वज्रशूलगदाधराम्॥ ३१॥
गजासनगतां देवीं लोचनैर्बहुभिर्वृताम्। तप्तकाञ्चनवर्णाभां दिव्याभरणभूषिताम्॥ ३२॥

अब मैं कुबेरकी प्रतिमाका वर्णन कर रहा हूँ। वे दो कुण्डलोंसे अलंकृत, तोंदयुक्त, विशालकाय, आठ निधियोंसे संयुक्त, बहुतेरे गुह्यकोंसे घिरे हुए, धन व्यय करनेके लिये उद्यत करोंसे युक्त, केयूर और हारसे विभूषित, श्वेत वस्त्रधारी, वरदमुद्रा, गदा और मुकुटसे विभूषित तथा पालकीपर सवार हों। इस प्रकार उनकी प्रतिमा निर्मित करानी चाहिये। अब मैं सामर्थ्यशाली ईशानदेवकी प्रतिमाका वर्णन कर रहा हूँ। उनके शरीरकी कान्ति तथा नेत्र श्वेत हों। वे सामर्थ्यशाली देव तीन नेत्रोंसे युक्त तथा हाथमें त्रिशूल लिये हुए वृषभपर आरूढ हों। अब मैं मातृकाओंकी प्रतिमाओंका लक्षण आनुपूर्वी यथार्थरूपसे बता रहा हूँ। ब्रह्माणीकी प्रतिमाको ब्रह्माजीके समान चार मुख, चार भुजाएँ, अक्षसूत्र और कमण्डलुसे विभूषित तथा हंसपर आसीन बनानी चाहिये। इसी प्रकार भगवान् महेश्वरके अनुरूप माहेश्वरीकी प्रतिमा मानी गयी है। वे जटा-मुकुटसे अलंकृत, वृषभासीन, मस्तकपर चन्द्रमासे विभूषित, क्रमशः कपाल, शूल, खट्वाङ्ग* और वरदमुद्रासे सुशोभित चार भुजाओंसे सम्पन्न हों। कौमारीकी प्रतिमा स्वामिकार्तिकेयके समान निर्मित करानी चाहिये। वे श्रेष्ठ मयूरपर सवार, लाल वस्त्रसे सुशोभित, शूल और शक्ति धारण करनेवाली, हार और केयूरसे विभूषित तथा मुर्गा लिये हुए हों। वैष्णवीकी मूर्ति विष्णुभगवान्‌के समान हो। वे गरुड़पर आसीन हों, उनके चार भुजाएँ हों, जिनमें क्रमशः शङ्ख, चक्र, गदा और वरद-मुद्रा हो। अथवा वे एक बालकसे युक्त सिंहासनपर बैठी हुई हों। अब मैं वाराहीकी प्रतिमाका प्रकार बतलाता हूँ। वे देवी महिषपर बैठी हुई वराहके समान रहती हैं। उनके सिरपर चामर झलता रहना चाहिये। वे हाथोंमें गदा और चक्र लिये हुए बड़े-बड़े दानवोंके विनाशके लिये संनद्ध रहती हैं। इन्द्राणीको इन्द्रके समान वज्र, शूल, गदा धारण किये हुए हाथीपर विराजमान बनाना चाहिये। वे देवी बहुतसे नेत्रोंसे युक्त, तप्त सुवर्णके समान कान्तिमती और दिव्य आभरणोंसे भूषित रहती हैं॥ २०—३२॥

तीक्ष्णखड्गधरां तद्वद् वक्ष्ये योगेश्वरीमिमाम्। दीर्घजिह्वामूर्ध्वकेशीमस्थिखण्डैश्च मण्डिताम्॥ ३३॥
दंष्ट्राकरालवदनां कुर्याच्चैव कृशोदरीम्। कपालमालिनीं देवीं मुण्डमालाविभूषिताम्॥ ३४॥

* खट्वाङ्गका तात्पर्य उस गदासे है, जिसकी आकृति कुल्हाड़ीके पाटेसे मिलती-जुलती है। इसके सिरपर हड्डी जुड़ी रहती है। यह शिव-शक्तिके आयुधोंमें वर्णित है। (द्र०-वैशम्पायननीतिप्रकाशिका, विश्वामित्रधनुर्वेद आदि)

Sarayu Trust Book Collection Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

कपालं वामहस्ते तु मांसशोणितपूरितम्। मस्तिष्काक्तं च बिभ्राणां शक्तिकां दक्षिणे करे ॥ ३५॥
गृध्रस्था वायसस्था वा निर्मांसा विनतोदरी। करालवदना तद्वत् कर्तव्या सा त्रिलोचना ॥ ३६॥
चामुण्डा बद्धघण्टा वा द्वीपिचर्मधरा शुभा। दिग्वासाः कालिका तद्वद् रासभस्था कपालिनी ॥ ३७॥
सुरक्तपुष्पाभरणा वर्धनीध्वजसंयुता। विनायकं च कुर्वीत मातॄणामन्तिके सदा ॥ ३८॥
वीरेश्वरश्च भगवान् वृषारूढो जटाधरः। वीणाहस्तस्त्रिशूली च मातॄणामग्रतो भवेत् ॥ ३९॥

अब मैं भगवती योगेश्वरी चामुण्डाकी प्रतिमाका वर्णन करता हूँ। वे तीखी तलवार, लम्बी जिह्वा, ऊपर उठे केश तथा हड्डियोंके टुकड़ोंसे विभूषित रहती हैं। उन्हें विकराल दाढ़ोंसे युक्त मुखवाली, दुर्बल उदरसे युक्त, कपालोंकी माला धारण किये और मुण्ड-मालाओंसे विभूषित बनाना चाहिये। उनके बायें हाथमें खोपड़ीसे युक्त एवं रक्त और मांससे पूर्ण खप्पर और दाहिने हाथमें शक्ति हो। वे गृध्र या काकपर बैठी हों। उनका शरीर मांसरहित, उदर भीतर घुसा और मुख अत्यन्त भीषण हो। उन्हें तीन नेत्रोंसे सम्पन्न घण्टा लिये हुए व्याघ्र-चर्मसे सुशोभित या निर्वस्त्र बनाना चाहिये। उसी प्रकार कालिकाको कपाल धारण किये हुए गधेपर सवार बनाना चाहिये। वे लाल पुष्पोंके आभरणोंसे विभूषित तथा झाड़ूकी ध्वजासे युक्त हों। इन मातृकाओंके समीप सर्वदा गणेशकी प्रतिमा भी रखनी चाहिये तथा मातृकाओंके आगे जटाधारी, हाथोंमें वीणा और त्रिशूल लिये हुए वृषभारूढ़ भगवान् वीरेश्वरको स्थापित करना चाहिये ॥ ३३—३९ ॥

श्रियं देवीं प्रवक्ष्यामि नवे वयसि संस्थिताम्। सुयौवनां पीनगण्डां रक्तौष्ठीं कुञ्चितभ्रुवम् ॥ ४०॥
पीनोन्नतस्तनतटां मणिकुण्डलधारिणीम्। सुमण्डलं मुखं तस्याः शिरः सीमन्तभूषणम् ॥ ४१॥
पद्मस्वस्तिकशङ्खैर्वा भूषितां कुन्तलालकैः। कञ्चुकाबद्धगात्री च हारभूषौ पयोधरौ ॥ ४२॥
नागहस्तोपमौ बाहू केयूरकटकोज्ज्वलौ। पद्मं हस्ते प्रदातव्यं श्रीफलं दक्षिणे भुजे ॥ ४३॥
मेखलाभरणां तद्वत् तप्तकाञ्चनसप्रभाम्। नानाभरणसम्पन्नां शोभनाम्बरधारिणीम् ॥ ४४॥
पार्श्वे तस्याः स्त्रियः कार्याश्चामरव्यग्रपाणयः। पद्मासनोपविष्टा तु पद्मसिंहासनस्थिता ॥ ४५॥
करिभ्यां स्नाप्यमानासौ भृङ्गाराभ्यामनेकशः। प्रक्षालयन्तौ करिणी भृङ्गाराभ्यां तथापरौ ॥ ४६॥
स्तूयमाना च लोकेशैस्तथा गन्धर्वगुह्यकैः।

अब मैं लक्ष्मीकी प्रतिमाका प्रकार बतला रहा हूँ। वे नवीन अवस्थामें स्थित, नवयौवनसम्पन्न, उन्नत कपोलसे युक्त, लाल ओष्ठोंवाली, तिरछी भौंहोंसे युक्त तथा मणिनिर्मित कुण्डलोंसे विभूषित हों। उनका मुखमण्डल सुन्दर और सिर सिंदूरभरे माँगसे विभूषित हो। वे पद्म, स्वस्तिक और शङ्खसे तथा घुँघराले बालोंसे सुशोभित हों। उनके शरीरमें चोली बँधी हो और दोनों भुजाएँ हाथीके शुण्डादण्डकी भाँति स्थूल तथा केयूर और कङ्कणसे विभूषित हों। उनके बायें हाथमें कमल और दाहिने हाथमें श्रीफल होना चाहिये। उनकी शरीर-कान्ति तपाये हुए स्वर्णके समान गौर वर्णकी हो। वे करधनीसे विभूषित, विविध आभूषणोंसे सम्पन्न तथा सुन्दर साड़ीसे सुसज्जित हों। उनके पार्श्वमें चँवर धारण करनेवाली स्त्रियोंकी प्रतिमाएँ निर्मित करनी चाहिये। वे पद्मसिंहासनपर पद्मासनसे स्थित हों। उन्हें दो हाथी शुण्डमें गड्डुए लिये हुए लगातार स्नान करा रहे हों तथा दो अन्य हाथी भी उनपर घटद्वारा जल छोड़ रहे हों। उस समय लोकेश्वरों, गन्धर्वों और यक्षोंद्वारा उनकी स्तुति की जा रही हो ॥ ४०—४६½ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

तथैव यक्षिणी कार्या सिद्धासुरनिषेविता ॥ ४७ ॥
पार्श्वयोः कलशौ तस्यास्तोरणे देवदानवाः । नागाश्चैव तु कर्तव्याः खड्गखेटकधारिणः ॥ ४८ ॥
अधस्तात् प्रकृतिस्तेषां नाभेरूर्ध्वं तु पौरुषी । फणाश्च मूर्ध्नि कर्तव्या द्विजिह्वा बहवः समाः ॥ ४९ ॥
पिशाचा राक्षसाश्चैव भूतवेतालजातयः । निर्मांसाश्चैव ते सर्वे रौद्रा विकृतरूपिणः ॥ ५० ॥
क्षेत्रपालश्च कर्तव्यो जटिलो विकृताननः । दिग्वासा जटिलस्तद्वच्छ्वगोमायुनिषेवितः ॥ ५१ ॥
कपालं वामहस्ते तु शिरः केशसमावृतम् । दक्षिणे शक्तिकां दद्यादसुरक्षयकारिणीम् ॥ ५२ ॥
अथातः सम्प्रवक्ष्यामि द्विभुजं कुसुमायुधम् । पार्श्वे चाश्वमुखं तस्य मकरध्वजसंयुतम् ॥ ५३ ॥
दक्षिणे पुष्पबाणं च वामे पुष्पमयं धनुः । प्रीतिः स्याद् दक्षिणे तस्य भोजनोपस्करान्विता ॥ ५४ ॥
रतिश्च वामपार्श्वे तु शयनं सारसान्वितम् । पटश्च पटहश्चैव खरः कामातुरस्तथा ॥ ५५ ॥
पार्श्वतो जलवापी च वनं नन्दनमेव च । सुशोभनश्च कर्तव्यो भगवान् कुसुमायुधः ॥ ५६ ॥
संस्थानमीषद्वक्त्रं स्याद् विस्मयस्मितवक्त्रकम् ।
एतदुद्देशतः प्रोक्तं प्रतिमालक्षणं मया । विस्तरेण न शक्नोति बृहस्पतिरपि द्विजाः ॥ ५७ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे देवतार्चानुकीर्तने प्रतिमालक्षणं नामैकषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६१ ॥

इसी प्रकार यक्षिणीकी प्रतिमा सिद्धों तथा असुरों-द्वारा सेवित बनानी चाहिये । उसके दोनों ओर दो कलश और तोरणमें देवताओं, दानवों और नागोंकी प्रतिमा रखनी चाहिये, जो खड्ग और ढाल धारण लिये हुए हों । नीचेकी ओर उन नागोंका प्राकृतिक शरीर और नाभिसे ऊपर मनुष्यकी आकृति रहनी चाहिये । सिरपर बराबरीसे दिखायी पड़नेवाले दो जिह्वाओंसे युक्त बहुत-से फण बनाने चाहिये । पिशाच, राक्षस, भूत और बेताल जातियोंके लोगोंको भी बनाना चाहिये, वे सभी मांसरहित, विकृत रूपवाले और भयंकर हों । क्षेत्रपालकी प्रतिमा जटाओंसे युक्त, विकृत मुखवाली, नग्न, शृगालों और कुत्तोंसे सेवित बनानी चाहिये । उसका सिर केशोंसे आच्छादित हो । उसके बायें हाथमें कपाल और दाहिने हाथमें असुर-विनाशिनी शक्ति होनी चाहिये । अब इसके बाद मैं दो भुजाओंवाले कामदेवकी प्रतिमाका वर्णन कर रहा हूँ । उनकी एक ओर अश्वमुख मकरध्वजकी रचना करनी चाहिये । उनके दाहिने हाथमें पुष्प-बाण और बायें हाथमें पुष्पमय धनुष होना चाहिये । उनकी दाहिनी ओर भोजनकी सामग्रियोंसे युक्त प्रीतिकी तथा बायीं ओर रतिकी प्रतिमा शय्यासन एवं सारस पक्षीसे युक्त होनी चाहिये । उनके बगलमें वस्त्र, नगाड़ा तथा कामलोलुप गधा होना चाहिये । प्रतिमाके एक बगलमें जलसे पूर्ण बावली तथा नन्दनवन हो । इस तरह ऐश्वर्यशाली कामदेवको परम सुन्दर बनाना चाहिये । प्रतिमाकी मुद्रा कुछ वक्र, कुछ विस्मययुक्त और कुछ मुस्कराती हुई हो । ब्राह्मणो ! मैंने संक्षेपमें यह प्रतिमाओंका लक्षण बतलाया है । इनका विस्तारपूर्वक वर्णन तो बृहस्पति भी नहीं कर सकते ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें देवतार्चानुकीर्तन-प्रसङ्गमें प्रतिमा-लक्षण नामक दो सौ एकसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २६१ ॥

दो सौ बासठवाँ अध्याय

पीठिकाओंके भेद, लक्षण और फल

सूत उवाच

पीठिकालक्षणं वक्ष्ये यथावदनुपूर्वशः । पीठोच्छ्रायं यथावच्च भागान् षोडश कारयेत् ॥ १ ॥
भूमावेकः प्रविष्टः स्याच्चतुर्भिर्जगती मता । वृत्तो भागस्तथैकः स्याद् वृतः पटलमागतः ॥ २ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

भागैस्त्रिभिस्तथा कण्ठः कण्ठपट्टस्तु भागतः। भागाभ्यामूर्ध्वपट्टश्च शेषभागेन पट्टिका ॥ ३ ॥
प्रविष्टं भागमेकैकं जगतीं यावदेव तु। निर्गमस्तु पुनस्तस्य यावद् वै शेषपट्टिका ॥ ४ ॥
वारिनिर्गमनार्थं तु तत्र कार्यः प्रणालकः। पीठिकानां तु सर्वासामेतत्सामान्यलक्षणम् ॥ ५ ॥
विशेषान् देवताभेदाच्छृणुध्वं द्विजसत्तमाः। स्थण्डिला वाथ वापी वा यक्षी वेदी च मण्डला ॥ ६ ॥
पूर्णचन्द्रा च वज्रा च पद्मा वार्धशशी तथा। त्रिकोणा दशमी तासां संस्थानं वा निबोधत ॥ ७ ॥
स्थण्डिला चतुरस्रा तु वर्जिता मेखलादिभिः। वापी द्विमेखला ज्ञेया यक्षी चैव त्रिमेखला ॥ ८ ॥
चतुरस्रायता वेदी न तां लिङ्गेषु योजयेत्। मण्डला वर्तुला या तु मेखलाभिर्गणप्रिया ॥ ९ ॥
रक्ता द्विमेखला मध्ये पूर्णचन्द्रा तु सा भवेत्। मेखलात्रयसंयुक्ता षडस्रा वज्रिका भवेत् ॥ १० ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! अब मैं आपलोगोंको पीठिकाओंके लक्षणोंको आनुपूर्वी यथार्थरूपसे बतला रहा हूँ। पीठिकाकी ऊँचाईको सोलह भागोंमें विभक्त करे। उनमें बीचेका एक भाग पृथ्वीमें प्रविष्ट रहेगा। ऊपरके शेष चार भाग 'जगती' माने जाते हैं। उनसे ऊपरका एक भाग पटल भागसे घिरा हुआ 'वृत्त' कहलाता है। उसके ऊपर तीन भागोंसे कण्ठ, एक भागसे कण्ठपट्ट, दो भागोंसे ऊर्ध्वपट्ट तथा शेष भागोंसे पट्टिका बनायी जाती है। एक-एक भाग जगतीपर्यन्त एक-दूसरेमें प्रविष्ट रहते हैं। फिर शेषपट्टिका-पर्यन्त सबका निर्गम होता है। पट्टिकामें जल निकलनेके लिये (सोमसूत्रसे मिली) नाली बनानी चाहिये। यह सभी पीठिकाओंका सामान्य लक्षण है। ऋषिगण ! अब देवताओंके भेदसे पीठिकाओंके विशेष लक्षण सुनिये। स्थण्डिला, वापी, यक्षी, वेदी, मण्डला, पूर्णचन्द्रा, वज्रा, पद्मा, अर्धशशी तथा दसवीं त्रिकोणा—ये पीठिकाओंके भेद हैं। अब इनकी स्थिति सुनिये। स्थण्डिला-पीठिका चौकोर होती है, इसमें मेखला आदि कुछ नहीं होती। वापीको दो मेखलाओंसे तथा यक्षीको तीन मेखलाओंसे युक्त जानना चाहिये। चार पहलवाली आयताकार पीठिका वेदी कही जाती है, उसे लिङ्गकी स्थापनामें प्रयुक्त नहीं करना चाहिये। मण्डला मेखलाओंसे युक्त गोलाकार होती है, वह प्रमथगणोंको प्रिय होती है। जो पीठिका लाल वर्णवाली तथा मध्यमें दो मेखलाओंसे युक्त होती है, उसे पूर्णचन्द्रा कहते हैं। तीन मेखलाओंसे युक्त छः कोनेवाली पीठिकाको वज्रा कहते हैं ॥ १–१० ॥

षोडशास्रा भवेत् पद्मा किंचिद्ध्रस्वा तु मूलतः। तथैव धनुषाकारा सार्धचन्द्रा प्रशस्यते ॥ ११ ॥
त्रिशूलसदृशी तद्वत् त्रिकोणा ह्यूर्ध्वतो मता। प्रागुदक्प्रवणा तद्वत् प्रशस्ता लक्षणान्विता ॥ १२ ॥
परिवेषं त्रिभागेन निर्गमं तत्र कारयेत्। विस्तारं तत्प्रमाणं च मूले चाग्रे तथोर्ध्वतः ॥ १३ ॥
जलमार्गश्च कर्तव्यस्त्रिभागेन सुशोभनः। लिङ्गस्यार्धविभागेन स्थौल्येन समधिष्ठिता ॥ १४ ॥
मेखला तत्त्रिभागेन खातं चैव प्रमाणतः। अथवा पादहीनं तु शोभनं कारयेत् सदा ॥ १५ ॥
उत्तरस्थं प्रणालं च प्रमाणादधिकं भवेत्। स्थण्डिलायामथारोग्यं धनं धान्यं च पुष्कलम् ॥ १६ ॥
गोप्रदा च भवेद् यक्षी वेदी सम्पत्प्रदा भवेत्। मण्डलायां भवेत् कीर्तिर्वरदा पूर्णचन्द्रिका ॥ १७ ॥
आयुष्पदा भवेद् वज्रा पद्मा सौभाग्यदा भवेत्। पुत्रप्रदार्धचन्द्रा स्यात् त्रिकोणा शत्रुनाशिनी ॥ १८ ॥
देवस्य यजनार्थं तु पीठिका दश कीर्तिताः। शैले शैलमयीं दद्यात् पार्थिवे पार्थिवीं तथा ॥ १९ ॥
दारुजे दारुजां कुर्यान्मिश्रे मिश्रां तथैव च। नान्ययोनिस्तु कर्तव्या सदा शुभफलेप्सुभिः ॥ २० ॥
अर्चायामासमं दैर्घ्यं लिङ्गायामसमं तथा।
यस्य देवस्य या पत्नी तां पीठे परिकल्पयेत्। एतत् सर्वं समाख्यातं समासात् पीठलक्षणम् ॥ २१ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे देवतार्चानुकीर्तने पीठिकानुकीर्तनं नाम द्विषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६२ ॥

Sri Sri Jagadguru Vishwabharathi Book Centre, Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

मूल भागमें कुछ छोटी (पद्मपत्र-सी) सोलह पहलोंवाली पीठिका पद्मा कही जाती है। उसी प्रकार धनुषके आकारवाली पीठिकाको अर्धचन्द्रा कहते हैं। ऊपरसे त्रिशूलके समान दिखायी पड़नेवाली, पूर्व तथा उत्तरकी ओर कुछ ढालू एवं श्रेष्ठ लक्षणोंसे युक्त पीठिकाको त्रिकोणा कहते हैं। पीठिकाके तीन भाग परिधिके बाहर रहें और मूल, अग्रभाग तथा ऊपर—इन तीनों भागोंके विस्तार अधिक हों। त्रिभागमें जल निकलनेकी सुन्दर नाली (सोमसूत्र) होनी चाहिये। पीठिका लिङ्गके आधे भागकी मोटाईके परिमाणसे बनानी चाहिये। लिङ्गके तीन भागके बराबर मेखलाका खात बनाना चाहिये अथवा वह चौथाई भागसे कम रहे, किंतु सर्वदा सुन्दर बनाना चाहिये। उत्तरकी ओर स्थित नाली प्रमाणसे कुछ अधिक ही बनानी चाहिये। स्थण्डिला-पीठिकाके स्थापित करनेसे आरोग्य तथा विपुल धन-धान्यादिकी प्राप्ति होती है। यक्षी गौ देनेवाली तथा वेदी सम्पत्तिदायिनी कही गयी है। मण्डलामें कीर्ति प्राप्त होती है और पूर्णचन्द्रिका वरदान देनेवाली कही गयी है। वज्रा दीर्घायु प्रदान करनेवाली तथा पद्मा सौभाग्यदायिनी कही गयी है। अर्धचन्द्रा पुत्र प्रदान करनेवाली तथा त्रिकोणा शत्रुनाशिनी होती है। इस प्रकार देवताकी पूजाके लिये ये दस पीठिकाएँ कही गयी हैं। पत्थरकी प्रतिमामें पत्थरकी तथा मिट्टीकी मूर्तिमें मिट्टीकी पीठिका देनी चाहिये। इसी प्रकार काष्ठकी मूर्तिमें काष्ठकी तथा मिश्रित धातुओंकी प्रतिमामें धातुमिश्रितकी पीठिका रखनी चाहिये। शुभ फलकी कामना करनेवालोंको दूसरे प्रकारकी पीठिका कभी नहीं देनी चाहिये। पीठिकाकी लम्बाई मूर्तिमें तथा लिङ्गमें बराबर नहीं रखी जाती। जिस देवताकी जो पत्नी हो, उसे उसी पीठपर स्थापित करना चाहिये। इस प्रकार यह मैंने आपलोगोंको संक्षेपमें पीठिकाका लक्षण बतलाया है ॥ ११—२१ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें देवतार्चानुकीर्तन-प्रसङ्गमें पीठिका-वर्णन नामक दो सौ बासठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २६२ ॥

दो सौ तिरसठवाँ अध्याय

शिवलिङ्गके निर्माणकी विधि

सूत उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि लिङ्गलक्षणमुत्तमम्। सुस्निग्धं च सुवर्णं च लिङ्गं कुर्याद् विचक्षणः ॥ १ ॥
प्रासादस्य प्रमाणेन लिङ्गमानं विधीयते। लिङ्गमानेन वा विद्यात् प्रासादं शुभलक्षणम् ॥ २ ॥
चतुरस्रे समे गर्ते ब्रह्मसूत्रं निपातयेत्। वामेन ब्रह्मसूत्रस्य अर्चा वा लिङ्गमेव च ॥ ३ ॥
प्रागुत्तरेण लीनं तु दक्षिणापरमाश्रितम्। पुरस्यापरदिग्भागे पूर्वद्वारं प्रकल्पयेत् ॥ ४ ॥
पूर्वेण चापरं द्वारं माहेन्द्रं दक्षिणोत्तरम्। द्वारं विभज्य पूर्वं तु एकविंशतिभागिकम् ॥ ५ ॥
ततो मध्यगतं ज्ञात्वा ब्रह्मसूत्रं प्रकल्पयेत्। तस्यार्धं तु त्रिधा कृत्वा भागं चोत्तरतस्त्यजेत् ॥ ६ ॥
एवं दक्षिणतस्त्यक्त्वा ब्रह्मस्थानं प्रकल्पयेत्। भागार्धेन तु यल्लिङ्गं कार्यं तदिह शस्यते ॥ ७ ॥
पञ्चभागविभक्तेषु त्रिभागो ज्येष्ठउच्यते। भाजिते नवधा गर्भे मध्यमं पाञ्चभागिकम् ॥ ८ ॥
एकस्मिन्नेव नवधा गर्भे लिङ्गानि कारयेत्। समसूत्रं विभज्याथ नवधा गर्भभाजितम् ॥ ९ ॥
ज्येष्ठमर्धे कनीयोऽर्धे तथा मध्यममध्यमम्। एवं गर्भः समाख्यातस्त्रिभिर्भागैर्विभाजयेत् ॥ १० ॥
ज्येष्ठं तु त्रिविधं ज्ञेयं मध्यमं त्रिविधं तथा। कनीयस्त्रिविधं तद्वल्लिङ्गभेदा नवैव तु ॥ ११ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! अब मैं लिङ्गके उत्तम लक्षणका वर्णन कर रहा हूँ। चतुर पुरुष अत्यन्त चिकने एवं श्रेष्ठ (श्वेत) रंगके शिवलिङ्गका निर्माण करे। मन्दिरके प्रमाणके अनुसार ही शिवलिङ्गका प्रमाण बतलाया गया है। अथवा शिवलिङ्गके प्रमाणानुसार शिव-मन्दिरका निर्माण शुभ जानना चाहिये। सर्वप्रथम चौकोर एवं समतल गर्तमें ब्रह्मसूत्र गिराना चाहिये। ब्रह्मसूत्रकी बायीं ओर अर्चा या लिङ्गकी स्थापना करनी चाहिये। वहाँ पूर्वोत्तर या दक्षिणपूर्वकी ओर पूर्वद्वार बनाना चाहिये। वह द्वार कुछ दक्षिणाश्रित या ईशानमें लीन रहना चाहिये। पूर्वका यह द्वार माहेन्द्रद्वार कहलाता है। प्रथमतः पूर्वद्वारको इक्कीस भागोंमें विभक्तकर मध्य भागमें ब्रह्मसूत्रकी कल्पना करनी चाहिये। इसके अर्धभागको तीन भागोंमें विभक्तकर उत्तरकी ओर तथा दक्षिणकी ओर एक-एक भाग छोड़कर ब्रह्मस्थानकी कल्पना करनी चाहिये। उस अर्धभागमें लिङ्गकी स्थापना प्रशस्त मानी गयी है। उसे पाँच भागोंमें विभक्त कर उनमें तीन भागोंको ज्येष्ठ कहा जाता है। भीतरी मानको नौ भागोंमें विभक्तकर उसके पञ्चम भागको मध्यम कहते हैं। गर्भके एक ही भागको नौ भागोंमें विभक्तकर उनमें लिङ्गोंको स्थापित करे। इसी समसूत्र-वाले गर्भ-भागको नौ भागमें विभक्त करे। उनमें आधा ज्येष्ठ, आधा कनिष्ठ और मध्यभाग मध्यम कहलाता है। इस प्रकार गर्भको तीन भागोंमें विभक्त करना चाहिये। फिर उनमें तीन ज्येष्ठ, तीन मध्यम और तीन कनिष्ठ भेद होते हैं, जिससे लिङ्गोंके कुल नौ भेद होते हैं* ॥ १-११ ॥

---

* श्रीविद्यार्णवतन्त्रके ११ वें श्वासमें लिङ्ग-निर्माणकी साधारण विधि इस प्रकार दी गयी है—

अपनी रुचिके अनुसार लिङ्ग कल्पित करके उसके मस्तकका विस्तार उतना ही रखे, जितनी पूजित लिङ्गभागकी ऊँचाई हो। शैवागमका भी वचन है—'लिङ्गमस्तकविस्तारो लिङ्गोच्छ्रायसमो भवेत्।' लिङ्गके मस्तकका विस्तार जितना हो, उससे तिगुने सूत्रसे वेष्टित होने योग्य लिङ्गकी स्थूलता (मोटाई) रखे। शिवलिङ्गकी जो स्थूलता या मोटाई है, उसके सूत्रके बराबर पीठका विस्तार रखे। तत्पश्चात् पूज्य लिङ्गका जो उच्च अंश है, उससे दुगुनी ऊँचाईसे युक्त वृत्ताकार या चतुरस्र पीठ बनावे। पीठके मध्यभागमें लिङ्गके स्थूलतामात्रसूचक नाहसूत्रके द्विगुण सूत्रसे वेष्टित होने योग्य स्थूल कण्ठका निर्माण करे। कण्ठके ऊपर और नीचे समभागसे तीन या दो मेखलाओंकी रचना करे। तदनन्तर लिङ्गके मस्तकका जो विस्तार है, उसको छः भागोंमें विभक्त करे। उनमेंसे एक अंशके मानके अनुसार पीठके ऊपरी भागमें सबसे बाहरी अंशके द्वारा मेखला बनावे। उसके भीतर उसी मानके अनुसार उससे संलग्न अंशके द्वारा खात (गर्त) की रचना करे। पीठसे बाह्यभागमें लिङ्गके समान ही बड़ी अथवा पीठमानके आधे मानके बराबर बड़ी, मूलदेशमें मानके समान विस्तारवाली और अग्रभागमें उसके आधे मानके तुल्य विस्तारवाली नाली बनावे। इसीको 'प्रणाल' कहते हैं। प्रणालके मध्यमें मूलसे अग्रभागपर्यन्त जलमार्ग बनावे। प्रणालका जो विस्तार है, उसके एक तिहाई विस्तार-वाले खातरूप जलमार्गसे युक्त पीठसदृश मेखलायुक्त प्रणाल बनाना चाहिये। यह स्फटिक आदि रत्नविशेषों अथवा पाषाण आदिके द्वारा शिवलिङ्ग-निर्माणकी साधारण विधि है। तथा—

लिङ्गमस्तकविस्तारं पूज्यभागसमं नयेत्। .... लक्षणमाचरेत् ॥ (१—८)

'समराङ्गणसूत्रधार'में कहा है कि दो-दो अंशकी वृद्धि करते हुए तीन हाथकी लंबाईतक पहुँचते-पहुँचते नौ लिङ्ग निर्मित हो सकते हैं—'द्व्यंशवृद्धा नवैवं स्युराहस्तत्रितयावधेः।' सूर्यप्रोक्त 'अंशुमद्भेदागम' तथा अग्निपुराण अध्याय ५४के २८वें श्लोकमें एवं विश्वकर्माके 'शिल्पप्रकाश' ग्रन्थमें लिङ्ग-भेदोंकी परिगणना की गयी है और सब मिलाकर चौदह हजार चौदह सौ भेद कहे गये हैं। विश्वकर्माके ही एक दूसरे शास्त्र 'अपराजित-पृच्छा'के अवलोकनसे इन भेदोंपर विशेष प्रकाश पड़ता है। उसके अनुसार समस्तलिङ्ग भेद १४४२० होते हैं। इसका प्रकार बताया जाता है—प्रस्तरमय लिङ्ग कम-से-कम एक हाथका होता है, उससे कम नहीं। उसका अन्तिम आयाम नौ हाथका बताया गया है। इस प्रकार एक हाथसे लेकर नौ हाथतकके लिङ्गोंकी संख्या नौ होती है। इनका प्रस्तार यों समझना चाहिये।

Sri Vidyatirtha Bharathi Book Centre, Sringeri

CC-0 In Public Domain. Digitized by eGangotri

नाभ्यर्धमष्टभागेन विभज्याथ समं बुधैः। भागत्रयं परित्यज्य विष्कम्भं चतुरस्रकम् ॥ १२॥
अष्टास्रं मध्यमं ज्ञेयं भागं लिङ्गस्य वै ध्रुवम्। विकीर्णं चेत् ततो गृह्य कोणाभ्यां लाञ्छयेद् बुधः ॥ १३ ॥
अष्टास्रं कारयेत् तद्वदूर्ध्वमप्येवमेव तु। षोडशास्रीकृतं पश्चाद् वर्तुलं कारयेत् ततः ॥ १४॥
आयामं तस्य देवस्य नाभ्यां वै कुण्डलीकृतम्। माहेश्वरं त्रिभागं तु ऊर्ध्ववृत्तं त्ववस्थितम् ॥ १५॥
अधस्ताद् ब्रह्मभागस्तु चतुरस्रो विधीयते। अष्टाग्रो वैष्णवो भागो मध्यस्तस्य उदाहृतः ॥ १६॥
एवं प्रमाणसंयुक्तं लिङ्गं वृद्धिप्रदं भवेत्। तथान्यदपि वक्ष्यामि गर्भमानं प्रमाणतः ॥ १७॥
गर्भमानप्रमाणेन यल्लिङ्गमुचितं भवेत्। चतुर्धा तद् विभज्याथ विष्कम्भं तु प्रकल्पयेत् ॥ १८॥
देवतायतनं सूत्रं भागत्रयविकल्पितम्। अधस्ताच्चतुरस्रं तु अष्टास्रं मध्यभागतः ॥ १९॥
पूज्यभागस्ततोऽर्धं तु नाभिभागस्तथोच्यते। आयामे यद् भवेत् सूत्रं नाहस्य चतुरस्रके ॥ २०॥
चतुरस्रं परित्यज्य अष्टास्रस्य तु यद् भवेत्। तस्याप्यर्धं परित्यज्य ततो वृत्तं तु कारयेत् ॥ २१॥

बुद्धिमान् पुरुषोंको चाहिये कि नाभिके आधे छोड़कर चौकोर विष्कम्भ बनाये। लिङ्गके मध्यभागमें भागके बराबर आठ भाग करे, फिर उनमें तीन भागोंको आठ कोण रहना चाहिये। तदनन्तर बुद्धिमानोंको

एक हाथसे तीन हाथतकके शिवलिङ्ग 'कनिष्ठ' कहे गये हैं। चारसे छः हाथतकके 'मध्यम' माने गये हैं और सातसे नौ हाथतकके 'उत्तम' या 'ज्येष्ठ' कहे गये हैं। इन तीनोंके प्रमाणमें पादवृद्धि करनेसे कुल ३३ शिवलिङ्ग होते हैं। यथा—

एक हाथ[१], सवा[२] हाथ, डेढ़[३] हाथ, पौने[४] दो हाथ, दो हाथ[५], सवा[६] दो हाथ, ढाई हाथ[७], पौने तीन[८] हाथ, तीन हाथ[९], सवा तीन [१०]हाथ, साढ़े तीन[११] हाथ, पौने चार[१२] हाथ, चार [१३]हाथ, सवा चार[१४] हाथ, साढ़े चार [१५]हाथ, पौने [१६]पाँच हाथ, पाँच [१७]हाथ, सवा [१८]पाँच हाथ, साढ़े पाँच [१९]हाथ, पौने छः [२०]हाथ, छः [२१]हाथ, सवा छः[२२] हाथ, साढ़े [२३]छः हाथ, पौने [२४]सात हाथ, सात [२५]हाथ, सवा सात[२६] हाथ, साढ़े [२७]सात हाथ, पौने आठ[२८] हाथ, आठ [२९]हाथ, सवा [३०]आठ हाथ, साढ़े [३१]आठ हाथ, पौने नौ [३२]हाथ, नौ [३३]हाथ।

इन तैंतीसोंके नाम विश्वकर्माने क्रमशः इस प्रकार बताये हैं—१. भव, २. भवोद्भव, ३. भाव, ४. संसारभयनाशन, ५. पाशयुक्त, ६. महातेज, ७. महादेव, ८. परात्पर, ९. ईश्वर, १०. शेखर, ११. शिव, १२. शान्त, १३. मनोह्लादक, १४. रुद्रतेज, १५. सदात्मक (सद्योजात), १६. वामदेव, १७. अघोर, १८. तत्पुरुष, १९. ईशान, २०. मृत्युंजय. २१. विजय, २२. किरणाक्ष, २३. अघोरास्त्र, २४. श्रीकण्ठ, २५. पुण्यवर्धन, २६. पुण्डरीक, २७. सुवक्त्र, २८. उमातेजः, २९. विश्वेश्वर, ३०. त्रिनेत्र, ३१. त्र्यम्बक, ३२. घोर, ३३. महाकाल।

पूर्वोक्त क्रमसे पादार्धवृद्धि करनेपर	६५	तक संख्या पहुँचेगी।
,, ,, दो अङ्गुल वृद्धि करनेपर	९७	,, ,, ,,
,, ,, एक ,, ,, ,,	१९३	,, ,, ,,
,, ,, अर्धाङ्गुल ,, ,,	३८५	,, ,, ,,
,, ,, अङ्गुलका चतुर्थांश बढ़ानेपर	७६९	,, ,, ,,
,, ,, एक-एक मूँगके मानकी वृद्धि करनेपर	१४४२	,, ,, ,,
,, ,, मुद्ग-प्रमाण लिङ्गोंमें प्रत्येकके दस भेद करनेपर	१४४२०	पहुँचेगी।

'देवमूर्तिप्रकरणम्' नामक ग्रन्थके छठे अध्यायमें शिवजीकी चौबीस मूर्तियाँ बतायी गयी हैं। उनके लिङ्ग धातु, रत्न, काष्ठ और शिलाके बनाये जाते हैं। इनमें नागरलिङ्ग, द्राविणलिङ्ग, वेशरलिङ्ग, स्फाटिकलिङ्ग तथा बाणलिङ्गका विशेष महत्त्व है। वहाँ इन लिङ्गोंके पृथक्-पृथक् नाम और निर्माणकी विधि दी गयी है। साथ ही प्रासाद, पीठिका और प्रणाल आदिका विशेषरूपसे निरूपण किया गया है। इस विषयपर सर्वाधिक विस्तार 'अंशुमद्भेदागम' (काश्यपशिल्प) तथा 'वीरमित्रोदय लक्षणप्रकाश पृ० ५८९ से ६३० (मुख्यतः ६०४-६) में है। विशेष जानकारीके लिये उन्हीं प्रकरणोंको देखना चाहिये।

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

बचे हुए भागको दो कोणोंसे लाञ्छित करना चाहिये। उसी प्रकार ऊपरका भाग भी आठ कोणोंवाला बनाये। सोलह कोणवाले भागको गोलाकारमें परिणत कर दे। उस देवताकी नाभिमें लम्बाई कुण्डलीकृत माहेश्वर भागका होगी। लिङ्गमें भाग ऊर्ध्व-वृत्तरूपसे स्थित त्रिभाग होगा। उसके नीचे ब्रह्मभाग होगा, जो चौकोर बनाया जाता है। मध्यभाग, जो आठ कोणोंवाला होता है, वैष्णव-भाग कहा जाता है। इन प्रमाणोंसे निर्मित लिङ्ग समृद्धि देनेवाला होता है। अब गर्भमानके प्रमाणसे बननेवाले लिङ्गका वर्णन कर रहा हूँ। जो लिङ्ग गर्भमानके प्रमाणसे निर्मित होता है, वह उचित होता है। उसे चार भागोंमें विभक्तकर विष्कम्भकी कल्पना करे। देवायतनको सूत्रद्वारा नापकर उसे तीन भागोंमें विभक्त करे। जिसमें नीचेका भाग चार कोणवाला और मध्यभाग आठ कोणवाला हो। इसके ऊपर पूज्यभाग और नाभिभाग कहा जाता है। लम्बाईका विस्तार चौकोर प्रमाणका होना चाहिये। उस चौकोर भागको छोड़कर आठ कोणवाला जो भाग हो, उसके आधे भागको छोड़कर वृत्ताकार बनाना चाहिये ॥ १२–२१ ॥

शिरः प्रदक्षिणं तस्य संक्षिप्तं मूलतो न्यसेत्। अश्रष्टपूज्यं भवेल्लिङ्गमधस्ताद् विपुलं च यत् ॥ २२ ॥
शिरसा च सदा निम्नं मनोज्ञं लक्षणान्वितम्। सौम्यं तु दृश्यते यत्तु लिङ्गं तद् वृद्धिदं भवेत् ॥ २३ ॥
अथ मूले च मध्ये तु प्रमाणे सर्वतः समम्। एवंविधं तु यल्लिङ्गं भवेत् तत् सार्वकामिकम् ॥ २४ ॥
अन्यथा यद् भवेल्लिङ्गं तदसत् सम्प्रचक्षते।
एवं रत्नमयं कुर्यात् स्फाटिकं पार्थिवं तथा। शुभं दारुमयं चापि यद् वा मनसि रोचते ॥ २५ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे देवतार्चानुकीर्तनं नाम त्रिषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६३ ॥

उसके मङ्गलमय सिरको मूलदेशसे बिलकुल सीधे रूपमें स्थापित करे। जिस लिङ्गके नीचेका भाग बहुत चौड़ा होता है, वह पूजनीय नहीं रह जाता। जो लिङ्ग सिरकी ओरसे सदा निम्न, मनोहर, उत्तम लक्षणोंसे युक्त तथा सौम्य दिखायी पड़ता है, वह समृद्धिको देनेवाला होता है। जो लिङ्ग मूल तथा मध्यभागमें एक समान रहता है, वह सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला होता है। जो लिङ्ग इन उपर्युक्त लक्षणोंसे भिन्न होते हैं, वे असत् कहे जाते हैं अर्थात् वे अपूजनीय लिङ्ग हैं। इस प्रकार ऊपर बताये गये प्रमाणोंके अनुसार रत्न, स्फटिक, मिट्टी अथवा शुभ काष्ठका लिङ्ग अपनी रुचिके अनुकूल स्थापित करना चाहिये ॥ २२–२५ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें देवतार्चानुकीर्तन नामक दो सौ तिरसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २६३ ॥

दो सौ चौंसठवाँ अध्याय

प्रतिमा-प्रतिष्ठाके प्रसङ्गमें यज्ञाङ्गरूप कुण्डादिके निर्माणकी विधि

ऋषय ऊचुः

देवतानामथैतासां प्रतिष्ठाविधिमुत्तमम्। वद सूत यथान्यायं सर्वेषामप्यशेषतः ॥ १ ॥

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! अब आप इन सभी देवताओंकी प्रतिमाके स्थापनकी उत्तम विधि यथार्थरूपसे विस्तारपूर्वक बतलाइये ॥ १ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

सूत उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि प्रतिष्ठाविधिमुत्तमम् । कुण्डमण्डपवेदीनां प्रमाणं च यथाक्रमम् ॥ २ ॥
चैत्रे वा फाल्गुने वापि ज्येष्ठे वा माधवे तथा । माघे वा सर्वदेवानां प्रतिष्ठा शुभदा भवेत् ॥ ३ ॥
प्राप्य पक्षं शुभं शुक्लमतीते दक्षिणायने । पञ्चमी च द्वितीया च तृतीया सप्तमी तथा ॥ ४ ॥
दशमी पौर्णमासी च तथा श्रेष्ठा त्रयोदशी । आसु प्रतिष्ठा विधिवत् कृता बहुफला भवेत् ॥ ५ ॥
आषाढे द्वे तथा मूलमुत्तराद्वयमेव च । ज्येष्ठाश्रवणरोहिण्यः पूर्वाभाद्रपदा तथा ॥ ६ ॥
हस्ताश्विनी रेवती च पुष्यो मृगशिरास्तथा । अनुराधा तथा स्वाती प्रतिष्ठादिषु शस्यते ॥ ७ ॥
बुधो बृहस्पतिः शुक्रस्त्रयोऽप्येते शुभग्रहाः । एभिर्निरीक्षितं लग्नं नक्षत्रं च प्रशस्यते ॥ ८ ॥
ग्रहताराबलं लब्ध्वा ग्रहपूजां विधाय च । निमित्तं शकुनं लब्ध्वा वर्जयित्वाद्भुतादिकम् ॥ ९ ॥
शुभयोगे शुभस्थाने क्रूरग्रहविवर्जिते । लग्ने ऋक्षे प्रकुर्वीत प्रतिष्ठादिकमुत्तमम् ॥ १० ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! अब मैं क्रमशः देवप्रतिमाकी प्रतिष्ठाकी उत्तम विधि तथा मण्डप, कुण्ड और वेदीके प्रमाणको बतला रहा हूँ । फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ अथवा माघमासमें सभी देवताओं-की प्रतिष्ठा शुभदायिनी होती है । दक्षिणायन बीत जानेपर अर्थात् उत्तरायणमें शुभकारी शुक्लपक्षमें द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, दशमी, त्रयोदशी, पूर्णमासी तिथियोंमें विधिपूर्वक की गयी प्रतिष्ठा बहुत फल देनेवाली होती है । पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, मूल, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराभाद्रपद, ज्येष्ठा, श्रवण, रोहिणी, पूर्वा-भाद्रपद, हस्त, अश्विनी, रेवती, पुष्य, मृगशिरा, अनुराधा तथा स्वाती—ये नक्षत्र प्रतिष्ठा आदिमें प्रशस्त माने गये हैं । बुध, बृहस्पति तथा शुक्र—ये तीनों ग्रह शुभकारक हैं । इन तीनों ग्रहोंसे दृष्ट (एवं युक्त) लग्न तथा नक्षत्र प्रशंसनीय हैं । ग्रह और ताराका बल प्राप्तकर तथा उनकी पूजाकर शुभ शकुनको देखकर, अद्भुत आदि बुरे योगोंको छोड़कर शुभयोगमें शुभस्थानपर क्रूर ग्रहोंसे रहित शुभ लग्न एवं शुभ नक्षत्रमें प्रतिष्ठा आदि उत्तम कार्योंको करना चाहिये ॥ २–१० ॥

अयने विषुवे तद्वत् षडशीतिमुखे तथा । एतेषु स्थापनं कार्यं विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ११ ॥
प्राजापत्ये तु शयनं श्वेते तूत्थापनं तथा । मुहूर्ते स्थापनं कुर्यात् पुनर्ब्राह्मे विचक्षणः ॥ १२ ॥
प्रासादस्योत्तरे वापि पूर्वे वा मण्डपो भवेत् । हस्तान् षोडश कुर्वीत दश द्वादश वा पुनः ॥ १३ ॥
मध्ये वेदिकया युक्तः परिक्षिप्तः समंततः । पञ्च सप्तापि चतुरः करान् कुर्वीत वेदिकाम् ॥ १४ ॥
चतुर्भिस्तोरणैर्युक्तो मण्डपः स्याच्चतुर्मुखः । प्लक्षद्वारं भवेत् पूर्वं याम्ये चौदुम्बरं भवेत् ॥ १५ ॥
पश्चादश्वत्थघटितं नैयग्रोधं तथोत्तरे । भूमौ हस्तप्रविष्टानि चतुर्हस्तानि चोच्छ्रये ॥ १६ ॥
सूपलिप्तं तथा श्लक्ष्णं भूतलं स्यात् सुशोभनम् । वस्त्रैर्नानाविधैस्तद्वत् पुष्पपल्लवशोभितम् ॥ १७ ॥
कृत्वैवं मण्डपं पूर्वं चतुर्द्वारेषु विन्यसेत् । अव्रणान् कलशानष्टौ ज्वलत्काञ्चनगर्भितान् ॥ १८ ॥
चूतपल्लवसंछन्नान् सितवस्त्रयुगान्वितान् । सर्वौषधिफलोपेतांश्चन्दनोदकपूरितान् ॥ १९ ॥
एवं निवेश्य तद्गर्भे गन्धधूपार्चनादिभिः । ध्वजादिरोहणं कार्यं मण्डपस्य समन्ततः ॥ २० ॥

अयन (कर्क-मकर), विषुव (तुला-मेष) और षडशीतिमुख (कन्या, मिथुन, धनुर्मीन) संक्रान्तियोंमें विधिपूर्वक अनुष्ठानद्वारा देवस्थापन करना चाहिये । चतुर मनुष्यको चाहिये कि वह प्राजापत्य मुहूर्तमें शयन, श्वेतमें उत्थापन तथा ब्राह्ममें स्थापन करे । अपने महलकी पूर्व अथवा उत्तर दिशामें मण्डप बनवाना चाहिये । उसे सोलह, बारह अथवा दस हाथका बनाना चाहिये । उसके मध्यभागमें वेदी होनी चाहिये,

Sri Vidyatheertha Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

जो चारों ओरसे समान तथा पाँच, सात या चार हाथ विस्तृत हो। चतुर्मुख मण्डपके चारों ओर चार तोरण बने हों। पूर्व दिशामें पाकड़का, दक्षिणमें गूलरका, पश्चिममें पीपलका तथा उत्तरमें बरगदका द्वार होना चाहिये, जो भूमिमें एक हाथ प्रविष्ट हों तथा भूमिसे ऊपर चार हाथ ऊँचे हों। उसका भूतल भलीभाँति लिपा हुआ, चिकना तथा सुन्दर होना चाहिये। इसी प्रकार विविध वस्त्र, पुष्प और पल्लवोंसे सुशोभित करना चाहिये। इस प्रकार मण्डपका निर्माण कर पहले चारों द्वारोंपर छिद्ररहित आठ कलशोंकी स्थापना करनी चाहिये, जो देदीप्यमान सुवर्णकी भाँति कान्तियुक्त, आमके पल्लवोंसे आच्छादित, दो श्वेत वस्त्रोंसे युक्त, सभी ओषधियों एवं फलोंसे सम्पन्न तथा चन्दनमिश्रित जलसे परिपूर्ण हों। इस प्रकार उन कलशोंको स्थापित कर गन्ध, धूप आदि पूजन-सामग्रियोंद्वारा उनके भीतर पूजन करे। फिर मण्डपके चारों ओर ध्वजा आदिकी स्थापना करनी चाहिये॥ ११—२०॥

ध्वजांश्च लोकपालानां सर्वदिक्षु निवेशयेत्। पताका जलदाकारा मध्ये स्यान्मण्डपस्य तु॥ २१॥
गन्धधूपादिकं कुर्यात् स्वैः स्वैर्मन्त्रैरनुक्रमात्। बलिं च लोकपालेभ्यः स्वमन्त्रेण निवेदयेत्॥ २२॥
ऊर्ध्वं तु ब्रह्मणे देयं त्वधस्ताच्छेषवासुकेः। संहितायां तु ये मन्त्रास्तद्दैवत्याः शुभाः स्मृताः॥ २३॥
तैः पूजा लोकपालानां कर्तव्या च समन्ततः। त्रिरात्रमेकरात्रं वा पञ्चरात्रमथापि वा॥ २४॥
अथवा सप्तरात्रं तु कार्यं स्यादधिवासनम्। एवं सतोरणं कृत्वा अधिवासनमुत्तमम्॥ २५॥
तस्याप्युत्तरतः कुर्यात् स्नानमण्डपमुत्तमम्। तदर्धेन त्रिभागेन चतुर्भागेन वा पुनः॥ २६॥
आनीय लिङ्गमर्चां वा शिल्पिनः पूजयेद् बुधः। वस्त्राभरणरत्नैश्च येऽपि तत्परिचारकाः॥ २७॥
क्षमध्वमिति तान् ब्रूयाद् यजमानोऽप्यतः परम्। देवं प्रस्तरणे कृत्वा नेत्रज्योतिः प्रकल्पयेत्॥ २८॥

लोकपालोंकी पताका सभी दिशाओंमें स्थापित करे। मण्डपके मध्यभागमें बादलके रंगकी अथवा बहुत ऊँची पताका स्थापित करनी चाहिये। फिर क्रमशः लोकपालोंके पृथक्-पृथक् मन्त्रोंद्वारा गन्ध-धूपादिसे उनकी पूजा करे तथा उन्हींके मन्त्रोंद्वारा उन्हें बलि प्रदान करे। ब्रह्माजीके लिये ऊपर तथा शेष वासुकिके लिये नीचे पूजाका विधान कहा गया है। संहितामें जो मन्त्र जिस देवताके लिये आये हैं, उसीके लिये प्रयुक्त होनेपर मङ्गलकारी माने गये हैं। उन्हीं मन्त्रोंद्वारा चारों ओर लोकपालोंकी पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् तीन रात, एक रात, पाँच रात अथवा सात राततक उनका अधिवासन करना चाहिये। इस प्रकार तोरण तथा उत्तम अधिवासन कर उक्त मण्डपकी उत्तर दिशामें उसके आधे, तिहाई अथवा चौथाई भागके परिमाणसे उत्तम स्नानमण्डपका निर्माण करना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुष लिङ्ग या मूर्तिको लाकर कारीगरों तथा उनके सभी अनुचरोंकी वस्त्र, आभूषण और रत्नद्वारा पूजा करे। तदनन्तर यजमान उनसे यह कहे कि 'मेरे अपराधोंको क्षमा कीजिये।' तत्पश्चात् देवताको बिछौनेपर लिटाकर उनकी नेत्रज्योति सम्पादित करे॥ २१—२८॥

अक्ष्णोरुद्धरणं वक्ष्ये लिङ्गस्यापि समासतः। सर्वतस्तु बलिं दद्यात् सिद्धार्थघृतपायसैः॥ २९॥
शुक्लपुष्पैरलङ्कृत्य घृतगुग्गुलधूपितम्। विप्राणां चार्चनं कुर्याद् दद्याच्छक्त्या च दक्षिणाम्॥ ३०॥
गां महीं कनकं चैव स्थापकाय निवेदयेत्। लक्षणं कारयेद् भक्त्या मन्त्रेणानेन वै द्विजः॥ ३१॥
ओं नमो भगवते तुभ्यं शिवाय परमात्मने। हिरण्यरेतसे विष्णो विश्वरूपाय ते नमः॥ ३२॥
मन्त्रोऽयं सर्वदेवानां नेत्रज्योतिष्वपि स्मृतः। एवमामन्त्र्य देवेशं काञ्चनेन विलेखयेत्॥ ३३॥
मङ्गल्यानि च वाद्यानि ब्रह्मघोषं सगीतकम्। वृद्ध्यर्थं कारयेद् विद्वानमङ्गल्यविनाशनम्॥ ३४॥
लक्षणोद्धरणं वक्ष्ये लिङ्गस्य [illegible] पूज्यायां लक्षणं स्याद् विभाजकम्॥ ३५॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

लेखात्रयं तु कर्तव्यं यवाष्टान्तरसंयुतम् । न स्थूलं न कृशं तद्वन्न वक्रं छेदवर्जितम् ॥ ३६ ॥
निम्नं यवप्रमाणेन ज्येष्ठलिङ्गस्य कारयेत् । सूक्ष्मास्ततस्तु कर्तव्या यथा मध्यमके न्यसेत्॥ ३७ ॥
अष्टभक्तं ततः कृत्वा त्यक्त्वा भागत्रयं बुधः । लम्बयेत् सप्त रेखास्तु पार्श्वयोरुभयोः समाः ॥ ३८ ॥
तावत् प्रलम्बयेद् विद्वान् यावद्भागचतुष्टयम् । भ्राम्यते पञ्चभागोर्ध्वं कारयेत् संगमं ततः ॥ ३९ ॥
रेखयोः संगमे तद्वत् पृष्ठे भागद्वयं भवेत् । एवमेतत्समाख्यातं समासाल्लक्षणं मया ॥ ४० ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रतिष्ठानुकीर्तनं नाम चतुःषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६४ ॥

अब मैं संक्षेपमें नेत्रों तथा अन्य चिह्नोंके उद्धारका प्रकार बता रहा हूँ । पहले देवताके चारों ओर पीली सरसों, घृत और खीरद्वारा बलि प्रदान करे । फिर श्वेत पुष्पोंसे अलंकृतकर घृत और गुग्गुलसे धूप करनेके बाद ब्राह्मणोंकी पूजा करे और उन्हें अपनी शक्तिके अनुकूल दक्षिणा दे । स्थापना करानेवाले ब्राह्मणको गौ, पृथ्वी तथा सुवर्णकी दक्षिणा देनी चाहिये । फिर ब्राह्मण भक्तिपूर्वक इस मन्त्रद्वारा देवप्रतिमामें नेत्र (ज्योति) की स्थापना करे अथवा करवाये । मन्त्र यों है—

'ॐ नमो भगवते तुभ्यं शिवाय परमात्मने ।
हिरण्यरेतसे विष्णो विश्वरूपाय ते नमः ।'

'विष्णो ! आप शिव, परमात्मा, हिरण्यरेता, विश्वरूप और ऐश्वर्यशाली हैं, आपको बारंबार नमस्कार है ।' यह मन्त्र सभी देवताओंकी प्रतिमाके नेत्रज्योति-संस्कारमें उपयोगी माना गया है । इस प्रकार देवेशको आमन्त्रित कर सुवर्णकी शलाकाद्वारा उन्हें चिह्नित करे । तदुपरान्त विद्वान् पुरुष अपनी समृद्धि तथा अमङ्गलका विनाश करनेके लिये माङ्गलिक वाद्य, गीत और ब्राह्मणोंकी वेदध्वनियोंका समारोह करे । अब मैं स्वस्थ-चित्त होकर लिङ्गके लक्षणोद्धारणका प्रकार बता रहा हूँ । लिङ्गके तीन भाग करना चाहिये । उसमें विभाजक लक्षण होता है । आठ जौका अन्तर रखते हुए तीन रेखा चिह्नित करनी चाहिये, वे न तो मोटी हों, न सूक्ष्म हों, न टेढ़ी हों और न उनमें छिद्र हो । ज्येष्ठ लिङ्गमें जौके प्रमाणकी निम्न रेखा अंकित करनी चाहिये । उसके ऊपर उससे सूक्ष्म रेखा बनाये और मध्यम लिङ्गमें स्थापित करे । फिर बुद्धिमान् पुरुष आठ भाग करके तीन भागोंको छोड़ दे और दोनों पार्श्वोंमें समान अन्तर रखते हुए सात लम्बी रेखाएँ चिह्नित करे । विद्वान् पुरुष चार भागोंतक रेखाएँ चिह्नित करे, पाँचवें भागके ऊपर रेखा घुमानी चाहिये और तदनन्तर मिला देनी चाहिये । यहीं पृष्ठभागमें रेखाओंका संगम होगा । इन दो रेखाओंके संगमस्थलपर पृष्ठदेशमें दो भाग हो जायँगे । इस प्रकार मैंने संक्षेपमें यह लक्षणका वर्णन किया है ॥२९–४०॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें प्रतिष्ठानुकीर्तन नामक दो सौ चौंसठवा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २६४ ॥

दो सौ पैंसठवाँ अध्याय

प्रतिमाके अधिवासन आदिकी विधि

सूत उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि मूर्तिपानां तु लक्षणम् । स्थापकस्य समासेन लक्षणं शृणुत द्विजाः ॥ १ ॥
सर्वावयवसम्पूर्णो वेदमन्त्रविशारदः । पुराणवेत्ता तत्त्वज्ञो दम्भलोभविवर्जितः ॥ २ ॥
कृष्णसारमये देशे उत्पन्नश्च शुभाकृतिः । शौचाचारपरो नित्यं पाषण्डकुलनिःस्पृहः ॥ ३ ॥
समः शत्रौ च मित्रे च ब्रह्मोपेन्द्रहरप्रियः । ऊहापोहार्थतत्त्वज्ञो वास्तुशास्त्रस्य पारगः ॥ ४ ॥
आचार्यस्तु भवेन्नित्यं सर्वदोषविवर्जितः । मूर्तिपास्तु द्विजाश्चैव कुलीना ऋजवस्तथा ॥ ५ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

द्वात्रिंशत्षोडशाथापि अष्टौ वा श्रुतिपारगः। ज्येष्ठमध्यकनिष्ठेषु मूर्तिपा वः प्रकीर्तिताः ॥ ६ ॥
ततो लिङ्गमथार्चां वा नीत्वा स्नपनमण्डपम्। गीतमङ्गलशब्देन स्नपनं तत्र कारयेत् ॥ ७ ॥
पञ्चगव्यकषायेण मृद्भिर्भस्मोदकेन वा। शौचं तत्र प्रकुर्वीत वेदमन्त्रचतुष्टयात् ॥ ८ ॥
समुद्रज्येष्ठमन्त्रेण आपोदिव्येति चापरः। यासां राजेति मन्त्रस्तु आपोहिष्ठेति चापरः ॥ ९ ॥
एवं स्नाप्य ततो देवं पूज्य गन्धानुलेपनैः। प्रच्छाद्य वस्त्रयुग्मेन अभिवस्त्रेत्युदाहृतम् ॥ १० ॥

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो ! अब मैं संक्षेपमें मूर्तियोंकी रक्षा-पूजा करनेवाले पुजारी तथा प्रतिष्ठा करानेवाले ब्राह्मणोंका लक्षण बतला रहा हूँ, सुनिये। जो सम्पूर्ण शारीरिक अङ्ग-प्रत्यङ्गोंसे सम्पन्न, वेदमन्त्र-विशारद, पुराणोंका मर्मज्ञ, तत्त्वदर्शी, दम्भ एवं लोभसे रहित, कृष्णसारमृगसे युक्त देशमें उत्पन्न, सुन्दर आकृतिवाला, नित्य शौच एवं आचारमें तत्पर, पाखण्डसमूहसे दूर, मित्र और शत्रुमें सम, ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकरका प्रिय, ऊहापोहके अर्थका तत्त्वज्ञ, वास्तुशास्त्रका पारंगत विद्वान् तथा सभी दोषोंसे रहित हो, ऐसा व्यक्ति आचार्य होने योग्य है। इसी प्रकार मूर्तिकी रक्षा करनेवाले ब्राह्मणोंका भी सत्कुलोत्पन्न तथा मृदु स्वभावका होना चाहिये। ज्येष्ठ, मध्य और कनिष्ठमूर्तियोंकी प्रतिष्ठामें क्रमशः बत्तीस, सोलह और आठ वेदपारगामी ब्राह्मण मूर्तिरक्षक ऋत्विज बतलाये गये हैं। तदनन्तर लिङ्ग अथवा मूर्तिको गीत तथा माङ्गलिक शब्दपूर्वक मण्डपके स्नानकक्षमें लाकर स्नान कराना चाहिये। (स्नानकी विधि यह है—) वहाँ पञ्चगव्य, कषाय, मृत्तिका, भस्म, जल—इन सामग्रियोंद्वारा चार वेद-मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए प्रतिमाका मार्जन करना चाहिये। वे चारों मन्त्र इस प्रकार हैं—**'समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य०'**, (ऋक् सं० ७। ४९। १) **'आपो दिव्याः०'**, (ऋक् सं० ७। ४९। २) **यासां राजा०'** (वही १। ३) तथा **'आपो हि ष्ठाः०'** (वाजस० सं० ११। ५०)। इस प्रकार देवताकी प्रतिमाको स्नान कराकर **'गन्धद्वारा'** इस मन्त्रसे सुगन्धित द्रव्य-चन्दनादिसे पूजा करे और दो वस्त्रोंसे ढँककर शयन करावे। यह 'अभिवस्त्र' की विधि है ॥ १—१० ॥

उत्थापयेत्ततो देवमुत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते। आमूरजेति च तथा रथे तिष्ठेति चापरः ॥ ११ ॥
रथे ब्रह्मरथे वापि धृतां शिल्पिगणेन तु। आरोप्य च ततो विद्वानाकृष्णेन प्रवेशयेत् ॥ १२ ॥
ततः प्रास्तीर्य शय्यायां स्थापयेच्छनकैर्बुधः। कुशानास्तीर्य पुष्पाणि स्थापयेत्प्राङ्मुखं ततः ॥ १३ ॥
ततस्तु निद्राकलशं वस्त्रकाञ्चनसंयुतम्। शिरोभागे तु देवस्य जपन्नेवं निधापयेत् ॥ १४ ॥
आपोदेवीति मन्त्रेण आपोऽस्मान् मातरोऽपि च। ततो दुकूलपट्टैश्चाच्छाद्य नेत्रोपधानकम् ॥ १५ ॥
दद्याच्छिरसि देवस्य कौशेयं वा विचक्षणः। मधुना सर्पिषाभ्यज्य पूज्य सिद्धार्थकैस्ततः ॥ १६ ॥
आप्यायस्वेति मन्त्रेण या ते रुद्र शिवेति च। उपविश्यार्चयेद् देवं गन्धपुष्पैः समन्ततः ॥ १७ ॥
सितं प्रतिसरं दद्याद् बार्हस्पत्येति मन्त्रतः। दुकूलपट्टैः कार्पासैर्नानाचित्रैरथापि वा ॥ १८ ॥
आच्छाद्य देवं सर्वत्र छत्रचामरदर्पणम्। पार्श्वतः स्थापयेत्तत्र वितानं पुष्पसंयुतम् ॥ १९ ॥
रत्नान्योषधयस्तत्र गृहोपकरणानि च। भाजनानि विचित्राणि शयनान्यासनानि च ॥ २० ॥
अभि त्वा शूरमन्त्रेण यथा विभवतो न्यसेत्। क्षीरं क्षौद्रं घृतं तद्वद् भक्ष्यभोज्यान्नपायसैः ॥ २१ ॥
षड्विधैश्च रसैस्तद्वत् समन्तात्परिपूजयेत्। बलिं दद्यात् प्रयत्नेन मन्त्रेणानेन भूरिशः ॥ २२ ॥
त्र्यम्बकं यजामह इति सर्वतः शनकैर्भुवि।

तदनन्तर विद्वान् पुरुष—**'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते०'** **'आमूरजा०'** (वाजस० सं०) **'रथे तिष्ठ०'**—इन दो इस मन्त्रका उच्चारण कर प्रतिमाको उठाये और मन्त्रसे रथपर या ब्रह्मरथपर शिल्पियोंद्वारा रखवाकर ले

Sri Vidya Bharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

आवे और 'आकृष्णेन०' (वाजस० सं० ३३।४५) मन्त्रद्वारा मूर्तिको मन्दिरमें प्रवेश कराये तथा शय्यापर कुश तथा पुष्पोंको बिछाकर बुद्धिमान् पुरुष उसे पूर्वाभिमुख कर धीरेसे स्थापित करे। तदनन्तर वस्त्र और सुवर्णसहित निद्राकलशको देवताके सिरहानेकी ओर—'आपो देवी०' (वही १२।३५) 'आपोऽस्मान् मातरः०'—(वाज० सं० ४।२) इन मन्त्रोंको जपते हुए स्थापित कराना चाहिये। तत्पश्चात् रेशमी वस्त्रद्वारा नेत्रोंको ढककर तकिया दे अथवा रेशमी वस्त्रको प्रतिमाके सिरके नीचे रख दे। फिर बैठकर मधु और घृतद्वारा स्नान कराकर तथा पीली सरसोंसे पूजाकर 'आप्यायस्व०' (वाजस० १२।११२) तथा 'या ते रुद्र शिवा तनू०'(वाजस० सं० १६।२।४९)इन मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक चारों ओरसे चन्दन तथा पुष्पादिसे देवताकी पूजा करे। फिर 'बार्हस्पत्य०' (वही १७।३६) मन्त्रद्वारा श्वेत वर्णके सूतका बना हुआ कंगन अर्पित करे। तदनन्तर अनेक प्रकारके चित्र-विचित्र रेशमी अथवा सूती वस्त्रोंद्वारा प्रतिमाको भलीभाँति ढककर अगल-बगलमें छत्र, चामर, दर्पण आदि सामग्रियाँ रखे और पुष्पयुक्त चँदोवा स्थापित करे। वहीं विविध प्रकारसे रत्न, औषध, अन्य घरेलू वस्तुएँ, विचित्र प्रकारके पात्र, शय्या, आसन आदि सामग्रियाँ अपनी आर्थिक शक्तिके अनुरूप 'अभि त्वा शूर०' इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए रखे। फिर दूध, मधु, घृत, छहों प्रकारके रसों (खट्टा, मीठा, तीता, कड़वा, नमकीन, तथा कसैला)से संयुक्त भक्ष्य एवं भोज्य अन्न और खीरको भी चारों ओर रखकर पूजा करनी चाहिये। फिर 'त्र्यम्बकंयजामहे०' (वाजस० सं० ३।६०)—इस मन्त्रसे प्रचुर परिमाणमें प्रयत्नपूर्वक भूतलपर सब ओर घीसे बलि देनी चाहिये॥ ११—२२½॥

मूर्तिपान् स्थापयेत् पश्चात् सर्वदिक्षु विचक्षणः॥ २३॥
चतुरो द्वारपालांश्च द्वारेषु विनिवेशयेत्। श्रीसूक्तं पावमानं च सोमसूक्तं सुमङ्गलम्॥ २४॥
तथा च शान्तिकाध्यायमिन्द्रसूक्तं तथैव च। रक्षोघ्नं च तथा सूक्तं पूर्वतो बह्वृचो जपेत्॥ २५॥
रौद्रं पुरुषसूक्तं च श्लोकाध्यायं सशुक्रियम्। तथैव मण्डलाध्यायमध्वर्युर्दक्षिणे जपेत्॥ २६॥
वामदेव्यं बृहत्साम ज्येष्ठसाम रथन्तरम्। तथा पुरुषसूक्तं च रुद्रसूक्तं सशान्तिकम्॥ २७॥
भारुण्डानि च सामानि च्छन्दोगः पश्चिमे जपेत्। अथर्वाङ्गिरसं तद्वन्नीलं रौद्रं तथैव च॥ २८॥
तथापराजितादेवीसप्तसूक्तं सरौद्रकम्। तथैव शान्तिकाध्यायमथर्वा चोत्तरे जपेत्॥ २९॥
शिरःस्थाने तु देवस्य स्थापको होममाचरेत्। शान्तिकैः पौष्टिकैस्तद्वन्मन्त्रैर्व्याहृतिपूर्वकैः॥ ३०॥
पलाशोदुम्बराश्वत्था अपामार्गः शमी तथा। हुत्वा सहस्रमेकैकं देवं पादे तु संस्पृशेत्॥ ३१॥
ततो होमसहस्रेण हुत्वा हुत्वा ततस्ततः। नाभिमध्यं तथा वक्षः शिरश्चाप्यालभेत् पुनः॥ ३२॥

तदनन्तर विद्वान् पुरुष सभी दिशाओंमें मूर्ति-रक्षकोंको नियुक्त करे तथा चारों द्वारोंपर चार द्वारपालों-को बैठा दे। फिर पूर्व दिशामें बैठकर बह्वृच नामक ऋत्विज्को श्रीसूक्त पावमान, सुमङ्गलकारी सोमसूक्त, शान्तिकाध्याय, इन्द्रसूक्त तथा रक्षोघ्नसूक्त—इन ऋचाओं-का जप करना चाहिये। इसी प्रकार दक्षिण दिशामें बैठकर अध्वर्यु नामक ऋत्विज्को रौद्रसूक्त, पुरुषसूक्त, शुक्रियसहित श्लोकाध्याय तथा मण्डलाध्याय-का जप करना चाहिये। सामग नामक उद्गाता ऋत्विज् को पश्चिम-दिशामें बैठकर वामदेव्य, बृहत्साम, ज्येष्ठसाम, रथन्तर, पुरुषसूक्त, शान्तिसहित रुद्रसूक्त तथा भारुण्ड सामका जप करना चाहिये। इसी प्रकार अथर्वा नामक ऋत्विज्को उत्तर दिशामें बैठकर अथर्वाङ्गिरस, नीलसूक्त, रौद्रसूक्तसहित अपराजिता तथा देवीसूक्तके सात मन्त्र और शान्तिकाध्याय (वा० ३७)का जप करना चाहिये। देवप्रतिमाके सिरहानेकी ओर स्थापकको व्याहृतिपूर्वक शान्तिक तथा पौष्टिक मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए हवन करना चाहिये। उस समय पलाश,

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

गूलर, पीपल, अपामार्ग (चिड़चिड़ा), शमी—इन सबकी एक-एक हजार लकड़ियोंकी अग्निकुण्डमें मन्त्रद्वारा आहुति देते हुए देवताके पैरको स्पर्श किये रहना चाहिये। इसी प्रकार नाभि, वक्षःस्थल और शिरोभागको स्पर्श किये हुए प्रत्येक बार एक-एक सहस्र आहुति प्रदान करनी चाहिये ॥ २३–३२ ॥

हस्तमात्रेषु कुण्डेषु मूर्तिपाः सर्वतोदिशम्। समेखलेषु ते कुर्युर्योनिवक्त्रेषु चादरात् ॥ ३३ ॥
वितस्तिमात्रा योनिः स्याद् गजोष्ठसदृशी तथा। आयता छिद्रसंयुक्ता पार्श्वतः कलयोच्छ्रिता ॥ ३४ ॥
कुण्डात् कलानुसारेण सर्वतश्चतुरङ्गुला। विस्तारेणोच्छ्रया तद्वच्चतुरस्रा समा भवेत् ॥ ३५ ॥
वेदीभित्तिं परित्यज्य त्रयोदशभिरङ्गुलैः। एवं नवसु कुण्डेषु लक्षणं चैव दृश्यते ॥ ३६ ॥
आग्नेयशाक्रयाम्येषु होतव्यमुदगाननैः। शान्तये लोकपालेभ्यो मूर्तिभ्यः क्रमशस्तथा ॥ ३७ ॥
तथा मूर्त्यधिदेवानां होमं कुर्यात् समाहितः। वसुधा वसुरेताश्च यजमानो दिवाकरः ॥ ३८ ॥
जलं वायुस्तथा सोम आकाशश्चाष्टमः स्मृतः। देवस्य मूर्तयस्त्वष्टावेताः कुण्डेषु संस्मरेत् ॥ ३९ ॥
एतासामधिपान् वक्ष्ये पवित्रान् मूर्तिनामतः। पृथ्वीं पाति च शर्वश्च पशुपश्चाग्निमेव च ॥ ४० ॥
यजमानं तथैवोग्रो रुद्रश्चादित्यमेव च। भवो जलं सदा पाति वायुमीशान एव च ॥ ४१ ॥
महादेवस्तथा चन्द्रं भीमश्चाकाशमेव च। सर्वदेवप्रतिष्ठासु मूर्त्तिपा हृयेत एव च ॥ ४२ ॥
एतेभ्यो वैदिकैर्मन्त्रैर्यथास्वं होममाचरेत्।

इस प्रकार एक हाथके बने हुए मेखला एवं योनि-युक्त कुण्डमें सभी दिशाओंमें बैठे हुए मूर्तिस्थापकगण आदरपूर्वक हवन करें। कुण्डकी योनि एक बित्ता लम्बी, हाथीके ओठ या पीपलके पत्तेके समान आकारवाली होनी चाहिये। वह आयताकार, छिद्रयुक्त, कुण्डकी कलाके अनुसार दोनों बगल ऊँची, चौकोर और समतल होनी चाहिये। वेदीकी दीवालसे तेरह अंगुल दूर हटकर दूसरे अन्य नौ कुण्डोंको बनाना चाहिये। उनका भी लक्षण पूर्वोक्त प्रकारका समझना चाहिये।* होताओंको अग्निकोण, पूर्व दिशा तथा दक्षिण दिशामें उत्तरकी ओर मुखकर हवन करना चाहिये। शान्तिके लिये होता सावधान-चित्त हो लोकपालों, मूर्तियों तथा मूर्तियोंके अधिदेवताके लिये क्रमसे हवन करे। भूमि, अग्नि, यजमान, दिवाकर (सूर्य), जल, वायु, सोम तथा आठवाँ आकाश—ये आठ भगवान् शंकर (महादेव)की मूर्तियाँ हैं, हवनके समय इनका कुण्डमें स्मरण करना चाहिये। अब मैं मूर्तिके नामानुसार इनके रक्षक अधिपतियोंका वर्णन कर रहा हूँ। इनमें शर्व वसुधाकी, पशुपति वसुरेता (अग्नि)की, उग्र यजमानकी, रुद्र दिवाकरकी, भव जलकी, ईशान वायुकी, महादेव सोमकी और भीम आकाशकी मूर्तिरूपमें उनकी रक्षा करते हैं। सभी देवताओंकी प्रतिष्ठामें ये ही मूर्तिप माने गये हैं। इनके लिये अपनी सम्पत्तिके अनुकूल वैदिक मन्त्रोंद्वारा हवन करना चाहिये ॥ ३३–४२½ ॥

तथा शान्तिघटं कुर्यात् प्रतिकुण्डेषु सर्वदा ॥ ४३ ॥
शतान्ते वा सहस्रान्ते सम्पूर्णाहुतिरिष्यते। समपादः पृथिव्यां तु प्रशान्तात्मा विनिक्षिपेत् ॥ ४४ ॥
आहुतीनां तु सम्पातं पूर्णकुम्भेषु वै न्यसेत्। मूलमध्योत्तमाङ्गेषु देवं तेनावसेचयेत् ॥ ४५ ॥
स्थितं च स्नापयेत् तेन सम्पाताहुतिवारिणा। प्रतियामेषु धूपं तु नैवेद्य चन्दनादिकम् ॥ ४६ ॥
पुनः पुनः प्रकुर्वीत होमः कार्यः पुनः पुनः। पुनः पुनश्च दातव्या यजमानेन दक्षिणा ॥ ४७ ॥
सितवस्त्रैश्च वै सर्वे पूजनीयाः समन्ततः। विचित्रैर्हेमकटकैर्हेमसूत्राङ्गुलीयकैः ॥ ४८ ॥

* मण्डप, कुण्ड, मेखला, योनि, वेदी आदिके निर्माणकी विस्तृत विधि कुण्डोद्योत, कुण्डमण्डपसिद्धि, आह्व... पुरश्चरण-पद्धतिमें विस्तारसे तथा इस [illegible] निर्दिष्ट है।

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

*

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

वासोभिः शयनीयैश्च प्रतियामे च शक्तितः । भोजनं चापि दातव्यं यावत् स्यादधिवासनम् ॥ ४९ ॥
बलिस्त्रिसंध्यं दातव्यो भूतेभ्यः सर्वतोदिशम् । ब्राह्मणान् भोजयेत् पूर्वं शेषान् वर्णांस्तु कामतः ॥ ५० ॥
रात्रौ महोत्सवः कार्यो नृत्यगीतकमङ्गलैः । सदा पूज्याः प्रयत्नेन चतुर्थीकमयावता ॥ ५१ ॥
त्रिरात्रमेकरात्रं वा पञ्चरात्रमथापि वा ।
सप्तरात्रमथो कुर्यात् क्वचित् सद्योऽधिवासनम् । सर्वयज्ञफलो यस्मादधिवासोत्सवः सदा ॥ ५२ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽधिवासनविधिर्नाम पञ्चषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६५ ॥

प्रत्येक कुण्डपर सदा शान्तिघटकी स्थापना करनी चाहिये । सौ या सहस्र आहुतिके बाद सम्पूर्णाहुति मानी गयी है । उस समय पृथ्वीपर समानभावसे पैर रखे हुए होता शान्तचित्तसे सम्पूर्णाहुति छोड़ें । इन सभी आहुतियोंके सम्पातको पूर्ण कलशोंमें रखें । फिर उसीके जलसे प्रतिमाके पैर, मध्य एवं सिरका सेचन करे और उसी आहुतिके जलद्वारा वहाँके कल्पित देवतागणोंको स्नान कराये । प्रत्येक प्रहरमें पुनः-पुनः धूप, दीप, नैवेद्य, चन्दन आदि द्वारा पूजा करे तथा उसी प्रकार हवन भी बारंबार करना चाहिये । इसी प्रकार यजमानद्वारा पुनः-पुनः दक्षिणा भी प्रदान करनी चाहिये और उन सबको श्वेत वस्त्रद्वारा पूजा करनी चाहिये । प्रत्येक प्रहरमें यथाशक्ति अधिवासन-पर्यन्त विचित्र प्रकारके बने हुए सुवर्णके कङ्कण, सुवर्णकी जंजीर, अंगूठी, वस्त्र, शय्या और भोजन भी देना चाहिये । सामान्य जीवोंके लिये भी सभी दिशाओंमें तीनों संध्याओंके समय बलि भी देनी चाहिये । पहले ब्राह्मणोंको भोजन कराये, फिर अन्य वर्णवालोंको स्वेच्छानुसार भोजन कराना चाहिये । रातमें नाच-गान आदि मङ्गल-कार्योंद्वारा महोत्सव मनाना चाहिये । इस प्रकार चतुर्थीकर्मपर्यन्त सदा प्रयत्नपूर्वक पूजा करते रहना चाहिये । यह अधिवासन तीन रात, एक रात, पाँच रात या सात रातोंतक होता है । पर जहाँ अत्यन्त शीघ्रता हो, वहाँ तुरंत भी कर दिया जाता है । यह अधिवासोत्सव सर्वदा सम्पूर्ण यज्ञोंके फलोंको प्रदान करनेवाला है ॥ ४३—५२ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अधिवासनविधि नामक दो सौ पैंसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २६५ ॥

दो सौ छाछठवाँ अध्याय

प्रतिमा-प्रतिष्ठाकी विधि

सूत उवाच

कृत्वाधिवासं देवानां शुभं कुर्यात् समाहितः । प्रासादस्यानुरूपेण मानं लिङ्गस्य वा पुनः ॥ १ ॥
पुष्पोदकेन प्रासादं प्रोक्ष्य मन्त्रयुतेन तु । पातयेत् पक्षसूत्रं तु द्वारसूत्रं तथैव च ॥ २ ॥
आश्रयेत् किंचिदीशानीं मध्यं ज्ञात्वा दिशं बुधः । ईशानीमाश्रितं देवं पूजयन्ति दिवौकसः ॥ ३ ॥
आयुरारोग्यफलदमथोत्तरसमाश्रितम् । शुभं स्यादशुभ प्रोक्तमन्यथा स्थापनं बुधैः ॥ ४ ॥
अधः कूर्मशिला प्रोक्ता सदा ब्रह्मशिलाधिका । उपर्यवस्थिता तस्या ब्रह्मभागाधिका शिला ॥ ५ ॥
ततस्तु पिण्डिका कार्या पूर्वोक्तैर्मानलक्षणैः । ततः प्रक्षालितां कृत्वा पञ्चगव्येन पिण्डिकाम् ॥ ६ ॥
कषायतोयेन पुनर्मन्त्रयुक्तेन सर्वतः । देवतार्चाश्रय मन्त्रं पिण्डिकासु नियोजयेत् ॥ ७ ॥
तत उत्थाप्य देवेशमुत्तिष्ठ ब्रह्मणेति च । आनीय गर्भभवनं पीठान्ते स्थापयेत् पुनः ॥ ८ ॥
अर्घ्यपाद्यादिकं तत्र मधुपर्क प्रयोजयेत् । ततो मुहूर्त विश्रम्य रत्नन्यासं समाचरेत् ॥ ९ ॥
वज्रमौक्तिकवैदूर्यशङ्खस्फटिकमेव च । पुष्परागेन्द्रनीलं च नीलं पूर्वादिदिक्क्रमात् ॥ १० ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! इस प्रकार उपर्युक्त विधिसे देवताओंकी प्रतिमाका शुभ अधिवासन करना चाहिये। यजमानको एकाग्रचित्तसे प्रासादके अनुरूप लिङ्ग (प्रतिमा)का या लिङ्गके अनुरूप प्रासादका मान रखना चाहिये। लिङ्गस्थापनके पूर्व पुष्पमिश्रित जलसे मन्दिरको धोकर मन्त्रोच्चारण करते हुए पक्षसूत्र तथा द्वारसूत्रको* गिराकर नापना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुषको देवमण्डपकी मध्यभूमिका निश्चय कर कुछ ईशानकोणकी ओर बढ़ना चाहिये; क्योंकि देवतागण ईशानकी दिशामें अवस्थित भगवान् शंकरकी पूजा करते हैं। उत्तर दिशामें अधिष्ठित देवता आयु तथा आरोग्यरूपी फल देनेवाले और कल्याणकारी कहे गये हैं। बुद्धिमानोंने इनके अतिरिक्त अन्य दिशाओंमें स्थापनाको अशुभकारी बताया है। लिङ्गके नीचे कूर्म-शिलाकी स्थापना करनी चाहिये। यह ब्रह्मशिलाकी अपेक्षा बड़ी तथा भारी होती है। उसके ऊपर ब्रह्मभागसे बड़ी ब्रह्मशिला स्थापित होती है। उसके ऊपर पूर्वोक्त परिमाणोंके अनुसार पिण्डिकाकी स्थापना करनी चाहिये। तत्पश्चात् पञ्चगव्यद्वारा पिण्डिकाको धोकर पुनः पञ्चकषाय†के जलसे मन्त्रोच्चारणपूर्वक प्रक्षालन करे। पिण्डिकाओंमें भी देव-प्रतिमा-सम्बन्धी मन्त्रका प्रयोग करना चाहिये। तदुपरान्त 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते०' (वाजसने० ३४ । ५६) इस मन्त्रसे देव-प्रतिमाको उठाकर मण्डपके मध्यमें लाकर पुनः पीठिकापर स्थापित करे। वहाँ अर्घ्य, पाद्य और मधुपर्क आदि समर्पित करे। फिर एक मुहूर्ततक विश्रामकर वहाँ रत्नोंकी स्थापना करनी चाहिये। हीरा, मोती, विल्लौर, शङ्ख, स्फटिक, पुखराज, नीलम और महानील—इन रत्नोंको पूर्व दिशाके क्रमसे स्थापित करना चाहिये ॥ १-१० ॥

तालकं च शिलावज्रमञ्जनं श्याममेव च। काञ्ची काशी समाक्षीक गैरिकं चादितः क्रमात् ॥ ११ ॥
गोधूमं च यवं तद्वत् तिलमुद्‌गं तथैव च। नीवारमथ श्यामाकं सर्षपं व्रीहिमेव च ॥ १२ ॥
न्यस्य क्रमेण पूर्वादि चन्दनं रक्तचन्दनम्। अगरुं चाञ्जनं चापि उशीरं च ततः परम् ॥ १३ ॥
वैष्णवीं सहदेवीं च लक्ष्मणां च ततः परम्। स्वलौकपालनाम्ना तु न्यसेदोंकारपूर्वकम् ॥ १४ ॥
सर्वबीजानि धातूंश्च रत्नान्योषधयस्तथा। काञ्चनं पद्मरागं तु पारदं पद्ममेव च ॥ १५ ॥
कूर्मं धरां वृषं तत्र न्यसेत् पूर्वादितः क्रमात्। ब्रह्मस्थाने तु दातव्याः संहताः स्युः परस्परम् ॥ १६ ॥
कनकं विद्रुमं ताम्रं कांस्यं वैवारकूटकम्। रजतं विमलं पुष्पं लोहं चैव क्रमेण तु ॥ १७ ॥
काञ्चनं हरितालं च सर्वाभावेऽपि निक्षिपेत्। दद्याद् बीजौषधिस्थाने सहदेवीं यवानपि ॥ १८ ॥
न्यासमन्त्रानतो वक्ष्ये लोकपालात्मकानिह। इन्द्रस्तु सहसा दीप्तः सर्वदेवाधिपो महान् ॥ १९ ॥
वज्रहस्तो महासत्त्वस्तस्मै नित्यं नमो नमः। आग्नेयः पुरुषो रक्तः सर्वदेवमयः शिखी ॥ २० ॥
धूमकेतुरनाधृष्यस्तस्मै नित्यं नमो नमः। यमश्चोत्पलवर्णाभः किरीटी दण्डधृक् सदा ॥ २१ ॥
धर्मसाक्षी विशुद्धात्मा तस्मै नित्यं नमो नमः।

फिर हरताल, शिलाजीत, अंजन, श्याम, कांजी, काशी, मधु और गेरू—इन सबको क्रमसे पूर्वादि दिशाओंमें रखना चाहिये। गेहूँ, जौ, तिल, मूँग, तीनी, साँवाँ, सरसों और चावल—इन सबको भी पूर्वादि दिशाके क्रमसे रखकर श्वेत चन्दन, लाल चन्दन, अगुरु, अंजन, उशीर (खश), विष्णुक्रान्ता, सहदेई, तथा लक्ष्मणा (श्वेत कटहली)—इन्हें भी पूर्वादि दिशाओंमें क्रमशः उन-उन लोकपालोंके नामसे ओंकारपूर्वक स्थापित करना चाहिये। फिर सभी प्रकारके बीज, धातुएँ, रत्न, ओषधियाँ, सुवर्ण, पद्मराग, पारद, पद्म, कूर्म, पृथ्वी

* कारीगरका सूत्र। † जामुन, सेमल, बकुल, बेर और [illegible] फलोंका क्वाथ पञ्चकषाय कहलाता है। (सुश्रुतसंहि न०, ओ० वि०)

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

तथा वृषभ—इन्हें भी पूर्वादि दिशाओंके क्रमसे स्थापित करना चाहिये। ब्रह्माके स्थानपर सभी वस्तुओंको परस्पर एकत्र करके रखना चाहिये। सुवर्ण, मूँगा, ताँबा, काँसा, पीतल, चाँदी, निर्मल पुष्प और लौह—इन सबको भी क्रमसे रखना चाहिये। इन सभी वस्तुओंके अभावमें सुवर्ण और हरितालको भी रखा जा सकता है। बीज और ओषधिके स्थानपर सहदेवी और जौ रखा जा सकता है। अब मैं न्यास करनेके लिये प्रत्येक लोकपालके क्रमसे मन्त्रोंको बतला रहा हूँ। पूर्व दिशाके स्वामी महान् दीप्तिशाली, सभी देवताओंके अधिपति वज्रधारी महापराक्रमी इन्द्र हैं, उन्हें नित्य बारंबार नमस्कार है। अग्निकोणमें स्थित पुरुष अग्निदेव लाल वर्णवाले, सर्वदेवमय, धूमकेतु और दुर्जय हैं, उन्हें नित्य बारंबार प्रणाम है। दक्षिण दिशाके स्वामी यमराजका वर्ण कमलके समान है। वे सिरपर किरीट तथा हाथमें सदा दण्ड धारण करनेवाले, धर्मके साक्षी और विशुद्धात्मा हैं, उन्हें नित्य बारंबार अभिवादन है ॥ ११–२१½ ॥

निर्ऋतिस्तु पुमान् कृष्णः सर्वरक्षोऽधिपो महान् ॥ २२ ॥
खड्गहस्तो महासत्त्वस्तस्मै नित्यं नमो नमः । वरुणो धवलो जिष्णुः पुरुषो निम्नगाधिपः ॥ २३ ॥
पाशहस्तो महाबाहुस्तस्मै नित्यं नमो नमः । वायुश्च सर्ववर्णो वै सर्वगन्धवहः शुभः ॥ २४ ॥
पुरुषो ध्वजहस्तश्च तस्मै नित्यं नमो नमः । गौरो यश्च पुमान् सौम्यः सर्वौषधिसमन्वितः ॥ २५ ॥
नक्षत्राधिपतिः सोमस्तस्मै नित्यं नमो नमः । ईशानपुरुषः शुक्लः सर्वविद्याधिपो महान् ॥ २६ ॥
शूलहस्तो विरूपाक्षस्तस्मै नित्यं नमो नमः । पद्मयोनिश्चतुर्मूर्तिर्वेदवासाः पितामहः ॥ २७ ॥
यज्ञाध्यक्षश्चतुर्वक्त्रस्तस्मै नित्यं नमो नमः । योऽसावनन्तरूपेण ब्रह्माण्डं सचराचरम् ॥ २८ ॥
पुष्पवद् धारयेन्मूर्ध्नि तस्मै नित्यं नमो नमः । ओङ्कारपूर्वका ह्येते न्यासे बलिनिवेदने ॥ २९ ॥
मन्त्राः स्युः सर्वकार्याणां वृद्धिपुत्रफलप्रदाः । न्यासं कृत्वा तु मन्त्राणां पायसेनानुलेपितम् ॥ ३० ॥
पटेनाच्छादयेच्छ्वभ्रं शुक्लेनोपरि यत्नतः । तत उत्थाप्य देवेशमिष्टदेशे तु शोभने ॥ ३१ ॥
ध्रुवा द्यौरिति मन्त्रेण श्वभ्रोपरि निवेशयेत् । ततः स्थिरीकृतस्यास्य हस्तं दत्त्वा तु मस्तके ॥ ३२ ॥
ध्यात्वा परमसद्भावाद् देवदेवं च निष्कलम् । देवव्रतं तथा सोमं रुद्रसूक्तं तथैव च ॥ ३३ ॥
आत्मानमीश्वरं कृत्वा नानाभरणभूषितम् । यस्य देवस्य यद्रूपं तद्ध्याने संस्मरेत् तथा ॥ ३४ ॥

नैर्ऋत्यकोणके स्वामी निर्ऋति (यातुधान) कृष्णवर्णवाले, महान् पुरुष, सम्पूर्ण राक्षसोंके अधिपति, खड्गधारी और महान् पराक्रमी हैं, उन्हें नित्य बारंबार नमस्कार है। पश्चिमके स्वामी वरुणदेव श्वेत वर्णवाले, विजेतास्वरूप, नदियोंके स्वामी, पाशधारी और महाबाहु हैं, उन्हें नित्य बारंबार प्रणाम है। वायव्यकोणके स्वामी वायुदेवता सब प्रकारके वर्णवाले, सभी प्रकारके गन्धको धारण करनेवाले और ध्वजाधारी हैं, उन्हें नित्य बारंबार अभिवादन है। उत्तरके स्वामी सोमदेव गौरवर्णवाले, सौम्य आकृतिसे युक्त, सभी ओषधियोंसे समन्वित तथा नक्षत्रोंके अधिपति हैं, उन्हें नित्य बारंबार नमस्कार है। ईशानकोणके स्वामी ईशान-(महा-)देव शुक्ल वर्णवाले, समस्त विद्याओंके अधिपति, महान् शूलधारी और विरूपाक्ष हैं, उन्हें नित्य बारंबार प्रणाम है। ऊर्ध्व (ऊपरकी) दिशाके स्वामी पद्मयोनि ब्रह्मा, वेदरूपी वस्त्रसे सुशोभित, यज्ञाध्यक्ष, चार मुखवाले, पितामह हैं, उन्हें नित्य बारंबार अभिवादन है। ये जो अनन्तरूपसे निखिल चराचर ब्रह्माण्डको पुष्पकी भाँति अपने मस्तकपर धारण करते हैं, (नीचेकी दिशाके स्वामी) उन शेषको नित्य बारंबार नमस्कार है। इन मन्त्रोंको न्यास करते तथा बलि देते समय ॐकारपूर्वक उच्चारण करना

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

चाहिये । ये सभी कार्योंमें समृद्धि तथा सुखरूपी फल देनेवाले हैं । इस प्रकार मन्त्रोंका न्यास कर घृतसे अनुलिप्त गर्तको श्वेत वस्त्रद्वारा यत्नपूर्वक ऊपरसे आच्छादित कर दे । तदनन्तर देवेशको उठाकर सुन्दर इष्ट देशमें 'ध्रुवा द्यौः०'-(आथर्वण) इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए गर्तपर स्थापित कर दे । फिर उसे स्थिर करके उसके मस्तकपर हाथ रखकर अपनेको नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित परब्रह्मका अंश मानकर परम सद्भावपूर्वक निष्कल देवदेवेश्वरका ध्यान करके सोमसूक्त तथा 'रुद्रसूक्त'का पाठ करे । ध्यानके समय जिस देवताका जैसा स्वरूप हो, वैसा ही उसका स्मरण करना चाहिये ॥ २२-३४ ॥

अतसीपुष्पसंकाशं शङ्खचक्रगदाधरम् । संस्थापयामि देवेशं देवो भूत्वा जनार्दनम् ॥ ३५ ॥
अक्षरं च दशबाहुं च चन्द्रार्धकृतशेखरम् । गणेशं वृषसंस्थं च स्थापयामि त्रिलोचनम् ॥ ३६ ॥
ऋषिभिः संस्तुतं देवं चतुर्वक्त्रं जटाधरम् । पितामहं महाबाहुं स्थापयाम्यम्बुजोद्भवम् ॥ ३७ ॥
सहस्रकिरणं शान्तमप्सरोगणसंयुतम् । पद्महस्तं महाबाहुं स्थापयामि दिवाकरम् ॥ ३८ ॥
देवमन्त्रांस्तथा रौद्रान् रुद्रस्य स्थापने जपेत् । विष्णोस्तु वैष्णवांस्तद्वद् ब्राह्मान् वै ब्रह्मणो बुधः ॥ ३९ ॥
सौराः सूर्यस्य जप्तव्यास्तथान्येषु तदाश्रयाः । वेदमन्त्रप्रतिष्ठा तु यस्मादानन्ददायिनी ॥ ४० ॥
स्थापयेद् यं तु देवेशं तं प्रधानं प्रकल्पयेत् । तस्य पार्श्वस्थितानन्यान् संस्मरेत् परिवारितः ॥ ४१ ॥
गणं नन्दिमहाकालं वृषं भृङ्गिरिटिं गुहम् । देवीं विनायकं चैव विष्णुं ब्रह्माणमेव च ॥ ४२ ॥
रुद्रं शक्रं जयन्तं च लोकपालान् समंततः । तथैवाप्सरसः सर्वा गन्धर्वगणगुह्यकान् ॥ ४३ ॥
यो यत्र स्थाप्यते देवस्तस्य तान् परितः स्मरेत् ।

मैं देवरूप होकर अलसी-पुष्पके समान कान्तिवाले तथा शङ्ख, चक्र और गदाधारी देवेश जनार्दनको स्थापित कर रहा हूँ । इसी प्रकार मैं अविनाशी, दस बाहुओंसे सुशोभित, सिरपर अर्धचन्द्र धारण करनेवाले, गणोंके स्वामी, वृषभारूढ, त्रिनेत्रधारी शिवको स्थापित कर रहा हूँ । मैं ऋषियोंद्वारा संस्तुत, चार मुखवाले, जटाधारी, महाबाहु, कमलोद्भव ब्रह्मदेवकी स्थापना कर रहा हूँ । मैं सहस्र किरणोंसे सुशोभित, शान्त, अप्सरा-समूहसे संयुक्त, पद्महस्त, महाबाहु सूर्यकी स्थापना कर रहा हूँ । बुद्धिमान् पुरुषको रुद्रकी स्थापनामें रौद्र मन्त्रोंका, विष्णुकी स्थापनामें वैष्णव मन्त्रोंका, ब्रह्माकी स्थापनामें ब्राह्म मन्त्रोंका तथा सूर्यकी स्थापनामें सूर्यदेवताके मन्त्रोंका जप करना चाहिये । इसी प्रकार अन्य देवताओंकी स्थापनामें उन्हींके मन्त्रोंका जप करना चाहिये; क्योंकि वेदमन्त्रो-च्चारणपूर्वक की गयी प्रतिष्ठा आनन्ददायिनी होती है । जिन देवताकी प्रतिमा स्थापित की जाती है, उन्हींको प्रधान मानना चाहिये । उनके अगल-बगलमें स्थित अन्य देवताओंको उनके परिकररूपमें समझना चाहिये । गण, नन्दिकेश्वर, महाकाल, वृषभ, भृङ्गिरिटि, स्वामिकार्तिक, देवी, विनायक, विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, जयन्त, लोकपाल, अप्सराओंके समूह, गन्धर्वोंके समूह और गुह्यकोंको शिवके अथवा जो देवता जिस स्थानपर स्थापित किया गया हो, उसके चारों ओर स्थापित करना चाहिये ॥ ३५-४३½ ॥

आवाहयेत् तथा रुद्रं मन्त्रेणानेन यत्नतः ॥ ४४ ॥
यस्य सिंहा रथे युक्ता व्याघ्रभूतास्तथोरगाः । ऋषयो लोकपालाश्च देवः स्कन्दस्तथा वृषः ॥ ४५ ॥
प्रियो गणो मातरश्च सोमो विष्णुः पितामहः । नागा यक्षाः सगन्धर्वा ये च दिव्या नभश्चराः ॥ ४६ ॥
तमहं त्र्यक्षमीशानं शिवं रुद्रमुमापतिम् । आवाहयामि सगणं सपत्नीकं वृषध्वजम् ॥ ४७ ॥
आगच्छ भगवन् रुद्रानुग्रहाय शिवो भव । शाश्वतो भव पूजां मे गृहाण त्वं नमो नमः ॥ ४८ ॥
ओं नमः स्वागतं भगवते नमः, ओं नमः सोमाय सगणाय सपरिवाराय प्रतिगृह्णातु भगवन्मन्त्रपूतमिदं सवमर्घ्यपाद्यमाचमनीयमासनं [illegible] नमो नमः स्वाहा ॥ ४९ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

ततः पुण्याहघोषेण ब्रह्मघोषेण पुष्कलैः। स्नापयेत्तु ततो देवं दधिक्षीरघृतेन च ॥ ५० ॥
मधुशर्करया तद्वत् पुष्पगन्धोदकेन च। शिवध्यानैकचित्तस्तु मन्त्रानेतानुदीरयेत् ॥ ५१ ॥
यज्जाग्रतो दूरमुदेति ततो विराडजायत इति च। सहस्रशीर्षा पुरुष इति च। अभि त्वा शूर नो
नुम इति च। पुरुष एवेदं सर्वं त्रिपादूर्ध्वमिति च। येनेदं भूतमिति नत्वा वाँ अन्य इति ॥ ५२ ॥
सर्वांश्चैतान् प्रतिष्ठासु मन्त्रान् जप्त्वा पुनः पुनः। चतुःकृत्वः स्पृशेदद्भिर्मूले मध्ये शिरस्यपि ॥ ५३ ॥
स्थापिते तु ततो देवे यजमानोऽथ मूर्त्तिपम्। आचार्यं पूजयेद् भक्त्या वस्त्रालङ्कारभूषणैः ॥ ५४ ॥
दीनान्धकृपणांस्तद्वद् ये चान्ये समुपस्थिताः। ततस्तु मधुना देवं प्रथमेऽहनि लेपयेत् ॥ ५५ ॥
हरिद्रयाथ सिद्धार्थैर्द्वितीयेऽहनि तत्त्वतः। चन्दनेन यवैस्तद्वत् तृतीयेऽहनि लेपयेत् ॥ ५६ ॥
मनःशिलाप्रियङ्गुभ्यां चतुर्थेऽहनि लेपयेत्। सौभाग्यशुभदं यस्माल्लेपनं व्याधिनाशनम् ॥ ५७ ॥
परं प्रीतिकरं नृणामेतद् वेदविदो विदुः।

फिर इस निम्नाङ्कित मन्त्रद्वारा यत्नपूर्वक रुद्रका आवाहन करना चाहिये—'जिनके रथमें सिंह, व्याघ्र, नाग, ऋषिगण, लोकपाल-वृन्द, देव, स्कन्द, वृष, प्रिय प्रमथगण, मातृकाएँ, चन्द्रमा, विष्णु, ब्रह्मा, सर्प, यक्ष, गन्धर्व, दिव्य आकाशचारी जीव जुते हुए हैं, उन तीन नेत्रोंवाले, ईशान, वृषध्वज, रुद्र, उमापति शिवको मैं गणों तथा पत्नीसहित आवाहन कर रहा हूँ। भगवन् रुद्र! अनुग्रह करनेके लिये आइये, कल्याणकारी होइये, शाश्वतरूपसे स्थित होइये और मेरी पूजाको ग्रहण कीजिये, आपको बारंबार नमस्कार है। मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ नमः स्वागतं भगवते नमः, ॐ नमः सोमाय सगणाय सपरिवाराय प्रतिगृह्णातु भगवन् मन्त्रपूतमिदं सर्वमर्घ्यपाद्यमाचमनीयमासनं ब्रह्मणाभिहितं नमो नमः स्वाहा।' 'अर्थात्' 'ॐ भगवन्! आपका स्वागत है और आपको बारंबार नमस्कार है। ॐ गण और परिवारसहित सोमको प्रणाम है। भगवन्! आप मन्त्रद्वारा पवित्र किया हुआ तथा ब्रह्माद्वारा अभिनन्दित इस सकल अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय और आसनको ग्रहण कीजिये। आपको बारंबार अभिवादन है। मेरे सभी पाप जल जायँ।' तदनन्तर पुण्याहवाचन एवं प्रचुर वेदध्वनिके साथ मूर्तिको दधि, क्षीर, घृत, मधु और शक्कररसे स्नान कराकर पुनः पुष्प एवं सुगन्धमिश्रित जलसे स्नान कराये। उस समय एकाग्रचित्तसे भगवान् शिवका ध्यान करते हुए इन मन्त्रोंका उच्चारण करना चाहिये। वे मन्त्र इस प्रकार हैं—'यज्जाग्रतो दूरमुदेति०'–, 'ततो विराडजायत०–', 'सहस्रशीर्षा पुरुषः०–', 'अभि त्वा शूर नो नुमः', 'पुरुष एवेदं सर्वम्०–', 'त्रिपादूर्ध्वम्०–', 'येनेदं भूतम्०–', 'नत्वा वाँ अन्य०–' इति। (वाजस० सं० ३१) प्रतिष्ठासम्बन्धी कार्योंमें इन उपर्युक्त सभी मन्त्रोंको बारंबार जप करके चार बार जलसे प्रतिमाके मूल-भाग, मध्यभाग तथा शिरोभागमें स्पर्श करे। इस प्रकार देवके स्थापित हो जानेपर यजमान मूर्तिकी प्रतिष्ठा करानेवाले आचार्यकी वस्त्र, अलंकार एवं आभूषणोंसे भक्तिपूर्वक पूजा करे। इसी प्रकार दीन, अन्धे, कृपण तथा अन्य जो कोई वहाँ उपस्थित हों, उन सबको भी संतुष्ट करना चाहिये। तदनन्तर प्रथम दिन मधुसे प्रतिमाका लेपन करना चाहिये। इसी तरह दूसरे दिन हल्दी तथा सरसोंसे, तीसरे दिन चन्दन और जौसे, चौथे दिन मैनसिल तथा प्रियङ्गु (मेंहदी)से लेप करना चाहिये; क्योंकि यह लेप सौभाग्य और मङ्गलदायक, व्याधिनाशक तथा मनुष्योंके लिये परम प्रीतिकारक है, ऐसा वेदवेत्ताओंने कहा है ॥ ४७–५७½ ॥

कृष्णाञ्जनं तिलं तद्वत् पञ्चमेऽपि निवेदयेत् ॥ ५८ ॥
षष्ठे तु सघृतं दद्याच्चन्दनं पद्मकेसरम्। रोचनागुरुपुष्पं तु सप्तमेऽहनि दापयेत् ॥ ५९ ॥
यत्र सद्योऽधिवासः स्यात् तत्र सर्वं निवेदयेत्। शिलां न चालयेद् देवमन्यथा दोषभाग् भवेत् ॥ ६० ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

पूरयेत् सिकताभिस्तु निश्छिद्रं सर्वतो भवेत् । लोकपालस्य दिग्भागे यस्य संचलते विभुः ॥ ६१ ॥
तस्य लोकपतेः शान्तिर्देयाश्चेमाश्च दक्षिणाः । इन्द्राय वारणं दद्यात् काञ्चनं चाल्पवित्तवान् ॥ ६२ ॥
अग्नेः सुवर्णमेव स्याद् यमस्य महिषं तथा । अजं च काञ्चनं दद्यान्नैर्ऋतं राक्षसं प्रति ॥ ६३ ॥
वरुणं प्रति मुक्तानि सशुक्तीनि प्रदापयेत् । रीतिकं वायवे दद्याद् वस्त्रयुग्मेन साम्प्रतम् ॥ ६४ ॥
सोमाय धेनुर्दातव्या राजतं वृषभं शिवे । यस्यां यस्यां सञ्चलनं शान्तिः स्यात् तत्र तत्र तु ॥ ६५ ॥
अन्यथा तु भवेद् घोरं भयं कुलविनाशनम् । अचलं कारयेत् तस्मात् सिकताभिः सुरेश्वरम् ॥ ६६ ॥
अन्नं वस्त्रं च दातव्यं पुण्याहजयमङ्गलम् । त्रिपञ्च सप्तदश वा दिनानि स्यान्महोत्सवः ॥ ६७ ॥
चतुर्थेऽह्नि महास्नानं चतुर्थीकर्म कारयेत् । दक्षिणा च पुनस्तद्वद् देया तत्रातिभक्तितः ॥ ६८ ॥
देवप्रतिष्ठाविधिरेष तुभ्यं निवेदितः पापविनाशहेतोः ।
यस्माद् बुधैः पूर्वमनन्तमुक्तमनेकविद्याधरदेवपूज्यम् ॥ ६९ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रतिष्ठानुकीर्तनं नाम षट्षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६६ ॥

इसी प्रकार पाँचवें दिन काला अंजन और तिल, छठे दिन घृतसहित चन्दन एवं पद्मकेसर, सातवें दिन रोचना, अगुरु तथा पुष्प देना चाहिये । जिस मूर्तिकी स्थापनामें तुरंत ही अधिवासन हो जाय, वहाँ इन सबको एक साथ ही निवेदित कर देना चाहिये । अवस्थित हो जानेपर प्रतिमाको अपने स्थानसे विचलित नहीं करना चाहिये; अन्यथा दोषभागी होना पड़ता है । छिद्रोंको बालूसे भरकर सब ओर छिद्ररहित कर देना चाहिये । स्थापनाके बाद जिस लोकपालकी दिशाकी ओर प्रतिमा अपने-आप झुकती है, उस लोकपालके लिये शान्ति कराकर क्रमशः ये दक्षिणाएँ देनी चाहिये । इन्द्रके लिये हाथी देना चाहिये । यदि थोड़ी सम्पत्तिवाला हो तो सुवर्ण दे । अग्निके लिये सुवर्णकी, यमराजके लिये महिषकी, राक्षसराज निर्ऋतिके लिये बकरा तथा सुवर्णकी, वरुणके लिये सुतुहियोंसहित मोतियोंकी, वायुके लिये दो वस्त्रोंसहित पीतलकी, चन्द्रमाके लिये गौकी और शिवके लिये चाँदी-निर्मित वृषभकी दक्षिणा देनी चाहिये । जिस-जिस दिशामें संचलन हो, उस-उस दिशाकी शान्ति करानी चाहिये, अन्यथा कुलविनाशक भयंकर भय उत्पन्न होता है । अतः प्रतिमाको बालूसे भरकर अचल कर देना चाहिये । उक्त पुण्य दिनमें अन्न तथा वस्त्रका दान करना चाहिये । साथ ही पुण्याहवाचन, जय-जयकार एवं माङ्गलिक शब्दोंका उच्चारण करवाना चाहिये । यह महोत्सव तीन, पाँच, सात या दस दिनोंतक होना चाहिये । प्रतिष्ठाके चौथे दिन महा-स्नान तथा चतुर्थी कर्म कराना चाहिये । उस अवसरपर भी अत्यन्त भक्तिपूर्वक पर्याप्त दक्षिणा देनी चाहिये । ऋषिवृन्द ! मैंने पापोंके विनाशार्थ आपलोगोंसे देव-प्रतिमाकी प्रतिष्ठाकी यह विधि वर्णन की है; क्योंकि पण्डितोंने इस विषयको पूर्वकालमें अनेक विद्याधर तथा देवताओंद्वारा पूज्य और अनन्त बतलाया है ॥ ५८–६९ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें मूर्तिप्रतिष्ठा नामक दो सौ छाछठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २६६ ॥

दो सौ सड़सठवाँ अध्याय

देव- (प्रतिमा-) प्रतिष्ठाके अङ्गभूत अभिषेक-स्नानका निरूपण

सूत उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि देवस्नपनमुत्तमम् । अब्दस्यापि समासेन शृणु त्वं विधिमुत्तमम् ॥ १ ॥
दध्यक्षतकुशाग्राणि क्षीरं दूर्वास्तथा मधु । यवाः सिद्धार्थकास्तद्वदष्टाङ्गोऽर्घः फलैः सह ॥ २ ॥

Sri Vidyadhara Book Centre Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

गजाश्वरथ्यावल्मीकवराहोत्खातमण्डलात् । अग्न्यागारात् तथा तीर्थाद् व्रजाद् गोमण्डलादपि॥ ३ ॥
कुम्भे तु मृत्तिकां दद्यादुद्धृतासीति मन्त्रवित् । शं नो देवीत्यपां मन्त्रमापो हिष्ठेति वै तथा ॥ ४ ॥
सावित्र्याऽऽदाय गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम् । आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्णेति वै दधि ॥ ५ ॥
तेजोऽसीति घृतं तद्वद् देवस्य त्वेति चोदकम् । कुशमिश्रं क्षिपेद् विद्वान् पञ्चगव्यं भवेत् ततः॥ ६ ॥
स्नाप्याथ पञ्चगव्येन दध्ना शुद्धेन वै ततः । दधिक्राव्णेति मन्त्रेण कर्तव्यमभिमन्त्रणम् ॥ ७ ॥
आप्यायस्वेति पयसा तेजोऽसीति घृतेन च । मधुवातेति मधुना ततः पुष्पोदकेन च ॥ ८ ॥
सरस्वत्यै भैषज्येन कार्यं तस्याभिमन्त्रणम् । हिरण्याक्षेति मन्त्रेण स्नापयेद् रत्नवारिणा ॥ ९ ॥
कुशाम्भसा ततः स्नानं देवस्यत्वेति कारयेत् । फलोदकेन च स्नानमग्न आयाहि कारयेत् ॥ १० ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! अब मैं देवप्रतिमाके अभिषेक तथा अर्घ्यकी उत्तम विधि संक्षेपमें बतला रहा हूँ, सुनिये। दधि, अक्षत, कुशका अग्रभाग, दुग्ध, दूर्वा, मधु, यव और सरसों—इन आठ वस्तुओं तथा फलोंके मिलानेसे अर्घ बनता है । हाथीशाला, अश्वशाला, चौराहा, बिमौट, शूकरद्वारा खोदे गये गड्ढे, अग्निकुण्ड, तीर्थस्थान एवं गोशालाकी मिट्टीको मन्त्रवेत्ता ब्राह्मण **'उद्धृतासि वराहेण'** (तै० आर०) आदि मन्त्रको उच्चारण करते हुए कलशमें डाले । तत्पश्चात् **'शं नो देवी०'** (वाजस० सं० ३६ । १०) **'आपो हि ष्ठा०'** इन दो मन्त्रोंका उच्चारण कर जल छोड़े । तत्पश्चात् गायत्री-मन्त्रका उच्चारण करते हुए उस घड़ेमें गोमूत्र, फिर **'गन्धद्वारां०'** (ऋक्परि० श्रीसू० ८) इस मन्त्रसे गोबर, **'आप्यायस्व०'** (वाजस० सं० १२।१४४) मन्त्रसे दुग्ध, **'दधिक्राव्णः०'** (वाजस० २३।३२) मन्त्रसे दही और **'तेजोऽसि०'** (वाजस० २२।१) मन्त्रसे घृत, **'देवस्य त्वा सवितुः०'** (वाजस० सं० १ । १९)से जलको छोड़कर सबको मिश्रितकर कुशद्वारा चलावे तो वह पञ्चगव्य होता है । इस पञ्चगव्यद्वारा प्रतिमाको स्नान करानेके उपरान्त शुद्ध दहीद्वारा **'दधिक्राव्णः०'** (वाजस० सं० २३ । ३२) इस मन्त्रसे अभिषेक-संस्कार करना चाहिये । फिर **'आप्यायस्व०'**(वाजस० सं० १२।११४) इस मन्त्रका उच्चारण कर दुग्धसे, **'तेजोऽसि शुक्र०'** (वाजस० सं० २२।१) इस मन्त्रद्वारा घृतसे, **'मधुवाता०'** (वाजस० सं०) इस मन्त्रद्वारा मधुसे तथा पुष्पमिश्रित जलसे और **'सरस्वत्यै०'** (वाजस० सं०) इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए ओषधियोंसे प्रतिमाका संस्कार करना चाहिये । फिर **'हिरण्याक्ष०'** इस मन्त्रसे रत्नमिश्रित जलसे, **'देवस्य त्वा०'** (वाजस० सं० १ । १०) इस मन्त्रका उच्चारण कर कुशोदकसे तथा **'अग्न आयाहि०'** (साम० सं० १।१) इस मन्त्रका उच्चारण कर प्रतिमाको स्नान करावे ॥ १–१० ॥

ततस्तु गन्धतोयेन सावित्र्या चाभिमन्त्रयेत् । ततो घटसहस्रेण सहस्रार्धेन वा पुनः ॥ ११ ॥
तस्याप्यर्धेन वा कुर्यात् सपादेन शतेन वा । चतुःषष्ट्या ततोऽर्धेन तदर्धार्धेन वा पुनः ॥ १२ ॥
चतुर्भिरथवा कुर्याद् घटानामल्पवित्तवान् । सौवर्णैं राजतैर्वापि ताम्रैर्वा रीतिकोद्भवैः ॥ १३ ॥
कांस्यैर्वा पार्थिवैर्वापि स्नपनं शक्तितो भवेत् । सहदेवी वचा व्याघ्री बला चातिबला तथा ॥ १४ ॥
शङ्खपुष्पी तथा सिंही ह्यष्टमी च सुवर्चला । महौषध्यष्टकं ह्येतन्महास्नानेषु योजयेत् ॥ १५ ॥
यवगोधूमनीवारतिलश्यामाकशालयः । प्रियङ्गवो व्रीहयश्च स्नानेषु परिकल्पिताः ॥ १६ ॥
स्वस्तिकं पद्मकं शङ्खमुत्पलं कमलं तथा । श्रीवत्सं दर्पणं तद्वन्नन्द्यावर्तमथाष्टकम् ॥ १७ ॥
एतानि गोमयैः कुर्यान्मृदा च शुभया ततः । पञ्चवर्णादिकं तद्वत् पञ्चवर्णं रजस्तथा ॥ १८ ॥
दूर्वाः कृष्णतिलान् दद्यान्नीराजनविधिर्मतः । एवं नीराजनं कृत्वा दद्यादाचमनं बुधः ॥ १९ ॥
मन्दाकिन्यास्तु यद्वारि सर्वपापापहं शुभम् । ततो वस्त्रयुगं दद्यान्मन्त्रेणानेन यत्नतः ॥ २० ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

देवसूत्रसमायुक्ते यज्ञदानसमन्विते । सुवर्णे शुभे देव वाससी ते विनिर्मिते ॥ २१ ॥
ततस्तु चन्दनं दद्यात् सम्यं कर्पूरकुङ्कुमैः । इममुच्चारयेन्मन्त्रं दर्भपाणिः प्रयत्नतः ॥ २२ ॥
शरीरं ते न जानामि चेष्टां नैव च नैव च । मया निवेदितान् गन्धान् प्रतिगृह्य विलिप्यताम् ॥ २३ ॥

इसके बाद गायत्री-मन्त्रद्वारा सुगन्धित जलसे अभिमन्त्रित करे। फिर एक हजार या पाँच सौ या उसके आधे ढाई सौ या एक सौ पचीस या एक सौ या चौंसठ या उसके आधे बत्तीस या उसके आधे सोलह या आठ या अल्प वित्तवाला पुरुष चार कलशोंसे स्नान-क्रिया सम्पन्न करे। ये कलश यथाशक्ति सुवर्ण, चाँदी, ताँबा, पीतल, काँसा या मिट्टीके बने होने चाहिये। सहदेई, वच, व्याघ्री, बला, अतिबला, शङ्खपुष्पी, सिंही तथा आठवीं सुवर्चला—ये महौषधियाँ हैं, इनका महास्नानके समय प्रयोग करना चाहिये। जौ, गेहूँ, तिन्नी, तिल, साँवा, धान, प्रियङ्गु तथा चावल—ये अन्न भी स्नानकार्यमें उपयोगी कहे गये हैं। स्वस्तिक, पद्म, शङ्ख, उत्पल, कमल, श्रीवत्स, दर्पण और नन्द्यावर्त—इन आठ चित्रोंकी गोबर और शुद्ध मिट्टीसे कलापूर्ण रचना करें फिर उन्हें पाँच प्रकारके रंग, पाँच प्रकारके चूर्ण, दूर्वा और काला तिलसे भर दे। तत्पश्चात् नीराजन-आरतीकी विधिसे नीराजन कर बुद्धिमान् पुरुष 'गङ्गाका जल सभी पापोंका विनाशक और शुभदायक होता है' इस भावके मन्त्रसे आचमन करावे। तदनन्तर—'देव! आपके लिये बने हुए ये युगल वस्त्र देवनिर्मित सूत्रद्वारा बने हुए, यज्ञ तथा दानसे समन्वित, विविध वर्णोंवाले एवं परम रमणीय हैं, इन्हें आप ग्रहण करें,' इस भावके मन्त्रका उच्चारण करते हुए यत्नपूर्वक दो वस्त्र समर्पित करे। इसके बाद हाथमें कुश लेकर प्रयत्नपूर्वक निम्नलिखित मन्त्रका उच्चारण करते हुए कपूर और केसरमिश्रित चन्दन लगाना चाहिये। मन्त्र इस प्रकार है—'देव! मैं आपके शरीर और चेष्टाको किसी प्रकार भी नहीं जानता, अतः मेरेद्वारा समर्पित किये गये गन्धोंको ग्रहणकर आप स्वयं ही अनुलेपन कर लें ॥ ११—२३ ॥

चत्वारिंशत् ततो दीपान् दद्याच्चैव प्रदक्षिणान् । त्वं सूर्यचन्द्रज्योतींषि विद्युदग्निस्तथैव च ॥ २४ ॥
त्वमेव सर्वज्योतींषि दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् । ततस्त्वनेन मन्त्रेण धूपं दद्याद् विचक्षणः ॥ २५ ॥
वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः । मया निवेदितो भक्त्या धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ २६ ॥
ततस्त्वाभरणं दद्यान्महाभूषाय ते नमः । अनेन विधिना कृत्वा सप्तरात्रं महोत्सवम् ॥ २७ ॥
देवकुम्भैस्ततः कुर्याद् यजमानोऽभिषेचनम् । चतुर्भिरष्टभिर्वापि द्वाभ्यामेकेन वा पुनः ॥ २८ ॥
सपञ्चरत्नकलशैः सितवस्त्राभिवेष्टितैः । देवस्य त्वेति मन्त्रेण साम्ना चाथर्वणेन च ॥ २९ ॥
अभिषेके च ये मन्त्रा नवग्रहमखे स्मृताः । सिताम्बरधरः स्नात्वा देवान् सम्पूज्य यत्नतः ॥ ३० ॥
स्थापकं पूजयेद् भक्त्या वस्त्रालङ्कारभूषणैः । यज्ञभाण्डानि सर्वाणि मण्डपोपस्करादिकम् ॥ ३१ ॥
यच्चान्यदपि तद्गेहे तदाचार्याय दापयेत् । सुप्रसन्ने गुरौ यस्मात् तृप्यन्ति सर्वदेवताः ॥ ३२ ॥
नैतद्विशीलेन च दाम्भिकेन न लिङ्गिना स्थापनमत्र कार्यम् ।
विप्रेण कार्यं श्रुतिपारगेण गृहस्थधर्माभिरतेन नित्यम् ॥ ३३ ॥
पाषण्डिनं यस्तु करोति भक्त्या विहाय विप्राञ् श्रुतिधर्मयुक्तान् ।
गुरुं प्रतिष्ठादिषु तत्र नूनं कुलक्षयः स्यादचिरादपूज्यः ॥ ३४ ॥
स्थानं पिशाचैः परिगृह्यते वा अपूज्यतां यात्यचिरेण लोकैः ।
विप्रैः कृतं यच्छुभदं कुले स्यात् प्रपूज्यतां याति चिरं च कालम् ॥ ३५ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे देवतास्नानं नाम सप्तषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६७ ॥

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

इसके बाद आकोश दीप प्रदान करना चाहिये और प्रदक्षिणा भी करनी चाहिये। उस समय निम्नाङ्कित मन्त्रका उच्चारण करे—'देव! आप ही सूर्य और चन्द्रमाकी ज्योति, बिजली, अग्नि और सभी प्रकारकी ज्योति हैं, आप इस दीपको ग्रहण करें।' फिर देव! यह वनस्पतियोंका अति उत्तम रस, दिव्य गन्धयुक्त और उत्तम गन्ध है, मैंने इसे भक्तिपूर्वक अर्पित किया है। आप इस धूपको ग्रहण करें।' इस मन्त्रका उच्चारणकर विचक्षण पुरुष धूपदान करे। तत्पश्चात् 'बहुमूल्य आभूषणोंसे विभूषित देव! आपको नमस्कार है।' इस भावके मन्त्रद्वारा आभूषण अर्पित करना चाहिये। इस प्रकार सात राततक महोत्सव कर श्वेत वस्त्रधारी यजमान पञ्चरत्नयुक्त तथा श्वेत वस्त्रसे परिवेष्टित चार, आठ, दो अथवा एक देवकुम्भके जलसे—'देवस्य त्वा०—' (वाजस० सं० १।१०) इस मन्त्रसे या आथर्वण तथा साममन्त्रोंसे या नवग्रहयज्ञोंमें अभिषेकके समय प्रयुक्त होनेवाले मन्त्रोंसे अभिषेक करे। फिर स्नानकर देवताओंकी पूजा करनेके बाद स्थापना करानेवालेकी वस्त्र, अलंकार एवं आभूषणोंद्वारा पूजा करे। तत्पश्चात् सभी यज्ञपात्रों, मण्डपकी सामग्रियों तथा मण्डपमें अन्य जो कुछ भी दातव्य वस्तुएँ हों, उन्हें आचार्यको देना चाहिये; क्योंकि गुरुके प्रसन्न होनेपर सभी देवगण प्रसन्न हो जाते हैं। इस देवप्रतिमाके स्थापन-कार्यको शीलरहित, दम्भी और पाखंडीसे नहीं कराना चाहिये, प्रत्युत सदा श्रुतियोंके पारगामी एवं गृहस्थाश्रममें रहनेवाले ब्राह्मणद्वारा ही कराना उचित है। जो व्यक्ति केवल भक्तिके कारण वैदिक धर्मोंमें परायण विद्वान् पण्डितोंको छोड़कर अपने पाखण्डी गुरुको इस कार्यमें नियुक्त करता है, उसका कुल शीघ्र ही अपूज्य और नष्ट हो जाता है उस स्थानपर पिशाचोंका आधिपत्य हो जाता है तथा लोग प्रतिमाको थोड़े ही दिनों बाद अपूज्य समझने लगते हैं। वैदिक ब्राह्मणोंद्वारा करायी गयी स्थापनासे देव-प्रतिमा कुलमें कल्याणकारिणी होती है और चिरकालतक लोग उसकी पूजा करते हैं॥ २४-३५॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें देवप्रतिमा-स्नान नामक दो सौ सड़सठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २६७॥

दो सौ अड़सठवाँ अध्याय

वास्तु-शान्तिकी विधि

ऋषय ऊचुः

प्रासादाः कीदृशाः सूत कर्तव्या भूतिमिच्छता। प्रमाणं लक्षणं तद्वद् वद विस्तरतोऽधुना॥ १॥

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! समृद्धिकी इच्छा करनेवालोंको प्रासादों (राजगृह, देवमन्दिर आदि)की रचना किस प्रकार करानी चाहिये? अब उनके प्रमाण और लक्षणोंको विस्तारपूर्वक बतलाइये॥ १॥

सूत उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि प्रासादविधिनिर्णयम्। वास्तौ परीक्षिते सम्यग् वास्तुदेहविचक्षणः॥ २॥
वास्तूपशमनं कुर्यात् समिद्भिर्बलिकर्मणा। जीर्णोद्धारे तथोद्याने तथा गृहनिवेशने॥ ३॥
नवप्रासादभवने प्रासादपरिवर्तने। द्वाराभिवर्तने तद्वत् प्रासादेषु गृहेषु च॥ ४॥
वास्तूपशमनं कुर्यात् पूर्वमेव विचक्षणः। एकाशीतिपदं लिख्य वास्तुमध्ये च पृष्ठतः॥ ५॥
होमस्त्रिमेखले कार्यः कुण्डे हस्तप्रमाणके। यवैः कृष्णतिलैस्तद्वत् समिद्भिः क्षीरवृक्षजैः॥ ६॥
पालाशैः खादिरैश्चापि मधुसर्पिःसमन्वितैः। कुशदूर्वामयैर्वापि मधुसर्पिःसमन्वितैः॥ ७॥
कायस्तु पञ्चभिर्बिल्वैर्बिल्वबीजैरथापि वा। होमान्ते भक्ष्यभोज्यैस्तु वास्तुदेशे बलिं हरेत्॥ ८॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

तद्धपूर्वविशेषनैवेद्यमेवं दद्यात् क्रमेण तु । ईशाकोणे घृताक्तं तु शिखिने विनिवेदयेत् ॥ ९ ॥
ओदनं सफलं दद्यात् पर्जन्याय घृतान्वितम् । जयाय च ध्वजान् पीतान् पैष्टं कूर्मं च संन्यसेत् ॥ १० ॥
इन्द्राय पञ्चरत्नानि पैष्टं च कुलिशं तथा । वितानकं च सूर्याय धूम्रं सक्तुं तथैव च ॥ ११ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषिवृन्द ! अब मैं प्रासाद-विधिका निर्णय बतला रहा हूँ । वास्तुके शरीरको जाननेवाला पुरुष वास्तुकी भलीभाँति परीक्षा कर लेनेके बाद (दोष दीखनेपर) बलिकर्म तथा समिधाओंद्वारा वास्तुकी शान्ति करे । जीर्ण प्रासादके उद्धार, वाटिकाके आरोपण, नूतन गृहमें प्रवेश, नवीन प्रासाद अथवा भवनके निर्माण, प्रासादपरिवर्तन, प्रासाद तथा गृहोंमें द्वारकी रचना—इन सभी अवसरोंपर विद्वान् पुरुषको पहले ही वास्तुकी शान्ति—पूजा करानी चाहिये । इसके लिये वास्तुके मध्यभागमें पृष्ठप्रदेशपर इक्यासी पदोंवाला चक्र बनाना चाहिये । फिर एक हाथ गहरे तथा चौड़े कुण्डमें, जो तीन मेखलाओंसे युक्त हो, जौ, काले तिल तथा दुग्धवाले (वट, पाकड़, पीपल, गूलर आदि) वृक्षोंकी समिधाओंद्वारा हवन करना चाहिये । हवनमें मधु और घृतसे संयुक्त पलाश या खदिरकी समिधाओंका या मधु-घृत-संयुक्त कुश और दूर्वाका अथवा पाँच बिल्व-फल या उसके बीजोंका उपयोग करना चाहिये । हवनके अन्तमें विविध भक्ष्य सामग्रियोंद्वारा वास्तुप्रदेशमें क्रमसे बलि तथा विशेष नैवेद्य भी देना चाहिये । ईशानकोणमें घृतसे संयुक्त नैवेद्य अग्निके लिये समर्पित करे । पर्जन्यके लिये फल-घृतसंयुक्त ओदन तथा जयके लिये पीली ध्वजा और आटेका बना हुआ कूर्म देना चाहिये । इन्द्रके लिये पञ्चरत्न तथा आटेका बना हुआ वज्र तथा सूर्यके लिये धूम्रवर्णका वितान और सत्तू देना चाहिये ॥२–११॥

सत्याय घृतगोधूमं मत्स्यं दद्याद् भृशाय च । शष्कुलीश्चान्तरिक्षाय दद्यात् सक्तूंश्च वायवे ॥ १२ ॥
लाजाः पूष्णे तु दातव्या वितथे चणकौदनम् । बृहत्क्षत्राय मध्वन्नं यमाय पिशितौदनम् ॥ १३ ॥
गन्धौदनं च गन्धर्वे भृङ्गराजस्य भृङ्गिकाम् । मृगाय यावकं दद्यात् पितृभ्यः कृसरा मता ॥ १४ ॥
दौवारिके दन्तकाष्ठं पैष्टं कृष्णाबलिं तथा । सुग्रीवेऽपूपकं दद्यात् पुष्पदन्ताय पायसम् ॥ १५ ॥
कुशस्तम्बेन संयुक्तं तथा पद्मं च वारुणे । विष्टं हिरण्मयं दद्यादसुराय सुरा मता ॥ १६ ॥
घृतौदनं च शेषाय यवान्नं पापयक्ष्मणे । घृतलड्डुकांस्तु रोगाय नागे पुष्पफलानि च ॥ १७ ॥
सर्पिर्मुख्याय दातव्यं मुद्गौदनमतः परम् । भल्लाटस्थानके दद्यात् सोमाय घृतपायसम् ॥ १८ ॥
भगाय शालिकं पिष्टमदित्यै पोलिकास्तथा । दित्यै तु पूरिका दद्यादित्येवं बाह्यतो बलिः ॥ १९ ॥
क्षीरं यमाय दातव्यमापवत्साय वै दधि । सावित्रे लड्डुकान् दद्यात् समरीचं कुशौदनम् ॥ २० ॥
सवितुर्गुडपूपांश्च जयाय घृतचन्दनम् । विवस्वते पुनर्दद्याद् रक्तचन्दनपायसम् ॥ २१ ॥
हरितालौदनं दद्यादिन्द्राय घृतसंयुतम् । घृतौदनं च मित्राय रुद्राय घृतपायसम् ॥ २२ ॥

इसी प्रकार सत्यके लिये घी और गेहूँ, भृशको अन्न, अन्तरिक्षको पूड़ी, वायुको सत्तू और पूषाको लावा देना चाहिये । वितथको चना और ओदन, बृहत्क्षत्रको मधु और अन्न, यमको फलका गूदा और ओदन, गन्धर्वको सुगन्ध और ओदन, भृङ्गराजको भृङ्गिका, मृगको जौका सत्तू और पितरोंको खिचड़ी देना चाहिये । दौवारिकको दन्तकाष्ठ तथा आटेकी कृष्ण बलि, सुग्रीवको पूआ तथा पुष्पदन्तको खीर प्रदान करे । वरुणको कुश-समूहसे संयुक्त पद्म और सुवर्णमय पिष्टक देना चाहिये । असुरके लिये मदिरा मानी गयी है । शेषको घृत-संयुक्त ओदन, पापयक्ष्माको जौका अन्न, रोगको घीका बना हुआ लड्डू, नागको पुष्प और फल, मुख्य (वासुकि) को घी तथा भल्लाटके स्थानपर मूँग और ओदन तथा सोमके लिये घृत और खीर देना चाहिये । भगके लिये साठीके चावलका पिष्टक, अदितिके लिये पोलिक और दितिके

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

लिये पूरीकी बलि देनी चाहिये। यह वास्तुके बाहरी भागकी बलि है। यमको दूध और आपवत्सको दही देनेका विधान है। सावित्रीको लड्डू तथा मरीचके साथ कुशमिश्रित ओदन प्रदान करे। सविताको गुड-मिश्रित पूआ, जयको घृत और चन्दन तथा विवस्वान्‌को लाल-चन्दन और खीर दे। इन्द्रको घृतसमेत हरिताल-युक्त ओदन, मित्रको घृतमिश्रित ओदन तथा रुद्रको घृत और खीर दे ॥ १२—२२ ॥

आमं पक्वं तथा मांसं देयं स्याद् राजयक्ष्मणे। पृथ्वीधराय मांसानि कूष्माण्डानि च दापयेत् ॥ २३ ॥
शर्करापायसं दद्यादर्यम्णे पुनरेव हि। पञ्चगव्यं यवांश्चैव तिलाक्षतमयं चरुम् ॥ २४ ॥
भक्ष्यं भोज्यं च विविधं ब्रह्मणे विनिवेदयेत्। एवं सम्पूजिता देवाः शान्तिं कुर्वन्ति ते सदा ॥ २५ ॥
सर्वेभ्यः काञ्चनं दद्याद् ब्रह्मणे गां पयस्विनीम्। राक्षसीनां बलिर्देयो अपि यादृग् यथा शृणु ॥ २६ ॥
मांसौदनं घृतं पद्मकेसरं रुधिरान्वितम्। ईशानभागमाश्रित्य चरक्यै विनिवेदयेत् ॥ २७ ॥
मांसौदनं च रुधिरं हरिद्रौदनमेव च। आग्नेयीं दिशमाश्रित्य विदार्यै विनिवेदयेत् ॥ २८ ॥
दध्योदनं सरुधिरमस्थिखण्डैश्च संयुतम्। पीतरक्तं बलिं दद्यात् पूतनायै सरक्षसे ॥ २९ ॥
वायव्यां पापराक्षस्यै मत्स्यमांसं सुरासवम्। पायसं चापि दातव्यं स्वनाम्ना सर्वतः क्रमात् ॥ ३० ॥
नमस्कारान्तयुक्तेन प्रणवाद्येन संयुतः। ततः सर्वौषधीस्नानं यजमानस्य कारयेत् ॥ ३१ ॥

राजयक्ष्माको पके हुए तथा कच्चे फलका गूदा देना चाहिये। पृथ्वीधरको मांसखण्ड और कुम्हड़े दे। अर्यमाके लिये शक्कर और खीर, पञ्चगव्य, जौ, तिल, अक्षत तथा चरु दे। ब्रह्माके लिये विविध प्रकारके भक्ष्य और भोज्य पदार्थ देने चाहिये। इस प्रकार पूजित देवगण सर्वदा शान्ति प्रदान करते हैं। अन्य उपस्थित ब्राह्मणोंके लिये सुवर्णका तथा ब्रह्मस्थानीय ब्राह्मणको दूध देनेवाली गौका दान करना चाहिये। अब राक्षसियोंके लिये जिस प्रकारकी बलि दी जानी चाहिये, उसे सुनिये। फलका गूदायुक्त ओदन, घृत, पद्मकेसर—इन्हें ईशानकोणकी ओर चरकी नामकी राक्षसीको निवेदित करना चाहिये। फलका गूदा-मिश्रित ओदन तथा हरिद्रायुक्त ओदन—इन्हें अग्निकोणकी ओर विदारी नाम्नी राक्षसीके लिये निवेदित करना चाहिये। दही, ओदन, हड्डियोंके टुकड़े तथा पीले और लाल रंगकी बलि राक्षससहित पूतना नामकी राक्षसीको नैर्ऋत्यकोणमें देनी चाहिये। वायव्यकोणमें पापा नामकी राक्षसीके लिये खीर देना चाहिये। बलि देते समय क्रमशः सभी जगह आदिमें प्रणव और अन्तमें नमस्कारसहित अपने नामका उच्चारण कर लेना चाहिये। तदनन्तर यजमानको सर्वौषधिसे युक्त जलसे स्नान कराना चाहिये ॥ २३—३१ ॥

द्विजान् सुपूजयेद् भक्त्या ये चान्ये गृहमागताः। एतद्वास्तूपशमनं कृत्वा कर्म समारभेत् ॥ ३२ ॥
प्रासादभवनोद्यानप्रारम्भे विनिवर्त्तने। पुरवेश्मप्रवेशेषु सर्वदोषापनुत्तये ॥ ३३ ॥
रक्षोघ्नपावमानेन सूक्तेन भवनादिकम्। नृत्यमङ्गलवाद्येन कुर्याद् ब्राह्मणवाचनम् ॥ ३४ ॥
अनेन विधिना यस्तु प्रतिसंवत्सरं बुधः। गृहे वायतने कुर्यान्न स दुःखमवाप्नुयात् ॥ ३५ ॥
न च व्याधिभयं तस्य न च बन्धुधनक्षयः। जीवेद् वर्षशतं स्वर्गे कल्पमेकं च तिष्ठति ॥ ३६ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वास्तुदोषोपशमनं नामाष्टषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६८ ॥

यजमानको भक्तिपूर्वक अपने गृहपर आये हुए ब्राह्मणोंकी पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार वास्तुकी शान्ति करनेके बाद गृहनिर्माण कार्य प्रारम्भ करना चाहिये। प्रासाद, भवन, उद्यानके प्रारम्भ करते समय अथवा उनके उद्यापनके समय तथा पुर या गृहमें प्रवेश करते समय सभी दोषोंके विनाशार्थ रक्षोघ्न और

Sri Vidyabharathi Book Center, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

पावमान सूक्तोंके पाठ करानेके बाद नृत्य, माङ्गलिक गीत और वाद्योंके साथ ब्राह्मणोंद्वारा वेदपाठ कराना चाहिये। जो बुद्धिमान् पुरुष प्रतिवर्ष गृह अथवा मन्दिरके कार्यमें उपर्युक्त विधिका पालन करता है, वह दुःखका भागी नहीं होता। उसे न तो व्याधिका भय होता है, न उसके बन्धुजनों तथा सम्पत्तिका विनाश ही होता है, प्रत्युत वह इस लोकमें सौ वर्षतक जीवित रहता है और स्वर्गमें एक कल्पपर्यन्त निवास करता है ॥ ३२–३६ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें वास्तुदोष-शमन नामक दो सौ अड़सठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २६८ ॥

दो सौ उनहत्तरवाँ अध्याय

प्रासादोंके भेद और उनके निर्माणकी विधि

सूत उवाच

एवं वास्तुबलिं कृत्वा भजेत् षोडशभागिकम्। तस्य मध्ये चतुर्भिस्तु भागैर्गर्भं तु कारयेत् ॥ १ ॥
भागद्वादशकं सार्धं ततस्तु परिकल्पयेत्। चतुर्दिक्षु तथा ज्ञेयं निर्गमं तु ततो बुधैः ॥ २ ॥
चतुर्भागेन भित्तीनामुच्छ्रायः स्यात् प्रमाणतः। द्विगुणः शिखरोच्छ्रायो भित्त्युच्छ्रायप्रमाणतः ॥ ३ ॥
शिखरार्धस्य चार्धेन विधेया तु प्रदक्षिणा। गर्भसूत्रद्वयं चाग्रे विस्तारो मण्डपस्य तु ॥ ४ ॥
आयतः स्यात् त्रिभिर्भागैर्भद्रयुक्तः सुशोभनः। पञ्चभागेन सम्भज्य गर्भमानं विचक्षणः ॥ ५ ॥
भागमेकं गृहीत्वा तु प्राग्ग्रीवं कल्पयेद् बुधः। गर्भसूत्रसमाद् भागादग्रतो मुखमण्डपः ॥ ६ ॥
एतत् सामान्यमुद्दिष्टं प्रासादस्येह लक्षणम्। तथान्यं तु प्रवक्ष्यामि प्रासादं लिङ्गमानतः ॥ ७ ॥
लिङ्गपूजाप्रमाणेन कर्तव्या पीठिका बुधैः। पिण्डिकार्धेन भागः स्यात् तन्मानेन तु भित्तयः ॥ ८ ॥
बाह्यभित्तिप्रमाणेन उत्सेधस्तु भवेत् पुनः। भित्त्युच्छ्रायात् तु द्विगुणः शिखरस्य समुच्छ्रयः ॥ ९ ॥
शिखरस्य चतुर्भागात् कर्तव्या च प्रदक्षिणा। प्रदक्षिणायास्तु समस्त्वग्रतो मण्डपो भवेत् ॥ १० ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषिगणो! इस प्रकार उपर्युक्त बलि प्रदान करनेके उपरान्त वास्तु (मन्दिर)को सोलह भागोंमें विभक्त करे। फिर उसके मध्य भागके चार भागोंको केन्द्र मानकर मध्यभागकी ओर शेष बारह भागोंमें प्रासादकी कल्पना करे। बुद्धिमान् व्यक्तिको चारों दिशाओंमें बाहर निकलनेका मार्ग भी जानना चाहिये। दीवालकी ऊँचाई वास्तुमानकी चौथाईके तुल्य होनी चाहिये और दीवालकी ऊँचाईके प्रमाणसे दूनी शिखरकी ऊँचाई होनी चाहिये। शिखरकी ऊँचाईके चौथाई मानसे प्रदक्षिणा बनानी चाहिये। मण्डपके अग्रभागका विस्तार गर्भके मानसे दूना होना चाहिये। इसकी लम्बाई तीन भागोंसे युक्त होगी, जो भद्रयुक्त और सुन्दर रहेगी। विद्वान् पुरुषको गर्भमानको पाँच भागोंमें विभक्तकर एक भागमें प्राग्ग्रीवकी कल्पना करनी चाहिये। गर्भसूत्रके समान आगे मुखमण्डपकी रचना करनी चाहिये। यह सामान्यतया सभी प्रासादोंका लक्षण बतलाया गया है। अब अन्य प्रासाद (शिवमन्दिर)की रचनाकी विधि बतला रहा हूँ, जो लिङ्गमानके आधारपर निर्मित होता है। बुद्धिमान् पुरुषोंको लिङ्ग-पूजाके लिये उपयोगी पीठिका तैयार करनी चाहिये। पिण्डिकाके अर्धभागको विभक्त कर उक्त अर्धांश-मानमें उसके दीवालकी रचना करनी चाहिये एवं बाहरी दीवालके प्रमाणके अनुसार उसकी ऊँचाई करनी चाहिये। दीवालकी ऊँचाईसे दूनी शिखरकी ऊँचाई होनी चाहिये। शिखरके चतुर्थ भागसे प्रदक्षिणा बनानी चाहिये। प्रदक्षिणाके बराबर मानका ही आगे मण्डप निर्मित करना चाहिये ॥ १–१० ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

तस्य चार्धेन कर्तव्यस्त्वग्रतो मुखमण्डपः। प्रासादान्निर्गतौ कार्यौ कपोलौ गर्भमानतः ॥ ११ ॥
ऊर्ध्वं भित्त्युच्छ्रयात् तस्य मञ्जरीं तु प्रकल्पयेत्। मञ्जर्याश्चार्धभागेन शुकनासां प्रकल्पयेत् ॥ १२ ॥
ऊर्ध्वं तथार्धभागेन वेदीबन्धो भवेदिह। वेद्याश्चोपरि यच्छेषं कण्ठश्चामलसारकः ॥ १३ ॥
एवं विभज्य प्रासादं शोभनं कारयेद् बुधः। अथान्यच्च प्रवक्ष्यामि प्रासादस्येह लक्षणम् ॥ १४ ॥
गर्भमानप्रमाणेन प्रासादं शृणुत द्विजाः। विभज्य नवधा गर्भं मध्ये स्याल्लिङ्गपीठिका ॥ १५ ॥
पादाष्टकं तु रुचिरं पार्श्वतः परिकल्पयेत्। मानेन तेन विस्तारो भित्तीनां तु विधीयते ॥ १६ ॥
पादं पञ्चगुणं कृत्वा भित्तीनामुच्छ्रयो भवेत्। स एव शिखरस्यापि द्विगुणः स्यात् समुच्छ्रयः ॥ १७ ॥
चतुर्धा शिखरं भज्य अर्धभागद्वयस्य तु। शुकनासं प्रकुर्वीत तृतीये वेदिका मता ॥ १८ ॥
कण्ठमामलसारं तु चतुर्थे परिकल्पयेत्। कपोलयोस्तु संहारो द्विगुणोऽत्र विधीयते ॥ १९ ॥
शोभनैः पत्रवल्लीभिरण्डकैश्च विभूषितः। प्रासादोऽयं तृतीयस्तु मया तुभ्यं निवेदितः ॥ २० ॥

उसके आधे भागमें आगेकी ओर मुखमण्डप बनाना चाहिये। गर्भमानके अनुसार प्रासादसे बाहर निकले दो कपोलोंकी रचना करनी चाहिये। उसकी दीवालकी ऊँचाईके ऊपर मञ्जरीकी कल्पना करनी चाहिये। मंजरीके अर्धभागमें शुकनासाकी और ऊपरवाले आधे भागमें वेदीकी रचना करानी चाहिये। वेदीके ऊपर जो भाग शेष रह जाता है, वह कण्ठ और अमलसारक कहलाता है। इस प्रकार विभागकर बुद्धिमान्‌को मनोहर प्रासादकी रचना करनी चाहिये। द्विजवरो! अब अन्य प्रकारके प्रासादके लक्षणोंको बतला रहा हूँ, सुनिये। गर्भमानके अनुसार प्रासादको नौ भागोंमें विभक्तकर गर्भके मध्यमें लिङ्गपीठिका स्थापित करनी चाहिये और उसके अगल-बगलमें रुचिर पादाष्टककी रचना करनी चाहिये। उन्हींके मानके अनुसार दीवालका विस्तार करना चाहिये। उस पादको पाँचसे गुणा करनेपर जो गुणनफल हो, वही दीवालकी और उसकी दूनी शिखरकी ऊँचाई होती है। शिखरको चार भागोंमें विभक्तकर आधे दो भागोंमें शुकनासा बनानी चाहिये, तीसरे भागमें वेदिका मानी गयी है तथा चतुर्थभागमें कण्ठ और अमलसारकी रचना करनी चाहिये। इस प्रासादमें कपोलोंका मान दूना माना गया है। यह मनोहर पत्तियों, लताओं तथा अण्डकोंसे विभूषित तीसरे ढंगके प्रासादका वर्णन मैंने आपलोगोंको बतलाया है ॥ ११–२० ॥

सामान्यमपरं तद्वत् प्रासादं शृणुत द्विजाः। त्रिभेदं कारयेत् क्षेत्रं यत्र तिष्ठन्ति देवताः ॥ २१ ॥
रथाङ्कस्तेन मानेन बाह्यभागविनिर्गतः। नेमी पादेन विस्तीर्णा प्रासादस्य समन्ततः ॥ २२ ॥
गर्भं तु द्विगुणं कुर्यात् तस्य मानं भवेदिह। स एव भित्तेरुत्सेधो द्विगुणः शिखरो मतः ॥ २३ ॥
प्राग्ग्रीवः पञ्चभागेन निष्कासस्तस्य चोच्यते। कारयेत् सुषिरं तद्वत् प्राकारस्य त्रिभागतः ॥ २४ ॥
प्राग्ग्रीवं पञ्चभागेन निष्कासेन विशेषतः। कुर्याद् वा पञ्चभागेन प्राग्ग्रीवे कर्णमूलतः ॥ २५ ॥
स्थापयेत् कनकं तत्र गर्भान्ते द्वारमूलतः। एवं तु त्रिविधं कुर्याज्ज्येष्ठमध्यकनीयसम् ॥ २६ ॥
लिङ्गमानानुभेदेन रूपभेदेन वा पुनः। एते समासतः प्रोक्ता नामतः शृणुताधुना ॥ २७ ॥
मेरुमन्दरकैलासकुम्भसिंहमृगास्तथा। विमानच्छन्दकस्तद्वच्चतुरस्रस्तथैव च ॥ २८ ॥
अष्टास्रः षोडशास्रश्च वर्तुलः सर्वभद्रकः। सिंहास्यो नन्दनश्चैव नन्दिवर्धनकस्तथा ॥ २९ ॥
हंसो वृषः सुवर्णेशः पद्मकोऽथ समुद्गकः। प्रासादा नामतः प्रोक्ता विभागं शृणुत द्विजाः ॥ ३० ॥

द्विजश्रेष्ठो! अब अन्य साधारण प्रकारके प्रासाद (देवमन्दिरों)का वर्णन सुनिये। जहाँ देवता स्थित होते हैं, उस क्षेत्रको तीन भागोंमें विभक्तकर उसी परिमाणमें बाहरकी ओर निकला हुआ रथाङ्क बनाना चाहिये। प्रासादके चारों ओर चतुर्थ भागमें विस्तृत नेमी बनानी चाहिये। मध्य भागको उससे दूना करना चाहिये, वही उसका मान

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

है और वही दीवालकी ऊँचाई है। शिखरकी ऊँचाई उससे दूनी मानी गयी है। उस प्रासादका प्राग्ग्रीव पाँचवें भागमें होना चाहिये। यह उसका निष्कास कहा जाता है। उसे प्राकारके तीन भागमें छिद्रयुक्त बनाना चाहिये। प्राग्ग्रीवको पाँच भागोंमें विशेषतया निष्कासमें बनाना चाहिये अथवा कर्णमूलसे पाँच भागोंमें प्राग्ग्रीवकी कल्पना करनी चाहिये। वहाँ द्वारमूलसे गर्भान्तमें कनककी स्थापना करनी चाहिये। इस प्रकार इसे ज्येष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ—इन तीन प्रकारोंवाला बनाना चाहिये। वे चाहे लिङ्गके परिमाण-भेदसे हों या रूप-भेदसे हों। इन प्रासादोंके निर्माणकी विधि मैंने संक्षेपमें बतला दी, अब उनके नाम सुनिये। मेरु, मन्दर, कैलास, कुम्भ, सिंह, मृग, विमान, छन्दक, चतुरस्र, अष्टास्र, षोडशास्र, वर्तुल, सर्वभद्रक, सिंहास्य, नन्दन, नन्दिवर्धन, हंस, वृष, सुवर्णेश, पद्मक और समुद्गक—ये प्रासादोंके नाम हैं। द्विजो! अब इनके विभागोंको सुनिये॥ २१–३०॥

शतशृङ्गश्चतुर्द्वारो भूमिकाषोडशोच्छ्रितः। नानाविचित्रशिखरो मेरुः प्रासाद उच्यते॥ ३१॥
मन्दरो द्वादशप्रोक्तः कैलासो नवभूमिकः। विमानच्छन्दकस्तद्वदनेकशिखराननः॥ ३२॥
स चाष्टभूमिकस्तद्वत् सप्तभिर्नन्दिवर्धनः। विषाणकसमायुक्तो नन्दनः स उदाहृतः॥ ३३॥
षोडशास्रसमायुक्तो नानारूपसमन्वितः। अनेकशिखरस्तद्वत् सर्वतोभद्र उच्यते॥ ३४॥
चित्रशालासमोपेतो विज्ञेयः पञ्चभूमिकः। वलभीच्छन्दकस्तद्वदनेकशिखराननः॥ ३५॥
वृषस्योच्छ्रायतस्तुल्यो मण्डलश्चास्रवर्जितः। सिंहः सिंहाकृतिर्ज्ञेयो गजो गजसमस्तथा॥ ३६॥
कुम्भः कुम्भाकृतिस्तद्वद् भूमिकानवकोच्छ्रयः। अङ्गुलीपुटसंस्थानः पञ्चाण्डकविभूषितः॥ ३७॥
षोडशास्रः समंताच्च विज्ञेयः स समुद्गकः। पार्श्वयोश्चन्द्रशालेऽस्य उच्छ्रायो भूमिकाद्वयम्॥ ३८॥
तथैव पद्मकः प्रोक्त उच्छ्रायो भूमिकात्रयम्। षोडशास्रः स विज्ञेयो विचित्रशिखरः शुभः॥ ३९॥
मृगराजस्तु विख्यातश्चन्द्रशालविभूषितः। प्राग्ग्रीवेण विशालेन भूमिकासु षडुन्नतः॥ ४०॥
अनेकश्चन्द्रशालश्च गजः प्रासाद इष्यते।

सौ शृङ्ग तथा चार द्वारवाला, सोलह खण्डोंमें ऊँचा, अनेकों विचित्र शिखरोंसे युक्त प्रासाद 'मेरु' कहलाता है। इसी प्रकार 'बारह खण्डोंवाला' मन्दर तथा नव खण्डोंवाला 'कैलास' कहा गया है। 'विमान' और 'छन्दक' भी उन्हींकी भाँति अनेक शिखरों और मुखोंसे युक्त तथा आठ खण्डोंवाले होते हैं। सात खण्डोंवाला 'नन्दिवर्धन' होता है। जो विषाणकसे संयुक्त रहता है, उसे 'नन्दन' कहा जाता है। जो प्रासाद सोलह पहलोंवाला, विविध रूपोंसे सुशोभित और अनेक शिखरोंसे संवलित होता है, उसे 'सर्वतोभद्र' कहते हैं। इसे चित्रशालासे संयुक्त तथा पाँच खण्डोंवाला जानना चाहिये। प्रासादके बलभी (बुर्ज) तथा छन्दकको भी उसी प्रकार अनेक शिखरों और मुखोंसे युक्त बनाना चाहिये। ऊँचाईमें वृषभके समान तथा मण्डलमें बिना पहलके सिंहप्रासादको सिंहकी आकृतिका तथा गजको गजके समान ही जानना चाहिये। कुम्भ आकृतिमें कुम्भकी भाँति और ऊँचाईमें नौ खण्डका हो। जिसकी स्थिति अंगुलीपुटकी भाँति हो, जो पाँच अण्डोंसे विभूषित और चारों ओरसे सोलह पहलवाला हो, उसे 'समुद्गक' जानना चाहिये। इसके दोनों पार्श्वोंमें चन्द्रशालाएँ हों और ऊँचाई दो खण्डोंसे युक्त हो। उसी प्रकारकी बनावट 'पद्मक'की भी होनी चाहिये, केवल ऊँचाईमें यह तीन खण्डोंवाला हो। इसे विचित्र शिखरोंसे युक्त, शुभदायक और सोलह पहलोंवाला जानना चाहिये। 'मृगराज' प्रासाद वह है, जो चन्द्रशालासे विभूषित, प्राग्ग्रीवसे युक्त और छः खण्डों (मंजिलों) तक ऊँचा हो। अनेक चन्द्रशालाओंसे युक्त प्रासाद 'गज' कहलाता है॥ ३१–४०१/२ ॥

(क्रमशः)

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

आवश्यक सूचना

डाकसे पुस्तकें मँगवानेवाले सज्जनोंसे निवेदन है कि हमारी पुस्तकें यहाँसे मँगवानेकी अपेक्षा अपने समीपके पुस्तक-विक्रेतासे प्राप्त करनेका प्रयास करें, जिससे आपको समय एवं भारी डाकखर्चकी बचत होगी और पुस्तकें भी आप स्वयं देखकर अच्छी ले सकेंगे।

रामचरितमानस सटीक मोटा टाइपका मूल्य ३०.०० है, जिसे रजिस्टर्ड पैकेटद्वारा मँगानेपर ६.७५ एवं वी० पी० द्वारा मँगानेपर ९.७५ डाकखर्च और लगेंगे।

जो ग्राहक यहाँपर मनीआर्डरद्वारा रुपये भेजते हैं उनका मनीआर्डर कार्यालयको मिलनेमें करीब एक माहका समय लग जाता है। अतः जल्दी पुस्तकें मँगानेवाले सज्जन मनीआर्डरसे रुपये न भेजकर गीताप्रेसके नाम गोरखपुरके किसी बैंकका ड्राफ्ट भेजकर उन्हें मँगा सकते हैं। इससे पुस्तकें भेजनेमें भी सुविधा रहेगी।

—व्यवस्थापक

निम्नलिखित पुस्तकें उपलब्ध हैं—

भागवत सटीक (प्रथम खण्ड)	२५.००	हनुमानबाहुक	.४०
भागवत सटीक (द्वितीय खण्ड)	२५.००	पार्वती-मंगल	.३०
भागवत सुधासागर (हिन्दी)	३०.००	वैराग्य-संदीपनी	.२५
गीता गुजराती भाषा टीका	६.००	बरवैरामायण	.१५
गीता मराठी अनुवाद	६.००	आशाकी नयी किरणें	३.५०
गीता मझोली, सजिल्द	४.००	अमृतके घूँट	३.००
गीता-पञ्चरत्न	१.५०	दुर्गासप्तशती, सटीक	३.००
गीताका भक्तियोग	४.००	मधुर	३.००
गीताका आरम्भ	३.५०	संतवाणी	२.५०
गीताकी सम्पत्ति और श्रद्धा	३.००	आनन्दमय जीवन	२.५०
गीताका कर्मयोग खण्ड १	३.२५	भगवच्चर्चा (भाग २)	२.५०
" " " २	४.००	विवेक-चूड़ामणि	२.००
गीता-दैनन्दिनी १९८५	२.५०	पातञ्जलयोगदर्शन, सटीक	१.८०
भजन-संग्रह सम्पूर्ण	५.००	जीवनका कर्तव्य	१.५०
अमृत-कण	४.५०	आत्मोद्धारके सरल उपाय	१.५०
विष्णुसहस्रनाम शांकरभाष्य	४.००	प्रेमदर्शन (भक्तिसूत्र)	२.००
रामचरितमानस मूल मझला	७.५०	विदुरनीति	१.५०
रामचरितमानस मूल गुटका	५.००	कल्याणकारी प्रवचन	१.५०
दोहावली	२.००	प्रेम-सत्संग-सुधा-माला	१.५०
रामाज्ञा-प्रश्न	१.२५	बालकोंकी बातें	१.५०
श्री कृष्ण-गीतावली	.६०	रामायणके आदर्श पात्र	१.५०
		सती द्रौपदी	१.५०

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

स्त्रियोंके लिये कर्तव्य-शिक्षा	१.२५
तत्त्वचिन्तामणि, भाग ६	३.००
सत्संगमाला	१.२५
चोखी कहानियाँ	१.२५
पिताकी सीख	१.२०
बड़ोंके जीवनसे शिक्षा	१.००
सच्चे ईमानदार बालक	.८०
दयालु-परोपकारी बालक-बालिकाएँ	.७५
वीर बालिकाएँ	.७५
साधन-पथ	.७५
वीर बालक	१.००
आदर्श धर्म (पढ़ो समझो और करो, भाग ४)	१.२५
भलेका भला और बुरेका बुरा (पढ़ो, समझो और करो, भाग ५)	१.५०
उपकारका बदला (पढ़ो, समझो और करो, भाग ६)	१.५०
असीम नीचता और असीम साधुता (पढ़ो, समझो और करो, भाग ७)	१.५०
नकली और असली प्रेम (पढ़ो, समझो और करो, भाग ८)	१.५०
भगवान्‌के सामने सच्चा सो सच्चा (पढ़ो, समझो और करो, भाग ९)	१.५०
आनन्दके आँसू (पढ़ो, समझो और करो, भाग ११)	१.५०
गुरु-माता-पिताके भक्त बालक	१.००
बालकोंके कर्तव्य	.६०
लीला-चित्र-मंदिर-दोहावली	.६०
भगवान्‌पर विश्वास	.८०
बालचित्र-रामायण	.८०
सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र	.७५
स्त्री-धर्म-प्रश्नोत्तरी	.६०
मानव-धर्म	.६०
गोवध भारतका कलंक एवं गायका माहात्म्य	.५०
गीता-निबन्धावली	.५०
बाल-शिक्षा	.५०
बालकके गुण	.४०
बाल-अमृत-वचन	.४०
ब्रह्मचर्य	.४०
कल्याणकारी आचरण	.४०
तर्पण एवं बलिवैश्वदेवविधि	.६०
बालकोंकी सीख	.३५
बालकोंके आचरण	.३५
ध्यान और मानसिक पूजा	.३०
ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप	.३०
भारतीय संस्कृति तथा शास्त्रोंमें नारी-धर्म	.३०
रामायण-मध्यमा-परीक्षा-पाठ्य-पुस्तक	.३५
विष्णुसहस्रनामस्तोत्र सटीक	.५०
नवधा-भक्ति	.३०
सीताराम-भजन	.३५
हरेराम-भजन-माला	.३०
भरतजीमें नवधा भक्ति	.२५
बालकोंकी बोलचाल	.२५
मूलरामायण	.२५
रामसहस्रनामस्तोत्रम्	.२५
श्रीरामगीता	.२५
हनुमानचालीसा	.२५
नारायण-कवच	.२०
अमोघ शिव-कवच	.२०
भगवन्नाम	.२०
प्रश्नोत्तरी	.२०
तीन आदर्श देवियाँ	.२०
श्रीसीताके चरित्रसे आदर्श शिक्षा	.२०
सत्संगकी सार बातें	.२०
सच्चा सुख और उसकी प्राप्तिके उपाय	.२०
गीता पढ़नेके लाभ	.२०
आनन्दकी लहरें	.२०

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-0 In Public Domain. Digitized by eGangotri

(संस्करण १,७०,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर ज्येष्ठ, श्रीकृष्ण-संवत् ५२११, मई १९८५

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
	कालिय-उद्धार	१०४१
२७०	प्रासाद-संलग्न मण्डपोंके नाम-स्वरूप-भेद और उनके निर्माणकी विधि ···	१०४३
२७१	राजवंशानुकीर्तन ··· ···	१०४६
२७२	कलियुगके प्रद्योतवंशी आदि राजाओंका वर्णन ··· ···	१०४८
२७३	आन्ध्रवंशीय, शकवंशी एवं यवनादि राजाओंका संक्षिप्त ऐतिहासिक विवरण ··· ···	१०५१
२७४	षोडशदानान्तर्गत तुलादानका वर्णन	१०५६
२७५	हिरण्यगर्भ-दानकी विधि ···	१०६४
२७६	ब्रह्माण्डदानकी विधि ··· ···	१०६६
२७७	कल्पपादप-दान-विधि ···	१०६८
२७८	गोसहस्र-दानकी विधि ···	१०७०
२७९	कामधेनु-दानकी विधि ···	१०७२
२८०	हिरण्याश्व-दानकी विधि ···	१०७४
२८१	हिरण्याश्वरथ-दानकी विधि ···	१०७५
२८२	हेमहस्तिरथ-दानकी विधि ···	१०७७
२८३	पञ्चलाङ्गल (हल) प्रदानकी विधि	१०७९
२८४	हेमधरा-(सुवर्णमयी पृथ्वी-) दानकी विधि ··· ···	१०८०
२८५	विश्वचक्र-दानकी विधि ···	१०८२
२८६	कनककल्पलता-दानकी विधि ···	१०८४
२८७	सप्तसागर-दानकी विधि	१०८६
२८८	रत्नधेनु-दानकी विधि ···	१०८७
२८९	महाभूत-घटदानकी विधि ···	१०८९
२९०	कल्पानुकीर्तन	१०९०
२९१	मत्स्यपुराणकी अनुक्रमणिका ···	१०९२
	पुराण-श्रवण-कालमें पालनीय धर्म ···	१०९५

चित्र-सूची

१	ओंकार-स्वरूप जगद्वन्द्य श्रीकृष्ण	(रेखा-चित्र)	आवरण-पृष्ठ
२	कालिय-उद्धार	(रंगीन चित्र)	मुख-पृष्ठ

प्रत्येक साधारण अङ्कका मूल्य
भारतमें १.०० रु०
विदेशमें १० पेंस

जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

कल्याणका वार्षिक मूल्य
भारतमें २४.०० रु०
विदेशमें ६०.०० रु०
(४ पौण्ड)

संस्थापक—ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये जगदीशप्रसाद जालानद्वारा गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

[भारत-सरकारद्वारा उपलब्ध कराये गये रियायती मूल्यके कागजपर मुद्रित]

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

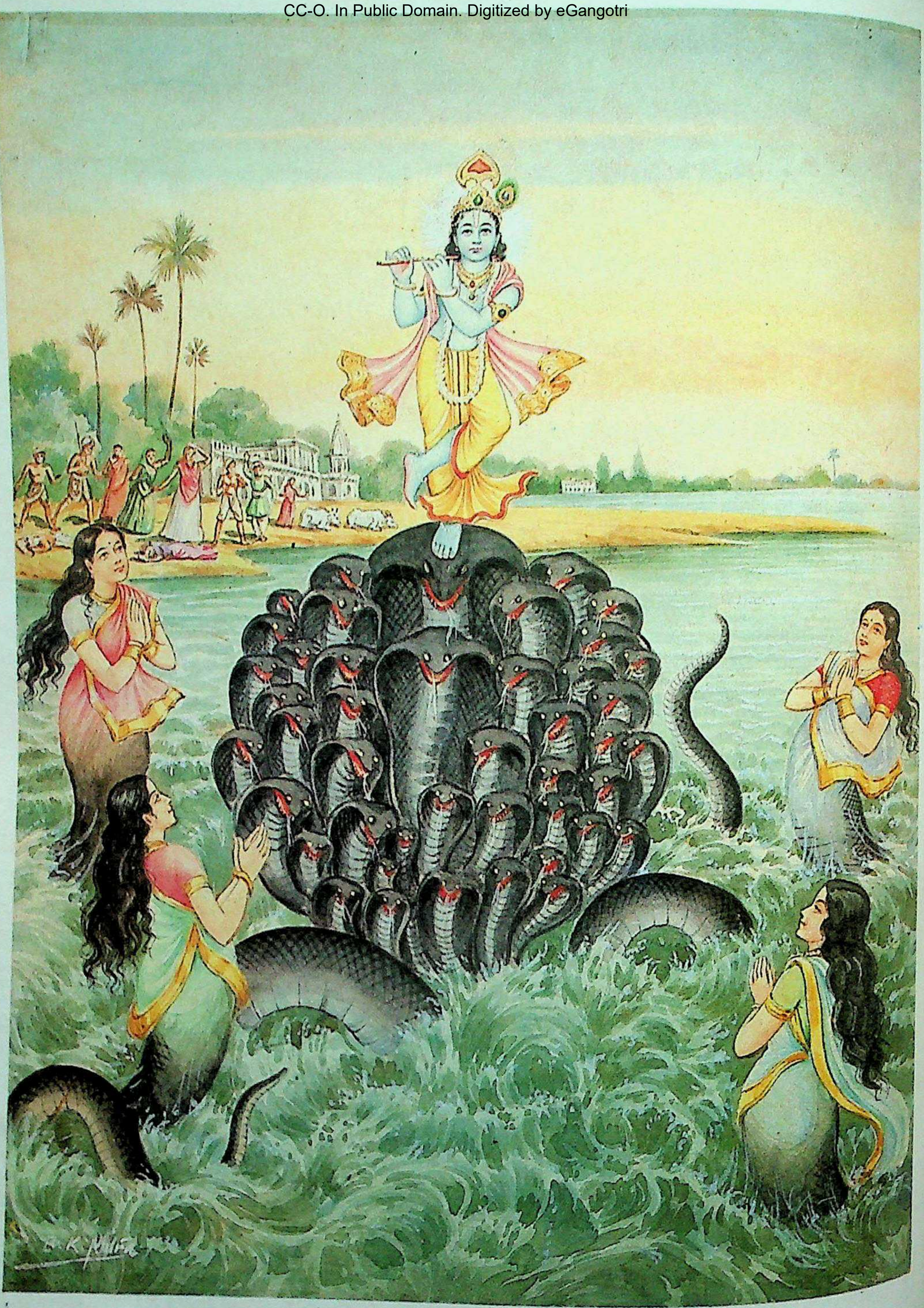

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

कालिय – उद्धार

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

कल्याण

वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते ।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते म्लेच्छान् मूर्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः ॥

वर्ष ५९ } गोरखपुर, सौर ज्येष्ठ, श्रीकृष्ण-संवत् ५२११, मई १९८५ई० { संख्या ५ पूर्ण संख्या ७०२

कालिय-उद्धार

एवं परिभ्रमहतौजसमुन्नतांसमानम्य तत्पृथुशिरःस्वधिरूढ आद्यः ।
तन्मूर्धरत्ननिकरस्पर्शातिताम्रपादाम्बुजोऽखिलकलादिगुरुर्ननर्त ॥

(श्रीमद्भा० १० । १६ । २६)

'इस प्रकार पैंतरा बदलते-बदलते उसका (कालियनागका) बल क्षीण हो गया । तब भगवान् श्रीकृष्णने उसके बड़े-बड़े सिरोंको तनिक दबा दिया और उनपर उछलकर सवार हो गये । कालियनागके मस्तकोंपर बहुत-सी लाल-लाल मणियाँ थीं । उनके स्पर्शसे भगवान्के सुकुमार तलुओंकी लालिमा और भी बढ़ गयी । अब क्या था ! नृत्य-गान आदि समस्त कलाओंके आदिप्रवर्तक भगवान् श्रीकृष्ण उसके सिरोंपर कलापूर्ण अति सुन्दर नृत्य करने लगे ।'

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

(गताङ्कसे आगे)

पर्यस्तगृहराजो वै गरुडो नाम नामतः ॥ ४१ ॥
सप्तभूम्युच्छ्रयस्तद्वच्चन्द्रशालात्रयान्वितः । भूमिकाषडशीतिस्तु बाह्यतः सर्वतो भवेत् ॥ ४२ ॥
तथान्यो गरुडस्तद्वदुच्छ्रयाद् दशभूमिकः । भूमिका षोडशास्त्रस्तु भूमिद्वयमथाधिकः ॥ ४३ ॥
पद्मतुल्यप्रमाणेन श्रीवृक्षक इति स्मृतः । पञ्चाण्डको द्विभूमिश्च गर्भे हस्तचतुष्टयम् ॥ ४४ ॥
वृषो भवति नाम्नायं प्रासादः सार्वकामिकः । सप्तकाः पञ्चकाश्चैव प्रासादा वै मयोदिताः ॥ ४५ ॥
सिंहास्येन समा ज्ञेया ये चान्ये तत्प्रमाणकाः ।
चन्द्रशालैः समोपेताः सर्वे प्राग्ग्रीवसंयुताः । ऐष्टका दारवाश्चैव शैला वा स्युः सतोरणाः ॥ ४६ ॥
मेरुः पञ्चाशद्धस्तः स्यान्मन्दरः पञ्चहीनकः । चत्वारिंशत् तु कैलासश्चतुस्त्रिंशद् विमानकः ॥ ४७ ॥
नन्दिवर्धनकस्तद्वद् द्वात्रिंशत् समुदाहृतः । त्रिंशता नन्दनः प्रोक्तः सर्वतोभद्रकस्तथा ॥ ४८ ॥
वर्तुलः पद्मकश्चैव विंशद्धस्त उदाहृतः । गजः सिंहश्च कुम्भश्च वलभीच्छन्दकस्तथा ॥ ४९ ॥
एते षोडशहस्ताः स्युश्चत्वारो देववल्लभाः । कैलासो मृगराजश्च विमानच्छन्दको मतः ॥ ५० ॥
एते द्वादशहस्ताः स्युरेतेषामिह सन्मतम् ।

'गरुड़' नामक प्रासाद पीछेकी ओर बहुत फैला हुआ, तीन चन्द्रशालाओंसे विभूषित और सात खण्ड ऊँचा होता है। उसके बाहर चारों ओर छियासी खण्ड होते हैं। एक अन्य प्रकारका भी गरुड़ प्रासाद होता है, जो ऊँचाईमें दस खण्ड ऊँचा होता है। 'पद्मक' सोलह पहलोंवाला तथा पूर्वकथित प्रासाद गरुड़से दो खण्ड अधिक ऊँचा होना चाहिये। पद्मके समान ही 'श्रीवृक्षक' प्रासादका परिमाण कहा जाता है। (प्रकोष्ठ) जिसमें पाँच अण्डक, दो खण्ड तथा मध्यभागमें चार हाथका विस्तार होता है, वह 'वृष' नामक प्रासाद सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला होता है। मैंने पाँच-सात प्रकारके प्रासादोंका वर्णन किया है। अतः अन्य प्रासादोंको, जिनका वर्णन नहीं किया गया, सिंहास्यके प्रमाणानुसार ही जान लेना चाहिये। वे सभी चन्द्रशालाओंसे संयुक्त तथा प्राग्ग्रीवसे संवलित रहेंगे। इन्हें ईंट, लकड़ी या पत्थरके तोरणसहित बनवाना चाहिये। 'मेरु' प्रासाद पचास हाथ, 'मन्दर' उससे पाँच हाथ न्यून अर्थात् पैंतालीस हाथ, 'कैलास' चालीस हाथ और विमान चौंतीस हाथका होता है। उसी प्रकार 'नन्दिवर्धन' बत्तीस हाथ तथा 'नन्दन' और 'सर्वतोभद्र' तीस हाथोंके कहे गये हैं। 'वर्तुल' और 'पद्मक'का परिमाण बीस हाथका कहा गया है। गज, सिंह, कुम्भ, वलभी तथा छन्दक—ये सोलह हाथके होते हैं। 'कैलास', 'मृगराज', 'विमान' और 'छन्दक'—ये बारह हाथके माने गये हैं। ये चारों देवताओंको अत्यन्त प्रिय हैं ॥ ४१—५०½ ॥

गरुडोऽष्टकरो ज्ञेयो हंसो दश उदाहृतः ॥ ५१ ॥
एवमेते प्रमाणेन कर्तव्याः शुभलक्षणाः । यक्षराक्षसनागानां मातृहस्तात् प्रशस्यते ॥ ५२ ॥
तथा मेर्वादयः सप्त ज्येष्ठलिङ्गे शुभावहाः । श्रीवृक्षकादयश्चाष्टौ मध्यमस्य प्रकीर्तिताः ॥ ५३ ॥
तथा हंसादयः पञ्च कनिष्ठे शुभदा मताः । वलभ्यच्छन्दके गौरी जटामुकुटधारिणी ॥ ५४ ॥
वरदाभयदा तद्वत् साक्षसूत्रकमण्डलुः ।
गृहे तु रक्तमुकुटा उत्पलाङ्कुरधारिणी । वरदाभयदा चापि पूजनीया सभर्तृका ॥ ५५ ॥
तपोवनस्थामितरां तां तु सम्पूजयेद् बुधः । देव्या विनायकस्तद्वद् वलभीच्छन्दके शुभः ॥ ५६ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रासादानुकीर्तनं नामैकोनसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६९ ॥

'प्रासाद 'गरुड़' आठ हाथोंका तथा 'हंस' दस हाथोंका कहा गया है। इस प्रकार उपर्युक्त प्रमाणके अनुसार चाहिये। यक्ष, राक्षस और नागोंके प्रासाद मातृहस्तके इन शुभ लक्षणसम्पन्न प्रासादोंकी रचना करनी

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

*

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

प्रमाणसे प्रशस्त माने गये हैं। मेरु आदि सात प्रासाद ज्येष्ठ लिङ्गके लिये शुभदायक हैं। 'श्रीवृक्षक' आदि आठ मध्यम लिङ्गके लिये शुभदायक कहे गये हैं। इसी प्रकार हंस आदि पाँच कनिष्ठ लिङ्गके लिये शुभदायक माने गये हैं। वलभी और छन्दक प्रासादमें गौरवर्णा, जटा-मुकुट-धारिणी एवं क्रमशः चार हाथोंमें—वरदमुद्रा, अभयमुद्रा, अक्षसूत्र और कमण्डलु धारण करनेवाली देवी शुभदायिनी हैं। गृहमें लाल मुकुट धारण करनेवाली, चार हाथोंमें क्रमशः कमल, अङ्कुश, वरदमुद्रा एवं अभयमुद्रासे युक्त देवीका पतिसहित पूजन करना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुषको दूसरी जो तपोवनमें स्थित रहनेवाली देवी हैं, उनकी भलीभाँति पूजा करनी चाहिये। देवीके साथ विनायक (गणेशजी) वलभी और छन्दक प्रासादमें शुभदायक होते हैं ॥ ५१—५६ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें प्रासादानुकीर्तन नामक दो सौ उनहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २६९ ॥

दो सौ सत्तरवाँ अध्याय

प्रासाद-संलग्न मण्डपोंके नाम, स्वरूप, भेद और उनके निर्माणकी विधि

सूत उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मण्डपानां तु लक्षणम्। मण्डपप्रवरान् वक्ष्ये प्रासादस्यानुरूपतः ॥ १ ॥
विविधा मण्डपाः कार्या ज्येष्ठमध्यकनीयसः। नामतस्तान् प्रवक्ष्यामि शृणुध्वमृषिसत्तमाः ॥ २ ॥
पुष्पकः पुष्पभद्रश्च सुव्रतोऽमृतनन्दनः। कौसल्यो बुद्धिसंकीर्णो गजभद्रो जयावहः ॥ ३ ॥
श्रीवत्सो विजयश्चैव वास्तुकीर्तिः श्रुतिंजयः। यज्ञभद्रो विशालश्च सुश्लिष्टः शत्रुमर्दनः ॥ ४ ॥
भागपञ्चो नन्दनश्च मानवो मानभद्रकः। सुग्रीवो हरितश्चैव कर्णिकारः शतर्धिकः ॥ ५ ॥
सिंहश्च श्यामभद्रश्च सुभद्रश्च तथैव च। सप्तविंशतिराख्याता लक्षणं शृणुत द्विजाः ॥ ६ ॥
स्तम्भा यत्र चतुःषष्टिः पुष्पकः समुदाहृतः। द्विषष्टिः पुष्पभद्रस्तु षष्टिः सुव्रत उच्यते ॥ ७ ॥
अष्टपञ्चाशकस्तम्भः कथ्यतेऽमृतनन्दनः। कौसल्यः षट् च पञ्चाशच्चतुःपञ्चाशता पुनः ॥ ८ ॥
नाम्ना तु बुद्धिसंकीर्णो द्विहीनो गजभद्रकः। जयावहस्तु पञ्चाशच्छ्रीवत्सस्तद् द्विहीनकः ॥ ९ ॥
विजयस्तद्द्विहीनः स्याद् वास्तुकीर्तिस्तथैव च। द्वाभ्यामेव प्रहीयेत ततः श्रुतिंजयोऽपरः ॥ १० ॥

सूतजी कहते हैं—श्रेष्ठ ऋषिगण ! अब मैं प्रासादोंके अनुरूप मण्डपोंका लक्षण बतला रहा हूँ। इस प्रसङ्गमें श्रेष्ठ मण्डपोंका भी वर्णन करूँगा। ज्येष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ-भेदोंसे विविध मण्डपोंकी रचना करनी चाहिये। मैं उन सभीका आनुपूर्वी नाम-निर्देश-पूर्वक वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये। द्विजगण ! पुष्पक, पुष्पभद्र, सुव्रत, अमृतनन्दन, कौसल्य, बुद्धि-संकीर्ण, गजभद्र, जयावह, श्रीवत्स, विजय, वास्तुकीर्ति, श्रुतिंजय, यज्ञभद्र, विशाल, सुश्लिष्ट, शत्रुमर्दन, भागपञ्च, नन्दन, मानव, मानभद्रक, सुग्रीव, हरित, कर्णिकार, शतर्धिक, सिंह, श्यामभद्र तथा सुभद्र—ये सत्ताईस प्रकारके मण्डप कहे गये हैं। अब आपलोग इनके लक्षणोंको सुनिये। जिस मण्डपमें चौंसठ स्तम्भ लगे हों, उस मण्डपको 'पुष्पक' कहते हैं। इसी प्रकार बासठ स्तम्भवालेको 'पुष्पभद्र' और साठ स्तम्भवालेको 'सुव्रत' कहा गया है। अट्ठावन स्तम्भवाला मण्डप 'अमृतनन्दन' कहा जाता है। छप्पन स्तम्भोंवाले मण्डप-को 'कौसल्य', चौवन स्तम्भवालेको बुद्धिसंकीर्ण, उससे

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

दो स्तम्भ कम अर्थात् बावन स्तम्भवालेको 'गजभद्रक', पचास स्तम्भवालेको 'जयावह', अड़तालीस स्तम्भोंवाले मण्डपको 'श्रीवत्स' तथा छियालीस स्तम्भोंवालेको 'विजय' कहते हैं। उसी प्रकार छियालीस स्तम्भोंवाला मण्डप 'वास्तुकीर्ति' कहलाता है। चौवालीस स्तम्भोंवाले मण्डपको 'श्रुतिजय' कहते हैं ॥ १-१० ॥

चत्वारिंशद्यज्ञभद्रस्तद्द्विहीनो विशालकः। षट्त्रिंशच्चैव सुश्लिष्टो द्विहीनः शत्रुमर्दनः ॥ ११ ॥
द्वात्रिंशद्भागपञ्चस्तु त्रिंशद्भिर्नन्दनः स्मृतः। अष्टाविंशन्मानवस्तु मानभद्रो द्विहीनकः ॥ १२ ॥
चतुर्विंशस्तु सुग्रीवो द्वाविंशो हरितो मतः। विंशतिः कर्णिकारः स्यादष्टादश शतर्धिकः ॥ १३ ॥
सिंहो भवेद् द्विहीनश्च श्यामभद्रो द्विहीनकः। सुभद्रस्तु तथा प्रोक्तो द्वादशस्तम्भसंयुतः ॥ १४ ॥
मण्डपाः कथितास्तुभ्यं यथावल्लक्षणान्विताः। त्रिकोणं वृत्तमर्धेन्दुमष्टकोणं द्विरष्टकम् ॥ १५ ॥
चतुष्कोणं तु कर्तव्यं संस्थानं मण्डपस्य तु। राज्यं च विजयश्चैव आयुर्वर्धनमेव च ॥ १६ ॥
पुत्रलाभः श्रियः पुष्टिस्त्रिकोणादिक्रमाद् भवेत्। एवं तु शुभदाः प्रोक्ताश्चान्यथा त्वशुभावहाः ॥ १७ ॥
चतुःषष्टिपदं कृत्वा मध्ये द्वारं प्रकल्पयेत्। विस्ताराद् द्विगुणोच्छ्रायं तत्त्रिभागः कटिर्भवेत् ॥ १८ ॥
विस्तारार्धो भवेद् गर्भो भित्तयोऽन्याः समन्ततः। गर्भपादेन विस्तीर्णं द्वारं त्रिगुणमायतम् ॥ १९ ॥
तथा द्विगुणविस्तीर्णमुखस्तद्वदुदुम्बरः। विस्तारपादप्रतिमं बाहुल्यं शाखयोः स्मृतम् ॥ २० ॥

'यज्ञभद्र'-मण्डपमें चालीस, विशालकमें उससे दो स्तम्भ न्यून अर्थात् अड़तीस, 'सुश्लिष्ट'में छत्तीस और 'शत्रुमर्दन'में उससे दो स्तम्भ न्यून अर्थात् चौंतीस, 'भागपञ्च'में बत्तीस और 'नन्दन'में तीस स्तम्भ माने गये हैं। अट्ठाईस स्तम्भोंका 'मानव', छब्बीसका 'मानभद्र', चौबीसका 'सुग्रीव', बाईसका 'हरित', बीसकी 'कर्णिका', अठारहका 'शतर्धिक', सोलहका 'सिंह', चौदहका 'श्यामभद्र' और बारहका 'सुभद्र' कहा गया है। इस प्रकार मैंने लक्षणोंसहित मण्डपोंके नाम तुम्हें बतला दिया। इन मण्डपोंकी स्थापना त्रिकोण, गोलाकार, अर्धचन्द्राकार, अष्टकोण, दशकोण अथवा चतुष्कोणरूपमें करनी चाहिये। इन त्रिकोणादिकोंकी स्थापनासे क्रमशः राज्य, विजय, आयुकी वृद्धि, पुत्र-लाभ, लक्ष्मी और पुष्टिकी प्राप्ति होती है। इस प्रकारके मण्डप मङ्गलदायक तथा इनसे विपरीत अमङ्गलकारक होते हैं। गृहके मध्यमें चौंसठ पदोंकी कल्पनाकर मध्यमें द्वार बनाना चाहिये। चौड़ाईसे ऊँचाई दुगुनी होनी चाहिये और उसके कटिभागको तृतीयांशके बराबर बनाना चाहिये। चौड़ाईका आधा मध्यभाग होना चाहिये। उसके चारों ओर दूसरी दीवालें रहेंगी। मध्यभागके चतुर्थांशसे तिगुना लम्बा और दूना विस्तृत द्वार होना चाहिये, जो गूलरका बना हुआ हो। दोनों शाखाओंका विस्तार द्वारके विस्तारका चतुर्थांश हो ॥ ११-२० ॥

त्रिपञ्चसप्तनवभिः शाखाभिर्द्वारमिष्यते। कनिष्ठमध्यमं ज्येष्ठं यथायोगं प्रकल्पयेत् ॥ २१ ॥
अङ्गुलानां शतं सार्धं चत्वारिंशत्तथोन्नतम्। त्रिंशद्भिशोत्तरं चान्यद्वान्यमुत्तममेव च ॥ २२ ॥
शतं चाशीतिसहितं वातनिर्गमने भवेत्। अधिकं दशभिस्तद्वत् तथा षोडशभिः शतम् ॥ २३ ॥
शतमानं तृतीयं च नवत्याशीतिभिस्तथा। दश द्वाराणि चैतानि क्रमेणोक्तानि सर्वदा ॥ २४ ॥
अन्यानि वर्जनीयानि मानसोद्वेगदानि तु। द्वारवेधं प्रयत्नेन सर्ववास्तुषु वर्जयेत् ॥ २५ ॥
वृक्षकोणभ्रमिद्वारस्तम्भकूपध्वजादिभिः। कुड्यश्वभ्रेण वा विद्धं द्वारं न शुभदं भवेत् ॥ २६ ॥
क्षयश्च दुर्गतिश्चैव प्रवासः क्षुद्भयं तथा। दौर्भाग्यं बन्धनं रोगो दारिद्र्यं कलहं तथा ॥ २७ ॥
विरोधश्चार्थनाशश्च सर्वं वेधाद् भवेत् क्रमात्। पूर्वेण फलिनो वृक्षाः क्षीरवृक्षास्तु दक्षिणे ॥ २८ ॥
पश्चिमेन जलं श्रेष्ठं पद्मोत्पलविभूषितम्। उत्तरे सरलैस्तालैः शुभा स्यात् पुष्पवाटिका ॥ २९ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

मण्डप-द्वार तीन, पाँच, सात अथवा नौ शाखाओंसे युक्त बनते हैं, जो क्रमशः कनिष्ठ, मध्यम और ज्येष्ठ कहलाते हैं। एक सौ साढ़े चालीस अंगुल ऊँचा द्वार धनप्रद एवं उत्तम होता है। अन्य दो एक सौ तीस तथा एक सौ बीस अंगुलके होते हैं। शुद्ध वायुके आने-जानेके लिये एक सौ अस्सी अंगुल ऊँचा द्वार होना चाहिये। उसी प्रकार एक सौ दस, एक सौ सोलह, एक सौ नब्बे तथा असी अंगुलके द्वार होने चाहिये। सर्वदा क्रमशः ये दस प्रकारके द्वार कहे गये हैं। इनके अतिरिक्त अन्य प्रकारके द्वार वर्जित हैं; क्योंकि वे चित्तको उद्विग्न करनेवाले होते हैं। सभी वास्तुओंमें प्रयत्नपूर्वक द्वारवेधसे बचना चाहिये। सामनेकी ओर वृक्ष, कोण, भ्रमि, द्वार, स्तम्भ, कूप, ध्वज, दीवाल और गड्ढा—इन सबसे विद्ध हुआ द्वार मंगलकारी नहीं होता। इन द्वारवेधसे क्रमशः क्षय, दुर्गति, प्रवास, क्षुधाका भय, दुर्भाग्य, बन्धन, रोग, दरिद्रता, कलह, विरोध, धनहानि—ये सब कुपरिणाम होते हैं। घरके पूर्व दिशामें फलदार वृक्ष, दक्षिण दिशामें दूधवाले वृक्ष, पश्चिम दिशामें विविध भाँतिके कमलोंसे सुशोभित जल तथा उत्तर दिशामें चीड़ और ताड़के वृक्षोंसे युक्त पुष्पवाटिका मङ्गलदायिनी होती है॥ २१—२९॥

सर्वतस्तु जलं श्रेष्ठं स्थिरमस्थिरमेव च। पार्श्वतश्चापि कर्तव्यं परिवारादिकालयम्॥ ३०॥
याम्ये तपोवनस्थानमुत्तरे मातृकागृहम्। महानसं तथाऽऽग्नेये नैर्ऋत्येऽथ विनायकम्॥ ३१॥
वारुणे श्रीनिवासस्तु वायव्ये गृहमालिका। उत्तरे यज्ञशाला तु निर्माल्यस्थानमुत्तरे॥ ३२॥
वारुणे सोमदैवत्ये बलिनिर्वपणं स्मृतम्। पुरतो वृषभस्थानं शेषे स्यात् कुसुमायुधः॥ ३३॥
जलवापी तथैशाने विष्णुस्तु जलशाय्यपि। एवमायतनं कुर्यात् कुण्डमण्डपसंयुतम्॥ ३४॥
घण्टावितानकसतोरणचित्रयुक्तं नित्योत्सवप्रमुदितेन जनेन सार्धम्।
यः कारयेत् सुरगृहं विविधं ध्वजाढ्यं श्रीस्तं न मुञ्चति सदा दिवि पूज्यते च॥ ३५॥
एवं गृहार्चनविधावपि शक्तितः स्यात् संस्थापनं सकलमन्त्रविधानयुक्तम्।
गोवस्त्रकाञ्चनहिरण्यधराप्रदानं देयं गुरुद्विजवरेषु तथान्नदानम्॥ ३६॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रासादानुकीर्तनं नाम सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २७०॥

जल सभी दिशाओंमें श्रेष्ठ है, चाहे वह (नदी आदिका) बहता हुआ हो अथवा (कूप सरोवर आदिका) अचल। मुख्य भवनके दोनों पार्श्वोंमें परिवार-वर्गका निवासस्थान बनाना चाहिये। दक्षिणकी ओर तपोवन अथवा तपस्याका स्थान, उत्तरमें मातृकाओंका भवन, अग्निकोणमें पाकशाला, नैर्ऋत्यकोणमें गणेशका निवास, पश्चिममें लक्ष्मीका निवास, वायव्यकोणमें गृहमालिका, उत्तरमें यज्ञशाला और निर्माल्यका स्थान होना चाहिये। पश्चिमकी ओर चन्द्रादि देवताओंके लिये बलिदान देनेका स्थान, सामनेकी ओर वृषभका स्थान और शेष भागमें कामदेवके स्थानका निर्माण करना चाहिये। ईशानकोणमें जलयुक्त बावली रहे तथा वहीं जलशायी विष्णु भगवान्‌का भी स्थान रहे। इस प्रकार कुण्ड और मण्डपसे युक्त गृहका निर्माण करना चाहिये। जो मनुष्य घण्टा, वितान, तोरण तथा चित्रसे सुशोभित, नित्य महोत्सवसे प्रमुदित जनसमूहके साथ विविध ध्वजाओंसे विभूषित देव-मन्दिर बनवाता है, उसे लक्ष्मी कभी नहीं छोड़तीं और स्वर्गमें उसकी पूजा होती है। इसी प्रकार गृहपूजनके अवसरपर भी अपनी शक्तिके अनुरूप सभी मन्त्रों और विधानोंसे युक्त स्थापना करनी चाहिये। उस समय गुरु तथा ब्राह्मणोंको गौ, वस्त्र, सुवर्णके आभूषण, सुवर्ण और पृथ्वीका दान देना चाहिये तथा अन्नदान भी करना चाहिये॥ ३०—३६॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें प्रासाद-अनुकीर्तन नामक दो सौ सत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २७०॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

दो सौ एकहत्तरवाँ अध्याय

राजवंशानुकीर्तन*

ऋषय ऊचुः

पूरोर्वंशस्त्वया सूत सभविष्यो निवेदितः। सूर्यवंशे नृपा ये तु भविष्यन्ति हि तान् वद ॥ १ ॥
तथैव यादवे वंशे राजानः कीर्त्तिवर्धनाः। कलौ युगे भविष्यन्ति तानपीह वदस्व नः ॥ २ ॥
वंशान्ते ज्ञातयो याश्च राज्यं प्राप्स्यन्ति सुव्रताः। ब्रूहि संक्षेपतस्तासां यथाभव्यमनुक्रमात् ॥ ३ ॥

ऋषियोंने पूछा--सूतजी ! आप पिछली कथाके बताइये तथा इन वंशोंके अन्त हो जानेपर जो अन्य
प्रसङ्गमें पूरुवंशी राजाओंके वंशका भविष्यसहित वर्णन शुभ व्रत-परायण जातियाँ राज्य करेंगी, उनका भी
हमलोगोंको सुना चुके हैं। अब आगे कलियुग- संक्षेपमें वर्णन कीजिये। इसीके साथ-साथ क्रमशः यह
में जो सूर्यवंशी राजा होंगे, उनका वर्णन कीजिये। इसी भी बताइये कि भविष्यमें कौन-सी विशेष घटनाएँ
प्रकार जो कीर्तिशाली यदुवंशी राजा होंगे, उन्हें भी घटित होंगी ? ॥ १-३ ॥

सूत उवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि हीक्ष्वाकूणां महात्मनाम्।
बृहद्बलस्य दायादो वीरो राजा बृहत्क्षयः। उरुक्षयः सुतस्तस्य वत्सव्यूहो उरुक्षयात् ॥ ४ ॥
वत्सव्यूहात् प्रतिव्योमस्तस्य पुत्रो दिवाकरः। तस्यैव मध्यदेशे तु अयोध्या नगरी शुभा ॥ ५ ॥
दिवाकरस्य भविता सहदेवो महायशाः। सहदेवस्य दायादो बृहदश्वो महामनाः ॥ ६ ॥
तस्य भानुरथो भाव्यः प्रतीपाश्वश्च तत्सुतः। प्रतीपाश्वसुतश्चापि सुप्रतीको भविष्यति ॥ ७ ॥
मरुदेवः सुतस्तस्य सुनक्षत्रस्ततोऽभवत्। किंनराश्वः सुनक्षत्राद् भविष्यति परंतपः ॥ ८ ॥
किंनराश्वादन्तरिक्षो भविष्यति महामनाः। सुषेणश्चान्तरिक्षाच्च सुमित्रश्चाप्यमित्रजित् ॥ ९ ॥
सुमित्रजो बृहद्राजो धर्मी तस्य सुतः स्मृतः। पुत्रः कृतंजयो नाम धर्मिणः स भविष्यति ॥ १० ॥
कृतंजयसुतो विद्वान् भविष्यति रणंजयः। भविता संजयश्चापि वीरो राजा रणंजयात् ॥ ११ ॥
संजयस्य सुतः शाक्यः शाक्याच्छुद्धोदनोऽभवत्। शुद्धोदनस्य भविता सिद्धार्थो राहुलः सुतः ॥ १२ ॥
प्रसेनजित् ततो भाव्यः क्षुद्रको भविता ततः। क्षुद्रकात् कुलको भाव्यः कुलकात् सुरथः स्मृतः ॥ १३ ॥
सुमित्रः सुरथाज्जातो ह्यन्त्यस्तु भविता नृपः। एते चेक्ष्वाकवः प्रोक्ता भविष्या ये कलौ युगे ॥ १४ ॥
बृहद्बलान्वये जाता भविष्याः कुलवर्धनाः। अत्रानुवंशश्लोकोऽयं विप्रैर्गीतः पुरातनैः ॥ १५ ॥
शूराश्च कृतविद्याश्च सत्यसंधा जितेन्द्रियाः। निःशेषाः कथिताश्चैव नृपा ये वै पुरातनाः ॥ १६ ॥
इक्ष्वाकूणामयं वंशः सुमित्रान्तो भविष्यति। सुमित्रं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ ॥ १७ ॥
इत्येवं मानवो वंशः प्रागेव समुदाहृतः।

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! इसके बाद मैं वत्सव्यूह होगा। वत्सव्यूहका पुत्र प्रतिव्योम तथा
इक्ष्वाकुवंशी महात्मा राजाओंका वर्णन कर रहा हूँ। उसका पुत्र दिवाकर होगा। उसीकी राजधानी मध्य
सूर्यवंशी राजा बृहद्बलका पुत्र वीरवर राजा बृहत्क्षय देशमें अयोध्या नामक सुन्दर नगरी होगी। दिवाकरका
होगा तथा बृहत्क्षयका पुत्र उरुक्षय और उरुक्षयका पुत्र पुत्र महायशस्वी सहदेव होगा तथा सहदेवका पुत्र

* सभी पुराणोंकी अनेक छपी तथा हस्तलिखित प्रतियोंको एकत्र कर तथा पाठका संशोधनकर विल्सन्, स्मिथ,
पार्जीटर आदिने इनका सुन्दर अनुवाद भी प्रस्तुत किया है और पीछे वही मिल, एलिफिंस्टन, स्मिथ, कैम्ब्रिज आदिके
भारतके प्राचीन इतिहासोंका आधार बना।

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

महामना बृहदश्व होगा। उस बृहदश्वका पुत्र भानुरथ तथा भानुरथका पुत्र प्रतीपाश्व होगा। प्रतीपाश्वका पुत्र सुप्रतीक होगा और उसका पुत्र मरुदेव होगा। मरुदेवका पुत्र सुनक्षत्र उत्पन्न होगा। सुनक्षत्रका पुत्र शत्रुओंको संतप्त करनेवाला किंनराश्व होगा और किंनराश्वका पुत्र महामना अन्तरिक्ष होगा। अन्तरिक्षका पुत्र सुषेण तथा उसका पुत्र शत्रुओंको जीतनेवाला सुमित्र होगा। (प्रथम) सुमित्रका पुत्र बृहद्राज और बृहद्राजका पुत्र धर्मी तथा धर्मीका पुत्र कृतंजय होगा। कृतंजयका पुत्र विद्वान् रणंजय और रणंजयका पुत्र वीरराजा संजय उत्पन्न होगा। संजयका पुत्र शाक्य तथा शाक्यका पुत्र राजा शुद्धोदन होगा। शुद्धोदनका पुत्र सिद्धार्थ तथा सिद्धार्थका पुत्र राहुल होगा। उससे प्रसेनजित उत्पन्न होगा और उससे क्षुद्रककी उत्पत्ति होगी। क्षुद्रकसे कुलक और कुलकसे सुरथ उत्पन्न होगा। सुरथसे सुमित्र (द्वितीय) पैदा होगा, जो इस वंशका अन्तिम राजा होगा। ये इक्ष्वाकुवंशी राजा हैं, जो कलियुगमें उत्पन्न होंगे। ये सभी राजा शूर, विद्वान्, जितेन्द्रिय एवं कुलकी वृद्धि करनेवाले राजा बृहद्बलके वंशमें उत्पन्न होंगे। प्राचीनकालिक ब्राह्मणोंने इस वंशपरम्पराको सूचित करनेवाला इस भावका एक श्लोक कहा है—'इक्ष्वाकुवंशीय राजाओंका यह वंश राजा सुमित्रके राज्यकालतक होगा। कलियुगमें यह वंश राजा सुमित्रको प्राप्त कर विश्राम करेगा।' इस प्रकार यह सूर्यवंश पहले ही कहा जा चुका है॥ ४-१७½॥

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि मागधा ये बृहद्रथाः॥ १८॥
जरासंधस्य ये वंशे सहदेवान्वये नृपाः। अतीता वर्तमानाश्च भविष्यांश्च तथा पुनः॥ १९॥
संग्रामे भारते वृत्ते सहदेवे निपातिते। सोमाधिस्तस्य दायादो राजाभूच्च गिरिव्रजे॥ २०॥
पञ्चाशतं तथाष्टौ च समा राज्यमकारयत्। श्रुतश्रवाश्चतुःषष्टिं समास्तस्यान्वयेऽभवत्॥ २१॥
अयुतायुस्तु षट्त्रिंशत् समा राज्यमकारयत्। चत्वारिंशत् समास्तस्य निरमित्रो दिवं गतः॥ २२॥
पञ्चाशतं समाः षट् च सुक्षत्रः प्राप्तवान् महीम्। बृहत्कर्मा त्रयोविंशदब्दं राज्यमकारयत्॥ २३॥
सेनाजित् सम्प्रयातश्च भुक्त्वा पञ्चाशतं महीम्। श्रुतंजयस्तु वर्षाणि चत्वारिंशद् भविष्यति॥ २४॥
अष्टाविंशतिवर्षाणि महीं प्राप्स्यति वै विभुः। अष्टपञ्चाशतं षट् च राज्ये स्थास्यति वै शुचिः॥ २५॥
अष्टाविंशत् समा राजा क्षेमो भोक्ष्यति वै महीम्। सुव्रतस्तु चतुःषष्टिं राज्यं प्राप्स्यति वीर्यवान्॥ २६॥
पञ्चत्रिंशतिवर्षाणि सुनेत्रो भोक्ष्यते महीम्। भोक्ष्यते निर्वृतिश्चेमामष्टपञ्चाशतं समाः॥ २७॥
अष्टाविंशत् समा राज्यं त्रिनेत्रो भोक्ष्यते ततः। चत्वारिंशत् तथाष्टौ च द्युमत्सेनो भविष्यति॥ २८॥
त्रयस्त्रिंशत्तु वर्षाणि महीनेत्रः प्रकाश्यते। द्वात्रिंशत्तु समा राजा चञ्चलस्तु भविष्यति॥ २९॥
रिपुंजयस्तु वर्षाणि पञ्चाशत् प्राप्स्यते महीम्।
द्वात्रिंशति नृपा ह्येते भवितारो बृहद्रथाः। पूर्णं वर्षसहस्रं तु तेषां राज्यं भविष्यति॥ ३०॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राजवंशानुकीर्तने एकसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २७१॥

अब इसके बाद मैं बृहद्रथके वंशवाले मगधके राजाओंका, जो जरासंधके पुत्र सहदेवके वंशमें भूत, वर्तमान तथा भविष्यकालमें उत्पन्न होंगे, वर्णन कर रहा हूँ। महाभारत-युद्धमें सहदेवके मारे जानेपर उनका पुत्र सोमाधि गिरिव्रजमें राजा हुआ। उसने अट्ठावन वर्षोंतक राज्य किया। उसीके वंशमें श्रुतश्रवा नामक राजा हुआ, जो चौंसठ वर्षोंतक राज्य करता रहा। उसके बाद उसका पुत्र अयुतायु राजा हुआ, जिसने छत्तीस वर्षोंतक राज्य किया। उसका पुत्र निरमित्र हुआ, जो चालीस वर्षोंतक

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

राज्य कर स्वर्गवासी हो गया। उसके बाद राजा सुक्षत्र उत्पन्न हुआ, जिसने छप्पन वर्षोंतक राज्य किया। तदनन्तर बृहत्कर्मनि तेईस वर्षोंतक राज्य किया। उसके बाद राजा सेनाजित्ने पचास वर्षोंतक पृथ्वीका पालनकर स्वर्गकी राह ली। तदनन्तर श्रुतंजय नामक राजा होगा, जो चालीस वर्षोंतक राज्य करेगा। उसके बाद विभु अट्ठाईस वर्षोंतक पृथ्वीपर शासक होगा। तत्पश्चात् राजा शुचि चौंसठ वर्षोंतक राज्यपर स्थित रहेगा। उसके बाद राजा क्षेम अट्ठाईस वर्षोंतक पृथ्वीका उपभोग करेगा। तदुपरान्त पराक्रमी सुव्रत चौंसठ वर्षोंके लिये राज्य प्राप्त करेगा। उसके उपरान्त सुनेत्र पच्चीस वर्षोंतक पृथ्वीका उपभोग करेगा। तदनन्तर निवृत्ति अट्ठावन वर्षोंतक पृथ्वीका उपभोग करेगा। उसके बाद राजा त्रिनेत्र अट्ठाईस वर्षतक राज्यका भोग करेगा। तदनन्तर अड़तालीस वर्षतक द्युमत्सेन राजा होगा। उसके बाद तैंतीस वर्षोंतक महीनेत्रका राज्य होगा। तदुपरान्त बत्तीस वर्षतक चञ्चल राजा होगा। उसके बाद पचास वर्षोंतक पृथ्वी रिपुंजयके हाथमें रहेगी। इस प्रकार ये बत्तीस राजा बृहद्रथके वंशमें उत्पन्न होंगे। उनका राज्यकाल पूरा एक सहस्र वर्षका होगा॥ १८-३०॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें राजवंशका कीर्तन नामक दो सौ एकहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २७१॥

दो सौ बहत्तरवाँ अध्याय

कलियुगके प्रद्योतवंशी आदि राजाओंका वर्णन

सूत उवाच

बृहद्रथेष्वतीतेषु वीतिहोत्रेष्ववन्तिषु। पुलकः स्वामिनं हत्वा स्वपुत्रमभिषेक्ष्यति॥ १॥
मिषतां क्षत्रियाणां च बालकः पुलकोद्भवः। स वै प्रणतसामन्तो भविष्यो नयवर्जितः॥ २॥
त्रयोविंशत् समा राजा भविता स नरोत्तमः। अष्टाविंशतिवर्षाणि पालको भविता ततः॥ ३॥
विशाखयूपो भविता नृपः पञ्चाशतिं तथा समाः। एकविंशत् समा राजा सूर्यकस्तु भविष्यति॥ ४॥
भविष्यति समा त्रिंशत् तत्सुतो नन्दिवर्धनः।
द्विपञ्चाशत्ततो भुक्त्वा प्रणष्टाः पञ्चते नृपाः। हत्वा तेषां यशः कृत्स्नं शिशुनागो भविष्यति॥ ५॥
वाराणस्यां सुतं स्थाप्य श्रयिष्यति गिरिव्रजम्। शिशुनागश्च वर्षाणि चत्वारिंशद् भविष्यति॥ ६॥
काकवर्णः सुतस्तस्य षट्त्रिंशत् प्राप्स्यते महीम्। षड्विंशच्चैव वर्षाणि क्षेमधर्मा भविष्यति॥ ७॥
चतुर्विंशत् समाः सोऽपि क्षेमजित् प्राप्स्यते महीम्। अष्टाविंशतिवर्षाणि बिम्बसारो भविष्यति॥ ८॥
अजातशत्रुर्भविता पञ्चविंशत् समा नृपः। पञ्चविंशत् समा राजा दर्शकस्तु भविष्यति॥ ९॥
उदासी[1] भविता तस्मात् त्रयस्त्रिंशत् समा नृपः। स वै पूर्वपरं राजा दक्षिण्यां कुसुमाह्वयम्॥ १०॥
गङ्गाया दक्षिणे कूले चतुर्थे तु करिष्यति। चत्वारिंशत् समा भाव्यो राजा वै नन्दिवर्धनः॥ ११॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! (मगधमें) बृहद्रथ-वंशीय एवं अवन्तिदेशमें वीतिहोत्रवंशीय राजाओंके समाप्त हो जानेपर पुलक अपने स्वामी (रिपुंजय)को मारकर उसके स्थानपर अपने पुत्रको अभिषिक्त करेगा। पुलकसे उत्पन्न हुआ वह बालक क्षत्रियोंके देखते-देखते केवल शक्तिके बलपर सामन्तोंद्वारा वन्दनीय हो जायगा, किंतु उसका शासन नीति-धर्म-पूर्ण न होगा। वह नरोत्तम तेईस वर्षोंतक राज्य करेगा। इसके बाद अट्ठाईस वर्षोंतक पालक राजा होगा। तत्पश्चात् विशाखयूप नामक राजा होगा, जो पचास पर्षोंतक राज्य करेगा। फिर सूर्यक इक्कीस वर्षोंतक

१. अन्यत्र सर्वत्र 'उदयी' पाठ है।

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

राज्य करेगा। उसके बाद उसका पुत्र नन्दिवर्धन राजा होगा, जो तीस वर्षोंतक राज्य करेगा। इस प्रकार ये पाँच राजा बावन वर्षोंतक पृथ्वीका उपभोग करके नष्ट हो जायँगे। तदनन्तर इन राजाओंके सम्पूर्ण यशका अपहरण करके शिशुनाग नामक राजा होगा, जो वाराणसी नगरीमें अपने पुत्रको स्थापित कर स्वयं गिरिव्रज (राजगृह या पाटलिपुत्र) का आश्रय लेगा। यह शिशुनाग चालीस वर्षोंतक राजा होगा। उसका पुत्र काकवर्ण होगा, जो छब्बीस वर्षोंतक पृथ्वीका राज्य करेगा। उसके बाद छत्तीस वर्षोंतक क्षेमधर्मा नामक राजा होगा। तदनन्तर चौबीस वर्षोंतक क्षेमजित् नामक राजा राज्य करेगा। तत्पश्चात् अट्ठाईस वर्षोंतक विम्बिसार राजा होगा। फिर पचीस वर्षोंतक अजातशत्रु नामक राजा होगा। तदनन्तर उसका पुत्र दर्शक राजा होगा, जो पैंतीस वर्षोंतक राज्य करेगा। फिर उदासी नामक राजा तैंतीस वर्षोंतक शासन करेगा। वह राज्यके चतुर्थ वर्षमें गङ्गाके दक्षिण तटपर कुसुमपुर या पाटलीपुत्र (पटना) नगर बसायेगा। उसके बाद चालीस वर्षोंतक नन्दिवर्धन राजा होगा॥ १—११॥

चत्वारिंशत् त्रयश्चैव महानन्दी भविष्यति। इत्येते भवितारो वै शिशुनागाः नृपा दश॥ १२॥
शतानि त्रीणि पूर्णानि षष्टिवर्षाधिकानि तु। शिशुनागा भविष्यन्ति राजानः क्षत्रबन्धवः॥ १३॥
एतैः सार्धं भविष्यन्ति यावत् कलिनृपाः परे। तुल्यकालं भविष्यन्ति सर्वे ह्येते महीक्षितः॥ १४॥
चतुर्विंशत् तथैक्ष्वाकाः पाञ्चालाः सप्तविंशतिः। काशेयास्तु चतुर्विंशदष्टाविंशत् तु हैहयाः॥ १५॥
कलिङ्गाश्चैव द्वात्रिंशदश्मकाः पञ्चविंशतिः। कुरवश्चापि षड्विंशदष्टाविंशास्तु मैथिलाः॥ १६॥
शूरसेनास्त्रयोविंशद् वीतिहोत्राश्च विंशतिः। एते सर्वे भविष्यन्ति एककालं महीक्षितः॥ १७॥
महानन्दिसुतश्चापि शूद्रायां कलिकांशजः। उत्पत्स्यते महापद्मः सर्वक्षत्रान्तको नृपः॥ १८॥
ततः प्रभृति राजानो भविष्याः शूद्रयोनयः। एकराट् स महापद्मो एकछत्रो भविष्यति॥ १९॥
अष्टाशीतिस्तु वर्षाणि पृथिव्यां च भविष्यति। सर्वक्षत्रमथोत्साद्य भाविनार्थेन चोदितः॥ २०॥

तदनन्तर तैंतालीस वर्षोंतक महानन्दी राजा होगा। ये दस राजा शिशुनागके बाद इस वंशमें उत्पन्न होंगे। इस प्रकार कुल मिलाकर तीन सौ साठ वर्षोंतक शिशुनाग-वंशीय राजा राज्य करेंगे, जो क्षत्रियोंमें निम्नकोटिके क्षत्रिय होंगे। इन्हीं राजाओंके साथ कलियुगमें अन्य राजा भी होंगे, जो सभी समसामयिक होंगे। उनमें चौबीस इक्ष्वाकुवंशीय, सत्ताईस पाञ्चालके, चौबीस काशीके, अट्ठाईस हैहयवंशीय, बत्तीस कलिंगदेशीय, पच्चीस अश्मक (महाराष्ट्री), छब्बीस कुरुदेशी, अट्ठाईस मैथिल, तेईस शूरसेन देश (माथुर मण्डल) के तथा बीस वीतिहोत्रवंशीय—ये सभी राजा एक समयमें ही राज्य करेंगे। महानन्दिका पुत्र महापद्म कलियुगके अंशरूपसे शूद्राके गर्भसे उत्पन्न होगा। यह राजा सम्पूर्ण क्षत्रियोंका विनाशक होगा। तभीसे शूद्राके गर्भसे उत्पन्न होनेवाले लोग राजा होंगे। वह महापद्म एक-छत्र सम्राट् होगा, जो अट्ठासी वर्षोंतक पृथ्वीका उपभोग करेगा। वह भावीवश समस्त क्षत्रिय राजाओंका विनाश कर डालेगा॥ १२—२०॥

सुकल्पादिसुता ह्यष्टौ समा द्वादश ते नृपाः। महापद्मस्य पर्याये भविष्यन्ति नृपाः क्रमात्॥ २१॥
उद्धरिष्यति तान् सर्वान् कौटिल्योः वैदिरष्टभिः। भुक्त्वा महीं वर्षशतं ततो मौर्यान् गमिष्यति॥ २२॥
भविता शतधन्वा च तस्य पुत्रस्तु षट् समाः। बृहद्रथस्तु वर्षाणि तस्य पुत्रश्च सप्ततिः॥ २३॥
षट्त्रिंशत् तु समा राजा भविता शक एव च। सप्तानां दश वर्षाणि तस्य नप्ता भविष्यति॥ २४॥
राजा दशरथोऽष्टौ तु तस्य पुत्रो भविष्यति। भविता नव वर्षाणि तस्य पुत्रश्च सप्ततिः॥ २५॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

इत्येते दश मौर्यास्तु ये भोक्ष्यन्ति वसुंधराम्। सप्तत्रिंशच्छतं पूर्णं तेभ्यः शुङ्गान् गमिष्यति ॥ २६ ॥
पुष्यमित्रस्तु सेनानीरुद्धृत्य स बृहद्रथान्। कारयिष्यति वै राज्यं षट्त्रिंशतिसमा नृपः ॥ २७ ॥

तदनन्तर उस महापद्मके वंशमें सुकल्प आदि आठ पुत्र राजा होंगे, जो क्रमशः केवल बारह वर्षोंतक राज्य करेंगे। बारह वर्षोंके बाद कौटिल्य महापद्मके पुत्रोंको उखाड़ देगा। फिर उसके सौ वर्षोंतक राज्य करनेके बाद यह राज्य मौर्यवंशके अधिकारमें चला जायगा। इसके पश्चात् उसका पुत्र शतधन्वा होगा, जो छः वर्षोंतक राज्य करेगा। उसके बाद उसका पुत्र बृहद्रथ सत्तर वर्षोंतक राज्य करेगा। तदनन्तर छत्तीस वर्षोंतक शक राजा रहेगा। शकके बाद उसका नाती सत्तर वर्षोंतक राज्य करेगा। उसका पुत्र राजा दशरथ होगा, जो आठ वर्षोंतक राज्य करेगा। तदनन्तर उसका पुत्र उन्नासी वर्षोंतक राज्य करेगा। ये दस मौर्यवंशीय राजा एक सौ सैंतीस वर्षोंतक पृथ्वीका शासन करेंगे। तदनन्तर यह राज्य शुंगवंशीयोंके हाथमें चला जायगा। उस समय शुंगवंशी सेनापति पुष्यमित्र बृहद्रथ-वंशज राजाओंका विनाश कर स्वयं राजा बन बैठेगा और छत्तीस वर्षोंतक राज्य करेगा ॥ २१-२७ ॥

अग्निमित्रः सुतश्चाष्टौ भविष्यति समा नृपः।
भवितापि वसुज्येष्ठः सप्त वर्षाणि वै नृपः। वसुमित्रः सुतो भाव्यो दश वर्षाणि वै ततः ॥ २८ ॥
ततोऽन्धकः समे द्वे तु तस्य पुत्रो भविष्यति। भविष्यति समास्तस्मात् त्रीण्येवं स पुलिन्दकः ॥ २९ ॥
भविता वज्रमित्रस्तु समा राजा पुनर्भवः। द्वात्रिंशत् तु समाभागः समाभागात् ततो नृपः ॥ ३० ॥
भविष्यति सुतस्तस्य देवभूमिः समा दश। दशैते क्षुद्रराजानो भोक्ष्यन्तीमां वसुन्धराम् ॥ ३१ ॥
शतं पूर्णं शते द्वे च ततः शुङ्गान् गमिष्यति। अमात्यो वसुदेवस्तु प्रसह्य ह्यवनीं नृपः ॥ ३२ ॥
देवभूमिमथोत्साद्य शौङ्गस्तु भविता नृपः। भविष्यति समा राजा नव काण्वायनो द्विजः ॥ ३३ ॥
भूमिमित्रः सुतस्तस्य चतुर्दश भविष्यति। नारायणः सुतस्तस्य भविता द्वादशैव तु ॥ ३४ ॥
सुशर्मा तत्सुतश्चापि भविष्यति दशैव तु। इत्येते शुङ्गभृत्यास्तु स्मृताः काण्वायना नृपाः ॥ ३५ ॥
चत्वारिंशद् द्विजा ह्येते काण्वा भोक्ष्यन्ति वै महीम्। चत्वारिंशत् पञ्च चैव भोक्ष्यन्तीमां वसुंधराम् ॥ ३६ ॥
एते प्रणतसामन्ता भविष्या धार्मिकाश्च ये। येषां पर्यायकाले तु भूमिरान्ध्रान् गमिष्यति ॥ ३७ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राजवंशानुकीर्तने द्विसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७२ ॥

तदनन्तर अग्निमित्र नामक राजा होगा, जो आठ वर्षोंतक राज्य करेगा। उसके बाद वसुज्येष्ठ सात वर्षोंतक राज्य करेगा। तत्पश्चात् वसुमित्र नामक राजा होगा, जो दस वर्षोंतक राज्य करेगा। तदनन्तर अन्धक नामक राजा दो वर्ष, फिर उसका पुत्र पुलिन्दक तीन वर्षतक राज्य करेगा। पुलिन्दकके बाद वज्रमित्र नामक राजा चौदह वर्षोंतक राज्य करेगा। उसके बाद बत्तीस वर्षोंतक समाभाग नामक राजा होगा। समाभागके बाद उसका पुत्र देवभूमि राजा होगा जो दस वर्षोंतक राज्य करेगा। ये दस छोटे-छोटे राजा इस वसुंधराका तीन सौ वर्षोंतक उपभोग करेंगे। इसके बाद राज्य शुंगवंशियोंके हाथमें चला जायगा। राजा देवभूमिका अमात्य शुंगवंशीय वसुदेव राजाको मारकर पृथ्वीका शासक होगा, जो काण्वायन नामसे नौ वर्षतक राज्य करेगा। उसका पुत्र भूमिमित्र होगा, जो चौदह वर्षतक राज्य करेगा। उसका पुत्र नारायण बारह वर्षोंतक राजा रहेगा। फिर उसका पुत्र सुशर्मा दस वर्षोंतक राज्य करेगा। ये शुङ्गभृत्य राजा काण्वायन नामसे कहे गये हैं। ये काण्व नामक चालीस द्विज पैंतालीस वर्षोंतक इस पृथ्वीका उपभोग करेंगे। सामन्तोंद्वारा प्रणाम किये जानेवाले ये राजा परमधार्मिक होंगे। इनके कार्यकालमें ही पृथ्वी आन्ध्रवंशीय राजाओंके हाथमें चली जायगी।

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें राज्यवंशकीर्तन नामक दो सौ बहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २७२ ॥
Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

दो सौ तिहत्तरवाँ अध्याय

आन्ध्रवंशीय, शकवंशीय एवं यवनादि राजाओंका संक्षिप्त ऐतिहासिक विवरण

सूत उवाच

काण्वायनांस्ततो भृत्यान् सुशर्माणं प्रसह्य तम्। शुङ्गानां चैव यच्छेषं क्षपित्वा तु बलीयसः ॥ १ ॥
शिशुकोऽन्ध्रः सजातीयः प्राप्स्यतीमां वसुंधराम्। त्रयोविंशत्समा राजा शिशुकस्तु भविष्यति ॥ २ ॥
कृष्णो भ्राता यवीयस्तु ह्यष्टादश भविष्यति। श्रीशातकर्णिर्भविता तस्य पुत्रस्तु वै दश ॥ ३ ॥
पूर्णोत्सङ्गस्ततो राजा वर्षाण्यष्टादशैव तु। स्कन्धस्तम्भिस्तथा राजा वर्षाण्यष्टादशैव तु ॥ ४ ॥
पञ्चाशतं समाः षट् च शान्तकर्णिर्भविष्यति। दश चाष्टौ च वर्षाणि तस्य लम्बोदरः सुतः ॥ ५ ॥
आपीतको दश द्वे च तस्य पुत्रो भविष्यति। दश चाष्टौ च वर्षाणि मेघस्वातिर्भविष्यति ॥ ६ ॥
स्वातिश्च भविता राजा समास्त्वष्टादशैव तु। स्कन्दस्वातिस्तथा राजा सप्तैव तु भविष्यति ॥ ७ ॥
मृगेन्द्रः स्वातिकर्णस्तु भविष्यति समास्त्रयः।
कुन्तलः स्वातिकर्णस्तु भविताष्टौ समा नृपः। एकसंवत्सरं राजा स्वातिवर्णो भविष्यति ॥ ॥ ८ ॥
भविता रिक्तवर्णस्तु वर्षाणि पञ्चविंशतिः। ततः संवत्सरान् पञ्च हालो राजा भविष्यति ॥ ९ ॥
पञ्च मन्तुलको राजा भविष्यति समा नृपः। पुरीन्द्रसेनो भविता तस्मात् सौम्यो भविष्यति ॥ १० ॥
सुन्दरः शान्तिकर्णस्तु अब्दमेकं भविष्यति। चकोरः स्वातिकर्णस्तु षण्मासान् वै भविष्यति॥ ११ ॥
अष्टाविंशतिवर्षाणि शिवस्वातिर्भविष्यति। राजा च गौतमीपुत्रो ह्येकविंशत्यतो नृपः ॥ १२ ॥
अष्टाविंशत्सुतस्तस्य पुलोमा वै भविष्यति। शिवश्रीर्वै पुलोमा तु सप्तैव भविता नृपः ॥ १३ ॥
शिवस्कन्धः शान्तिकर्णाद् भविता ह्यात्मजः समाः। नवविंशतिवर्षाणि यज्ञश्रीः शान्तिकर्णिकः ॥ १४ ॥
षडेव भविता तस्माद् विजयस्तु समास्ततः। चण्डश्रीः शान्तिकर्णिस्तु तस्य पुत्रः समा दश ॥ १५ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! (गत अध्यायमें कथित) काण्वायनवंशमें उत्पन्न होनेवाले क्षत्रियों तथा उनके स्वामी सुशर्मा नामक राजाको, जो शुङ्गभृत्योंका अन्तिम राजा होगा, बलपूर्वक पराजित कर उन्हींका सजातीय शिशुक नामक आन्ध्र राजा इस वसुन्धराको प्राप्त करेगा।* वह शिशुक तेईस वर्षोंतक पृथ्वीका शासन करेगा। उसके बाद उसका छोटा भाई कृष्ण अठारह वर्षतक शासन करेगा। उसका पुत्र श्रीशातकर्णि दस वर्षतक राज्य करेगा। उसका पुत्र पूर्णोत्सङ्ग नामक राजा होगा, जो अठारह वर्षोंतक राज्य करेगा उसके बाद स्कन्धस्तम्भि नामक राजा अठारह वर्षतक राज्य करेगा। फिर शान्तकर्णि नामक राजा छप्पन वर्षतक राज्य करेगा। उसका पुत्र लम्बोदर अठारह वर्षतक राज्य करेगा। उसका पुत्र आपीतक बारह वर्षतक राज्य करेगा। तदनन्तर मेघस्वाति नामक राजा होगा, जो अठारह वर्षतक राज्य करेगा। इसके बाद स्वाति नामक राजा होगा, वह भी अठारह वर्ष-तक राज्य करेगा। फिर स्कन्धस्वाति नामक राजा सात वर्षतक राज्य करेगा। इसके बाद मृगेन्द्र स्वातिकर्ण नामक राजा तीन वर्षोंतक पृथ्वीपर शासन करेगा। तदनन्तर कुन्तल स्वातिकर्ण आठ वर्षोंतक राज्य करेगा। उसके बाद स्वातिवर्ण नामक राजा मात्र एक वर्ष राज्य करेगा। तदनन्तर रिक्तवर्ण पचीस वर्षतक राजा होगा। उसके बाद पाँच वर्षतक हाल राजा होगा। इसके बाद मन्तुलक नामक राजा होगा, जो पाँच वर्षतक राज्य करेगा। उसके बाद पुरीन्द्रसेन राजा

* मत्स्यमहापुराणका यह तथा गत २७२ वाँ अध्याय सभी भारतीय इतिहासोंके लिये अत्यन्त प्रामाणिक माने गये हैं। केम्ब्रिज इतिहासके प्रथम भाग, 'स्मिथ'के भारतके प्राचीन इतिहासमें तथा भारतीय विद्याभवनके बृहद् इतिहासके दूसरे भागमें इसका विस्तृत विवरण इसी पुराणके आधारपर विवेचित है। पार्जीटर आदिने अनेक अभिलेखोंसे भी इसकी परीक्षा कर शुद्धता और परम प्रामाणिकता स्वीकार कर ली है।

Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

होगा। फिर इसके बाद सौम्य एवं सुन्दर स्वभाववाला शान्तिकर्ण नामक राजा होगा, जो मात्र एक वर्षतक राज्य करेगा। फिर चकोरस्वातिकर्ण नामक राजा होगा, जो मात्र छः मास ही शासन करेगा। उसके बाद शिवस्वातिनामक राजा होगा, जो अट्ठाईस वर्षतक राज्य करेगा। उसके बाद गौतमीपुत्र शातकर्णि राजा होगा, जो इक्कीस वर्षोंतक राज्य करेगा। उसका पुत्र पुलोमा अट्ठाईस वर्षतक राज्य करेगा। उसके बाद शिवश्री पुलोमा नामक राजा सात वर्षतक राज्य करेगा। इसके बाद शान्तिकर्णका पुत्र शिवस्कन्ध उन्तीस वर्षोंतक राज्य करेगा। फिर यज्ञश्री शान्तिकर्णिक नामक राजा उन्तीस वर्षतक राज्य करेगा। उसका पुत्र विजय छः वर्षतक राजा होगा। उसका पुत्र चण्डश्री शान्तिकर्ण दस वर्षतक राज्य करेगा ॥ १–१५ ॥

पुलोमा सप्त वर्षाणि अन्यस्तेषां भविष्यति। एकोनत्रिंशतिह्येते आन्ध्रा भोक्ष्यन्ति वै महीम् ॥ १६ ॥
तेषां वर्षशतानि स्युश्चत्वारि षष्टिरेव च। आन्ध्राणां संस्थिता राज्ये तेषां भृत्यान्वये नृपाः ॥ १७ ॥
सप्तैवान्ध्रा भविष्यन्ति दशाभीरास्तथा नृपाः। सप्त गर्दभिलाश्चापि शकाश्चाष्टादशैव तु ॥ १८ ॥
यवनाष्टौ भविष्यन्ति तुषारास्तु चतुर्दश। त्रयोदश गुरुण्डाश्च हूणा ह्येकोनविंशतिः ॥ १९ ॥
सप्त गर्दभिला भूयो भोक्ष्यन्तीमां वसुन्धराम्। यवनाष्टौ भविष्यन्ति सप्ताशीतिं महीमिमाम् ॥ २० ॥
सप्तवर्षसहस्राणि तुषाराणां मही स्मृता। शतानि त्रीण्यशीतिं च शतान्यष्टादशैव तु ॥ २१ ॥
शतान्यर्धं चतुष्काणि भवितव्यास्त्रयोदश। गुरुण्डा वृषलैः सार्धं भोक्ष्यन्ते म्लेच्छसम्भवाः ॥ २२ ॥
शतानि त्रीणि भोक्ष्यन्ते वर्षाण्येकादशैव तु। आन्ध्राः श्रीपार्वतीयाश्च ते द्विपञ्चाशतं समाः ॥ २३ ॥
सप्तषष्टिस्तु वर्षाणि दशाभीरास्तथैव च। तेषूत्सन्नेषु कालेन ततः किलकिला नृपाः ॥ २४ ॥
भविष्यन्तीह यवना धर्मतः कामतोऽर्थतः। तैर्विमिश्रा जनपदा आर्या म्लेच्छाश्च सर्वशः ॥ २५ ॥
विपर्ययेण वर्तन्ते क्षयमेष्यन्ति वै प्रजाः। लुब्धानृतास्तुवाश्चैव भवितारो नृपास्तथा ॥ २६ ॥
कल्किनानुहताः सर्वे आर्या म्लेच्छाश्च सर्वतः। अधार्मिकाश्च येऽत्यर्थं पाषण्डाश्चैव सर्वशः ॥ २७ ॥
प्रनष्टे नृपवंशे तु संध्याशिष्टे कलौ युगे। किंचिच्छिष्टाः प्रजास्ता वै धर्मे नष्टे परिग्रहाः ॥ २८ ॥

तदनन्तर उसके बाद दूसरा पुलोमा नामक राजा होगा, जो सात वर्षतक राज्य करेगा। इस प्रकार ये उन्तीस (मतान्तरसे ३० या ३१) आन्ध्र-वंशी राजा पृथ्वीका उपभोग करेंगे इनका राज्यकाल चार सौ साठ वर्षोंका होगा भृत्योपनामधारी उन आन्ध्रवंशीय राजाओंके वंशज राज्यके अधिकारी होंगे। उनमें सात आन्ध्र-वंशीय, दस आभीर-वंशी, सात गर्दभिल्ल,* अठारह शकवंशीय, आठ यवन, चौदह तुषार, तेरह गुरुण्ड तथा उन्नीस हूणवंशीय राजा होंगे। फिर सात गर्दभिल्ल-वंशीय राजा इस पृथ्वीका उपभोग करेंगे। आठ यवन राजा सत्तासी वर्षतक राज्य करेंगे। सात सहस्र वर्षोंतक यह पृथ्वी तुषारोंके अधीन रहेगी। फिर एक सौ तिरासी वर्ष, एक सौ अठारह वर्ष तथा चार सौ पचास वर्षतक अर्थात् सात सौ इक्यावन वर्षतक तेरह म्लेच्छवंशज गुरुण्ड राजा शूद्रोंके साथ पृथ्वीका उपभोग करेंगे। तीन सौ ग्यारह वर्षतक आन्ध्रवंशीय राजा राज्य करेंगे तथा श्रीपर्वतीयोंका राज्य बावन वर्ष-तक रहेगा। उसी प्रकार दस आभीर राजा सड़सठ वर्षतक राज्य करेंगे। कालवश उनके विनष्ट हो जाने-पर किलकिला नामक राजा होंगे, जो यवन-जातिके होंगे। धर्म, काम, अर्थ—तीनों दृष्टियोंसे आर्य लोग उनकी संस्कृतिसे विमिश्रित हो म्लेच्छ हो जायँगे और आश्रमधर्मका विपर्यय करने लगेंगे। परिणामतः प्रजा नष्ट हो जायगी तथा राजालोग लोभी और असत्यवादी हो जायँगे। दम्भ-पाखण्डसे सभी आर्य तथा म्लेच्छ लोग प्रभावहत हो जायँगे। अधार्मिकोंकी वृद्धि होगी,

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

* महाराज विक्रमादित्यको ऐतिहासिक विद्वान् गर्दभिल्लका ही पुत्र मानते हैं। उन्हींके बाद शकोंका राज्य हुआ था।

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

पाखंड बढ़ जायगा। इस प्रकार सन्ध्यामात्र शेष रह तब थोड़ी प्रजा शेष रह जायगी, जो धर्मके विनष्ट हो जानेपर कलियुगमें जब सभी राजवंश नष्ट हो जायगा हो जानेसे विशृंखलित रहेगी ॥ १७–२८ ॥

असाधवो ह्यसत्त्वाश्च व्याधिशोकेन पीडिताः। अनावृष्टिहताश्चैव परस्परवधेप्सवः ॥ २९ ॥
अशरण्याः परित्रस्ताः सङ्कटं घोरमाश्रिताः। सरित्पर्वतवासिन्यो भविष्यन्त्यखिलाः प्रजाः ॥ ३० ॥
नृपवंशेषु नष्टेषु प्रजाः सर्वगृहाणि च।
नष्टस्नेहा निरापत्रास्त्यक्तभ्रातृसुहृद्गणाः। वर्णाश्रमपरिभ्रष्टा अधर्मनिरताश्च ताः ॥ ३१ ॥
पत्रमूलफलाहाराश्चीरपत्राजिनाम्बराः। वृत्त्यर्थमभिलिप्सन्त्यश्चरिष्यन्ति वसुन्धराम् ॥ ३२ ॥
एवं कष्टमनुप्राप्ताः प्रजाः काले युगान्तके। निःशेषास्तु भविष्यन्ति सार्धं कलियुगेन तु ॥ ३३ ॥
क्षीणे कलियुगे तस्मिन् दिव्ये वर्षसहस्रके। ससन्ध्यांशे सुनिःशेषे कृतं तु प्रतिपत्स्यते ॥ ३४ ॥
एवं वंशक्रमः कृत्स्नः कीर्त्तितो यो मया क्रमात्। अतीता वर्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये ॥ ३५ ॥
महापद्माभिषेकात् तु यावज्जन्म परीक्षितः। एवं वर्षसहस्रं तु ज्ञेयं पञ्चाशदुत्तरम् ॥ ३६ ॥
पौलोमास्तु तथान्ध्रास्तु महापद्मान्तरे पुनः। अनन्तरं शतान्यष्टौ षट्त्रिंशत् तु समास्तथा ॥ ३७ ॥

उस समय सारी प्रजा असत्कर्मपरायण, निर्बल, व्याधि और शोकसे जर्जरित, अनावृष्टिसे पीड़ित, परस्पर एक दूसरेके संहारके इच्छुक, आश्रयहीन, भयभीत, घोर संकटसे ग्रस्त होकर नदियोंके तटों तथा पर्वतोंपर निवास करेंगी। राजवंशोंके नष्ट हो जानेपर सारी प्रजा घर-द्वारसे विहीन, स्नेहरहित, निर्लज्ज, भाई-मित्र आदिका त्याग कर देनेवाली, वर्णाश्रमधर्मसे भ्रष्ट, अधर्ममें लीन, पत्ते, मूल और फलोंका आहार करनेवाली, पत्तों और मृगचर्मको वस्त्ररूपमें धारण करनेवाली तथा जीविकाके लोभमें सारी पृथ्वीका चक्कर लगाने लगेगी। इस प्रकार कलियुगके अवसानके समय प्रजाएँ कष्ट झेलेंगी। वे कलियुगके साथ ही समाप्त हो जायँगी। तब संध्यासहित कलियुगके एक हजार दिव्य वर्ष बीत जानेपर कृतयुगकी प्रवृत्ति होगी। इस प्रकार मैंने क्रमशः भूत, वर्तमान और भविष्य-कालीन राजवंशका पूर्ण-रूपसे वर्णन किया है। यह राज्यकाल परीक्षित्के जन्मसे लेकर महापद्मके राज्याभिषेकतक एक हजार पचास वर्ष* होता है। पुनः पौलोम आन्ध्रसे लेकर महापद्मके राजत्वकालतक आठ सौ छत्तीस वर्ष समझना चाहिये ॥

तावत्कालान्तरं भाव्यमान्ध्रान्तादापरीक्षितः। भविष्ये ते प्रसंख्याताः पुराणज्ञैः श्रुतर्षिभिः ॥ ३८ ॥
सप्तर्षयस्तदा प्रांशुप्रदीप्तेनाग्निना समाः। सप्तविंशतिभाव्यानामान्ध्राणां तु यदा पुनः ॥ ३९ ॥
सप्तर्षयस्तु वर्तन्ते यत्र नक्षत्रमण्डले। सप्तर्षयस्तु तिष्ठन्ति पर्यायेण शतं शतम् ॥ ४० ॥
सप्तर्षीणामुपर्येतत् स्मृतं वै दिव्यसंज्ञया। समा दिव्याः स्मृताः षष्टिर्दिव्याब्दानि तु सप्तभिः ॥ ४१ ॥
एभिः प्रवर्तते कालो दिव्यः सप्तर्षिभिस्तु वै। सप्तर्षीणां च यौ पूर्वौ दृश्येते ह्युदितौ निशि ॥ ४२ ॥
तयोर्मध्ये तु नक्षत्रं दृश्यते यत्समं दिवि। तेन सप्तर्षयो ज्ञेया युक्ता व्योम्नि शतं समाः ॥ ४३ ॥
नक्षत्राणामृषीणां च योगस्यैतन्निदर्शनम्। सप्तर्षयो मघायुक्ताः काले पारिक्षिते सतम् ॥ ४४ ॥
ब्राह्मणास्तु चतुर्विंशा भविष्यन्ति शतं समाः। ततः प्रभृत्ययं सर्वो लोको व्यापत्स्यते भृशम् ॥ ४५ ॥
अनृतोपहता लुब्धा धर्मतः कामतोऽर्थतः। श्रौतस्मार्तेऽतिशिथिले नष्टवर्णाश्रमे तथा ॥ ४६ ॥
संकरं दुर्बलात्मानः प्रतिपत्स्यन्ति मोहिताः। ब्राह्मणाः शूद्रयोनिस्थाः शूद्रा वै मन्त्रयोनयः ॥ ४७ ॥
उपस्थास्यन्ति तान् विप्रास्तदर्थमभिलिप्सवः। क्रमेणैव च दृश्यन्ते स्ववर्णान्तरदायकम् ॥ ४८ ॥

परीक्षित्के समयसे लेकर आन्ध्रवंशीय राजाओंके अन्तकालतकका प्रमाण वेदों एवं पुराणोंके जाननेवाले ऋषियोंने भविष्यपुराणमें इस प्रकार परिगणित किया है। जब पुनः सत्ताईस आन्ध्रवंशीय राजाओंका राज्य

* विष्णुपुराणमें इसे १५०० वर्ष कहा है और भागवतमें १११५ वर्ष।

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

होगा, तब सप्तर्षिगण प्रज्वलित अग्निके समान उद्दीप्त रहेंगे। वे सप्तर्षिगण एक-एक सौ वर्षोंतक नक्षत्रमण्डलमें निवास करते हैं। उन सप्तर्षियोंके ऊपर यह दिव्य नामसे कहा गया है। इसका परिमाण सड़सठ दिव्य वर्षोंका है। इस प्रकार इन सप्तर्षियोंका दिव्य काल प्रवृत्त होता है। रात्रिके समय सप्तर्षियोंके जो दो प्रारम्भिक पूर्व दिशामें जिस नक्षत्रके सामने उदित होते हैं, सभी सप्तर्षि उसी नक्षत्रमें स्थित माने जाते हैं। पुनः सौ वर्षोंके बाद आकाशमें उनका दूसरे नक्षत्रके साथ मिलन होता है। नक्षत्रों और उन सप्तर्षियोंके संयोगकी यही गति बतायी जाती है। ये सप्तर्षिगण राजा परीक्षित्के राज्यकालमें मघा नक्षत्रमें स्थित थे। उनके चौबीस सौ वर्ष बाद राज्य करनेवाले शुङ्गवंशीय ब्राह्मण राजा होंगे। उसके बाद यह सारा लोक अत्यन्त पतित हो जायगा। उस समय सारी प्रजाएँ मिथ्या व्यवहारमें लीन, लोभी, धर्म, अर्थ एवं कामसे हीन वैदिक एवं स्मार्त नियमोंके पालनसे विमुख, वर्णाश्रम-धर्मकी मर्यादासे विहीन और दुर्बलात्मा हो जायँगी। वे मोहित होकर वर्णसंकर संतान उत्पन्न करेंगी। ब्राह्मण शूद्रयोनिमें स्थित हो जायँगे और शूद्र मन्त्रोंके ज्ञाता हो जायँगे। उन्हीं मन्त्रोंको जाननेकी अभिलाषासे ब्राह्मण उन मन्त्रज्ञ शूद्रोंकी उपासना करेंगे। क्रमशः सभी लोग अपने वर्ण-धर्मको छोड़कर अन्य वर्णमें सम्मिलित हो जायँगे ॥ ३८—४८ ॥

क्षयमेव गमिष्यन्ति क्षीणशेषा युगक्षये। यस्मिन् कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदाहनि ॥ ४९ ॥
प्रतिपन्नं कलियुगं प्रमाणं तस्य मे शृणु। चतुःशतसहस्रं तु वर्षाणां वै स्मृतं बुधैः ॥ ५० ॥
चत्वार्यष्टसहस्राणि संख्यातं मानुषेण तु। दिव्यं वर्षसहस्रं तु तदा संध्या प्रवर्तते ॥ ५१ ॥
निःशेषे तु तदा तस्मिन् कृतं वै प्रतिपत्स्यते। ऐलश्चेक्ष्वाकुवंशश्च सहदेवः प्रकीर्तितः ॥ ५२ ॥
इक्ष्वाकोः संस्मृतं क्षत्रं सुमित्रान्तं भविष्यति। ऐलं क्षत्रं समाक्रान्तं सोमवंशविदो विदुः ॥ ५३ ॥
एते विवस्वतः पुत्राः कीर्तिताः कीर्तिवर्धनाः। अतीता वर्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये ॥ ५४ ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्यास्तथा शूद्राश्च वै स्मृताः। वैवस्वतेऽन्तरे तस्मिन्निति वंशः समाप्यते ॥ ५५ ॥

फिर नष्ट होनेसे बची हुई प्रजाएँ युगान्तके समय विनष्ट हो जायँगी। जिस दिन श्रीकृष्ण स्वर्ग (गोलोक) गये, उसी दिन कलियुगका प्रारम्भ हुआ। इसका प्रमाण मुझसे सुनिये। बुद्धिमान् लोग उस कलियुगका प्रमाण मानववर्षके अनुसार चार लाख बत्तीस हजार और दिव्यमानके अनुसार एक हजार वर्ष मानते हैं। उसके बाद उसकी संध्या (तथा संध्यांश) प्रवृत्त होती है। उस कलियुगके समाप्त होनेपर कृतयुगका प्रारम्भ होता है। सहदेव ऐल और इक्ष्वाकुवंशीय—दोनों कहा जाता है। इक्ष्वाकुका वंश राजा सुमित्रतक बतलाया जाता है। सोमवंशके ज्ञाता लोग ऐलवंशको चन्द्रवंशमें संक्रान्त मानते हैं। ये ही विवस्वान्के भी कीर्तिशाली पुत्र कहे गये हैं, जो भूत, वर्तमान तथा भविष्यकालमें होनेवाले हैं। उस वैवस्वत मन्वन्तरमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—इन सभी वर्णोंके लोग होते हैं। इस प्रकार अब यहाँ यह वंश-वर्णन समाप्त हो जाता है ॥ ४९—५५ ॥

देवापिः पौरवो राजा ऐक्ष्वाको यश्च ते मतः। महायोगबलोपेतौ कलापग्राममाश्रितौ ॥ ५६ ॥
एतौ क्षत्रप्रणेतारौ नवविंशे चतुर्युगे। सुवर्चा मनुपुत्रस्तु ऐक्ष्वाकाद्यो भविष्यति ॥ ५७ ॥
नवविंशे युगेऽसौ वै वंशस्यादिर्भविष्यति। देवापिपुत्रः सत्यस्तु ऐलानां भविता नृपः ॥ ५८ ॥
क्षत्रप्रवर्तकावेतौ भविष्ये तु चतुर्युगे। एवं सर्वेषु विज्ञेयं संतानार्थं तु लक्षणम् ॥ ५९ ॥
क्षीणे कलियुगे चैव तिष्ठन्तीति कृते युगे। सप्तर्षयस्तु तैः सार्धं मध्ये त्रेतायुगे पुनः ॥ ६० ॥

Sri Vidyabharati Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

बीजार्थं वै भविष्यन्ति ब्रह्मक्षत्रस्तु वै पुनः। एवमेवं तु सर्वेषु तिष्यान्तेष्वन्तरेषु च ॥ ६० ॥
सप्तर्षयो नृपैः सार्धं सन्तानार्थं युगे युगे। एवं क्षत्रस्य चोत्सेधः सम्बन्धो वै द्विजैः स्मृतः ॥ ६१ ॥
मन्वन्तराणां संताने संतानाश्च श्रुतौ स्मृताः। अतिक्रान्तयुगाश्चैव ब्रह्मक्षत्रस्य सम्भवाः ॥ ६२ ॥
यथा प्रशान्तिस्तेषां वै प्रकृतीनां तथा क्षयः। सप्तर्षयो विदुस्तेषां दीर्घायुष्ट्वं क्षयोदयौ ॥ ६३ ॥

पुरुवंशीय राजा देवापि और इक्ष्वाकुवंशीय राजा (सहदेव), जिसे तुम मानते हो—ये दोनों महान् योगबलसे सम्पन्न होंगे, जो कलाप ग्राममें निवास करते हैं। उन्तीसवीं चतुर्युगीमें ये दोनों राजा क्षत्रिय जातिके नेता होंगे। मनुका पुत्र सुवर्चा इक्ष्वाकुवंशीय राजाओंमें प्रथम होगा। वही उन्तीसवें युगमें अपने वंशका मूल पुरुष होगा तथा देवापिका पुत्र सत्य ऐलवंशीयोंका राजा होगा। भविष्यकालीन चतुर्युगमें ये दोनों क्षात्रधर्मके प्रवर्तक होंगे। इसी प्रकार सभी वंशोंमें सन्ततिके लक्षणोंको जानना चाहिये। कलियुगके क्षीण हो जानेपर कृतयुगमें सप्तर्षि उन राजाओंके साथ स्थित रहते हैं। पुनः त्रेताके मध्यमें वे ब्राह्मण और क्षत्रियके बीजके कारण होते हैं। इसी प्रकार सभी कलियुगों एवं अन्य युगोंमें होता है। प्रत्येक युगमें सप्तर्षि राजाओंके साथ प्रजाओंकी उत्पत्तिके लिये अवस्थित रहते हैं। इसी प्रकार ब्राह्मणोंद्वारा क्षत्रियोंकी उत्पत्तिका सम्बन्ध कहा जाता है। मन्वन्तरोंके विस्तारमें ब्राह्मण और क्षत्रियसे उत्पन्न हुई संतान युगको अतिक्रान्त कर जाती है, ऐसा श्रुतियोंमें कहा गया है। वे सप्तर्षि उन संततियोंकी जिस प्रकार प्रशान्ति होती है तथा जिस प्रकार क्षय-दीर्घायुकी प्राप्ति, उन्नति और अवनति होती है, वह सब जानते हैं ॥ ५६—६३ ॥

एतेन क्रमयोगेन ऐला इक्ष्वाकवो नृपाः। उत्पद्यमानास्त्रेतायां क्षीयमाणाः कलौ युगे ॥ ६४ ॥
अनुयान्ति युगाख्यां तु यावन्मन्वन्तरक्षयम्। जामदग्न्येन रामेण क्षत्रे निरवशेषिते ॥ ६५ ॥
रिक्तेयं वसुधा सर्वा क्षत्रियैर्वसुधाधिपैः। द्विवंशकरणं सर्वं कीर्तयिष्ये निबोध मे ॥ ६६ ॥
ऐलं चैक्ष्वाकुवंशं च प्रकृतिं परिचक्षते। राजानः श्रेणिबद्धाश्च तथान्ये क्षत्रिया भुवि ॥ ६७ ॥
ऐलवंशास्तु भूयांसो न तथैक्ष्वाकवो नृपाः। एषामेकशतं पूर्णं कुलानामभिरोचते ॥ ६८ ॥
तावदेव तु भोजानां विस्ताराद् द्विगुणं स्मृतम्। भोजानां द्विगुणं क्षत्रं चतुर्धा तद् यथातथम् ॥ ६९ ॥
ते ह्यतीताः सनामानो ब्रुवतस्तान् निबोध मे। शतं वै प्रतिविन्ध्यानां शतं नागाः शतं हयाः ॥ ७० ॥
शतमेकं धार्तराष्ट्रा ह्यशीतिर्जनमेजयाः। शतं वै ब्रह्मदत्तानां वीराणां कुरवः शतम् ॥ ७१ ॥
ततः शतं च पाञ्चालाः शतं काशिकुशादयः। तथापरे सहस्रे द्वे ये नीपाः शशबिन्दवः ॥ ७२ ॥

इस प्रकारके क्रमयोगसे चन्द्रवंशी और इक्ष्वाकुवंशीय राजा त्रेतामें उत्पन्न होकर कलियुगमें विनष्ट हो जाते हैं। एक मन्वन्तरके विनाशतक युग संज्ञा कही जाती है। जमदग्निके पुत्र परशुरामद्वारा क्षत्रियोंका संहार हो जानेपर यह सारी पृथ्वी क्षत्रिय राजाओंसे शून्य हो गयी थी। अब मैं राजाओंके सूर्य-चन्द्र—इन दो वंशोंकी उत्पत्ति बता रहा हूँ, उसे मुझसे सुनिये। ऐल और इक्ष्वाकुवंश क्षत्रियोंकी मूल प्रकृति कहे गये हैं। इन राजाओंके वंशज तथा अन्य क्षत्रियगण पृथ्वीपर प्रचुर परिमाणमें अवस्थित हैं। इनमें ऐलवंशीय राजा तो बहुत हैं, किंतु इक्ष्वाकुवंशीय उतने नहीं हैं। इनके कुलोंकी संख्या पूरी एक सौ बतलायी जाती है। इसी प्रकार भोजवंशीय राजाओंका विस्तार इनसे दूना है। भोजवंशीय राजाओंसे दूने अन्य क्षत्रियगण हैं। वे चार प्रकारके हैं और बीत चुके हैं। मैं उनका नामसहित यथार्थ रूपसे वर्णन कर रहा हूँ, उसे मुझसे सुनिये। इनमें प्रतिविन्ध्योंकी संख्या सौ, नागोंकी संख्या सौ, हयोंकी संख्या सौ और धार्तराष्ट्रोंकी संख्या सौ है। जनमेजयोंकी संख्या अस्सी है। वीरवर ब्रह्मदत्तोंकी संख्या सौ, कुरुओंकी संख्या सौ, पाञ्चालोंकी संख्या सौ और काशि-कुशादिकी संख्या सौ है। इनके अतिरिक्त जो नीप और शशबिन्दु हैं, उनकी संख्या दो हजार है ॥ ६४—७२ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

इष्टवन्तश्च ते सर्वे सर्वे नियुतदक्षिणाः । एवं राजर्षयोऽतीताः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ७३ ॥
मनोर्वैवस्वतस्यासन् वर्तमानेऽन्तरे विभोः । तेषां तु निधनोत्पत्तौ लोकसंस्थितयः स्थिताः ॥ ७४ ॥
न शक्यो विस्तरस्तेषां सन्तानस्य परस्परम् । तत्पूर्वापरयोगेन वक्तुं वर्षशतैरपि ॥ ७५ ॥
अष्टाविंशसमाख्याता गता वैवस्वतेऽन्तरे । एते देवगणैः सार्धं शिष्टा ये तान् निबोधत ॥ ७६ ॥
चत्वारिंशत् त्रयश्चैव भविष्यास्ते महात्मनः । अवशिष्टा युगाख्यास्ते ततो वैवस्वतो ह्ययम् ॥ ७७ ॥
एतद् वः कीर्तितं सम्यक् समासव्यासयोगतः । पुनर्वक्तुं बहुत्वात् तु न शक्यं विस्तरेण तु ॥ ७८ ॥
उक्ता राजर्षयो ये तु अतीतास्ते युगैः सह । ये ते ययातिवंश्यानां ये च वंशा विशाम्पते ॥ ७९ ॥
कीर्तिता द्युतिमन्तस्ते य एतान् धारयेन्नरः । लभते स वरान् पञ्च दुर्लभानिह लौकिकान् ॥ ८० ॥
आयुः कीर्तिं धनं स्वर्गं पुत्रवांश्चाभिजायते । धारणाच्छ्रवणाच्चैव परं स्वर्गस्य धीमतः ॥ ८१ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भविष्यराजानुकीर्तनं नाम त्रिसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७३ ॥

वे सभी यज्ञ करनेवाले तथा अत्यधिक दक्षिणा प्रदान करनेवाले थे। इस प्रकार सैकड़ों-हजारों राजर्षिगण बीत चुके हैं, जो प्रभावशाली वैवस्वत मनुके वर्तमान अन्तरमें जन्म ग्रहण कर चुके हैं। उनके मरण और उत्पत्तिमें अब लोककी स्थिति ही प्रमाणभूत है। उनकी संतानका विस्तार तो परस्पर पूर्वापर-सम्बन्धसे सैकड़ों वर्षोंमें भी नहीं बताया जा सकता। इस वैवस्वत मन्वन्तरमें वे नृपतिगण अपने वंशदेवताओंके साथ अट्ठाईस पीढ़ीतक बीत चुके हैं। जो शेष हैं, उन्हें सुनिये। वे महात्मा राजा तैंतालीस होंगे। उन अवशिष्ट वैवस्वत महात्माओंकी संज्ञा उनके युगोंके साथ है। इस प्रकार मैंने इन वंशोंका विस्तार और संक्षेप वर्णन कर दिया। उनकी संख्या बहुत होनेके कारण मैं विस्तारपूर्वक बतलानेमें असमर्थ हूँ। राजन्! मैंने जिन ययातिवंशीय राजाओंके वंशधर राजर्षियोंकी चर्चा की है, वे सभी युगोंके साथ समाप्त हो चुके हैं। वे सभी कान्तिमान् एवं यशस्वी थे। जो मनुष्य उनके नामोंको स्मरण रखता है, वह इस लोकमें पाँच दुर्लभ लौकिक वरदानोंको प्राप्त कर लेता है, अर्थात् वह आयु, कीर्ति, धन, स्वर्ग और पुत्रसे सम्पन्न होकर उत्पन्न होता है तथा उस बुद्धिमान्‌को इनके स्मरण एवं श्रवण करनेसे परमस्वर्गकी प्राप्ति होती है॥ ७३—८१ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें भविष्यकालिक राजाओंका वर्णन नामक दो सौ तिहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २७३ ॥

दो सौ चौहत्तरवाँ अध्याय

षोडश दानान्तर्गत तुलादानका वर्णन

ऋषय ऊचुः

न्यायेनार्जनमर्थानां वर्धनं चाभिरक्षणम् । सत्पात्रप्रतिपत्तिश्च सर्वशास्त्रेषु पठ्यते ॥ १ ॥
कृतकृत्यो भवेत् केन मनस्वी धनवान् बुधः । महादानेन दत्तेन तन्नो विस्तरतो वद ॥ २ ॥

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! सभी शास्त्रोंमें न्यायपूर्वक धनार्जन, उसकी वृद्धि और रक्षा करना तथा उसे सत्पात्रको दान करना आदि बातें कही जाती हैं, किंतु मनस्वी बुद्धिमान् धनी पुरुष किस महादानके करनेसे कृतार्थ हो सकता है, आप मुझे इसे विस्तारपूर्वक बताइये॥ १—२ ॥

Vidyasagar Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

सूत उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानानुकीर्तनम्। दानधर्मेऽपि यन्नोक्तं विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ ३ ॥
तदहं सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम्। सर्वपापक्षयकरं नृणां दुःस्वप्ननाशनम् ॥ ४ ॥
यत्तत्षोडशधा प्रोक्तं वासुदेवेन भूतले। पुण्यं पवित्रमायुष्यं सर्वपापहरं शुभम् ॥ ५ ॥
पूजितं देवताभिश्च ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः। आद्यं तु सर्वदानानां तुलापुरुषसंज्ञकम् ॥ ६ ॥
हिरण्यगर्भदानं च ब्रह्माण्डं तदनन्तरम्। कल्पपादपदानं च गोसहस्रं च पञ्चमम् ॥ ७ ॥
हिरण्यकामधेनुश्च हिरण्याश्वस्तथैव च। हिरण्याश्वरथस्तद्वद्धेमहस्तिरथस्तथा ॥ ८ ॥
पञ्चलाङ्गलकं तद्वद् धरादानं तथैव च। द्वादशं विश्वचक्रं तु ततः कल्पलतात्मकम् ॥ ९ ॥
सप्तसागरदानं च रत्नधेनुस्तथैव च। महाभूतघटस्तद्वत् षोडशं परिकीर्तितम् ॥ १० ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! अब इसके बाद मैं आपलोगोंको महादानकी विधि बतला रहा हूँ। जिसे महातेजस्वी विष्णुने भी (विष्णुधर्मोत्तरपुराणके) दान-धर्म-प्रकरणमें नहीं बतलाया है, उस सर्वश्रेष्ठ महादानका वर्णन मैं कर रहा हूँ। वह मनुष्योंके सभी पापोंको नष्ट करनेवाला तथा दुःस्वप्नोंका विनाशक है। उस दानको पृथ्वीतलपर भगवान् वासुदेवने सोलह प्रकारका बतलाया है। वे सभी पुण्यप्रद, पवित्र, दीर्घ आयु प्रदान करनेवाले, सभी पापोंके विनाशक, मङ्गलकारी तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवताओंद्वारा पूजित हैं। उन सभी दानोंमें सबसे प्रथम तुलापुरुषका दान है। तत्पश्चात् (दूसरा) हिरण्यगर्भदान, (तीसरा) ब्रह्माण्डदान, (चौथा) कल्पवृक्षदान, पाँचवाँ एक हजार गो-दान, फिर सुवर्ण-निर्मित कामधेनुका दान, स्वर्णमय अश्वका दान, हिरण्याश्वरथ-दान, हेम-हस्ति-रथ-दान, पञ्चलाङ्गलक-दान, धरादान, (बारहवाँ) विश्वचक्र-दान, कल्पलता-दान, सप्तसागर-दान, रत्नधेनु-दान तथा (सोलहवाँ) महाभूत-घटदान—ये सोलह दान कहे गये हैं ॥ ३—१० ॥

सर्वाण्येतानि कृतवान् पुरा शम्बरसूदनः। वासुदेवस्तु भगवानम्बरीषोऽथ भार्गवः ॥ ११ ॥
कार्तवीर्यार्जुनो नाम प्रह्लादः पृथुरेव च। कुर्युरन्ये महीपालाः केचिच्च भरतादयः ॥ १२ ॥
यस्माद् विघ्नसहस्रेण महादानानि सर्वदा। रक्षन्ते देवताः सर्वा एकैकमपि भूतले ॥ १३ ॥
एषामन्यतमं कुर्याद् वासुदेवप्रसादतः। न शक्यमन्यथा कर्तुमपि शक्रेण भूतले ॥ १४ ॥
तस्मादाराध्य गोविन्दमुमापतिविनायकौ। महादानमखं कुर्याद् विप्रैश्चैवानुमोदितः ॥ १५ ॥
एतदेवाह मनवे परिपृष्टो जनार्दनः। यथावदनुवक्ष्यामि शृणुध्वमृषिसत्तमाः ॥ १६ ॥

प्राचीनकालमें इन सभी दानोंको शम्बरासुरके शत्रु भगवान् वासुदेवने किया था। उसके बाद अम्बरीष, भार्गव (परशुराम), कार्तवीर्यार्जुन, प्रह्लाद, पृथु तथा भरत आदि अन्यान्य राजाओंने किया था। चूँकि इस पृथ्वीतलपर इन सब दानोंमें एक-एक दानकी सर्वदा सभी देवता हजारों विघ्नोंसे रक्षा करते हैं; इनमेंसे भूतलपर यदि एक दान भी वासुदेव भगवान्‌की कृपासे विघ्नरहित सम्पन्न हो जाय तो उसके सत्फलको देवराज इन्द्र भी अन्यथा करनेमें समर्थ नहीं हैं, इसलिये मनुष्यको भगवान् वासुदेव, शंकर और विनायककी आराधना कर तथा विप्रोंका अनुमोदन प्राप्तकर यह महादान-यज्ञ करना चाहिये। ऋषिवर्य ! इसी विषयको मनुके पूछनेपर भगवान् जनार्दनने उन्हें बताया था, वह मैं आपलोगोंको यथार्थरूपमें बतला रहा हूँ, सुनिये ॥ ११—१६ ॥

मनुरुवाच

महादानानि यानीह पवित्राणि शुभानि च। रहस्यानि प्रदेयानि तानि मे कथयाच्युत ॥ १७ ॥

मनुजीने पूछा—अच्युत ! इस पृथ्वीतलपर जितने पुनीत, मङ्गलदायी, गोपनीय और देनेयोग्य महादान हैं, उन्हें मुझे बतलाइये ॥ १७ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

मत्स्य उवाच

यानि नोक्तानि गुह्यानि महादानानि षोडश । तानि ते कथयिष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥ १८ ॥
तुलापुरुषयोगोऽयं येषामादौ विधीयते । अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते दिनक्षये ॥ १९ ॥
युगादिषूपरागेषु तथा मन्वन्तरादिषु । संक्रान्तौ वैधृतिदिने चतुर्दश्यष्टमीषु च ॥ २० ॥
सितपञ्चदशीपर्वद्वादशीष्वष्टकासु च । यज्ञोत्सवविवाहेषु दुःस्वप्नाद्भुतदर्शने ॥ २१ ॥
द्रव्यब्राह्मणलाभे वा श्रद्धा वा यत्र जायते । तीर्थे वायतने गोष्ठे कूपारामसरित्सु वा ॥ २२ ॥
गृहे वाथ वने वापि तडागे रुचिरे तथा । महादानानि देयानि संसारभयभीरुणा ॥ २३ ॥
अनित्यं जीवितं यस्माद् वसु चातीव चञ्चलम् । केशेष्वेव गृहीतः सन्मृत्युना धर्ममाचरेत् ॥ २४ ॥
पुण्यां तिथिमथासाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् । षोडशारत्निमात्रं तु दश द्वादश वा करान् ॥ २५ ॥
मण्डपं कारयेद् विद्वांश्चतुर्भद्राननं बुधः । सप्तहस्ता भवेद् वेदी मध्ये पञ्चकराश्रया ॥ २६ ॥
तन्मध्ये तोरणं कुर्यात् सारदारुमयं बुधः । कुर्यात् कुण्डानि चत्वारि चतुर्दिक्षु विचक्षणः ॥ २७ ॥

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—राजन्! जिन सोलह गुह्य महादानोंको आजतक मैंने किसीसे नहीं बतलाया था, उन्हींको यथार्थ रूपमें आनुपूर्वी तुम्हें बतला रहा हूँ। इनमें तुलापुरुषका दान सर्वप्रथम कहा गया है। संसार-भयसे भीत मनुष्यको अयन-परिवर्तनके समय, विषुवयोगमें, पुण्यदिनों, व्यतीपात, दिनक्षय तथा युगादि तिथियोंमें सूर्य-चन्द्रके ग्रहणके अवसरपर, मन्वन्तरके प्रारम्भमें, संक्रान्तिके दिन, वैधृतियोगमें, चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमा, पर्वके दिन, द्वादशी तथा अष्टका तिथियोंमें, यज्ञ-उत्सव अथवा विवाहके अवसरपर, दुःस्वप्नके देखने या किसी अद्भुत उत्पातादिके होनेपर, यथेष्ट द्रव्य या ब्राह्मणके मिल जानेपर, या जब जहाँ श्रद्धा उत्पन्न हो जाय, किसी तीर्थ, मन्दिर या गोशालामें, कूप, बगीचा या नदीके तटपर, अपने घरपर या पवित्र वनमें अथवा पवित्र तालाबके किनारे इन महादानोंको देना चाहिये। चूँकि यह जीवन अस्थिर है, सम्पत्ति अत्यन्त चञ्चल है, मृत्यु सर्वदा केश पकड़े खड़ी है, इसलिये धर्माचरण करना चाहिये। किसी पुण्यतिथिके आनेपर विद्वान् पुरुष ब्राह्मणोंद्वारा स्वस्तिवाचन कराकर सोलह हाथोंका या दस अथवा बारह हाथोंका* चौकोर मण्डप निर्मित करवाये, जिसमें चार सुन्दर प्रवेशद्वार बनवाये जायँ। उसके भीतर सात हाथकी वेदी बनाकर मध्यमें पाँच हाथकी एक दूसरी वेदी बनाये। उसके मध्यभागमें बुद्धिमान् पुरुष साल काष्ठकी बनी हुई तोरण लगवाये। विचक्षण पुरुष चारों दिशाओंमें चार कुण्डोंकी रचना करे॥ १८—२७॥

समेखलायोनियुतानि कुर्यात् सम्पूर्णकुम्भानि महासनानि ।
सुताम्रपात्रद्वयसंयुतानि सुयज्ञपात्राणि सुविष्टराणि ॥ २८ ॥
हस्तप्रमाणानि तिलाज्यधूपपुष्पोपहाराणि सुशोभनानि ।
पूर्वोत्तरे हस्तमिताथ वेदी ग्रहादिदेवेश्वरपूजनाय ॥ २९ ॥
अत्रार्चनं ब्रह्मशिवाच्युतानां तत्रैव कार्यं फलमाल्यवस्त्रैः ।
लोकेशवर्णाः परितः पताका मध्ये ध्वजः किङ्किणिकायुतः स्यात् ॥ ३० ॥
द्वारेषु कार्याणि च तोरणानि चत्वार्यपि क्षीरवनस्पतीनाम् ।
द्वारेषु कुम्भद्वयमत्र कार्यं स्रग्गन्धधूपाम्बररत्नयुक्तम् ॥ ३१ ॥
शालेङ्गुदीचन्दनदेवदारुश्रीपर्णिबिल्वप्रियकाञ्चनोत्थम् ।
स्तम्भद्वयं हस्तयुगावखातं कृत्वा दृढं पञ्चकरोच्छ्रितं च ॥ ३२ ॥

* ये मण्डप दस, बारह या सोलह हाथोंके वर्गाकार होंगे। ये जितने लम्बे होंगे, उतनी ही इनकी चौड़ाई होगी।
† हेमन्त-शिशिर ऋतुओंके कृष्णपक्षकी चारों अष्टमी तिथियाँ अष्टका कही गयी हैं।

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

*

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

तदन्तरं हस्तचतुष्टयं स्यादथोत्तराङ्गं च तदीयमेव।
समानजातिश्च तुलावलम्ब्या हैमेन मध्ये पुरुषेण युक्ता ॥ ३३ ॥
दैर्घ्येण सा हस्तचतुष्टयं स्यात् पृथुत्वमस्यास्तु दशाङ्गुलानि।
सुवर्णपट्टाभरणा च कार्या सलोहपाशद्वयशृङ्खलाभिः ॥ ३४ ॥
युता सुवर्णेन तु रत्नमाला विभूषिता माल्यविलेपनाभ्याम्।
चक्रं लिखेद् वारिजगर्भयुक्तं नानारजोभिर्भुवि पुष्पकीर्णम् ॥ ३५ ॥
वितानकं चोपरि पञ्चवर्णं संस्थापयेत् पुष्पफलोपशोभम्।

उन कुण्डोंको मेखला और योनिसे युक्त बनाना चाहिये। उनके समीप जलसे भरे हुए कलश, बड़े-बड़े आसन, सुन्दर ताँबेके बने हुए दो पात्र, यज्ञके सुन्दर पात्र तथा सुन्दर विष्टर रखना चाहिये। कुण्ड एक हाथ लंबा-चौड़ा हो तथा तिल, घृत, धूप, पुष्प और अन्य उपहारोंसे सुशोभित हो। तदनन्तर पूर्व तथा उत्तर दिशाके कोणमें ग्रहादि तथा देवेश्वरोंके पूजनके लिये एक हाथ विस्तृत वेदी बनायी जाय। वहीं फलों, मालाओं तथा वस्त्रोंद्वारा ब्रह्मा, शिव और विष्णुकी पूजा करनी चाहिये। चारों ओर लोकपालोंके वर्णोंके अनुरूप पताकाएँ तथा मध्य भागमें घंटियोंसे युक्त ध्वज होना चाहिये। चारों द्वारोंपर भी दूधवाले वृक्षोंके बने हुए तोरण सुशोभित हों। प्रधान द्वारपर माला, गन्ध, धूप, वस्त्र एवं रत्नोंसे सुशोभित दो कलश रखे जायँ। तदनन्तर साल, इंगुदी, चन्दन, देवदारु, श्रीपर्णी (गम्भारी), बिल्व, बीजौरा अथवा चम्पक वृक्षके काष्ठके बने हुए दो स्तम्भोंको, जो पाँच हाथ ऊँचे हों, दो हाथ गहरा गड्ढा खोदकर उसमें सुदृढ़ कर दे। उन दोनों स्तम्भोंके बीच चार हाथका अन्तर रहे। फिर उन दोनोंसे मिला उत्तराङ्ग—खम्भेके ऊपरके दो सजातीय काष्ठ लगावे, उसीसे सजातीय काष्ठकी बनी सुवर्णनिर्मित पुरुषसे युक्त तुला मध्यभागमें लटकावे। वह तुला चार हाथ लंबी हो तथा उसकी मोटाई दस अंगुल होनी चाहिये, उसमें लोहेकी बनी हुई जंजीरोंको जोड़े तथा उसे सुवर्णजटित वस्त्र, सुवर्णखचित रत्नमाला तथा विविध प्रकारके पुष्प एवं चन्दनादिसे अलंकृत करना चाहिये। फिर पृथ्वीपर विविध रंगके रजोंसे कमलके मध्यके आकारका चक्र बनावे और उसपर पुष्प बिखेर दे। उसके ऊपर पुष्प और फलोंसे सुशोभित पँचरंगा वितान तनवाये॥ २८—३५½ ॥

अथर्त्विजो वेदविदश्च कार्याः सुरूपवेशान्वयशीलयुक्ताः ॥ ३६ ॥
विधानदक्षाः पटवोऽनुकूला ये चार्यदेशप्रभवा द्विजेन्द्राः।
गुरुश्च वेदान्तविदार्यवंशसमुद्भवः शीलकुलाभिरूपः ॥ ३७ ॥
पुराणशास्त्राभिरतोऽतिदक्षः प्रसन्नगम्भीरसरस्वतीकः।
सिताम्बरः कुण्डलहेमसूत्रकेयूरकण्ठाभरणाभिरामः ॥ ३८ ॥
पूर्वेण ऋग्वेदविदौ भवेतां यजुर्विदौ दक्षिणतश्च शस्तौ।
स्थाप्यौ द्विजौ सामविदौ तु पश्चादाथर्वणावुत्तरतस्तु कार्यौ ॥ ३९ ॥
विनायकादिग्रहलोकपालवस्वष्टकादित्यमरुद्गणानाम्।
ब्रह्माच्युतेशार्कवनस्पतीनां स्वमन्त्रतो होमचतुष्टयं स्यात् ॥ ४० ॥
जप्यानि सूक्तानि तथैव चैषामनुक्रमेणापि यथास्वरूपम्।
होमावसाने कृततूर्यनादो गुरुर्गृहीत्वा बलिपुष्पधूपम्।
आवाहयेल्लोकपतीन् क्रमेण मन्त्रैरमीभिर्यजमानयुक्तः ॥ ४१ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

पह्येहि सर्वामरसिद्धसाध्यैरभिष्टुतो वज्रधरोऽमरेशः।
संवीज्यमानोऽप्सरसां गणेन रक्षाध्वरं नो भगवन् नमस्ते ॥४२॥
ॐ इन्द्राय नमः।

पह्येहि सर्वामरहव्यवाह मुनिप्रवीरैरभितोऽभिजुष्टः।
तेजस्विना लोकगणेन सार्धं ममाध्वरं रक्ष कवे नमस्ते ॥४३॥
ओं अग्नये नमः।

पह्येहि वैवस्वत धर्मराज सर्वामरैरर्चित दिव्यमूर्ते।
शुभाशुभानन्दशुचामधीश शिवाय नः पाहि मखं नमस्ते ॥४४॥
ओं यमाय नमः।

तदनन्तर वेदवेत्ता, सुन्दर रूप, वेश, वंश और शीलसे युक्त, विधिके ज्ञाता, पटु, अपने अनुकूल, आर्य-देशोत्पन्न द्विजवरोंको ऋत्विजके पदपर नियुक्त करे। गुरु (आचार्य) वेदान्तवेत्ता, आर्यवंशमें समुत्पन्न, शीलवान्, कुलीन, सुन्दर, पुराणों एवं शास्त्रोंमें निरत रहनेवाला, अत्यन्त पटु, सरल एवं गम्भीर वाणी बोलने-वाला, श्वेत वस्त्रधारी, कुण्डल, जंजीर, केयूर तथा कण्ठाभरणसे सुशोभित हो। मण्डपमें पूर्व दिशामें दो ऋग्वेदी ऋत्विजोंको, दक्षिण दिशामें दो यजुर्वेदी अध्वर्यु ब्राह्मणोंको, पश्चिम दिशामें दो सामवेदी उद्गाता ब्राह्मणों-को तथा उत्तर दिशामें दो अथर्ववेदी विद्वानोंको नियुक्त करना चाहिये। विनायक आदि ग्रह, लोकपाल, आठों वसुगण, आदित्यगण, मरुद्गण, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य एवं वनस्पतियोंके लिये उनके मन्त्रोंद्वारा चार-चार आहुतियाँ देनी चाहिये तथा इनके सूक्तोंका क्रमानुरूप शुद्ध-शुद्ध जप करवाना चाहिये। हवनकी समाप्तिके बाद यजमानसहित आचार्य तुरहीका शब्द करते हुए बलि, पुष्प और धूप लेकर क्रमशः सभी लोकपालोंका उनके मन्त्रों द्वारा इस प्रकार आवाहन करे। भगवन्! आप देवताओंके स्वामी और वज्र धारण करनेवाले हैं, सभी अमर, सिद्ध और साध्य आपकी स्तुति करते हैं तथा अप्सराओंके समूह आपपर पंखा झलते हैं, आपको नमस्कार है। आप यहाँ आइये, अवश्य आइये, हमारे यज्ञकी रक्षा कीजिये। ॐ इन्द्रको नमस्कार है—ऐसा कहकर इन्द्रका आवाहन करना चाहिये। अग्निदेव! आप सभी देवताओंके हव्यवाहक हैं, मुनिवरगण सब ओरसे आपकी सेवा करते हैं, आप अपने तेजस्वी लोकगणोंके साथ वहाँ आयें, अवश्य आयें और मेरे यज्ञकी रक्षा करें, आपको प्रणाम है। 'ॐ अग्निको नमस्कार है।'—ऐसा कहकर अग्निका आवाहन करना चाहिये। सूर्यपुत्र धर्मराज! आप सभी देवताओंद्वारा पूजित, दिव्य शरीरधारी और शुभ एवं अशुभ तथा आनन्द एवं शोकके अधीश्वर हैं, हमारे कल्याणके लिये हमारे यज्ञकी रक्षा कीजिये। आपको अभिवादन है। 'ॐ यमराजको नमस्कार है'—ऐसा कहकर यमका आवाहन करना चाहिये॥ ३६—४४॥

पह्येहि रक्षोगणनायकस्त्वं सर्वैस्तु वेतालपिशाचसंघैः।
ममाध्वरं पाहि शुभादिनाथ लोकेश्वरस्त्वं भगवन् नमस्ते ॥४५॥
ओं निर्ऋतये नमः।

पह्येहि यादोगणवारिधीनां गणेन पर्जन्यमहाप्सरोभिः।
विद्याधरेन्द्रामरगीयमान पाहि त्वमस्मान् भगवन् नमस्ते ॥४६॥
ॐ वरुणाय नमः।

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

एह्येहि यज्ञे मम रक्षणाय मृगाधिरूढः सह सिद्धसंघैः।
प्राणाधिपः कालकवेः सहायो गृहाण पूजां भगवन् नमस्ते ॥ ४७ ॥
ॐ वायवे नमः।
एह्येहि यज्ञेश्वर यज्ञरक्षां विधत्स्व नक्षत्रगणेन सार्धम्।
सर्वौषधीभिः पितृभिः सहैव गृहाण पूजां भगवन् नमस्ते ॥ ४८ ॥
ॐ सोमाय नमः।
एह्येहि विश्वेश्वर नस्त्रिशूलकपालखट्वाङ्गधरेण सार्धम्।
लोकेश यज्ञेश्वर यज्ञसिद्ध्यै गृहाण पूजां भगवन् नमस्ते ॥ ४९ ॥
ॐ ईशानाय नमः।
एह्येहि पातालधराधरेन्द्र नागाङ्गनाकिंनरगीयमान।
यक्षोरगेन्द्रामरलोकसार्धमनन्त रक्षाध्वरमस्मदीयम् ॥ ५० ॥
ॐ अनन्ताय नमः।
एह्येहि विश्वाधिपते मुनीन्द्र लोकेन सार्धं पितृदेवताभिः।
सर्वस्य धातास्यमितप्रभाव विशाध्वरं नो भगवन् नमस्ते ॥ ५१ ॥
ॐ ब्रह्मणे नमः।
त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च। ब्रह्मविष्णुशिवैः सार्धं रक्षां कुर्वन्तु तानि मे ॥ ५२ ॥
देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः। ऋषयो मदनो गावो देवमातर एव च ॥ ५३ ॥
सर्वे ममाध्वरे रक्षां प्रकुर्वन्तु मुदान्विताः।

भगवन्! आप लोकोंके अधीश्वर तथा राक्षससमूहके नायक हैं। शुभादिनाथ! आप वेतालों और पिशाचोंके विशाल समूहके साथ यहाँ आइये, अवश्य आइये और मेरे यज्ञकी रक्षा कीजिये। आपको प्रणाम है। 'ॐ निर्ऋति-को नमस्कार है, ऐसा कहकर निर्ऋतिका आवाहन करना चाहिये। भगवन्! विद्याधर और इन्द्र आदि देवता आपका गुण-गान करते हैं, आप समस्त जलचरों, समुद्रों, बादलों और अप्सराओंके साथ यहाँ आइये, अवश्य आइये और हमारी रक्षा कीजिये। आपको अभिवादन है। 'ॐ वरुणको नमस्कार है।' ऐसा कहकर वरुणका आवाहन करना चाहिये। भगवन्! आप कालाग्निके सहायक और प्राणोंके अधीश्वर हैं, आप मृग (हिरन) पर आरूढ हो सिद्ध-समूहोंके साथ मेरी रक्षा करनेके लिये यज्ञमें पधारिये, अवश्य पधारिये और मेरी पूजा स्वीकार कीजिये। आपको नमस्कार है। 'ॐ वायुको नमस्कार है'—ऐसा कहकर वायुका आवाहन करना चाहिये। यज्ञेश्वर! आप नक्षत्रगणों, सभी ओषधियों तथा पितरोंके साथ यहाँ आइये, अवश्य आइये और मेरे यज्ञकी रक्षा कीजिये। भगवन्! आप मेरी पूजा स्वीकार कीजिये, आपको प्रणाम है। 'ॐ सोमको नमस्कार है'—ऐसा कहकर सोमका आवाहन करना चाहिये। यज्ञोंके स्वामी विश्वेश्वर! आप त्रिशूल, कपाल, खट्वाङ्ग धारण करनेवाले अपने गणोंके साथ हमारे यज्ञमें सिद्धि प्रदान करनेके लिये उपस्थित होइये, अवश्य आइये और लोकेश! मेरी पूजा ग्रहण कीजिये। भगवन्! आपको अभिवादन है। 'ॐ ईशानको नमस्कार है।'—ऐसा कहकर ईशानका आवाहन करना चाहिये। अनन्त! आप पाताल एवं पृथ्वीको धारण करनेवालोंमें श्रेष्ठ हैं तथा नागाङ्गनाएँ और किंनर आपका गुण-गान करते हैं, आप यक्षों, नागेन्द्रों और देवगणोंके साथ यहाँ आइये, अवश्य आइये और हमारे यज्ञकी रक्षा कीजिये। 'ॐ अनन्तको नमस्कार है'—ऐसा कहकर अनन्तका आवाहन करना चाहिये।

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

विश्वाधिपति ! आप समस्त जगत्के विधाता हैं। मुनीन्द्र ! आप पितर, देवता एवं लोकपालोंके साथ यहाँ आइये, अवश्य आइये। अमित प्रभावशाली ! आप हमारे यज्ञमें प्रविष्ट होइये। भगवन् ! आपको प्रणाम है। 'ॐ ब्रह्माको नमस्कार है'—ऐसा कहकर ब्रह्माका आवाहन करना चाहिये। त्रिलोकीमें जितने स्थावर-जंगम प्राणी हैं, वे सभी ब्रह्मा, विष्णु और शिवके साथ मेरी रक्षा करें। देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, ऋषिगण, कामदेव, गौएँ, देव-माताएँ—ये सभी हर्षपूर्वक मेरे यज्ञकी रक्षा करें ॥ ४५–५३½ ॥

इत्यावाह्य सुरान् दद्याद् ऋत्विग्भ्यो हेमभूषणम् ॥ ५४ ॥
कुण्डलानि च हैमानि सूत्राणि कटकानि च। अङ्गुलीयपवित्राणि वासांसि शयनानि च ॥ ५५ ॥
द्विगुणं गुरवे दद्याद् भूषणाच्छादनानि च। जपेयुः शान्तिकाध्यायं जापकाः सर्वतोदिशम् ॥ ५६ ॥
तत्रोषितास्तु ते सर्वे कृत्वैवमधिवासनम्। आदावन्ते च मध्ये च कुर्याद् ब्राह्मणवाचनम् ॥ ५७ ॥
ततो मङ्गलशब्देन स्नापितो वेदपुङ्गवैः। त्रिःप्रदक्षिणमावृत्य गृहीतकुसुमाञ्जलिः ॥ ५८ ॥
शुक्लमाल्याम्बरो भूत्वा तां तुलामभिमन्त्रयेत्। नमस्ते सर्वदेवानां शक्तिस्त्वं सत्यमास्थिता ॥ ५९ ॥
साक्षिभूता जगद्धात्री निर्मिता विश्वयोनिना। एकतः सर्वसत्यानि तथानृतशतानि च ॥ ६० ॥
धर्माधर्मकृतां मध्ये स्थापितासि जगद्धिते। त्वं तुले सर्वभूतानां प्रमाणमिह कीर्तिता ॥ ६१ ॥
मां तोलयन्ती संसारादुद्धरस्व नमोऽस्तु ते। योऽसौ तत्त्वाधिपो देवः पुरुषः पञ्चविंशकः ॥ ६२ ॥
स एकोऽधिष्ठितो देवि त्वयि तस्मान्नमो नमः। नमो नमस्ते गोविन्द तुलापुरुषसंज्ञक ॥ ६३ ॥
त्वं हरे तारयस्वास्मानस्मात् संसारकर्दमात्। पुण्यकालं समासाद्य कृत्वैवमधिवासनम् ॥ ६४ ॥
पुनः प्रदक्षिणं कृत्वा तुलामारोहयेद् बुधः। सखड्गचर्मकवचः सर्वाभरणभूषितः ॥ ६५ ॥
धर्मराजमथादाय हैमं सूर्येण संयुतम्। कराभ्यां बद्धमुष्टिभ्यामास्ते पश्यन् हरेर्मुखम् ॥ ६६ ॥

इस प्रकार देवताओंका आवाहन कर ऋत्विजोंको सुवर्णका आभूषण, कुण्डल, जंजीर, कङ्कण, पवित्र अँगूठी, वस्त्र तथा शय्याका दान करना चाहिये। ये भूषण और वस्त्र गुरुके लिये दूना देना चाहिये। उस समय सभी दिशाओंमें जापक शान्तिकाध्यायका जप करते रहें। उन सभी ब्राह्मणोंको वहाँ उपस्थित रहना चाहिये और इस प्रकार अधिवासन कर प्रत्येक कार्यके प्रारम्भ, मध्य तथा अन्तमें स्वस्तिवाचन करना चाहिये। तत्पश्चात् माङ्गलिक शब्दोंका उच्चारण करते हुए वेदज्ञोंद्वारा अभिषिक्त यजमान श्वेत वस्त्र धारणकर अञ्जलिमें पुष्प ले उस तुलाकी तीन बार प्रदक्षिणा कर उसे इस प्रकार अभिमन्त्रित करे। तुले ! तुम सभी देवताओंकी शक्तिस्वरूपा हो, तुम्हें नमस्कार है। तुम सत्यकी आश्रयभूता, साक्षिस्वरूपा, जगत्को धारण करनेवाली और विश्वयोनि ब्रह्माद्वारा निर्मित की गयी हो, जगत्की कल्याणकारिणी ! तुम्हारी एक तुलापर सभी सत्य हैं, दूसरी पर सौ असत्य हैं। धर्मात्मा और पापियोंके बीच तुम्हारी स्थापना हुई है। तुम भूतलपर सभी जीवोंके लिये प्रमाणरूप बतलायी गयी हो। मुझे तोलती हुई तुम इस संसारसे मेरा उद्धार कर दो, तुम्हें नमस्कार है। देवि ! जो ये तत्त्वोंके अधीश्वर पचीसवें पुरुष भगवान् हैं, वे एकमात्र तुम्हींमें अधिष्ठित हैं, इसलिये तुम्हें बारंबार प्रणाम है। तुला-पुरुष नामधारी गोविन्द ! आपको बारंबार अभिवादन है। हरे ! आप इस संसाररूपी पङ्कसे हमारा उद्धार कीजिये। इस प्रकार बुद्धिमान् पुरुष पुण्यकालमें अधिवासन कर पुनः प्रदक्षिणा कर तुलापर आरोहण करे। उस समय वह खड्ग, ढाल, कवच एवं सभी आभरणोंसे अलंकृत रहे। वह सुवर्णनिर्मित सूर्यसहित धर्मराजको बँधी हुई मुट्ठीवाले दोनों हाथोंसे पकड़कर विष्णुके मुखकी ओर ताकता हुआ स्थित रहे ॥ ५४–६६ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Shringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

ततोऽपरे तुलाभागे न्यसेयुर्द्विजपुङ्गवाः। समादभ्यधिकं यावत् काञ्चनं चातिनिर्मलम् ॥ ६७॥
पुष्टिकामस्तु कुर्वीत भूमिसंस्थं नरेश्वरः। क्षणमात्रं ततः स्थित्वा पुनरेवमुदीरयेत् ॥ ६८॥
नमस्ते सर्वभूतानां साक्षिभूते सनातनि। पितामहेन देवि त्वं निर्मिता परमेष्ठिना ॥ ६९॥
त्वया धृतं जगत् सर्वं सहस्थावरजङ्गमम्। सर्वभूतात्मभूतस्थे नमस्ते विश्वधारिणि ॥ ७०॥
ततोऽवतीर्य गुरवे पूर्वमर्धं निवेदयेत्। ऋत्विग्भ्योऽपरमर्द्धं च दद्यादुदकपूर्वकम् ॥ ७१॥
गुरवे ग्रामरत्नानि ऋत्विग्भ्यश्च निवेदयेत्। प्राप्य तेषामनुज्ञां तु तथान्येभ्योऽपि दापयेत् ॥ ७२॥
दीनानाथविशिष्टादीन् पूजयेद् ब्राह्मणैः सह। न चिरं धारयेद् गेहे सुवर्णं प्रोक्षितं बुधः ॥ ७३॥
तिष्ठेद् भयावहं यस्माच्छोकव्याधिकरं नृणाम्। शीघ्रं परस्वीकरणाच्छ्रेयः प्राप्नोति मानवः ॥ ७४॥
अनेन विधिना यस्तु तुलापुरुषमाचरेत्। प्रतिलोकाधिपस्थाने प्रतिमन्वन्तरं वसेत् ॥ ७५॥
विमानेनार्कवर्णेन किङ्किणीजालमालिना।
पूज्यमानोऽप्सरोभिश्च ततो विष्णुपुरं व्रजेत्। कल्पकोटिशतं यावत् तस्मिँल्लोके महीयते ॥ ७६॥
कर्मक्षयादिह पुनर्भुवि राजराजो भूपालमौलिमणिरञ्जितपादपीठः।
श्रद्धान्वितो भवति यज्ञसहस्रयाजी दीप्तप्रतापजितसर्वमहीपलोकः ॥ ७७॥
यो दीयमानमपि पश्यति भक्तियुक्तः कालान्तरे स्मरति वाचयतीह लोके।
यो वा शृणोति पठतीन्द्रसमानरूपः प्राप्नोति धाम स पुरन्दरदेवजुष्टम् ॥ ७८॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने तुलापुरुषदानं नाम चतुःसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७४॥

तदनन्तर ब्राह्मणोंको चाहिये कि वे तुलाकी दूसरी ओर यजमानकी तोलसे कुछ अधिक अत्यन्त निर्मल स्वर्ण रखें। पुष्टिकामी श्रेष्ठ मनुष्य जबतक स्वर्णकी तुला भूमिपर स्पर्श न कर ले, तबतक स्वर्ण रखे। फिर क्षणमात्र चुप रहकर इस प्रकार निवेदन करे—'सभी जीवोंकी साक्षीभूता सनातनी देवि! तुम पितामह ब्रह्माद्वारा निर्मित हुई हो, तुम्हें नमस्कार है। तुले! तुम समस्त स्थावर-जंगमरूप जगत्‌को धारण करनेवाली हो, सभी जीवोंको आत्मभूत करनेवाली विश्वधारिणि! तुम्हें नमस्कार है।' तत्पश्चात् तुलासे उतरकर स्वर्णका आधा भाग पहले गुरुको देना चाहिये एवं बचे हुए आधे भागको हाथमें जल लेकर संकल्पपूर्वक ऋत्विजोंको दे देना चाहिये। फिर गुरुको तथा ऋत्विजोंको इसके अतिरिक्त ग्राम और रत्न भी प्रदान करना चाहिये। पुनः उनकी आज्ञा लेकर अन्य ब्राह्मणोंको भी दान करना चाहिये। विशेषतया दीनों एवं अनाथोंको भी ब्राह्मणोंके साथ दान देना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुष उस तोले गये स्वर्णको अधिक देरतक अपने घरमें न रखे; क्योंकि यदि वह घरमें रह जाता है तो मनुष्योंको भय देनेवाला, शोक और व्याधिको बढ़ानेवाला होता है, उसे शीघ्र ही दूसरेको दे देनेसे मनुष्य श्रेयका भागी हो जाता है। इस प्रकारकी विधिसे जो मनुष्य तुलापुरुषका दान देता है, वह प्रत्येक मन्वन्तरमें प्रत्येक लोकके स्वामित्व पदपर निवास करता है। वह किङ्किणीसमूहोंसे युक्त एवं सूर्यके समान तेजस्वी विमानपर चढ़कर अप्सराओंसे सुपूजित हो विष्णुपुरको जाता है और उस लोकमें सौ कोटि कल्पोंतक पूजित होता है। फिर पुण्यकर्मके क्षय होनेपर वह भूतलपर राजराजेश्वर होता है। अनेक राजाओंके मुकुटकी मणियोंसे उसका पदपीठ शोभायमान होता है, वह श्रद्धासहित सहस्रों यज्ञोंका अनुष्ठान करता है और प्रचण्ड प्रतापसे समस्त राजाओंको पराजित करता है। जो मनुष्य इस तुलापुरुषके दानको दिये जाते हुए देखता है, दूसरे अवसरपर उसका स्मरण करता है, लोकमें पढ़कर उसकी

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

विधिको सुनाता है अथवा जो इसकी विधिको सुनता या पढ़ता है, वह भी इन्द्रके समान स्वरूप धारणकर पुरंदर-प्रभृति देवगणोंद्वारा सेवित स्वर्गलोकको प्राप्त करता है ॥ ६७–७८ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें महादान-अनुकीर्तन-प्रसङ्गमें तुलापुरुष-दान नामक दो सौ चौहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २७४ ॥

दो सौ पचहत्तरवाँ अध्याय

हिरण्यगर्भदानकी विधि

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम् । नाम्ना हिरण्यगर्भाख्यं महापातकनाशनम् ॥ १ ॥
पुण्यं दिनमथासाद्य तुलापुरुषदानवत् । ऋत्विङ्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम् ॥ २ ॥
कुर्यादुपोषितस्तद्वल्लोकेशावाहनं बुधः । पुण्याहवाचनं कृत्वा तद्वत् कृत्वाधिवासनम् ॥ ३ ॥
ब्राह्मणैरानयेत् कुम्भं तपनीयमयं शुभम् । द्विसप्तत्यङ्गुलोच्छ्रायं हेमपङ्कजगर्भवत् ॥ ४ ॥
त्रिभागहीनविस्तारमाज्यक्षीराभिपूरितम् । दशास्त्राणि च रत्नानि दात्रीं सूचीं तथैव च ॥ ५ ॥
हेमनालं सपिटकं बहिरादित्यसंयुतम् । तथैवावरणं नाभेरुपवीतं च काञ्चनम् ॥ ६ ॥
पार्श्वतः स्थापयेत् तद्वद्धैमदण्डकमण्डलू । पद्माकारं पिधानं स्यात् समन्तादङ्गुलाधिकम् ॥ ७ ॥
मुक्तावलीसमोपेतं पद्मरागसमन्वितम् । तिलद्रोणोपरिगतं वेदिमध्ये व्यवस्थितम् ॥ ८ ॥

मत्स्यभगवान्ने कहा—अब इसके बाद मैं हिरण्यगर्भ नामक सर्वश्रेष्ठ महादानकी विधि बतलाता हूँ, जो महापातकोंका विनाश करनेवाला है । बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह किसी पुण्य दिनके आनेपर तुलापुरुष-दानकी भाँति इस दानमें भी ऋत्विज, मण्डप, पूजन-सामग्री, भूषण, वस्त्र आच्छादन आदिका संग्रह करे । फिर उपवासपूर्वक लोकपालोंका आवाहन, पुण्याहवाचन और अधिवासन करके ब्राह्मणोंद्वारा स्वर्णमय माङ्गलिक कलशको मण्डपमें मँगवाये । वह कलश सुवर्ण-कमलके गर्भकी भाँति सुन्दर और बहत्तर अंगुल ऊँचा हो । उसकी चौड़ाई ऊँचाईकी अपेक्षा एक तिहाईकी होनी चाहिये । वह घृत और दुग्धसे भरा हुआ हो । उसके समीप दस अस्त्र, रत्न, छूरीका, सूई, सुवर्णका नाल, सूर्यमूर्तिसहित पिटारी, नाभिको ढकनेके लिये वस्त्र, स्वर्णका यज्ञोपवीत, स्वर्णका दण्ड तथा कमण्डलु स्थापित करे । इसके ऊपरसे चारों ओर एक अंगुलसे अधिक मोटा कमलके आकारका ढक्कन होना चाहिये । मोतियोंकी लड़ियोंसे सुशोभित तथा पद्मरागमणिसे युक्त वह कलश वेदिकाके मध्यभागमें द्रोण-परिमित तिलके ऊपर स्थापित होना चाहिये ॥ १–८ ॥

ततो मङ्गलशब्देन ब्रह्मघोषरवेण च । सर्वौषध्युदकस्नानं स्नापितो वेदपुंगवैः ॥ ९ ॥
शुक्लमाल्याम्बरधरः सर्वाभरणभूषितः । इममुच्चारयेन्मन्त्रं गृहीतकुसुमाञ्जलिः ॥ १० ॥
नमो हिरण्यगर्भाय हिरण्यकवचाय च । सप्तलोकसुराध्यक्ष जगद्धात्रे नमो नमः ॥ ११ ॥
भूर्लोकप्रमुखा लोकास्तव गर्भे व्यवस्थिताः । ब्रह्मादयस्तथा देवा नमस्ते विश्वधारिणे ॥ १२ ॥
नमस्ते भुवनाधार नमस्ते भुवनाश्रय । नमो हिरण्यगर्भाय गर्भे यस्य पितामहः ॥ १३ ॥
यतस्त्वमेव भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः । तस्मान्मामुद्धराशेषदुःखसंसारसागरात् ॥ १४ ॥
एवमामन्त्र्य तन्मध्यमाविश्यास्त उदङ्मुखः । मुष्टिभ्यां परिसंगृह्य धर्मराजचतुर्मुखौ ॥ १५ ॥
जानुमध्ये शिरः कृत्वा तिष्ठेदुच्छ्वासपञ्चकम् । गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं तथा ॥ १६ ॥
कुर्युर्हिरण्यगर्भस्य ततस्ते द्विजपुंगवाः । गीतमङ्गलघोषेण गुरुरुत्थापयेत् ततः ॥ १७ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

तत्पश्चात् यजमान माङ्गलिक शब्द एवं वेदज्ञ ब्राह्मणोंद्वारा वेदध्वनिके साथ सर्वौषधिमिश्रित जलसे स्नान करे; फिर श्वेत वस्त्र और माला धारण कर सभी प्रकारके आभूषणोंसे अलंकृत हो अञ्जलिमें पुष्प लेकर इस मन्त्रका उच्चारण करे—'सातों लोकों तथा देवताओंके स्वामी! आप हिरण्यगर्भ, हिरण्यकवच और जगत्के विधाता हैं, आपको बार-बार नमस्कार है। भू-लोक आदि सभी लोक तथा ब्रह्मा आदि देवगण आपके गर्भमें स्थित हैं, अतः आप विश्वधारीको प्रणाम है। भुवनोंके आधार! आपको अभिवादन है। भुवनोंके आश्रय! आपको नमस्कार है। जिनके गर्भमें पितामह स्थित हैं, उन हिरण्यगर्भको प्रणाम है। देव! चूँकि आप ही भूतात्मा होकर प्रत्येक प्राणीमें स्थित हैं, इसलिये सम्पूर्ण दुःखोंसे परिपूर्ण इस संसार-सागरसे मेरा उद्धार कीजिये।' इस प्रकार आमन्त्रित कर मण्डपके मध्यभागमें प्रविष्ट हो उत्तराभिमुख बैठे; फिर अपनी मुट्ठियोंसे धर्मराज तथा चतुर्मुख ब्रह्माको पकड़कर अपने घुटनोंके बीचमें सिर कर पाँच बार श्वास लेता हुआ उसी प्रकार स्थित रहे, तबतक श्रेष्ठ ब्राह्मण उस हिरण्यगर्भका गर्भाधान, पुंसवन और सीमन्तोन्नयन संस्कार करायें। तब आचार्य गीत एवं माङ्गलिक शब्दोंके साथ यजमानको ऊपर उठाये॥ ९—१७॥

जातकर्मादिकाः कुर्युः क्रियाः षोडश चापराः। सूच्यादिकं च गुरवे दद्यान्मन्त्रमिमं जपेत्॥ १८॥
नमो हिरण्यगर्भाय विश्वगर्भाय वै नमः। चराचरस्य जगतो गृहभूताय वै नमः॥ १९॥
यथाहं जनितः पूर्वं मर्त्यधर्मा सुरोत्तम। त्वद्गर्भसम्भवादेष दिव्यदेहो भवाम्यहम्॥ २०॥
चतुर्भिः कलशैर्भूयस्ततस्ते द्विजपुंगवाः। स्नापयेयुः प्रसन्नाङ्गाः सर्वाभरणभूषिताः॥ २१॥
देवस्य त्वेति मन्त्रेण स्थितस्य कनकासने। अद्य जातस्य तेऽङ्गानि अभिषेक्ष्यामहे वयम्॥ २२॥
दिव्येनानेन वपुषा चिरं जीव सुखी भव। ततो हिरण्यगर्भं तं तेभ्यो दद्याद्विचक्षणः॥ २३॥
ते पूज्याः सर्वभावेन बहवो वा तदाज्ञया। तत्रोपकरणं सर्वं गुरवे विनिवेदयेत्॥ २४॥
पादुकोपानहच्छत्रचामरासनभाजनम्। ग्रामं वा विषयं वापि यदन्यदपि सम्भवेत्॥ २५॥
अनेन विधिना यस्तु पुण्येऽहनि निवेदयेत्। हिरण्यगर्भदानं स ब्रह्मलोके महीयते॥ २६॥
पुरेषु लोकपालानां प्रतिमन्वन्तरं वसेत्। कल्पकोटिशतं यावद् ब्रह्मलोके महीयते॥ २७॥
कलिकलुषविमुक्तः पूजितः सिद्धसाध्यैरमरचमरमालावीज्यमानोऽप्सरोभिः।
पितृशतमथ बन्धून् पुत्रपौत्रान् प्रपौत्रान् अपि नरकनिमग्नांस्तारयेदेक एव॥ २८॥
इति पठति य इत्थं यः शृणोतीह सम्यङ्मधुरिपुरिव लोके पूज्यते सोऽपि सिद्धैः।
मतिमपि च जनानां यो ददाति प्रियार्थं विबुधपतिजनानां नायकः स्यादमोघम्॥ २९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने हिरण्यगर्भप्रदानविधिर्नाम पञ्चसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २७५॥

तत्पश्चात् जातकर्म आदि अन्य सोलहों क्रियाओंको करना चाहिये। फिर यजमान उन सूची आदि सामग्रियोंको गुरुको दान कर दे और इस मन्त्रका पाठ करे—'हिरण्यगर्भको नमस्कार है। विश्वगर्भको प्रणाम है। आप चराचर जगत्के गृहभूत हैं, आपको अभिवादन है। सुरोत्तम! जिस प्रकार मैं पहले जन्म-मरण-युक्त प्राणीके रूपमें जन्म ले चुका हूँ, वही मैं आपके गर्भसे उत्पन्न होनेके कारण दिव्य शरीरवाला हो जाऊँ।' इसके बाद सभी आभूषणोंसे विभूषित प्रसन्न शरीरवाले वे द्विजवर **'देवस्य त्वा०'** इस मन्त्रका पाठ करते हुए चार कलशोंद्वारा स्वर्णमय आसनपर आसीन यजमानको स्नान करवायें और कहें कि 'आज उत्पन्न हुए तुम्हारे इन अङ्गोंका हम लोग अभिषेक कर रहे हैं। अब तुम इस दिव्य शरीरसे चिरकालतक जीवित रहो

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

और आनन्दका उपभोग करो।' तदनन्तर विचक्षण यजमान उस हिरण्यगर्भको उन ब्राह्मणोंको दान कर दे और उन ब्राह्मणोंकी सब तरहसे पूजा करे। फिर उनकी आज्ञासे अन्यान्य ब्राह्मणोंकी भी पूजा करनी चाहिये। वहाँकी सभी सामग्रियोंको—पादुका, जूता, छाता, चमर, आसन, पात्र, ग्राम, देश अथवा अन्य जो कुछ भी सम्भव हो—गुरुको समर्पित कर देना चाहिये। जो मनुष्य इस प्रकारकी विधिसे पुण्यदिनको इस हिरण्यगर्भ नामक महादानको करता है, वह ब्रह्मलोकमें पूजित होता है, प्रत्येक मन्वन्तरमें लोकपालोंके पुरोंमें निवास करता है तथा सौ कोटि कल्पपर्यन्त ब्रह्मलोकमें पूजित होता है। कलियुगके पापोंसे मुक्त हुआ वह अकेले ही सिद्धों और साध्योंद्वारा पूजित तथा अप्सराओं-द्वारा देवताओंके योग्य चमरोंसे वीजित होकर नरकमें पड़े हुए सैकड़ों पितरों, बन्धुओं, पुत्रों, पौत्रों तथा प्रपौत्रोंतकको तार देता है। इस प्रकार मर्त्यलोकमें जो मनुष्य इसे पढ़ता है अथवा भलीभाँति सुनता है, वह भी विष्णुभगवान्की तरह सिद्धगणोंद्वारा पूजित होता है तथा जो हितैषिताकी दृष्टिसे लोगोंको दान करनेकी सूझ देता है, वह देवपतियोंका नायक होता है और उस पदसे कभी च्युत नहीं होता ॥ १८–२९ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें महादानानुकीर्तनमें हिरण्यगर्भदान-विधि नामक दो सौ पचहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २७५ ॥

दो सौ छिहत्तरवाँ अध्याय

ब्रह्माण्डदानकी विधि

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि ब्रह्माण्डविधिमुत्तमम्। यच्छ्रेष्ठं सर्वदानानां महापातकनाशनम् ॥ १ ॥
पुण्यं दिनमथासाद्य तुलापुरुषदानवत्। ऋत्विङ्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम् ॥ २ ॥
लोकेशावाहनं कुर्यादधिवासनकं तथा। कुर्याद् विंशपलादूर्ध्वमासहस्राच्च शक्तितः ॥ ३ ॥
कलशद्वयसंयुक्तं ब्रह्माण्डं काञ्चनं बुधः। दिग्गजाष्टकसंयुक्तं षड्वेदाङ्गसमन्वितम् ॥ ४ ॥
लोकपालाष्टकोपेतं मध्यस्थितचतुर्मुखम्। शिवाच्युतार्कशिखरमुमालक्ष्मीसमन्वितम् ॥ ५ ॥
वस्वादित्यमरुद्गर्भं महारत्नसमन्वितम्। वितस्तेरङ्गुलशतं यावदायामविस्तरम् ॥ ६ ॥
कौशेयवस्त्रसंवीतं तिलद्रोणोपरि न्यसेत्। तथाष्टादश धान्यानि समन्तात् परिकल्पयेत् ॥ ७ ॥
पूर्वेणानन्तशयनं प्रद्युम्नं पूर्वदक्षिणे। प्रकृतिं दक्षिणे देशे सङ्कर्षणमतः परम् ॥ ८ ॥
पश्चिमे चतुरो वेदाननिरुद्धमतः परम्। अग्निमुत्तरतो हैमं वासुदेवमतः परम् ॥ ९ ॥
समन्ताद् गुडपीठस्थानर्चयेत् काञ्चनान् बुधः। स्थापयेद् वस्त्रसंवीतान् पूर्णकुम्भान् दशैव तु ॥ १० ॥

मत्स्यभगवान्ने कहा—अब मैं सर्वश्रेष्ठ ब्रह्माण्ड-दानकी विधि बतला रहा हूँ, जो सभी दानोंमें श्रेष्ठ और महापापोंका विनाश करनेवाला है। पुण्यदिनके आनेपर तुलापुरुष-दानके समान इसमें भी ऋत्विज, मण्डप, पूजनकी सामग्री, भूषण तथा आच्छादन आदिको एकत्र करना चाहिये। इसी प्रकार लोकपालोंका आवाहन और अधिवासन भी करना चाहिये। इसके पहले बुद्धिमान् पुरुषको अपनी शक्तिके अनुसार बीस पलसे ऊपर एक हजार पलतक दो कलशोंसे संयुक्त सोनेके ब्रह्माण्ड*की रचना करवानी चाहिये। वह ब्रह्माण्ड

* ब्रह्माण्ड-निर्माण एवं दानकी ससंकल्प पूरी विधि दानसागर, दानमयूख-चन्द्रिका-कल्पतरु आदिमें है। अधिक जाननेकी इच्छा रखनेवाले सज्जनोंको इसे वहीं देखना चाहिये।

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

आठों दिग्गजोंसे संयुक्त, छहों वेदाङ्गोंसे सम्पन्न तथा आठों लोकपालोंसे युक्त हो। उसके मध्यभागमें चतुर्मुख ब्रह्मा तथा शिखरपर शिव, विष्णु और सूर्य स्थित हों, वह उमा तथा लक्ष्मीसे युक्त हो। उसके गर्भमें वसुगण, आदित्यगण और मरुद्गण होने चाहिये तथा वह बहुमूल्य रत्नोंसे सुशोभित भी हो। उसकी लम्बाई-चौड़ाई एक बीतेसे लेकर सौ अंगुलतक होनी चाहिये। उसे रेशमी वस्त्रसे परिवेष्टित कर एक द्रोण तिलपर स्थापित करना चाहिये। उसके चारों ओर अठारह प्रकारके अन्नोंको रखना चाहिये। उसकी पूर्व दिशामें अनन्तशायीको, (दक्षिण-पूर्वके) अग्नि कोणमें प्रद्युम्नको, दक्षिण दिशामें प्रकृतिको, (दक्षिण पश्चिमके) नैर्ऋत्य कोणमें संकर्षणको, पश्चिम दिशामें चारों वेदोंको, (पश्चिम-उत्तर) वायव्य-कोणमें अनिरुद्धको, उत्तर दिशामें अग्निको, (उत्तर-पूर्वके) ईशान-कोणमें सुवर्ण-निर्मित वासुदेवको स्थापित करना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुष इन सभी देवताओंकी स्वर्णमयी प्रतिमा बनवाकर चारों ओर गुडके आसनपर स्थितकर उनकी पूजा करे। फिर जलसे भरे हुए दस कुम्भोंको वस्त्रसे परिवेष्टित कर स्थापित करे ॥ १—१० ॥

दशैव धेनवो देयाः सहेमाम्बरदोहनाः।
पादुकोपानहच्छत्रचामरासनदर्पणैः । भक्ष्यभोज्यान्नदीपेक्षुफलमाल्यानुलेपनैः ॥ ११ ॥
होमाधिवासनान्ते च स्नापितो वेदपुङ्गवैः। इममुच्चारयेन्मन्त्रं त्रिः कृत्वाथ प्रदक्षिणम् ॥ १२ ॥
नमोऽस्तु विश्वेश्वर विश्वधाम जगत्सवित्रे भगवन् नमस्ते।
सप्तर्षिलोकामरभूतलेश गर्भेण सार्धं वितराभिरक्षाम् ॥ १३ ॥
ये दुःखितास्ते सुखिनो भवन्तु प्रयान्तु पापानि चराचराणाम्।
त्वद्दानशस्त्राहतपातकानां ब्रह्माण्डदोषाः प्रलयं व्रजन्तु ॥ १४ ॥
एवं प्रणम्यामरविश्वगर्भं दद्याद् द्विजेभ्यो दशधा विभज्य।
भागद्वयं तत्र गुरोः प्रकल्प्य समं भजेच्छेषमनुक्रमेण ॥ १५ ॥
स्वल्पे च होमं गुरुरेक एव कुर्याद्धथैकाग्निविधानयुक्त्या।
स एव सम्पूज्यतमोऽल्पवित्ते यथोक्तवस्त्राभरणादिकेन ॥ १६ ॥
इत्थं य एतदखिलं पुरुषोऽत्र कुर्याद् ब्रह्माण्डदानमधिगम्य महद्विमानम्।
निर्धूतकल्मषविशुद्धतनुर्मुरारेरानन्दकृत्पदमुपैति सहाप्सरोभिः ॥ १७ ॥
संतारयेत् पितृपितामहपुत्रपौत्रबन्धुप्रियातिथिकलत्रशताष्टकं सः।
ब्रह्माण्डदानशकलीकृतपातकौघमानन्दयेच्च जननीकुलमप्यशेषम् ॥ १८ ॥
इति पठति शृणोति वा य एतत् सुरभवनेषु गृहेषु धार्मिकाणाम्।
मतिमपि च ददाति मोदतेऽसावमरपतेर्भवने सहाप्सरोभिः ॥ १९ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने ब्रह्माण्डप्रदानविधिर्नाम षट्सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७६ ॥

तदनन्तर पादुका, जूता, छत्र, चमर, आसन, दर्पण, भक्ष्य-भोज्य अन्न, दीप, ईख, फल, माला और चन्दन-सहित सुवर्ण, वस्त्र और कांसदोहनीके साथ दस गौएँ दान करनी चाहिये। हवन एवं अधिवासनके समाप्त होनेपर वेदज्ञ ब्राह्मणोंद्वारा स्नान कराये जानेके बाद यजमान तीन बार प्रदक्षिणा कर इस मन्त्रका उच्चारण करे—'विश्वेश्वर! आपको नमस्कार है। विश्वधाम! आप जगत्‌को उत्पन्न करनेवाले हैं, आपको प्रणाम है। भगवन्! आप सप्तर्षिलोक, देवता और भूतलके स्वामी हैं, आप गर्भके साथ चारों ओरसे हमारी रक्षा कीजिये। जो दुःखी हैं, वे सुखी हो जायँ, चराचर जीवोंके पापपुञ्ज नष्ट हो जायँ, आपके दानरूप शस्त्रसे नष्ट

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

हुए पापोंवाले लोगोंके ब्रह्माण्ड-दोष नष्ट हो जायँ।' इस प्रकार अमरगणों एवं विश्वको गर्भमें धारण करनेवाले उस ब्रह्माण्डको प्रणाम करनेके बाद उसे दस भागोंमें विभक्त कर ब्राह्मणोंको दान कर दे। उनमेंसे दो भाग गुरुको दे और शेष भागोंको क्रमशः समानरूपसे ब्राह्मणोंको दे। स्वल्प हवनमें एक गुरुको ही एकाग्निकी विधिसे नियुक्त करना चाहिये और अल्प वित्त होनेपर यथोक्त वस्त्र-आभूषणादिसे उन्हींकी पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार जो मनुष्य इस लोकमें इस ब्रह्माण्डदानकी क्रियाको सम्पन्न करता है, वह पापोंके नष्ट हो जानेसे शुद्ध-शरीर हो अप्सराओंके साथ महान् विमानपर आरूढ़ हो मुरारिके आनन्ददायक पदको प्राप्त करता है। इस प्रकार करनेसे वह अपने सैकड़ों पिता, पितामह, पुत्र, पौत्र, बन्धु, प्रियजन, अतिथि और स्त्रीको तार देता है। साथ ही जिसका पापसमूह ब्रह्माण्ड-दानसे चूर्ण हो गया है, उस सम्पूर्ण मातृकुलको भी आनन्दित करता है। इसे जो मनुष्य देव-मन्दिरों अथवा धार्मिकोंके गृहोंमें पढ़ता अथवा सुनता या ऐसा करनेकी मति ही देता है, वह इन्द्रके भवनमें अप्सराओंके साथ आनन्दका अनुभव करता है ॥११-१९॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें महादान-वर्णनप्रसंगमें ब्रह्माण्ड-दान-विधि नामक दो सौ छिहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २७६ ॥

दो सौ सतहत्तरवाँ अध्याय

कल्पपादप-दान-विधि

मत्स्य उवाच

कल्पपादपदानाख्यमतः परमनुत्तमम्। महादानं प्रवक्ष्यामि सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥
पुण्यं दिनमथासाद्य तुलापुरुषदानवत्। पुण्याहवाचनं कृत्वा लोकेशावाहनं तथा ॥ २ ॥
ऋत्विङ्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम्। काञ्चनं कारयेद् वृक्षं नानाफलसमन्वितम् ॥ ३ ॥
नानाविहगवस्त्राणि भूषणानि च कारयेत्। शक्तितस्त्रिपलादूर्ध्वमासहस्रं प्रकल्पयेत् ॥ ४ ॥
अर्धक्लृप्तसुवर्णस्य कारयेत् कल्पपादपम्। गुडप्रस्थोपरिष्टाच्च सितवस्त्रयुगान्वितम् ॥ ५ ॥
ब्रह्मविष्णुशिवोपेतं पञ्चशाखं सभास्करम्। कामदेवमधस्ताच्च सकलत्रं प्रकल्पयेत् ॥ ६ ॥
संतानं पूर्वतस्तद्वत् तुरीयांशेन कल्पयेत्। मन्दारं दक्षिणे पार्श्वे श्रिया सार्धं घृतोपरि ॥ ७ ॥
पश्चिमे पारिजातं तु सावित्र्या सह जीरके। सुरभीसंयुतं तद्वत् तिलेषु हरिचन्दनम् ॥ ८ ॥
तुरीयांशेन कुर्वीत सौम्येन फलसंयुतम्। कौशेयवस्त्रसंवीतानिक्षुमाल्यफलान्वितान् ॥ ९ ॥
तथाष्टौ पूर्णकलशान् पादुकाशनभाजनम्। दीपिकोपानहच्छत्रचामरासनसंयुतम् ॥ १० ॥
फलमाल्ययुतं तद्वदुपरिष्टाद्वितानकम्। तथाष्टादश धान्यानि समंतात् परिकल्पयेत् ॥ ११ ॥
होमाधिवासनान्ते च स्नापितो वेदपुङ्गवैः। त्रिः प्रदक्षिणमावृत्य मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥ १२ ॥

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—इसके बाद मैं सभी पातकोंको नष्ट करनेवाले अत्युत्तम कल्पपादप-दान नामक महादानका वर्णन कर रहा हूँ। पुण्य दिन प्राप्त होनेपर तुलापुरुष-दानके समान ही पुण्याहवाचन तथा लोकपालोंका आवाहन कर ऋत्विज मण्डप, पूजन-सामग्री, भूषण, आच्छादन आदि सम्पन्न कर कल्पवृक्ष-दानका समारम्भ करे। इसके लिये विविध प्रकारके फलोंसे सुशोभित एक सुवर्णमय कल्पवृक्ष बनवाये। उसपर विविध प्रकारके पक्षी, वस्त्र तथा आभूषण भी बनवाये। इस वृक्षको यथाशक्ति तीन पलसे लेकर एक हजार पलतकका

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

बनवाना चाहिये। इसमेंसे आधे सोनेका कल्पपादप बनवाना चाहिये और उसे एक प्रस्थ गुड़के ऊपर दो श्वेत वस्त्रोंसे संयुक्त कर स्थापित करना चाहिये। वह कल्पवृक्ष ब्रह्मा, विष्णु, शिव और सूर्यके चित्रोंसे संयुक्त पाँच शाखाओंवाला हो। उसके निचले भागमें स्त्रीसहित कामदेवके चित्रकी रचना करनी चाहिये। उसकी पूर्व दिशामें चतुर्थांशसे संतान नामक देववृक्षकी, दक्षिण दिशामें घृतके ऊपर श्रीदेवीके साथ मन्दार नामक देववृक्षकी, पश्चिम दिशामें जीराके ऊपर सावित्रीके साथ पारिजात वृक्षकी तथा उत्तर दिशामें तिलोंके ऊपर गौके साथ फलसंयुक्त हरिचन्दन वृक्षकी स्थापना करनी चाहिये। पुनः रेशमी वस्त्रसे वेष्टित, ईख, पुष्पमाला और फलोंसे संयुक्त आठ पूर्ण कलशोंको स्थापित करे, उनके निकट पादुका, भोजन-पात्र, दीप, जूता, छत्र, चामर, आसन, फल और पुष्प भी रखना चाहिये। उनके ऊपर वितान भी लगाया जाय। उनके चारों ओर अठारह प्रकारके धान्य रखे जायँ। इस प्रकार हवन एवं अधिवासनकी समाप्ति होनेपर वेदज्ञ ब्राह्मणोंद्वारा स्नान कराये जानेपर यजमान तीन प्रदक्षिणा करके इस मन्त्रका उच्चारण करे ॥ १-१२ ॥

नमस्ते कल्पवृक्षाय चिन्तितार्थप्रदायिने। विश्वम्भराय देवाय नमस्ते विश्वमूर्तये ॥ १३ ॥
यस्मात् त्वमेव विश्वात्मा ब्रह्मा स्थाणुर्दिवाकरः। मूर्तामूर्तपरं बीजमतः पाहि सनातन ॥ १४ ॥
त्वमेवामृतसर्वस्वमनन्तः पुरुषोऽव्ययः। संतानाद्यैरुपेतस्तत् पाहि संसारसागरात् ॥ १५ ॥
एवमामन्त्र्य तं दद्याद् गुरवे कल्पपादपम्। चतुर्भ्यश्चाथ ऋत्विग्भ्यः संतानादीन् प्रकल्पयेत् ॥ १६ ॥
स्वल्पे त्वेकाग्निवत् कुर्याद् गुरवे चाभिपूजनम्। न वित्तशाठ्यं कुर्वीत न च विस्मयवान् भवेत् ॥ १७ ॥
अनेन विधिना यस्तु प्रदद्यात् कल्पपादपम्। सर्वपापविनिर्मुक्तः सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥ १८ ॥
अप्सरोभिः परिवृतः सिद्धचारणकिन्नरैः। भूतान् भव्यांश्च मनुजांस्तारयेद् गोत्रसंयुतान् ॥ १९ ॥
स्तूयमानो दिवः पृष्ठे पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः। विमानेनार्कवर्णेन विष्णुलोकं स गच्छति ॥ २० ॥
दिवि कल्पशतं तिष्ठेद् राजराजो भवेत् ततः।
नारायणबलोपेतो नारायणपरायणः। नारायणकथासक्तो नारायणपुरं व्रजेत् ॥ २१ ॥
यो वा पठेत् सकलकल्पतरुप्रदानं यो वा शृणोति पुरुषोऽल्पधनः स्मरेद् वा।
सोऽपीन्द्रलोकमधिगम्य सहाप्सरोभिर्मन्वन्तरं वसति पापविमुक्तदेहः ॥ २२ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने कल्पपादपप्रदानविधिर्नाम सप्तसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७७ ॥

'आप अभिलषित पदार्थको प्रदान करनेवाले कल्पवृक्ष हैं, आपको नमस्कार है। देव! आप विश्वका भरण-पोषण करनेवाले विश्वमूर्ति हैं, आपको प्रणाम है। सनातन! चूँकि आप विश्वात्मा, ब्रह्मा, शिव, दिवाकर, मूर्त-अमूर्त तथा इस चराचर विश्वके परम कारणरूप हैं, अतः मेरी रक्षा कीजिये। आप ही अमृतसर्वस्व, अनन्त, अव्यय, पुरुषोत्तम और संतान आदि दिव्य वृक्षोंसे युक्त हैं, अतः आप इस संसार-सागरसे मेरी रक्षा कीजिये।' इस प्रकार आमन्त्रित कर उस कल्पवृक्षको गुरुको समर्पित कर दे और संतान आदि वृक्षोंको चार ऋत्विजोंको दे दे। स्वल्प सामग्रियोंके होनेपर एकाग्नि-पूजनकी भाँति एक गुरुकी ही पूजा करनी चाहिये। इस दानमें न तो कृपणता करनी चाहिये और न विस्मय ही करना चाहिये। जो मनुष्य इस विधिसे कल्पपादपका दान करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त करता है। वह सिद्ध, चारण, किन्नर और अप्सराओंसे घिरा हुआ अपने सगोत्रीय भूत तथा भविष्यकालमें होनेवाले पुरुषोंको तार देता है। वह स्वर्गलोकमें पुत्र, पौत्र और प्रपौत्रोंद्वारा स्तुति किया जाता हुआ सूर्यके समान तेजस्वी विमानपर

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

चढ़कर विष्णुलोकको जाता है और वहाँ सौ कल्पोंतक निवास करता है। तदनन्तर वह पुनः मृत्युलोकमें राजाधिराज होता है। यहाँ वह नारायणके पराक्रमसे संयुक्त हो नारायणकी भक्तिमें निरत और उन्हींकी कथाओंमें आसक्त रहता है, जिससे पुनः वैकुण्ठलोकको प्राप्त करता है। जो मनुष्य इस कल्पपादप-दानकी समग्र विधिको पढ़ता या सुनता है अथवा जो अल्प वित्तशाली पुरुष केवल स्मरण करता है, वह भी पापमुक्त होकर इन्द्रलोकमें जाकर अप्सराओंके साथ मन्वन्तर-पर्यन्त निवास करता है ॥ १३—२२ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें महादान-अनुकीर्तन-प्रसङ्गमें कल्पपादप-प्रदान-विधि नामक दो सौ सतहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २७७ ॥

दो सौ अठहत्तरवाँ अध्याय

गोसहस्र-दानकी विधि

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम्। गोसहस्रप्रदानाख्यं सर्वपापहरं परम् ॥ १ ॥
पुण्यां तिथिं समासाद्य युगमन्वन्तरादिकाम्। पयोव्रतं त्रिरात्रं स्यादेकरात्रमथापि वा ॥ २ ॥
लोकेशावाहनं कुर्यात् तुलापुरुषदानवत्। पुण्याहवाचनं कुर्याद्धोमः कार्यस्तथैव च ॥ ३ ॥
ऋत्विङ्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम् । वृषं लक्षणसंयुक्तं वेदिमध्येऽधिवासयेत् ॥ ४ ॥
गोसहस्रं बहिः कुर्याद् वस्त्रमाल्यविभूषणम्। सुवर्णशृङ्गाभरणं रौप्यपादसमन्वितम् ॥ ५ ॥
अन्तः प्रवेश्य दशकं वस्त्रमाल्यैश्च पूजयेत्। सुवर्णघंटिकायुक्तं कांस्यदोहनकान्वितम् ॥ ६ ॥
सुवर्णतिलकोपेतं हेमपट्टैरलंकृतम्। कौशेयवस्त्रसंवीतं माल्यगन्धसमन्वितम् ॥ ७ ॥
हेमरत्नमयैः शृङ्गैश्चामरैरुपशोभितम्। पादुकोपानहच्छत्रभाजनासनसंयुतम् ॥ ८ ॥
गवां दशकमध्ये स्यात् काञ्चनो नन्दिकेश्वरः। कौशेयवस्त्रसंवीतो नानाभरणभूषितः ॥ ९ ॥
लवणद्रोणशिखरे माल्येक्षुफलसंयुतः। कुर्यात् पलशतादूर्ध्वं सर्वमेतदशेषतः ॥ १० ॥
शक्तितः पलसाहस्रत्रितयं यावदेव तु। गोशतेऽपि दशांशेन सर्वमेतत् समाचरेत् ॥ ११ ॥

मत्स्यभगवान्ने कहा—इसके बाद मैं सभी पापोंको दूर करनेवाले अत्युत्तम गोसहस्र-दान नामक महादानकी विधि बता रहा हूँ। किसी युगादि या मन्वादि पुण्य तिथिके आनेपर त्रिरात्र अथवा एकरात्र पयोव्रत करे। फिर तुलापुरुष-दानकी तरह लोकपालोंका आवाहन, पुण्याहवाचन तथा हवन करना चाहिये। पुनः उसी प्रकार ऋत्विज, मण्डप, पूजन-सामग्री, भूषण, आच्छादन आदिको भी एकत्र करे। तत्पश्चात् पूर्वनिर्दिष्ट लक्षणोंसे संयुक्त नन्दिकेश्वर (एक वृषभ)को वेदीके मध्यभागमें स्थापित करे। वेदीके बाहर चारों ओर एक हजार गौओंको, जिनके सींग सोनेसे और खुर चाँदीसे मढ़े गये हों तथा जो वस्त्र और पुष्पमालासे विभूषित हों, स्थापित करे। पुनः वेदीके भीतर ऐसी दस गौओंको प्रविष्ट करे, जिनके गलेमें सोनेकी घंटी पड़ी हो, जो कांसदोहनीसे युक्त, स्वर्णमय तिलकसे सुशोभित, स्वर्णपत्रोंसे अलंकृत, रेशमी वस्त्रसे आच्छादित, पुष्पमाला और चन्दनसे युक्त, स्वर्ण एवं रत्नमय शिखरों-वाले चामरोंसे सुशोभित तथा पादुका, जूता, पात्र और आसनीसे संयुक्त हों। प्रति दस गौओंके बीच रेशमी वस्त्रसे परिवेष्टित, विविध अलंकारोंसे विभूषित तथा पुष्पमाला, ईख और फलोंसे संयुक्त सुवर्णमय साँड़को नन्दीके रूपमें एक द्रोण लवणके ऊपर स्थापित करना

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

चाहिये। इन सब सामग्रियोंका निर्माण सौ पल सुवर्णसे ऊपर तीन हजार पलतक अपनी आर्थिक शक्तिके अनुसार करना चाहिये। सौ गौओंके दानमें भी इस सबका दशांशरूपसे व्यय करना चाहिये ॥ १-११ ॥

पुण्यकालं समामाद्य गीतमङ्गलनिःस्वनैः। सर्वौषध्युदकस्नानस्नापितो वेदपुङ्गवैः ॥ १२ ॥
इममुच्चारयेन्मन्त्रं गृहीतकुसुमाञ्जलिः। नमोऽस्तु विश्वमूर्तिभ्यो विश्वमातृभ्य एव च ॥ १३ ॥
लोकाधिवासिनीभ्यश्च रोहिणीभ्यो नमो नमः। गवामङ्गेषु तिष्ठन्ति भुवनान्येकविंशतिः ॥ १४ ॥
ब्रह्मादयस्तथा देवा रोहिण्यः पान्तु मातरः। गावो मे अग्रतः सन्तु गावः पृष्ठत एव च ॥ १५ ॥
गावः शिरसि मे नित्यं गवां मध्ये वसाम्यहम्। यस्मात् त्वं वृषरूपेण धर्म एव सनातनः ॥ १६ ॥
अष्टमूर्तेरधिष्ठानमतः पाहि सनातन। इत्यामन्त्र्य ततो दद्याद् गुरवे नन्दिकेश्वरम् ॥ १७ ॥
सर्वोपकरणोपेतं गोयुतं च विचक्षणः। ऋत्विग्भ्यो धेनुमेकैकां दशकाद् विनिवेदयेत् ॥ १८ ॥
गवां च शतमेकैकं तदर्धं वाथ विंशतिम्। दश पञ्चाथ वा दद्यादन्येभ्यस्तदनुज्ञया ॥ १९ ॥
नैका बहुभ्यो दातव्या यतो दोषकरी भवेत्। बह्व्यश्चैकस्य दातव्या धीमताऽऽरोग्यवृद्धये ॥ २० ॥
पयोव्रतः पुनस्तिष्ठेदेकाहं गोसहस्रदः। श्रावयेच्छृणुयाद्वापि महादानानुकीर्तनम् ॥ २१ ॥

तदनन्तर पुण्यकाल आनेपर गीत एवं माङ्गलिक शब्दोंके साथ वेदज्ञ ब्राह्मणोंद्वारा सर्वौषधिमिश्रित जलसे स्नान कराया हुआ यजमान अञ्जलिमें पुष्प लेकर इस मन्त्रका उच्चारण करे—'विश्वमूर्तिस्वरूपा विश्वमाताओं-को नमस्कार है। लोकोंको धारण करनेवाली रोहिणी-रूपा गौओंको बारंबार प्रणाम है। गौओंके अङ्गोंमें इक्कीसों भुवन तथा ब्रह्मादि देवताओंका निवास है, वे रोहिणीस्वरूपा* माताएँ मेरी रक्षा करें। गौएँ मेरे अग्रभागमें रहें, गौएँ मेरे पृष्ठभागमें रहें, गौएँ नित्य मेरे सिरपर वर्तमान रहें और मैं गौओंके मध्यमें निवास करूँ। सनातन! चूँकि तुम्हीं वृषरूपसे सनातन धर्म और भगवान् शिवके वाहन हो, अतः मेरी रक्षा करो!' इस प्रकार आमन्त्रित कर बुद्धिमान् यजमान सभी सामग्रियोंके साथ एक गौ और नन्दिकेश्वरको गुरुको दान कर दे तथा उन दसों गायोंमेंसे एक-एक तथा हजार गौओंमेंसे एक-एक सौ, पचास-पचास अथवा बीस-बीस गायें प्रत्येक ऋत्विजको समर्पित कर दे। तत्पश्चात् उनकी आज्ञासे अन्य ब्राह्मणोंको दस-दस या पाँच-पाँच गौएँ देनी चाहिये। एक ही गाय बहुतोंको नहीं देनी चाहिये; क्योंकि वह दोष-प्रदायिनी हो जाती है। बुद्धिमान् यजमानको आरोग्यवृद्धिके लिये एक-एकको अनेक गौएँ देनी चाहिये। इस प्रकार एक हजार गोदान करनेवाला यजमान एक दिनके लिये पुनः पयोव्रत करे और इस महादानका अनुकीर्तन स्वयं सुनाये अथवा सुने ॥ १२-२१ ॥

तद्दिने ब्रह्मचारी स्याद् यदीच्छेद्विपुलां श्रियम्।
अनेन विधिना यस्तु गोसहस्रप्रदो भवेत्। सर्वपापविनिर्मुक्तः सिद्धचारणसेवितः ॥ २२ ॥
विमानेनार्कवर्णेन किङ्किणीजालमालिना। सर्वेषां लोकपालानां लोके सम्पूज्यतेऽमरैः ॥ २३ ॥
प्रतिमन्वन्तरं तिष्ठेत् पुत्रपौत्रसमन्वितः। सप्त लोकानतिक्रम्य ततः शिवपुरं व्रजेत् ॥ २४ ॥
शतमेकोत्तरं तद्वत् पितॄणां तारयेद् बुधः।
मातामहानां तद्वच्च पुत्रपौत्रसमन्वितः। यावत् कल्पशतं तिष्ठेद् राजराजो भवेत् पुनः ॥ २५ ॥
अश्वमेधशतं कुर्याच्छिवध्यानपरायणः। वैष्णवं योगमास्थाय ततो मुच्येत बन्धनात् ॥ २६ ॥
पितरश्चाभिनन्दन्ति गोसहस्रप्रदं सुतम्।

* वाजसने० ८। ४१ आदिमें बार-बार रोहिणीरूपा गौओंको कामधेनु एवं सुरभिरूपा कहा गया है। रोहिणी प्रायः गौ लालवर्णकी होती है।

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

अपि स्यात् स कुलेऽस्माकं पुत्रो दौहित्र एव वा। गोसहस्रप्रदो भूत्वा नरकादुद्धरिष्यति ॥ २७ ॥
तस्य कर्मकरो वा स्यादपि द्रष्टा तथैव च। संसारसागरादस्माद् योऽस्मान् सन्तारयिष्यति ॥ २८ ॥
इति पठति य एतद् गोसहस्रप्रदानं सुरभुवनमुपेयात् संस्मरेद् वा च पश्येत्।
अनुभवति मुदं वा मुच्यमानो निकामं प्रहतकलुषदेहः सोऽपि यातीन्द्रलोकम् ॥ २९ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने गोसहस्रप्रदानविधिर्नामाष्टसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७८ ॥

यदि उसे विपुल समृद्धिकी इच्छा हो तो उस दिन ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करना चाहिये। इस विधिसे जो मनुष्य एक हजार गौओंका दान करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर सिद्धों एवं चारणोंद्वारा सेवित होता है। वह क्षुद्र घंटियोंसे सुशोभित सूर्यके समान तेजस्वी विमानपर आरूढ होकर सभी लोकपालोंके लोकोंमें अमरोंद्वारा पूजित होता है एवं वहाँ प्रत्येक मन्वन्तरमें पुत्र-पौत्रसहित निवास करता है। पुनः सातों लोकोंका अतिक्रमण कर शिवपुरको चला जाता है। वह बुद्धिमान् दाता अपने पितृपक्ष तथा मातृपक्षके पितरोंके एक सौ एक पीढ़ियोंको तार देता है। वह वहाँ पुत्र-पौत्रसे युक्त होकर सौ कल्पोंतक निवास करता है तथा वहाँसे लौटनेपर भूतलपर राजाधिराज होता है। यहाँ वह शिवके ध्यानमें परायण हो सैकड़ों अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान करता है। पुनः वैष्णवयोगको धारणकर बन्धनसे मुक्त हो जाता है। पितर भी हजार गोदान करनेवाले पुत्रका अभिनन्दन करते हैं। (वे अपने हृदयमें सर्वदा यह आकाङ्क्षा करते रहते हैं कि) क्या हमारे कुलमें कोई पुत्र अथवा दौहित्र (कन्याका पुत्र) ऐसा होगा, जो हजार गौओंका दान कर हमलोगोंका नरकसे उद्धार करेगा अथवा इस महादानका कर्मचारी या इसका दर्शक होगा, जिससे इस संसारसागरसे हमलोगोंको पार कर देगा। इस प्रकार इस गोसहस्र-दानको जो पढ़ता, स्मरण करता अथवा देखता है, वह देवलोकको प्राप्त होता है अथवा जो दान देते समय अत्यन्त हर्षका अनुभव करता है, उसका शरीर पापसे मुक्त हो जाता है और वह इन्द्रलोकको चला जाता है ॥ २२–२९ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें महादान-वर्णन-प्रसंगमें गौ-सहस्र प्रदान-विधि नामक दो सौ अठहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २७८ ॥

दो सौ उन्यासीवाँ अध्याय

कामधेनु-दानकी विधि

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कामधेनुविधिं परम्। सर्वकामप्रदं नृणां महापातकनाशनम् ॥ १ ॥
लोकेशावाहनं तद्वद्धोमः कार्योऽधिवासनम्। तुलापुरुषवत् कुर्यात् कुण्डमण्डपवेदिकम् ॥ २ ॥
स्वल्पे त्वेकाग्निवत्कुर्याद् गुरुरेकः समाहितः। काञ्चनस्यातिशुद्धस्य धेनुं वत्सं च कारयेत् ॥ ३ ॥
उत्तमा पलसाहस्री तदर्धेन तु मध्यमा। कनीयसी तदर्धेन कामधेनुः प्रकीर्तिता ॥ ४ ॥
शक्तितस्त्रिपलादूर्ध्वमशक्तोऽपीह कारयेत्। वेद्यां कृष्णाजिनं न्यस्य गुडप्रस्थसमन्वितम् ॥ ५ ॥
न्यसेदुपरि तां धेनुं महारत्नैरलंकृताम्। कुम्भाष्टकसमोपेतां नानाफलसमन्विताम् ॥ ६ ॥
तथाष्टादश धान्यानि समंतात् परिकल्पयेत्।
इक्षुदण्डाष्टकं तद्वज्जातीफलसमन्वितम्। भाजनं चासनं तद्वत्ताम्रदोहनकं तथा ॥ ७ ॥

Sri Vidyabharathi Book Center Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—अब इसके बाद मैं मनुष्यों-के महापातकोंको नाश करनेवाले तथा सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले कामधेनुके दानकी विधि बतला रहा हूँ। इसमें भी तुलापुरुष-दानकी तरह लोकपालोंका आवाहन, हवन और स्थापन-कार्य करना चाहिये तथा उसी प्रकार कुण्ड, मण्डप और वेदीकी रचना करनी चाहिये। स्वल्प वित्तवाला व्यक्ति एककुण्डीयज्ञाग्निकी विधिसे ऋत्विज-रूपमें समाहित चित्तवाले एकमात्र अपने गुरुका ही वरण करे। इसके लिये वह अत्यन्त शुद्ध सोनेकी कामधेनु और वत्स बनवाये। वह कामधेनु एक हजार पलकी उत्तम, पाँच सौ पलकी मध्यम और ढाई सौ पलकी कनिष्ठ कही गयी है। असमर्थ व्यक्तिको भी अपनी शक्तिके अनुसार तीन पलसे ऊपरकी ही कामधेनु बनवानी चाहिये। उसके बाद वेदीपर काले मृगचर्मको फैलाकर उसपर एक प्रस्थ गुड़ रखे। उसीके ऊपर बहुमूल्य रत्नोंसे अलंकृत उस धेनुको स्थापित करे। उस गौके साथ आठ कुम्भ तथा विविध प्रकारके फल हों। फिर वेदीके चारों ओर अठारह प्रकारके अन्न, ईखके आठ टुकड़े, विविध प्रकारके पात्र, आसन तथा ताँबेकी दोहनीको रखना चाहिये ॥ १—७ ॥

कौशेयवस्त्रद्वयसंयुतां गां दीपातपत्राभरणाभिरामाम्।
सचामरां कुण्डलिनीं सघण्टां सुवर्णशृङ्गीं परिरूप्यपादाम् ॥ ८ ॥
रसैश्च सर्वैः परितोऽभिजुष्टां हरिद्रया पुष्पफलैरनेकैः।
अजाजिकुस्तुम्बुरुशर्करादिभिर्वितानकं चोपरि पञ्चवर्णम् ॥ ९ ॥
स्नातस्ततो मङ्गलवेदघोषैः प्रदक्षिणीकृत्य सपुष्पहस्तः।
आवाहयेत् तां गुरुणोक्तमन्त्रैर्द्विजाय दद्यादथ दर्भपाणिः ॥ १० ॥
त्वं सर्वदेवगणमन्दिरमङ्गभूता विश्वेश्वरि त्रिपथगोदधिपर्वतानाम्।
त्वद्दानशस्त्रशकलीकृतपातकौघः प्राप्तोऽस्मि निर्वृतिमतीव परां नमामि ॥ ११ ॥
लोके यथेप्सितफलार्थविधायिनीं त्वामासाद्य को हि भवदुःखमुपैति मर्त्यः।
संसारदुःखशमनाय यतस्व कामं त्वां कामधेनुमिति वेदविदो वदन्ति ॥ १२ ॥
आमन्त्र्य शीलकुलरूपगुणान्विताय विप्राय यः कनकधेनुमिमां प्रदद्यात्।
प्राप्नोति धाम स पुरंदरदेवजुष्टं कन्यागणैः परिवृतः पदमिन्दुमौलेः ॥ १३ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने हिरण्यकामधेनुप्रदानविधिर्नामैकोनाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७९ ॥

उसके बाद दो रेशमी वस्त्रोंसे आच्छादित, दीप, छत्र और आभरणोंसे सुशोभित, चामरयुक्त, कुण्डल-धारिणी, घण्टीसे युक्त, सुवर्णजटित सींगों और चाँदी-जटित पैरोंवाली गौके सम्पूर्ण शरीरको सभी प्रकारके रस, हल्दी, जीरा, धनिया और शक्करसे लेपन करके उसके निकट अनेकों प्रकारके पुष्प और फल रखे। उसके ऊपर पँचरंगा चँदोवा ताने। तदनन्तर यजमान माङ्गलिक वेदध्वनिके साथ स्नान कर पुष्प और कुश हाथोंमें लेकर प्रदक्षिणा करके ब्राह्मणको दान दे, फिर गुरुद्वारा उच्चारित मन्त्रोंसे कामधेनुका आवाहन करे। तत्पश्चात् इस प्रकार प्रार्थना करे—'विश्वेश्वरि! तुम सभी देवताओंकी आश्रयस्वरूपा तथा गङ्गा, समुद्र और पर्वतोंकी अङ्गभूता हो। मेरे पापसमूह तुम्हारे दानरूप शस्त्रसे टुकड़े-टुकड़े हो गये हैं, इस कारण मैं परम संतुष्ट हो गया हूँ, अतः तुम्हें नमस्कार करता हूँ। संसारमें यथाभिलषित फल प्रदान करनेवाली तुम्हें प्राप्तकर भला

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

कौन मनुष्य सांसारिक दुःखोंमें पड़ सकेगा। तुम सांसारिक दुःखोंको शान्त करनेके लिये पूर्णरूपसे यत्नशील होओ। इसीलिये वेदवेत्तागण तुम्हें कामधेनु कहते हैं।' इस प्रकार आमन्त्रित कर जो व्यक्ति उत्तम कुल, शील, रूप और गुणसे युक्त ब्राह्मणको इस सुवर्णनिर्मित कामधेनुको दान करता है, वह कन्यासमूहोंसे घिरा हुआ इन्द्रदेवसे सेवित स्वर्ग तथा शंकरके लोकको प्राप्त करता है॥ ८—१३॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें महादानवर्णन-प्रसंगमें हिरण्यकामधेनु-दान-विधि नामक दो सौ उन्यासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २७९॥

दो सौ असीवाँ अध्याय

हिरण्याश्व-दानकी विधि

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि हिरण्याश्वविधिं परम्। यस्य प्रदानाद् भुवने चानन्तं फलमश्नुते॥ १॥
पुण्यां तिथिमथासाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्। लोकेशावाहनं कुर्यात् तुलापुरुषदानवत्॥ २॥
ऋत्विङ्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम्। स्वल्पे त्वेकाग्निवत्कुर्याद्धेमवाजिमखं बुधः॥ ३॥
स्थापयेद् वेदिमध्ये तु कृष्णाजिनतिलोपरि। कौशेयवस्त्रसंवीतं कारयेद्धेमवाजिनम्॥ ४॥
शक्तितस्त्रिपलादूर्ध्वमासहस्रपलाद् बुधः। पादुकोपानहच्छत्रचामरासनभाजनैः॥ ५॥
पूर्णकुम्भाष्टकोपेतं माल्येक्षुफलसंयुतम्। शय्यां सोपस्करां तद्वद्धेममार्तण्डसंयुताम्॥ ६॥
ततः सर्वौषधिस्नानस्नापितो वेदपुङ्गवैः। इममुच्चारयेन्मन्त्रं गृहीतकुसुमाञ्जलिः॥ ७॥
नमस्ते सर्वदेवेश वेदाहरणलम्पट। वाजिरूपेण मामस्मात् पाहि संसारसागरात्॥ ८॥
त्वमेव सप्तधा भूत्वा छन्दोरूपेण भास्कर। यस्माद् भासयसे लोकानतः पाहि सनातन॥ ९॥

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—अब मैं परम श्रेष्ठ सुवर्णमय अश्वके दानकी विधि बतला रहा हूँ, जिसके प्रदानसे मनुष्य भुवनमें अनन्त फलको प्राप्त करता है। किसी पुण्यतिथिके आनेपर तुलापुरुष-दानकी तरह पुण्याहवाचन कर लोकपालोंका आवाहन करे। फिर ऋत्विज, मण्डप, पूजन-सामग्री, भूषण, आच्छादन आदिका संग्रह करे। बुद्धिमान् यजमान यदि स्वल्पवित्तवाला हो तो उसे यह हिरण्याश्व-यज्ञ एकाग्नि-विधिकी तरह करना चाहिये। उसे अपनी शक्तिके अनुरूप तीन पलसे ऊपर एक हजार पलतकके सोनेका अश्व बनवाना चाहिये और उसे रेशमी वस्त्रसे आच्छादितकर वेदीके ऊपर फैलाये गये काले मृगचर्मपर रखी हुई तिल-राशिपर स्थापित करना चाहिये। उसके निकट पादुका, जूता, छाता, चमर, आसन और पात्र तथा जलसे भरे हुए आठ कलश, पुष्प-माला, ईख और फल भी रखनेका विधान है। उसी प्रकार वहाँ स्वर्णनिर्मित सूर्य-प्रतिमासे युक्त सभी सामग्रियोंके सहित शय्या भी स्थापित करे। तदनन्तर वेदज्ञ ब्राह्मणोंद्वारा सर्वौषधिमिश्रित जलसे स्नान कराये जानेके बाद यजमान अञ्जलिमें पुष्प लेकर इस मन्त्रका उच्चारण करे—'सभी देवोंके स्वामी! आपको नमस्कार है। वेदोंके लानेके लिये इच्छुक देव! आप अश्वरूपसे इस संसार-सागरसे मेरी रक्षा कीजिये। भास्कर! चूँकि आप ही छन्दोरूपसे सात भागोंमें विभक्त होकर सभी लोकोंको उद्भासित करते हैं, अतः सनातन! मेरी रक्षा कीजिये'॥ १—९॥

एवमुच्चार्य गुरवे तमश्वं विनिवेदयेत्। दत्त्वा पापक्षयाद् भानोर्लोकमभ्येति शाश्वतम्॥ १०॥
गोभिर्विभवतः सर्वानृत्विजश्चापि पूजयेत्। सर्वमन्यत्सोपकरणं गुरवे विनिवेदयेत्॥ ११॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

सर्वं शय्यादिकं दत्त्वा भुञ्जीतातैलमेव हि। पुराणश्रवणं तद्वत् कारयेद् भोजनादनु ॥ १२ ॥
इमं हिरण्याश्वविधिं करोति यः पुण्यं समासाद्य दिनं नरेन्द्र।
विमुक्तपापः स पुरं मुरारेः प्राप्नोति सिद्धैरभिपूजितः सन् ॥ १३ ॥
इति पठति य एतद्धेमवाजिप्रदानं सकलकलुषमुक्तः सोऽश्वमेधेन युक्तः।
कनकमयविमानेनार्कलोकं प्रयाति त्रिदशपतिवधूभिः पूज्यते योऽभिपश्येत् ॥ १४ ॥
यो वा शृणोति पुरुषोऽल्पधनः स्मरेद् वा हेमाश्वदानमभिनन्दयतीह लोके।
सोऽपि प्रयाति हतकल्मषशुद्धदेहः स्थानं पुरन्दरमहेश्वरदेवजुष्टम् ॥ १५ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने हिरण्याश्वप्रदानविधिर्नामाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८० ॥

इस प्रकार कहकर उस अश्वको गुरुको दान कर दे। इस दानको देनेसे पापके नष्ट हो जानेके कारण वह मनुष्य भगवान् सूर्यके अक्षयलोकको प्राप्त करता है। पुनः अपनी आर्थिक शक्तिके अनुकूल गौओंद्वारा सभी ऋत्विजोंकी भी पूजा करे। तत्पश्चात् धान्यसहित समस्त सामग्रियोंको तथा सम्पूर्ण सामग्रीसहित शय्याको गुरुको निवेदित कर दे। तदुपरान्त वह तैलरहित अन्नका भोजन करे और भोजनके बाद पुराणोंका श्रवण करे। नरेन्द्र! जो मनुष्य पुण्यदिन आनेपर इस हिरण्याश्व-विधिको सम्पन्न करता है, वह पापोंसे मुक्त हो सिद्धोंद्वारा पूजित होता हुआ मुरारिके पुर—वैकुण्ठको प्राप्त करता है। जो मनुष्य इस सुवर्णाश्वके दानकी विधिको पढ़ता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर अश्वमेध-यज्ञके फलका भागी होता है और सुवर्णमय विमानद्वारा सूर्यके लोकको जाता है तथा जो इस दानको देखता है, वह देवाङ्गनाओंद्वारा पूजित होता है। जो अल्पवित्त पुरुष हिरण्याश्व-दानकी इस विधिको सुनता या स्मरण करता है अथवा लोकमें इसका अभिनन्दन करता है, वह भी पापोंके नष्ट हो जानेसे विशुद्ध शरीरवाला हो पुरन्दर एवं महेश्वरसेवित स्थानको जाता है ॥ १०—१५ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें महादानवर्णनप्रसङ्गमें हिरण्याश्व-प्रदान-विधि नामक दो सौ अस्सीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २८० ॥

दो सौ इक्यासीवाँ अध्याय

हिरण्याश्वरथ-दानकी विधि

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम्। पुण्यमश्वरथं नाम महापातकनाशनम् ॥ १ ॥
पुण्यं दिनमथासाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्। लोकेशावाहनं कुर्यात् तुलापुरुषदानवत् ॥ २ ॥
ऋत्विङ्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम्। कृष्णाजिने तिलान् कृत्वा काञ्चनं स्थापयेद् रथम् ॥ ३ ॥
सप्ताश्वं चतुरश्वं वा चतुश्चक्रं सकूबरम्। ऐन्द्रनीलेन कुम्भेन ध्वजरूपेण संयुतम् ॥ ४ ॥
लोकपालाष्टकोपेतं पद्मरागदलान्वितम्। चतुरः पूर्णकलशान् धान्यान्यष्टादशैव तु ॥ ५ ॥
कौशेयवस्त्रसंयुक्तमुपरिष्टाद् वितानकम्। माल्येक्षुफलसंयुक्तं पुरुषेण समन्वितम् ॥ ६ ॥
यो यद्भक्तः पुमान् कुर्यात् स तन्नाम्नाधिवासनम्। छत्रचामरकौशेयवस्त्रोपानहपादुकम् ॥ ७ ॥
गोभिर्विभवतः सार्धं दद्याच्च शयनादिकम्। अभावात् त्रिपलादूर्ध्वं शक्तितः कारयेद् बुधः ॥ ८ ॥

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—अब इसके बाद मैं सर्वश्रेष्ठ महादानका वर्णन कर रहा हूँ। इस दानमें भी पुण्य पुण्यप्रद एवं महापातकोंके विनाशक अश्वरथ नामक पर्वदिन आनेपर तुलापुरुष-दानकी तरह यजमान पुण्याह-

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

वाचन कर लोकपालोंका आवाहन करे तथा ऋत्विज, मण्डप, पूजन-सामग्री, आभूषण और आच्छादन आदिको इकट्ठा करे। फिर (कम धन हो तो एककुण्डी होम आदिका विधान कर) वेदीपर कृष्णमृग-चर्मको फैलाकर उसके ऊपर रखी हुई तिलोंकी राशिपर स्वर्णमय रथकी स्थापना करे। वह रथ सात या चार घोड़ोंसे युक्त हो। उसमें चार चक्के होने चाहिये और उसे जुआसे सम्पन्न तथा इन्द्रनील मणिके कलश और ध्वजासे सुशोभित करना चाहिये। उसपर पद्मरागमणिके दलसे युक्त आठों लोकपालोंकी मूर्ति रेशमी वस्त्रसे सुशोभित, जलसे भरे हुए चार कलश तथा अठारह धान्य हों और उसके ऊपर चँदोवा तना हो। उसे पुष्प-माला, ईख और फलसे संयुक्त तथा पुरुषसे समन्वित होना चाहिये। जो पुरुष जिस देवताका भक्त हो, वह उसीके नामका उच्चारण कर अधिवासन करे। छत्र, चमर, रेशमी वस्त्र, जूते, पादुका तथा अपनी आर्थिक शक्तिके अनुसार गौओंके साथ शय्या आदिका दान करना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुषको अर्थाभावमें तीन पल सोनेसे अधिक तौलका रथ बनवाना चाहिये ॥ १–८ ॥

अश्वाष्टकेन संयुक्तं चतुर्भिरथ वाजिभिः। द्वाभ्यामपि युतं दद्याद्धेमसिंहध्वजान्वितम् ॥ ९ ॥
चक्ररक्षावुभौ तस्य तुरगस्थावथाश्विनौ। पुण्यकालमथावाप्य पूर्ववत् स्नापितो द्विजैः ॥ १० ॥
त्रिः प्रदक्षिणमावृत्य गृहीतकुसुमाञ्जलिः। शुक्लमाल्याम्बरो दद्यादिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ ११ ॥
नमो नमः पापविनाशनाय विश्वात्मने वेदतुरङ्गमाय।
धाम्नामधीशाय दिवाकराय पापौघदावानल देहि शान्तिम् ॥ १२ ॥
वस्वष्टकादित्यमरुद्गणानां त्वमेव धाता परमं निधानम्।
यतस्ततो मे हृदयं प्रयातु धर्मैकतानत्वमघौघनाशात् ॥ १३ ॥
इति तुरगरथप्रदानमेतद् भवभयसूदनमत्र यः करोति।
स कलुषपटलैर्विमुक्तदेहः परममुपैति पदं पिनाकपाणेः ॥ १४ ॥
देदीप्यमानवपुषा विजितप्रभावमाक्रम्य मण्डलमखण्डितचण्डभानोः।
सिद्धाङ्गनानयनषट्पदपीयमानवक्त्राम्बुजोऽम्बुजभवेन चिरं सहास्ते ॥ १५ ॥
इति पठति शृणोति वा य इत्थं कनकतुरगरथप्रदानमस्मिन्।
न स नरकपुरं व्रजेत् कदाचिन्नरकरिपोर्भवनं प्रयाति भूयः ॥ १६ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने हिरण्याश्वरथप्रदानविधिर्नामैकाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८१ ॥

उसी प्रकार आठ, चार अथवा दो अश्वोंसे युक्त तथा स्वर्णमय सिंहध्वजसे समन्वित रथका दान करना चाहिये। घोड़ेपर सवार दोनों अश्विनीकुमारोंको उसके चक्ररक्षकके रूपमें स्थापित करना चाहिये। इस प्रकार पुण्यकाल आनेपर ब्राह्मणोंद्वारा पूर्ववत् स्नान कराया हुआ यजमान श्वेत वस्त्र और श्वेत पुष्पोंकी माला धारणकर अञ्जलिमें पुष्प लिये हुए (उस रथकी) तीन बार प्रदक्षिणाकर दान करे। उस समय इस मन्त्रका उच्चारण करे—'पाप-समूहके लिये दावाग्निस्वरूप देव! आप पापोंके विनाशक, विश्वात्मा, वेदरूपी घोड़ोंसे युक्त, तेजोंके अधीश्वर और सूर्यरूप हैं, आपको बारंबार नमस्कार है। आप मुझे शान्ति प्रदान कीजिये। चूँकि आप ही आठों वसुओं, आदित्यगण और मरुद्गणोंके भरण-पोषण करनेवाले और परम निधान हैं, अतः आपकी कृपासे पापसमूहके नष्ट हो जानेसे मेरा हृदय धर्मकी एकतानता-को प्राप्त हो। इस प्रकार जो मनुष्य इस लोकमें भव-भय-नाशक इस तुरगरथ-प्रदान नामक महादानको करता है, उसका शरीर पापसमूहसे मुक्त हो जाता है

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

और वह पिनाकपाणिके परम पदको प्राप्त करता है तथा सिद्धाङ्गनाओंके नेत्ररूपी भ्रमरोंद्वारा पान किये जाते हुए मुखकमलवाला वह अपने देदीप्यमान शरीर-द्वारा पूर्णरूपसे तपनेवाले सूर्यके विजितप्रभाववाले मण्डलको पारकर ब्रह्माके साथ चिरकालतक निवास करता है। जो प्राणी इस लोकमें सुवर्णतुरगरथ नामक महादानकी विधिको पढ़ता अथवा सुनता है, वह कभी भी नरक-लोकमें नहीं जाता, अपितु नरकासुरके शत्रु भगवान् विष्णुके लोकको जाता है ॥ ९–१६ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें महादान-वर्णनप्रसङ्गमें हिरण्याश्वरथ-प्रदान-विधि नामक दो सौ इक्यासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २८१ ॥

दो सौ बयासीवाँ अध्याय

हेमहस्तिरथ-दानकी विधि

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि हेमहस्तिरथं शुभम्। यस्य प्रदानाद् भुवनं वैष्णवं याति मानवः ॥ १ ॥
पुण्यां तिथिमथासाद्य तुलापुरुषदानवत्।
विप्रवाचनकं कुर्याल्लोकेशावाहनं बुधः। ऋत्विङ्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम् ॥ २ ॥
अत्राप्युपोषितस्तद्वद् ब्राह्मणैः सह भोजनम्। कुर्यात् पुष्परथाकारं काञ्चनं मणिमण्डितम् ॥ ३ ॥
वलभीभिर्विचित्राभिश्चतुश्चक्रसमन्वितम्। कृष्णाजिने तिलद्रोणं कृत्वा संस्थापयेद् रथम् ॥ ४ ॥
लोकपालाष्टकोपेतं ब्रह्मार्कशिवसंयुतम्। मध्ये नारायणोपेतं लक्ष्मीपुष्टिसमन्वितम् ॥ ५ ॥
तथाष्टादश धान्यानि भाजनासनचन्दनैः। दीपिकोपानहच्छत्रदर्पणं पादुकान्वितम् ॥ ६ ॥
ध्वजे तु गरुडं कुर्यात् कूबराग्रे विनायकम्। नानाफलसमायुक्तमुपरिष्टाद् वितानकम् ॥ ७ ॥
कौशेयं पञ्चवर्णं तु अम्लानकुसुमान्वितम्। चतुर्भिः कलशैः सार्धं गोभिरष्टाभिरन्वितम् ॥ ८ ॥
चतुर्भिर्हैममातङ्गैर्मुक्तादामविभूषितैः। स्वरूपतः गजाभ्यां च युक्तं कृत्वा निवेदयेत् ॥ ९ ॥

मत्स्यभगवान्ने कहा—अब इसके बाद मैं मङ्गलमय सुवर्णनिर्मित हस्तिरथ नामक महादानका वर्णन कर रहा हूँ, जिसे प्रदान करनेसे मनुष्य विष्णुलोकमें जाता है। पूर्वकथित तुलापुरुष-दानकी तरह किसी पुण्य तिथिके आनेपर बुद्धिमान् यजमानको ब्राह्मणोंद्वारा पुण्याहवाचन कराकर लोकपालोंका आवाहन करना चाहिये; फिर उसी प्रकार ऋत्विज, मण्डप, पूजन-सामग्री, आभूषण और आच्छादन आदिको इकट्ठा करे। इस महादानमें भी यजमानको उपवास रखकर ब्राह्मणोंके साथ भोजन करनेका विधान है। उसे मणियोंसे सुशोभित पुष्परथके आकारका सुवर्णमय रथ, जो विचित्र तोरणों और चार पहियोंसे युक्त हो, बनवाना चाहिये। उस रथको कृष्णमृगचर्मके ऊपर रखे गये एक द्रोण तिलपर स्थापित करना चाहिये। वह रथ आठों लोकपाल, ब्रह्मा, सूर्य और शिवकी प्रतिमाओंसे युक्त हो। उसके मध्य-भागमें लक्ष्मीसहित विष्णुभगवान्की भी मूर्ति होनी चाहिये। उसे अठारह प्रकारके अन्न, पात्र, आसन, चन्दन, दीपक, जूता, छत्र, दर्पण और पादुकासे भी युक्त होना चाहिये। उसके ध्वजपर गरुड तथा जुआके अग्रभागपर विनायकको स्थापित करना चाहिये। वह नाना प्रकारके फलोंसे युक्त हो और उसके ऊपर चँदोवा तना हो। वह पँचरंगे रेशमी वस्त्र, विकसित

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

पुष्पों, चार माङ्गलिक कलशोंके साथ आठ गौओं तथा सम्पन्न हो। पुनः दो जीवित हाथियोंको रथमें जोतकर मोतियोंकी मालाओंसे विभूषित चार सुवर्णके हाथियोंसे दान करना चाहिये ॥ १-९ ॥

कुर्यात् पञ्चपलादूर्ध्वमा भारादपि शक्तितः। तथा मङ्गलशब्देन स्नापितो वेदपुङ्गवैः ॥ १०॥
त्रिः प्रदक्षिणमावृत्य गृहीतकुसुमाञ्जलिः। इममुच्चारयेन्मन्त्रं ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् ॥ ११॥
नमो नमः शङ्करपद्मजार्कलोकेशविद्याधरवासुदेवैः।
त्वं सेव्यसे वेदपुराणयज्ञैस्तेजोमयस्यन्दन पाहि तस्मात् ॥ १२॥
यत्तत्पदं परमगुह्यतमं मुरारेरानन्दहेतुगुणरूपविमुक्तमन्तः।
योगैकमानसदृशो मुनयः समाधौ पश्यन्ति तत्त्वमसि नाथ रथाधिरूढ ॥ १३॥
यस्मात् त्वमेव भवसागरसम्प्लुताण्डमानन्दभारभृतमध्वरपानपात्रम्।
तस्मादघौघशमनेन कुरु प्रसादं चामीकरेभरथ माधव सम्प्रदानात् ॥ १४॥
इत्थं प्रणम्य कनकेभरथप्रदानं यः कारयेत् सकलपापविमुक्तदेहः।
विद्याधरामरमुनीन्द्रगणाभिजुष्टं प्राप्नोत्यसौ पदमतीन्द्रियमिन्दुमौलेः ॥ १५॥
कृतदुरितवितानप्रज्वलद्वह्निजालव्यतिकरकृतदाहोद्वेगभाजोऽपि बन्धून्।
नयति स पितृपुत्रान् बान्धवानप्यशेषान् कृतगजरथदानाच्छाश्वतं सद्म विष्णोः॥ १६॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने हेमहस्तिरथप्रदानविधिर्नाम द्व्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८२ ॥

अपनी शक्तिके अनुसार उस रथको पाँच पलसे ऊपर एक भार सोनेतकका बनवाना चाहिये। इस प्रकार वेदज्ञ ब्राह्मणोंद्वारा माङ्गलिक शब्दोंके उच्चारणके साथ स्नान कराया गया यजमान अञ्जलिमें फूल लेकर तीन बार प्रदक्षिणा करे तथा निम्नलिखित मन्त्रका उच्चारण कर ब्राह्मणोंको दान दे—'तेजोमय स्यन्दन! शङ्कर, ब्रह्मा, सूर्य, लोकपाल, विद्याधर, वासुदेव, वेद, पुराण और यज्ञ तुम्हारी सेवा करते हैं, अतः तुम मेरी रक्षा करो। तुम्हें बारंबार नमस्कार है। रथाधिरूढ स्वामिन्! विष्णु भगवान्का जो पद परमगुह्यतम, आनन्दका हेतु और गुण एवं रूपसे परे है तथा एकमात्र योगरूप मानसिक दृष्टिवाले मुनिगण जिसका समाधिकालमें दर्शन करते हैं, वह आप ही हैं। माधव! चूँकि आप ही भवसागरमें डूबनेवालोंके लिये आनन्दके पात्र, सत्यस्वरूप तथा यज्ञोंमें पानपात्र हैं, इसलिये आप इस सुवर्णमय हस्तिरथके दानसे मेरे पाप-पुञ्जोंको नष्टकर मुझपर कृपा कीजिये।' जो मनुष्य इस प्रकार प्रणाम करके स्वर्णमय हस्तिरथका दान करता है, उसका शरीर समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है और वह शङ्करजीके विद्याधर, देवगण एवं मुनीन्द्रगणों-द्वारा सेवित इन्द्रियातीत लोकको प्राप्त करता है। वह पूर्व जन्मके किये गये दुष्कर्म-रूप वितानसे आच्छादित प्रज्वलित अग्निकी ज्वालाओंके संयोगसे उत्पन्न हुए दाहके उद्वेगसे युक्त बन्धुओं, पितरों, पुत्रों तथा सम्पूर्ण बान्धवोंको इस हस्तिरथके दानसे विष्णुभगवान्के शाश्वत लोकमें ले जाता है ॥ १०-१६ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें महादान-वर्णन-प्रसङ्गमें हेमहस्तिरथ-प्रदान-विधि नामक दो सौ बयासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २८२ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

दो सौ तिरासीवाँ अध्याय

पञ्चलाङ्गल (हल-) प्रदानकी विधि

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम् । पञ्चलाङ्गलकं नाम महापातकनाशनम् ॥ १ ॥
पुण्यां तिथिमथासाद्य युगादिग्रहणादिकाम् । भूमिदानं नरो दद्यात् पञ्चलाङ्गलकान्वितम् ॥ २ ॥
खर्वटं खेटकं वापि ग्रामं वा सस्यशालिनम् । निवर्त्तनशतं वापि तदर्धं वापि शक्तितः ॥ ३ ॥
सारदारुमयान् कृत्वा हलान् पञ्च विचक्षणः ।
सर्वोपकरणैर्युक्तानन्यान् पञ्च च काञ्चनान् । कुर्यात् पञ्चपलादूर्ध्वमासहस्रपलावधि ॥ ४ ॥
वृषाँल्लक्षणसंयुक्तान् दश चैव धुरन्धरान् । सुवर्णशृङ्गाभरणान् मुक्तालाङ्गलभूषणान् ॥ ५ ॥
रूप्यपादाग्रतिलकान् रक्तकौशेयभूषणान् । स्रग्दामचन्दनयुताञ् शालायामधिवासयेत् ॥ ६ ॥
पर्जन्यादित्यरुद्रेभ्यः पायसं निर्वपेच्चरुम् । एकस्मिन्नेव कुण्डे तु गुरुस्तेभ्यो निवेदयेत् ॥ ७ ॥
पलाशसमिधस्तद्वदाज्यं कृष्णतिलास्तथा । तुलापुरुषवत् कुर्याल्लोकेशावाहनं बुधः ॥ ८ ॥
ततो मङ्गलशब्देन शुक्लमाल्याम्बरो बुधः । आहूय द्विजदाम्पत्यं हेमसूत्राङ्गुलीयकैः ॥ ९ ॥
कौशेयवस्त्रकटकैर्मणिभिश्चाभिपूजयेत् । शय्यां सोपस्करां दद्याद् धेनुमेकां पयस्विनीम् ॥ १० ॥

मत्स्यभगवान्ने कहा—अब इसके बाद मैं महापातकनाशी अतिश्रेष्ठ पञ्चलाङ्गल नामक महादानका वर्णन कर रहा हूँ। युगादि तिथियों तथा सूर्यग्रहण आदिके अवसरपर मनुष्यको अपनी शक्तिके अनुसार पाँच हलोंसे युक्त, फसलसे सुशोभित ग्राम, खेट, खर्वट, एक सौ निवर्तन या उससे आधा पचास निवर्तन भूमिका दान करना चाहिये। विचक्षण पुरुष साखूकी लकड़ीके पाँच तथा सुवर्णके बने हुए अन्य पाँच हलोंको सभी सामग्रियोंसे युक्त करे। वे हल पाँच पल सोनेसे ऊपर एक हजार पलतकके बनवाने चाहिये। साथ ही दस वृषभोंको, जो उत्तम लक्षणोंसे युक्त तथा भार ढोनेमें समर्थ हों, जिनकी सींगें सुवर्णसे, पूँछ मोतीसे और खुर चाँदीसे विभूषित हों, जिनके सिरपर तिलक लगा हो, जो लाल रेशमी वस्त्रसे सुशोभित तथा पुष्पमाला और चन्दनसे युक्त हों, शालामें अधिवासित कराये। फिर पर्जन्य, आदित्य और रुद्रके लिये खीरकी चरु तैयार करे और गुरु उसे एक ही कुण्डमें उनके लिये निवेदित करे। उसी प्रकार पलाशकी समिधा, घृत तथा काले तिलका हवन करे। बुद्धिमान् यजमान तुलापुरुष-दानकी भाँति लोकपालोंका आवाहन करे। तदनन्तर शुक्ल वस्त्र एवं पुष्पमाला धारण कर बुद्धिमान् पुरुष माङ्गलिक शब्दोंके साथ द्विजदम्पतिको बुलाकर सोनेकी जंजीर, अंगूठी, रेशमी वस्त्र, सुवर्णके कङ्कण एवं मणियोंद्वारा उनकी पूजा करे तथा सामग्रियोंसहित शय्या और एक दूध देनेवाली गायका भी दान करे ॥ १–१० ॥

तथाष्टादश धान्यानि समंतादधिवासयेत् । ततः प्रदक्षिणीकृत्य गृहीतकुसुमाञ्जलिः ॥ ११ ॥
इममुच्चारयेन्मन्त्रमथ सर्वं निवेदयेत् । यस्माद् देवगणाः सर्वे स्थावराणि चराणि च ॥ १२ ॥
धुरंधराङ्गे तिष्ठन्ति तस्माद् भक्तिः शिवेऽस्तु मे । यस्माच्च भूमिदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ १३ ॥
दानान्यन्यानि मे भक्तिर्धर्मे एव दृढा भवेत् । दण्डेन सप्तहस्तेन त्रिंशद्दण्डं निवर्तनम् ॥ १४ ॥
त्रिभागहीनं गोचर्ममानमाह प्रजापतिः ।

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

मानेनानेन यो दद्यान्निवर्तनशतं बुधः। विधिनानेन तस्याशु क्षीयते पापसंहतिः ॥ १५ ॥
तदर्धमथवा दद्यादपि गोचर्ममात्रकम्। भवनस्थानमात्रं वा सोऽपि पापैः प्रमुच्यते ॥ १६ ॥
यावन्ति लाङ्गलकमार्गमुखानि भूमेर्भासां पतेर्दुहितुरङ्गजरोमकाणि।
तावन्ति शङ्करपुरे ससमा हि तिष्ठेद् भूमिप्रदानमिह यः कुरुते मनुष्यः ॥ १७ ॥
गन्धर्वकिन्नरसुरासुरसिद्धसङ्घैराधूतचामरमुपेत्य महद्विमानम्।
सम्पूज्यते पितृपितामहबन्धुयुक्तः शम्भोः पदं व्रजति चामरनायकः सन् ॥ १८ ॥
इन्द्रत्वमप्यधिगतं क्षयमभ्युपैति गोभूमिलाङ्गलधुरन्धरसम्प्रदानात्।
तस्मादघौघपटलक्षयकारि भूमेर्दानं विधेयमिति भूतिभवोद्भवाय ॥ १९ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने पञ्चलाङ्गलप्रदानविधिर्नाम त्र्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२८३॥

हलोंके चारों ओर अठारह प्रकारके अन्नोंको रखना चाहिये। फिर अञ्जलिमें फूल लेकर प्रदक्षिणा करनेके पश्चात् सबका दान कर देना चाहिये। उस समय इस मन्त्रका उच्चारण करे—'चूँकि सभी देवगण तथा चराचर जीव भारवाही वृषभोंके अङ्गमें निवास करते हैं, अतः मेरी शिवमें भक्ति हो। चूँकि अन्य सभी दान भूमिदानकी सोलहवीं कलाकी भी समता नहीं कर सकते, अतः धर्ममें मेरी सुदृढ़ भक्ति हो।' सात (मतान्तरसे दस) हाथोंके दण्डके मापसे तीस दण्ड मापका एक निवर्तन होता है और उसके तिहाई अंशसे न्यूनको गोचर्म* कहते हैं—ऐसा मान प्रजापतिने बतलाया है। जो बुद्धिमान् पुरुष इस मानके अनुसार एक सौ निवर्तन भूमिको इस विधिसे दान करता है, उसका पापपुञ्ज शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। जो उसका आधा भाग या गोचर्ममात्र अथवा एक भवन बनने योग्य भूमिका दान करता है, वह भी पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य इस मर्त्यलोकमें भूमि-दान करता है, वह उस भूमिमें हलके मुखके जितने मार्ग बनते हैं तथा सूर्यपुत्रीके अङ्गमें जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्षोंतक शंकरपुरीमें निवास करता है तथा गन्धर्व, किंनर, सुर, असुर और सिद्धोंके समूहोंद्वारा चँवर डुलाये जाते हुए महान् विमानपर सवार हो पिता, पितामह और बन्धुगणोंके साथ देवनायक होकर शंभु-लोकमें जाता है और वहाँ पूजित होता है। मनुष्य इस गौ, भूमि, हल और वृषभोंका दान करनेसे नष्ट हुए इन्द्रत्वको भी प्राप्त कर लेता है, अतः ऐश्वर्य एवं समृद्धिके लिये पापपुञ्जके परदेको नष्ट करनेवाले भूमि-दानको अवश्य करना चाहिये ॥ ११—१९ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें महादानानुकीर्तन-प्रसंगमें पञ्चलाङ्गल-प्रदान-विधि नामक दो सौ तिरासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २८३ ॥

दो सौ चौरासीवाँ अध्याय

हेमधरा (सुवर्णमयी पृथ्वी) दानकी विधि

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि धरादानमनुत्तमम्। पापक्षयकरं नृणाममङ्गल्यविनाशनम् ॥ १ ॥
कारयेत् पृथिवीं हैमीं जम्बूद्वीपानुकारिणीम्। मर्यादापर्वतवतीं मध्ये मेरुसमन्विताम् ॥ २ ॥
लोकपालाष्टकोपेतां नववर्षसमन्विताम्। नदीनदसमोपेतां सप्तसागरवेष्टिताम् ॥ ३ ॥

* दशहस्तेन दण्डेन त्रिंशद्दण्डान्निवर्तनम्। दश तान्येव गोचर्म दत्त्वा स्वर्गे महीयते ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

महारत्नसमाकीर्णां वसुरुद्रार्कसंयुताम्। हेम्नः पलसहस्रेण तदर्धेनाथ शक्तितः ॥ ४ ॥
शतत्रयेण वा कुर्याद् द्विशतेन शतेन वा। कुर्यात् पञ्चपलादूर्ध्वमशक्तोऽपि विचक्षणः ॥ ५ ॥
तुलापुरुषवत् कुर्याल्लोकेशावाहनं बुधः। ऋत्विङ्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम् ॥ ६ ॥
वेद्यां कृष्णाजिनं कृत्वा तिलानामुपरि न्यसेत्। तथाष्टादशधान्यानि रसांश्च लवणादिकान् ॥ ७ ॥
तथाष्टौ पूर्णकलशान् समन्तात् परिकल्पयेत्। वितानकं च कौशेयं फलानि विविधानि च ॥ ८ ॥
तथांशुकाणि रम्याणि श्रीखण्डशकलानि च। इत्येवं कारयित्वा तामधिवासनपूर्वकम् ॥ ९ ॥
शुक्लमाल्याम्बरधरः शुक्लाभरणभूषितः। प्रदक्षिणं ततः कृत्वा गृहीतकुसुमाञ्जलिः ॥ १० ॥
पुण्यं कालमथासाद्य मन्त्रानेतानुदीरयेत्।

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—अब इसके बाद मैं मनुष्योंके अमङ्गल और पापको नष्ट करनेवाले सर्वश्रेष्ठ हेमधरादानका वर्णन कर रहा हूँ। दानी इस दानमें जम्बूद्वीपके आकारकी भाँति सुवर्णमयी पृथ्वीकी रचना करवाये, वह मध्यमें सुमेरुपर्वतसे युक्त, मर्यादापर्वतोंसे सम्पन्न तथा आठ लोकपालों, नौ वर्षों, नदियों और नदोंसे युक्त हो, सातों सागरोंसे घिरी हुई हो। उसे बहुमूल्य रत्नोंसे जटित तथा वसु, रुद्र और आदित्योंसे युक्त कर दे। इस पृथ्वीको अपनी शक्तिके अनुसार एक हजार, पाँच सौ, तीन सौ, दो सौ या एक सौ पल सोनेका बनवाना चाहिये। विचक्षण पुरुष अपनी असमर्थतामें इसे पाँच पलसे अधिक स्वर्णसे भी बनवा सकता है। बुद्धिमान् पुरुष तुलापुरुष-दानकी भाँति लोकपालोंका आवाहन तथा ऋत्विज, मण्डप, पूजन-सामग्री, आभूषण और आच्छादन आदिका संकलन करे। फिर वेदीपर कृष्णमृगचर्म फैलाकर उसके ऊपर रखी हुई तिलराशिपर पृथ्वीकी प्रतिमा स्थापित कर दे। तत्पश्चात् उसके चारों ओर अठारह प्रकारके अन्नों, लवणादि रसों और जलसे भरे आठ माङ्गलिक कलशोंको स्थापित करना चाहिये। उसे रेशमी चँदोवा, विविध प्रकारके फल, मनोहर रेशमी वस्त्र और चन्दनोंके टुकड़ोंसे अलंकृत करना चाहिये। इस प्रकार अधिवासनपूर्वक पृथ्वीका सारा कार्य सम्पन्नकर स्वयं श्वेत वस्त्र और पुष्पमाला धारणकर, श्वेत वर्णके आभूषणोंसे विभूषित हो अञ्जलिमें पुष्प लेकर प्रदक्षिणा करे तथा पुण्यकाल आनेपर इन मन्त्रोंका उच्चारण करे॥

नमस्ते सर्वदेवानां त्वमेव भवनं यतः ॥ ११ ॥
धात्री च सर्वभूतानामतः पाहि वसुंधरे। वसु धारयसे यस्माद् वसु चातीव निर्मलम् ॥ १२ ॥
वसुंधरा ततो जाता तस्मात् पाहि भयादलम्। चतुर्मुखोऽपि नो गच्छेद् यस्मादन्तं तवाचले ॥ १३ ॥
अनन्तायै नमस्तस्मात् पाहि संसारकर्दमात्। त्वमेव लक्ष्मी गोविन्दे शिवे गौरीति चास्थिता ॥ १४ ॥
गायत्री ब्रह्मणः पार्श्वे ज्योत्स्ना चन्द्रे रवौ प्रभा। बुद्धिर्बृहस्पतौ ख्याता मेधा मुनिषु संस्थिता ॥ १५ ॥
विश्वं व्याप्य स्थिता यस्मात्ततो विश्वम्भरा स्मृता। धृतिः स्थितिः क्षमा क्षोणी पृथ्वी वसुमती रसा ॥ १६ ॥
एताभिर्मूर्तिभिः पाहि देवि संसारसागरात्। एवमुच्चार्य तां देवीं ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् ॥ १७ ॥
धरार्धं वा चतुर्भागं गुरवे प्रतिपादयेत्। शेषं चैवाथ ऋत्विग्भ्यः प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥ १८ ॥
अनेन विधिना यस्तु दद्याद्धेमधरां शुभाम्। पुण्यकाले तु सम्प्राप्ते स पदं याति वैष्णवम् ॥ १९ ॥
विमानेनार्कवर्णेन किङ्किणीजालमालिना।
नारायणपुरं गत्वा कल्पत्रयमथावसेत्। पितॄन् पुत्रांश्च पौत्रांश्च तारयेदेकविंशतिम् ॥ २० ॥
इति पठति य इत्थं यः शृणोति प्रसङ्गादपि कलुषवितानैर्मुक्तदेहः समन्तात्।
दिवममरवधूभिर्याति सम्प्रार्थ्यमानो पदममरसहस्रैः सेवितं चन्द्रमौलेः ॥ २१ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने हेमपृथ्वीदानमाहात्म्यं नाम चतुरशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८४ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

'वसुंधरे ! चूँकि तुम्हीं सभी देवताओं तथा सम्पूर्ण जीवनिकायकी भवनभूता तथा धात्री हो, अतः मेरी रक्षा करो। तुम्हें नमस्कार है। चूँकि तुम सभी प्रकारके भवनों, उनमें वास करनेवाले प्राणियों तथा अत्यन्त निर्मल रत्नोंको भी धारण करती हो, इसीसे तुम्हारा वसुंधरा नाम है, तुम संसार-भयसे मेरी रक्षा करो। अचले ! चूँकि ब्रह्मा भी तुम्हारे अन्तको नहीं प्राप्त कर सकते, इसलिये तुम अनन्ता हो, तुम्हें प्रणाम है। तुम इस संसाररूप कीचड़से मेरी रक्षा करो। तुम्हीं विष्णुमें लक्ष्मी, शिवमें गौरी, ब्रह्माके समीप गायत्री, चन्द्रमामें ज्योत्स्ना, रविमें प्रभा, बृहस्पतिमें बुद्धि और मुनियोंमें मेधा नामसे ख्यात हो। चूँकि तुम समस्त विश्वमें व्याप्त हो, इसलिये विश्वम्भरा कही जाती हो। धृति, स्थिति, क्षमा, क्षोणी, पृथ्वी, वसुमती तथा रसा—ये तुम्हारी मूर्तियाँ हैं। देवि ! तुम अपनी इन मूर्तियोंद्वारा इस संसारसागरसे मेरी रक्षा करो।' इस प्रकार उच्चारणकर पृथ्वीकी मूर्तिको ब्राह्मणोंको निवेदित कर दे। उस पृथ्वीका आधा अथवा चौथाई भाग गुरुको समर्पित करे। शेष भाग ऋत्विजोंको देकर उन्हें नमस्कार कर विसर्जन करे। जो मनुष्य पुण्यकाल आनेपर सुवर्णनिर्मित कल्याणमयी पृथ्वीका इस विधिके साथ दान करता है, वह वैष्णव पदको प्राप्त होता है तथा क्षुद्रघंटिकाओं (घुँघरू)से सुशोभित एवं सूर्यके समान तेजस्वी विमानद्वारा वैकुण्ठमें जाकर तीन कल्पपर्यन्त निवास करता है और इक्कीस पीढ़ियोंके पितरों, पुत्रों तथा पौत्रोंका उद्धार कर देता है। इस प्रकार जो मनुष्य इस विधिको प्रसङ्गवश भी पढ़ता अथवा श्रवण करता है, उसका शरीर सर्वथा पापसमूहोंसे मुक्त हो जाता है और वह स्वर्गलोकमें देवाङ्गनाओंद्वारा प्रार्थित होता हुआ सहस्रों देवताओंद्वारा सेवित शंकरजीके लोकको प्राप्त होता है ॥ ११-२१ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें महादान-प्रसङ्गमें हेम-पृथ्वीदान-माहात्म्य नामक दो सौ चौरासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २८४ ॥

दो सौ पचासीवाँ अध्याय

विश्वचक्र-दानकी विधि

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम्। विश्वचक्रमिति ख्यातं महापातकनाशनम् ॥ १ ॥
तपनीयस्य शुद्धस्य विश्वचक्रं तु कारयेत्। श्रेष्ठं पलसहस्रेण तदर्धेन तु मध्यमम् ॥ २ ॥
तस्यार्धेन कनिष्ठं स्याद् विश्वचक्रमुदाहृतम्। अन्यद् विंशत् पलादूर्ध्वमशक्तोऽपि निवेदयेत् ॥ ३ ॥
षोडशारं ततश्चक्रं भ्रमन्नेम्यष्टकावृतम्। नाभिपद्मे स्थितं विष्णुं योगारूढं चतुर्भुजम् ॥ ४ ॥
शङ्खचक्रेऽस्य पार्श्वे तु देव्यष्टकसमावृतम्। द्वितीयावरणे तद्वत् पूर्वतो जलशायिनम् ॥ ५ ॥
अत्रिर्भृगुर्वसिष्ठश्च ब्रह्मा कश्यप एव च। मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः ॥ ६ ॥
रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्कीति वै क्रमात्। तृतीयावरणे गौरी मातृभिर्वसुभिर्युता ॥ ७ ॥
चतुर्थे द्वादशादित्या वेदाश्चत्वार एव च। पञ्चमे पञ्च भूतानि रुद्राश्चैकादशैव तु ॥ ८ ॥
लोकपालाष्टकं षष्ठे दिङ्मातङ्गास्तथैव च। सप्तमेऽस्त्राणि सर्वाणि मङ्गलानि च कारयेत् ॥ ९ ॥
अन्तरान्तरतो देवान् विन्यसेदष्टमे पुनः। तुलापुरुषवच्छेषं समंतात् परिकल्पयेत् ॥ १० ॥
ऋत्विङ्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम्। विश्वचक्रं ततः कुर्यात् कृष्णाजिनतिलोपरि ॥ ११ ॥

मत्स्यभगवान्ने कहा—अब इसके बाद मैं महादानकी विधि बतला रहा हूँ। यह विश्वचक्र महापातकनाशी एवं अत्यन्त श्रेष्ठ विश्वचक्र नामक तपाये हुए शुद्ध स्वर्णका बनवाना चाहिये। यह विश्व-

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

चक्र एक सहस्र पल सुवर्णका उत्तम, पाँच सौ पलका मध्यम और ढाई सौ पलका कनिष्ठ कहा गया है। अल्प वित्तवाला मनुष्य अन्य प्रकारसे बीस पलसे ऊपरका बना हुआ विश्वचक्र दान कर सकता है। यह चक्र सोलह अरों तथा आठ नेमियोंसे युक्त घूमता हुआ होना चाहिये। उसके नाभि-कमलपर योगारूढ चतुर्भुज विष्णुको स्थापित करना चाहिये। उनके बगलमें शङ्ख और चक्र हों तथा आठ देवियाँ उन्हें चारों ओरसे घेरे हुए हों। उसके दूसरे आवरणमें उसी प्रकार जलशायी, अत्रि, भृगु, वसिष्ठ, ब्रह्मा, कश्यप, मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, रामचन्द्र, परशुराम, कृष्ण, बुद्ध और कल्किको, तीसरे आवरणमें मातृकाओं तथा वसुओंसहित गौरीको, चतुर्थ आवरणमें बारहों आदित्यों तथा चारों वेदोंको, पाँचवें आवरणमें पाँचों महाभूतों तथा ग्यारहों रुद्रको, छठे आवरणमें आठों लोकपालों तथा दिग्गजोंको, सप्तम आवरणमें सभी प्रकारके माङ्गलिक अस्त्रोंको तथा अष्टम आवरणमें थोड़े-थोड़े अन्तरपर देवताओंको स्थापित करे। शेष कार्य तुला-पुरुष-दानकी तरह करना चाहिये। उसी तरह ऋत्विज, मण्डप, पूजन-सामग्री, भूषण और आच्छादन आदिको भी रखना चाहिये। फिर उक्त विश्वचक्रको कृष्णमृगचर्मपर रखे गये तिलके ऊपर स्थापित करना चाहिये॥१-११॥

तथाष्टादश धान्यानि रसांश्च लवणादिकान्। पूर्णकुम्भाष्टकं चैव वस्त्राणि विविधानि च॥१२॥
माल्येक्षुफलरत्नानि वितानं चापि कारयेत्।
ततो मङ्गलशब्देन स्नातः शुक्लाम्बरो गृही। होमाधिवासनान्ते वै गृहीतकुसुमाञ्जलिः॥१३॥
इममुच्चारयेन्मन्त्रं त्रिः कृत्वा तु प्रदक्षिणम्। नमो विश्वमयायेति विश्वचक्रात्मने नमः॥१४॥
परमानन्दरूपी त्वं पाहि नः पापकर्दमात्। तेजोमयमिदं यस्मात् सदा पश्यन्ति योगिनः॥१५॥
हृदि तत्त्वं गुणातीतं विश्वचक्रं नमाम्यहम्। वासुदेवे स्थितं चक्रं चक्रमध्ये तु माधवः॥१६॥
अन्योन्याधाररूपेण प्रणमामि स्थिताविह। विश्वचक्रमिदं यस्मात् सर्वपापहरं परम्॥१७॥
आयुधं चापि वासश्च भवादुद्धर मामतः। इत्यामन्त्र्य च यो दद्याद् विश्वचक्रं विमत्सरः॥१८॥
विमुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोके महीयते। वैकुण्ठलोकमासाद्य चतुर्बाहुः सनातनः॥१९॥
सेव्यतेऽप्सरसां सङ्घैस्तिष्ठेत् कल्पशतत्रयम्।
प्रणमेद् वाथ यः कृत्वा विश्वचक्रं दिने दिने। तस्यायुर्वर्धते नित्यं लक्ष्मीश्च विपुला भवेत्॥२०॥
इति सकलजगत्सुराधिवासं वितरति यस्तपनीयषोडशारम्।
हरिभवनमुपागतः स सिद्धैश्चिरमभिगम्य नमस्यते शिरोभिः॥२१॥
असुदर्शनतां प्रयाति शत्रोर्मदनसुदर्शनतां च कामिनीभ्यः।
स सुदर्शनकेशवानुरूपः कनकसुदर्शनदानदग्धपापः॥२२॥
कृतगुरुदुरितानि षोडशारप्रवितरणे प्रवराकृतिर्मुरारेः।
अभिभवति भवोद्भवन्ति भित्त्वा भवमभितो भवने भयानि भूयः॥२३॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने विश्वचक्रप्रदानविधिर्नाम पञ्चाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२८५॥

फिर अठारह प्रकारके अन्न, लवण आदि सभी रस, जलसे भरे हुए आठ माङ्गलिक कलश, विविध प्रकारके वस्त्र, पुष्पमाला, ईख, फल, रत्न, वितान—इन सबको भी यथास्थान रखना चाहिये। तदनन्तर माङ्गलिक शब्दोंके साथ गृहस्थ यजमान स्नान करके श्वेत वस्त्र धारणकर हवन एवं अधिवासनके उपरान्त अञ्जलिमें पुष्प ग्रहणकर तीन बार प्रदक्षिणा करे और इस मन्त्रका उच्चारण करे—'विश्वमयको नमस्कार है। विश्वचक्रात्माको प्रणाम है। तुम परमानन्दस्वरूप हो, अतः पापरूप कीचड़से हमारी रक्षा करो। चूँकि इस तत्त्वस्वरूप, गुणातीत,

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

तेजोमय विश्वचक्रको योगीलोग सदा अपने हृदयमें देखते हैं, अतः मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। यह विश्वचक्र वासुदेवमें स्थित है और माधव इस चक्रके मध्य भागमें स्थित हैं, इस प्रकार तुम दोनों अन्योन्याधाररूपसे स्थित हो, तुन्हें मैं प्रणाम करता हूँ। चूँकि यह विश्वचक्र सम्पूर्ण पातकोंका विनाश करनेवाला, भगवान्‌का आयुध तथा उनका निवासस्वरूप भी है, अतः इस भवसे मेरा उद्धार करें।' इस प्रकार आमन्त्रित करके जो मनुष्य मत्सररहित हो इस विश्वचक्रका दान करता है, वह सभी पापोंसे छूटकर विष्णुलोकमें पूजित होता है तथा वैकुण्ठलोकको प्राप्तकर चार भुजाओंसे युक्त और अविनाशी हो जाता है तथा अप्सरासमूहोंद्वारा सेवित होकर तीन सौ कल्पोंतक वहाँ निवास करता है। अथवा जो व्यक्ति इस विश्वचक्रका निर्माण कर इसे प्रतिदिन प्रणाम करता है, उसकी आयु बढ़ती है और नित्य लक्ष्मीकी वृद्धि होती है। इस प्रकार जो व्यक्ति सुवर्णनिर्मित सोलह अरोंसे युक्त तथा समस्त जगत् एवं देवताओंके अधिष्ठानरूप इस चक्रको वितरित करता है, वह विष्णु-भवनको प्राप्त होता है तथा उसे सिद्धगण सिर झुकाकर नमस्कार करते हैं। वह पुरुष स्वर्णनिर्मित सुदर्शनके दानसे निष्पाप होकर शत्रुओंको विकराल रूपमें तथा कामिनियोंको मदनकी भाँति सुन्दर कमनीयरूपमें दिखायी पड़ता है और शुभदर्शन केशवकी भाँति मनोरम स्वरूप धारण करता है। इस सोलह अरोंवाले सुवर्णनिर्मित चक्रके दान करनेसे किये गये महापाप शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं और कर्ता मुरारिकी श्रेष्ठ आकृति प्राप्त करता है तथा भव-भयका भेदन कर बार-बार जन्म-मरणके भयसे भी छूट जाता है॥ १२–२३॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें महादान-वर्णन-प्रसंगमें विश्वचक्र-प्रदान-विधि नामक दो सौ पचासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २८५॥

दो सौ छियासीवाँ अध्याय

कनककल्पलता-दानकी विधि

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम्। महाकल्पलता नाम महापातकनाशनम्॥ १॥
पुण्यां तिथिमथासाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्। ऋत्विङ्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम्॥ २॥
तुलापुरुषवत् कुर्याल्लोकेशावाहनं बुधः। चामीकरमयीः कुर्याद् दश कल्पलताः समाः॥ ३॥
नानापुष्पफलोपेता नानांशुकविभूषिताः। विद्याधरसुपर्णानां मिथुनैरुपशोभिताः॥ ४॥
पुष्पाण्यादित्सुभिः सिद्धैः फलानि च विहङ्गमैः। लोकपालानुकारिण्यः कर्तव्यास्तासु देवताः॥ ५॥
ब्राह्मीमनन्तशक्तिं च लवणस्योपरि न्यसेत्। अधस्ताल्लतयोर्मध्ये पद्मशङ्खकरे शुभे॥ ६॥

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—इसके बाद मैं महापापोंको नष्ट करनेवाले परमोत्तम महाकल्पलता नामक महादानकी विधि बतला रहा हूँ। बुद्धिमान् यजमान किसी पुण्यतिथिके दिन पुण्याहवाचन करके पूर्वकथित तुलापुरुष-दानके समान ऋत्विज, मण्डप, पूजन-सामग्री, आभूषण और आच्छादन आदिका प्रबन्ध करे तथा उसी प्रकार लोकपालोंका आवाहन करे। कल्पलता-दानके लिये सुवर्णनिर्मित समान परिमाणकी दस कल्पलताएँ बनवाये, जो विविध प्रकारके पुष्पों और फलोंसे युक्त तथा विविध रेशमी वस्त्रोंसे विभूषित तथा विद्याधरों एवं पक्षियोंके जोड़ोंसे सुशोभित हों। उन्हें पुष्प चुननेका प्रयत्न करते हुए सिद्धों, फल खानेके लिये

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

उत्सुक पक्षियों तथा लोकपालोंके समान आकृतिवाली चाहिये। दो लताओंके निम्नभागमें पद्म और शङ्खसे देवियोंसे युक्त बनाना चाहिये। फिर लवणराशिके सुशोभित हाथोंवाली उन दोनों मङ्गलमयी देवियोंको ऊपर अनन्त एवं ब्राह्मी शक्तिको स्थापित करना चित्रित करे ॥ १—६ ॥

इभासनस्था तु गुडे पूर्वतः कुलिशायुधा। रजन्यजस्थिताग्नायी स्रुवपाणिरथानले ॥ ७ ॥
याम्ये च महिषारूढा गदिनी तण्डुलोपरि। नैर्ऋते नैर्ऋती स्थाप्या सखड्गा दक्षिणापरे ॥ ८ ॥
वारुणे वारुणी क्षीरे झषस्था नागपाशिनी। पताकिनी च वायव्ये मृगस्था शर्करोपरि ॥ ९ ॥
सौम्या तिलेषु संस्थाप्या शङ्खिनी निधिसंस्थिता। माहेश्वरी वृषारूढा नवनीते त्रिशूलिनी ॥ १० ॥
मौलिन्यो वरदास्तद्वत् कर्तव्या बालकान्विताः। शक्त्या पञ्चपलादूर्ध्वमासहस्रात् प्रकल्पयेत् ॥ ११ ॥
सर्वासामुपरि स्थाप्यं पञ्चवर्णं वितानकम्। धेनवो दश कुम्भाश्च वस्त्रयुग्मानि चैव हि ॥ १२ ॥
मध्यमे द्वे तु गुरवे ऋत्विग्भ्योऽन्यास्तथैव च।
ततो मङ्गलशब्देन स्नातः शुक्लाम्बरो बुधः। त्रिः प्रदक्षिणमावृत्य मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥ १३ ॥
नमो नमः पापविनाशिनीभ्यो ब्रह्माण्डलोकेश्वरपालिनीभ्यः।
आशंसिताधिक्यफलप्रदाभ्यो दिग्भ्यस्तथा कल्पलतावधूभ्यः ॥ १४ ॥
इति सकलदिगङ्गनाप्रदानं भवभयसूदनकारि यः करोति।
अभिमतफलदे स नागलोके वसति पितामहवत्सराणि त्रिंशत् ॥ १५ ॥
पितृशतमथ तारयेद् भवाब्धेर्भवदुरितौघविघातशुद्धदेहः।
सुरपतिवनितासहस्रसंख्यैः परिवृतमम्बुजसंसदाभिवन्द्यः ॥ १६ ॥
इति विधानमिदं दिगङ्गनानां कनककल्पलताविनिवेदकम्।
पठति यः स्मरतीह तथेक्षते स पदमेति पुरंदरसेवितम् ॥ १७ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने कनककल्पलताप्रदानविधिर्नाम षडशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२८६॥

पूर्व दिशामें गुड़के ऊपर कुलिशका अस्त्र धारण किये हुए हाथीपर विराजमान इन्द्राणीको, अग्निकोणमें हल्दी-चूर्णपर स्रुवा हाथमें लिये हुए बकरेपर सवार अग्नायीको, दक्षिण दिशामें तण्डुलपर महिषारूढ गदा धारण किये हुए यमीको, नैर्ऋत्यकोणमें घृतके ऊपर खड्गसहित नैर्ऋतीको, पश्चिम दिशामें दुग्धपर नागपाश धारण किये हुए मत्स्यपर आरूढ़ वारुणीको, वायव्यकोणमें शर्कराके ऊपर मृगारूढ़ पताका लिये हुए पताकिनी (वायवी) को, उत्तर दिशामें तिलोंपर निधिसहित शङ्ख लिये हुए (कौबेरी)को तथा ईशानकोणमें मक्खनकी राशिपर नन्दीपर आरूढ़ त्रिशूलधारण किये हुए माहेश्वरी शक्ति ऐशानीको स्थापित करना चाहिये। उसी प्रकार वहाँ केश-मुकुट धारण करनेवाली वरदायिनी देवियोंको भी बालकोंके साथ स्थापित करना चाहिये। उन्हें अपनी शक्तिके अनुसार पाँच पल सोनेसे ऊपर एक हजार पलतकका बनवाना चाहिये। इन सभीके ऊपर पँचरंगा वितान तानना चाहिये। फिर दस गौ, दस कलश तथा दो वस्त्रोंका दान देना चाहिये। इनमेंसे दो मध्यम लताओंको गुरुको तथा अन्य ऋत्विजोंको देना चाहिये। तत्पश्चात् बुद्धिमान् यजमानको माङ्गलिक शब्दोंके साथ स्नान करनेके बाद श्वेत वस्त्र धारणकर इन कल्पलताओंकी तीन प्रदक्षिणा कर इस भावके मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये—'जो पापविनाशिनी, ब्रह्माण्ड एवं लोकेश्वरोंका पालन करनेवाली तथा याचकोंको अभिलाषासे भी अधिक फल प्रदान करनेवाली हैं, उन कल्पलता-वधुओं तथा दिग्वधुओंको बारंबार नमस्कार है।' इस प्रकार जो पुरुष भवभयको हरण करनेवाले सम्पूर्ण दिगङ्गनाओंके दानको करता है, वह अभीष्ट फलदायी नागलोकमें ब्रह्माके तीस वर्षोंतक निवास करता है तथा सैकड़ों पितरोंको भवसागरसे तार देता है। वह सांसारिक

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

पापसमूहके नष्ट हो जानेसे विशुद्धशरीर होकर हजारों देवाङ्गनाओंसे सुशोभित ब्रह्माके लोकमें अभिवन्दनीय होता है। इस प्रकार दिगङ्गनाओंके तथा कनककल्पलता- के दानकी विधिको जो पढ़ता, स्मरण करता या देखता है, वह इन्द्रद्वारा सेवित पदको प्राप्त करता है ॥ ७-१७ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें महादानवर्णन-प्रसंगमें कनककल्पलताप्रदानविधि नामक दो सौ छियासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २८६ ॥

दो सौ सतासीवाँ अध्याय

सप्तसागर-दानकी विधि

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम्। सप्तसागरकं नाम सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १ ॥
पुण्यं दिनमथासाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्। तुलापुरुषवत् कुर्याल्लोकेशावाहनं बुधः ॥ २ ॥
ऋत्विङ्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम् । कारयेत् सप्त कुण्डानि काञ्चनानि विचक्षणः ॥ ३ ॥
प्रादेशमात्राणि तथारत्निमात्राणि वै पुनः। कुर्यात् सप्तपलादूर्ध्वमासहस्राच्च शक्तितः ॥ ४ ॥
संस्थाप्यानि च सर्वाणि कृष्णाजिनतिलोपरि। प्रथमं पूरयेत् कुण्डं लवणेन विचक्षणः ॥ ५ ॥
द्वितीयं पयसा तद्वत् तृतीयं सर्पिषा पुनः। चतुर्थं तु गुडेनैव दध्ना पञ्चममेव च ॥ ६ ॥
षष्ठं शर्करया तद्वत् सप्तमं तीर्थवारिणा। स्थापयेल्लवणस्थं तु ब्रह्माणं काञ्चनं शुभम् ॥ ७ ॥
केशवं क्षीरमध्ये तु घृतमध्ये महेश्वरम्। भास्करं गुडमध्ये तु दधिमध्ये निशाधिपम् ॥ ८ ॥
शर्करायां न्यसेल्लक्ष्मीं जलमध्ये तु पार्वतीम्। सर्वेषु सर्वरत्नानि धान्यानि च समन्ततः ॥ ९ ॥
तुलापुरुषवच्छेषमत्रापि परिकल्पयेत्। ततो वारुणहोमान्ते स्नापितो वेदपुङ्गवैः ॥ १० ॥
त्रिः प्रदक्षिणमावृत्य मन्त्रानेतानुदीरयेत्।

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—अब मैं सम्पूर्ण पापोंके विनाशक परमोत्तम सप्तसागर नामक महादानकी विधि बतला रहा हूँ। बुद्धिमान् पुरुष तुलापुरुष-दानकी तरह किसी पवित्र दिनके आनेपर पुण्याहवाचन करके लोकपालोंका आवाहन करे तथा ऋत्विज्, मण्डप, पूजन-सामग्री, भूषण, आच्छादन आदिका प्रबन्ध भी उसी तरह करे। विचक्षण पुरुष स्वर्णनिर्मित सात स्वतन्त्र कुण्डोंका निर्माण करे। ये कुण्ड एक बित्ता चौड़े तथा एक अरत्नि अर्थात् बँधी हुई मुट्ठीवाले हाथ-जितने लम्बे होने चाहिये। इन्हें अपनी आर्थिक शक्तिके अनुसार सात पल सोनेसे ऊपर एक हजार पलतकका बनवाना चाहिये। इन सभी कुण्डोंको कृष्णमृगके चर्मपर रखे गये तिलोंके ऊपर स्थापित करना चाहिये। विद्वान् पुरुषको प्रथम कुण्डको लवणसे, द्वितीय कुण्डको दुग्धसे, तृतीयको घृतसे, चतुर्थको गुड़से, पञ्चमको दहीसे, छठेको चीनीसे तथा सातवेंको तीर्थके पवित्र जलसे पूर्ण करना चाहिये। फिर लवण कुण्डमें सुवर्ण-निर्मित ब्रह्माकी, दुग्धकुण्डके मध्यमें भगवान् विष्णुकी, घृतकुण्डमें भगवान् शिवकी, गुड़-कुण्डमें भगवान् भास्करकी, दधिकुण्डमें चन्द्रमाकी, शर्करा कुण्डमें लक्ष्मीकी और जलकुण्डमें पार्वतीकी स्थापना करनी चाहिये। सभी कुण्डोंको सभी ओरसे रत्नों तथा अन्नोंद्वारा अलंकृत करना चाहिये। शेष कार्य तुलापुरुषदानकी भाँति सम्पन्न करना चाहिये। तत्पश्चात् महावारुणी आहुतियाँ प्रदानकर वेदज्ञ ब्राह्मणोंद्वारा अभिषिक्त यजमान इन कुण्डोंकी तीन बार प्रदक्षिणा कर इन मन्त्रोंका उच्चारण करे ॥ १-१०½ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

नमो वः सर्वसिन्धूनामाधारेभ्यः सनातनाः। जन्तूनां प्राणदेभ्यश्च समुद्रेभ्यो नमो नमः॥ ११॥
क्षीरोदकाज्यदधिमाधुरलावणेक्षुसारामृतेन भुवनत्रयजीवसंघान्।
आनन्दयन्ति वसुभिश्च यतो भवन्तस्तस्मान्ममाप्यघविघातमलं विशन्तु॥ १२॥
यस्मात् समस्तभुवनेषु भवन्त एव तीर्थामरासुरसुवद्धमणिप्रदानम्।
पापक्षयामृतविलेपनभूषणाय लोकस्य बिभ्रति तदस्तु ममापि लक्ष्मीः॥ १३॥
इति ददाति रसामृतसंयुताञ्छुचिरविस्मयवानिह सागरान्।
अमलकाञ्चनवर्णमयानसौ पदमुपैति हरेरमरार्चितः॥ १४॥
सकलपापविधौतविराजितः पितृपितामहपुत्रकलत्रकम्।
नरकलोकसमाकुलमप्ययं झटिति सोऽपि नयेच्छिवमन्दिरम्॥ १५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने सप्तसागरप्रदानविधिर्नाम सप्ताशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२८७॥

'सनातन सागरगण! आपलोग समस्त जीवोंके प्राणदाता तथा सम्पूर्ण नदियोंके आधार हो, आपको बारंबार नमस्कार है। चूँकि आपलोग दुग्ध, जल, घृत, दही, मधु, लवण, शक्कररूप अमृत तथा रत्नादि सम्पत्तियोंद्वारा त्रिभुवनके जीवसमूहोंको आनन्दित करते हैं, अतः मेरे भी पापपुञ्जोंका विनाश करें। चूँकि आपलोग ही समस्त भुवनोंमें लोकके पापक्षय, अमृत-विलेपन और भूषणके निमित्त तीर्थों, देवताओं, असुरों, और सुन्दर मणिके प्रदान-कार्यको धारणवाले हैं अतः वह लक्ष्मी मुझे भी प्राप्त हो।' इस प्रकार जो मनुष्य पवित्र एवं विस्मयरहित होकर इस लोकमें रस एवं अमृतसे युक्त निर्मल सोनेके बने हुए सागरोंका दान करता है, वह देवताओंद्वारा पूजित होकर भगवान् विष्णुके पदको प्राप्त करता है। सम्पूर्ण पापोंके धुल जानेसे विशुद्ध हुआ यह पुरुष नरकलोकमें व्याकुल हुए पिता, पितामह, पुत्र और पत्नी आदिको भी शीघ्र ही शिवलोकमें ले जाता है॥ ११-१५॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें महादानवर्णन-प्रसङ्गमें सप्तसागर-दान-विधि नामक दो सौ सत्तासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २८७॥

दो सौ अठासीवाँ अध्याय

रत्नधेनु-दानकी विधि

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम्। रत्नधेन्विति विख्यातं गोलोकफलदं नृणाम्॥ १॥
पुण्यं दिनमथासाद्य तुलापुरुषदानवत्। लोकेशावाहनं कृत्वा ततो धेनुं प्रकल्पयेत्॥ २॥
भूमौ कृष्णाजिनं कृत्वा लवणद्रोणसंयुतम्। धेनुं रत्नमयीं कुर्यात् सङ्कल्प्य विधिपूर्वकम्॥ ३॥
स्थापयेत् पद्मरागाणामेकाशीतिं मुखे बुधः। पुष्परागशतं तद्वद् घोणायां परिकल्पयेत्॥ ४॥
ललाटे हेमतिलकं मुक्ताफलशतं दृशोः। भ्रूयुगे विद्रुमशतं शुक्ती कर्णद्वये स्मृते॥ ५॥
काञ्चनानि च शृङ्गाणि शिरो वज्रशतात्मकम्। ग्रीवायां नेत्रपटलं गोमेदकशतान्वितम्॥ ६॥
इन्द्रनीलशतं पृष्ठे वैदूर्यशतपार्श्वके। स्फाटिकैरुदरं तद्वत् सौगन्धिकशतैः कटिम्॥ ७॥
खुरा हेममयाः कार्याः पुच्छं मुक्तावलीमयम्। सूर्यकान्तेन्दुकान्तौ च घ्राणे कर्पूरचन्दने॥ ८॥
कुङ्कुमानि च रोमाणि रौप्यनाभिं च कारयेत्। गारुत्मतशतं तद्वदपाने परिकल्पयेत्॥ ९॥

Sri Vidyabharathi Book Donation Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

तथान्यानि च रत्नानि स्थापयेत् सर्वसन्धिषु। कुर्याच्छर्करया जिह्वां गोमयं च गुडात्मकम् ॥ १० ॥
गोमूत्रमाज्येन तथा दधिदुग्धे स्वरूपतः। पुच्छाग्रे चामरं दद्यात् समीपे ताम्रदोहनम् ॥ ११ ॥

मत्स्यभगवान्ने कहा—अब मैं मनुष्योंको गोलोक प्रदान करनेवाले अत्युत्तम 'रत्नधेनु' नामक महादानकी विधिका वर्णन कर रहा हूँ। किसी पुण्य दिनके आनेपर यजमान तुलापुरुषदानकी तरह लोकपालोंका आवाहन करनेके पश्चात् धेनुकी कल्पना करे। पृथ्वीपर कृष्णमृगचर्म बिछाकर उसपर एक द्रोण लवण रखकर उसके ऊपर विधिपूर्वक संकल्पसहित रत्नमयी धेनुको स्थापित करे। बुद्धिमान् पुरुष उसके मुखमें इक्यासी पद्मराग मणि तथा थूथुनमें इक्यासी पुष्पराग (पुखराज) स्थापित करे। उस गौके ललाटपर सोनेका तिलक लगावे। उसकी दोनों आँखोंमें सौ मुक्ता (मोती), दोनों भौंहोंपर सौ प्रवाल (मूँगा) और दोनों कानोंकी जगह दो शुक्तियाँ (सीपें) लगानी चाहिये। उसके सींग सोनेके होने चाहिये। सिरकी जगह सौ हीरोंको स्थापित करना चाहिये। कण्ठ और नेत्र-पलकोंमें सौ गोमेदक, पृष्ठभागमें सौ इन्द्रनील (नीलम), दोनों पार्श्व-स्थानोंमें सौ वैदू(दू)र्य (बिलौर), उदरपर स्फटिक तथा कटिदेशपर सौ सौगन्धिक (माणिक-लाल) मणि रखना चाहिये। खुरोंको स्वर्णमय, पूँछको मुक्ता (मोतियों)की लड़ियोंसे युक्त और दोनों नाकोंको सूर्यकान्त तथा चन्द्रकान्त मणियोंसे बनाकर कर्पूर और चन्दनसे अर्चित करना चाहिये। रोमोंको केसर और नाभिको चाँदीसे बनवाये। गुदामें सौ लाल मणियोंको लगाना चाहिये। अन्य रत्नोंको संधिभागोंपर लगाना चाहिये। जीभको शक्करसे, गोबरको गुड़से और गोमूत्रको घीसे बनवाना चाहिये। दही-दूध प्रत्यक्ष ही रखे। पूँछके अग्रभागपर चमर तथा समीपमें ताँबेकी दोहनी रखनी चाहिये ॥ १–११ ॥

कुण्डलानि च हैमानि भूषणानि च शक्तितः। कारयेदेवमेवं तु चतुर्थांशेन वत्सकम् ॥ १२ ॥
तथा धान्यानि सर्वाणि पादाश्चेक्षुमयाः स्मृताः। नानाफलानि सर्वाणि पञ्चवर्णं वितानकम् ॥ १३ ॥
एवं विरचनं कृत्वा तद्वद्धोमाधिवासनम्।
ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्याद् धेनुमामन्त्रयेत् ततः। गुडधेनुवदावाह्य इह चोदाहरेत् ततः ॥ १४ ॥
त्वां सर्वदेवगणधाम यतः पठन्ति रुद्रेन्द्रसूर्यकमलासनवासुदेवाः।
तस्मात् समस्तभुवनत्रयदेहयुक्ता मां पाहि देवि भवसागरपीड्यमानम् ॥ १५ ॥
आमन्त्र्य चेत्थमभितः परिवृत्य भक्त्या दद्याद् द्विजाय गुरवे जलपूर्विकां ताम्।
यः पुण्यमाप्य दिनमत्र कृतोपवासः पापैर्विमुक्ततनुरेति पदं मुरारेः ॥ १६ ॥
इति सकलविधिज्ञो रत्नधेनुप्रदानं वितरति स विमानं प्राप्य देदीप्यमानम्।
सकलकलुषमुक्तो बन्धुभिः पुत्रपौत्रैः स हि मदनसरूपः स्थानमभ्येति शम्भोः ॥ १७ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने रत्नधेनुप्रदानविधिर्नामाष्टाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८८ ॥

अपनी आर्थिक शक्तिके अनुसार उसे सोनेसे निर्मित आभूषण और कुण्डल पहनाने चाहिये, उसके ईखके पैर होने चाहिये। इसी प्रकार गौके चतुर्थांशसे बछड़ा बनवाना चाहिये। उस गौके समीप सभी प्रकारके अन्न, विविध फल, पँचरंगा वितान भी यथास्थान रखना चाहिये। इस प्रकार गौकी रचना, हवन और अधिवासन करनेके बाद ऋत्विजोंको दक्षिणा देनी चाहिये। इसके बाद धेनुको आमन्त्रित करे। उस समय गुड़धेनुकी तरह आवाहन कर यह कहना चाहिये—'देवि! चूँकि रुद्र, इन्द्र, सूर्य, ब्रह्मा, विष्णु—ये सभी तुम्हें सम्पूर्ण देवताओंका निवासस्थान मानते हैं तथा समस्त त्रिभुवन तुम्हारे ही शरीरमें व्याप्त हैं, अतः तुम भवसागरसे पीड़ित मेरा उद्धार करो।' इस प्रकार आमन्त्रित करनेके बाद

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

गौकी परिक्रमा कर भक्तिपूर्वक हाथमें जल लेकर उस गौको ब्राह्मण गुरुको दान करना चाहिये। जो व्यक्ति इस प्रकार पुण्य दिन आनेपर उपवासकर यह दान करता है, उसका शरीर पापोंसे मुक्त हो जाता है और वह भगवान् मुरारिके परमपदको प्राप्त करता है। इस प्रकार सम्पूर्ण विधियोंको जाननेवाला जो पुरुष इस रत्नधेनुका दान करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर कामदेव-सदृश सौन्दर्यशाली हो जाता है तथा अपने बन्धुओं, पुत्रों और पौत्रोंके साथ देदीप्यमान विमानपर सवार हो, शिवके लोक (कैलास या सुमेरुस्थित दिव्य शिवधाम)को प्राप्त करता है ॥ १२—१७ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके महादान-वर्णन-प्रसङ्गमें रत्नधेनुदान नामक दो सौ अठासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥२८८॥

दो सौ नवासीवाँ अध्याय

महाभूत-घट-दानकी विधि

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम् । महाभूतघटं नाम महापातकनाशनम् ॥ १ ॥
पुण्यां तिथिमथासाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् । ऋत्विङ्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम् ॥ २ ॥
तुलापुरुषवत् कुर्याल्लोकेशावाहनादिकम् । कारयेत् काञ्चनं कुम्भं महारत्नाचितं बुधः ॥ ३ ॥
प्रादेशादङ्गुलशतं यावत् कुर्यात् प्रमाणतः । क्षीराज्यपूरितं तद्वत् कल्पवृक्षसमन्वितम् ॥ ४ ॥
पद्मासनगतांस्तत्र ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ।
लोकपालान् महेन्द्रांश्च स्वस्ववाहनमास्थितान् । वराहेणोद्धृतां तद्वत् कुर्यात् पृथ्वीं सपङ्कजाम् ॥ ५ ॥
वरुणं चासनगतं काञ्चनं मकरोपरि । हुताशनं मेषगतं वायुं कृष्णमृगासनम् ॥ ६ ॥
तथा कोशाधिपं कुर्यान्मूषकस्थं विनायकम् । विन्यस्य घटमध्ये तान् वेदपञ्चकसंयुतान् ॥ ७ ॥
ऋग्वेदस्याक्षसूत्रं स्याद् यजुर्वेदस्य पङ्कजम् । सामवेदस्य वीणा स्याद् वेणुं दक्षिणतो न्यसेत् ॥ ८ ॥
अथर्ववेदस्य पुनः स्रुक्स्रुवौ कमलं करे । पुराणवेदो वरदः साक्षसूत्रकमण्डलुः ॥ ९ ॥

मत्स्यभगवान्ने कहा—अब इसके बाद मैं महापातकोंको नष्ट करनेवाले अत्युत्तम 'महाभूतघट-दान' नामक महादानकी विधि बतला रहा हूँ। किसी पवित्र तिथिके आनेपर तुलापुरुष-दानकी तरह पुण्याहवाचन कर ऋत्विज्, मण्डप, पूजन-सामग्री, आभूषण और आच्छादन आदिके प्रबन्धके साथ लोकपालोंका आवाहन आदि कार्य सम्पन्न करे। फिर बुद्धिमान् पुरुष रत्नोंसे जटित सोनेका एक कलश बनवाये, जो एक बित्तेसे लेकर सौ अंगुलतकके विस्तारवाला हो। उसे दुग्ध और घृतसे पूर्ण करके उसके पास कल्पवृक्ष रख दे। वहीं पद्मासनपर स्थित ब्रह्मा तथा अपने-अपने वाहनोंपर आरूढ़ विष्णु, शिव, लोकपालगण, देवराज इन्द्रादि देवगणोंको भी बनाये। उसी प्रकार वराहद्वारा ऊपर उठायी गयी कमलसमेत पृथ्वीकी रचना करनी चाहिये। फिर मकरके वाहनपर आसन लगाये हुए स्वर्णनिर्मित वरुण, मेषवाहनपर आरूढ़ अग्नि, कृष्णमृगपर सवार वायु, पालकीपर बैठे हुए कुबेर तथा मूषकपर स्थित गणपति—इन सब देवताओंको पाँचों वेदोंके साथ उक्त घटमें स्थापित करना चाहिये। उनमें ऋग्वेदको रुद्राक्षमाला लिये, यजुर्वेदको कमल लिये, सामवेदको बायें हाथमें वीणा और दाहिने हाथमें वेणु लिये तथा अथर्ववेदको हाथोंमें स्रुक्, स्रुवा और कमल लिये हुए बनाना चाहिये। पञ्चमवेद पुराणके आयुध अक्षसूत्र, कमण्डलु और अभय तथा वरद मुद्राएँ हैं ॥ १—९ ॥

परितः सर्वधान्यानि चामरासनदर्पणम् । पादुकोपानहच्छत्रं दीपिकाभूषणानि च ॥ १० ॥
शय्यां च जलकुम्भांश्च पञ्चवर्णं वितानकम् । स्नात्वाधिवासनान्ते तु मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥ ११ ॥
नमो वः सर्वदेवानामाधारे[illegible] । महाभूताधिदेवेभ्यः शान्तिरस्तु शिवं मम ॥ १२ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

यस्मान्न किंचिदप्यस्ति महाभूतैर्विना कृतम्। ब्रह्माण्डे सर्वभूतेषु तस्माच्छ्रीरक्षयास्तु मे ॥ १३ ॥
इत्युच्चार्य महाभूतघटं यो विनिवेदयेत्। सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम् ॥ १४ ॥
विमानेनार्कवर्णेन पितृबन्धुसमन्वितः। स्तूयमानो वरस्त्रीभिः पदमभ्येति वैष्णवम् ॥ १५ ॥
षोडशैतानि यः कुर्यान्महादानानि मानवः। न तस्य पुनरावृत्तिरिह लोकेऽभिजायते ॥ १६ ॥
इह पठति य इत्थं वासुदेवस्य पार्श्वे ससुतपितृकलत्रः संशृणोतीह सम्यक्।
मुररिपुभवने वै मन्दिरे वार्कलक्ष्म्या त्वमरपुरवधूभिर्मोदते सोऽपि कल्पम् ॥ १७ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तनं नामैकोननवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८९ ॥

उस कलशके चारों ओर सभी (अठारह) प्रकारके अन्न, चामर, आसन, दर्पण, पादुका, जूता, छत्र, दीपक, आभूषण, शय्या, जलपूर्ण कलश और पँचरंगा वितान रखना चाहिये। फिर यजमान अधिवासनके अन्तमें स्नान करके इस मन्त्रका उच्चारण करे—'इस चराचर जगत्में आपलोग सम्पूर्ण देवताओंके आधार तथा पञ्चमहाभूतोंके अधिदेवता हैं, आपलोगोंको प्रणाम है। आप मुझे शान्ति एवं कल्याण प्रदान कीजिये। चूँकि इस ब्रह्माण्डके सभी जीवोंमें इन पञ्च महाभूतोंके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है, अतः इनकी कृपासे मुझे अक्षय लक्ष्मी प्राप्त हो।' इस प्रकार उच्चारण करनेके बाद जो व्यक्ति महाभूत-घटका दान करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर परम गतिको प्राप्त होता है तथा पितरों एवं बन्धुगणोंके साथ सूर्यके समान तेजस्वी विमानपर आरूढ़ हो अप्सराओंद्वारा प्रशंसित होता हुआ विष्णुके लोकको जाता है। जो मानव इन उपर्युक्त सोलहों महादानोंका अनुष्ठान करता है, उसे इस लोकमें पुनः नहीं आना पड़ता। इस पृथ्वीपर जो मनुष्य वासुदेवके समीप इसे इस विधिसे पढ़ता है तथा पुत्र, पिता एवं स्त्रीके साथ भलीभाँति श्रवण करता है, वह सूर्यके समान तेजस्वी होकर देवाङ्गनाओंके साथ विष्णुलोकमें कल्पपर्यन्त आनन्दका अनुभव करता है ॥ १०-१७ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें महादान-वर्णन नामक दो सौ नवासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २८९ ॥

दो सौ नब्बेवाँ अध्याय

कल्पानुकीर्तन

मनुरुवाच

कल्पमानं त्वया प्रोक्तं मन्वन्तरयुगेषु च। इदानीं कल्पनामानि समासात् कथयाच्युत ॥ १ ॥

मनुने पूछा—अच्युत ! मन्वन्तर एवं युगोंका दिया है, अब मुझे (सभी तीस) कल्पोंके नाम वर्णन करते समय आपने कल्पका प्रमाण तो बता संक्षेपसे बतलाइये ॥ १ ॥

मत्स्य उवाच

कल्पानां कीर्तनं वक्ष्ये महापातकनाशनम्। यस्यानुकीर्तनादेव वेदपुण्येन युज्यते ॥ २ ॥
प्रथमः श्वेतकल्पस्तु द्वितीयो नीललोहितः। वामदेवस्तृतीयस्तु ततो राथन्तरोऽपरः ॥ ३ ॥
रौरवः पञ्चमः प्रोक्तः षष्ठो देव इति स्मृतः। सप्तमोऽथ बृहत्कल्पः कन्दर्पोऽष्टम उच्यते ॥ ४ ॥
सद्योऽथ नवमः प्रोक्त ईशानो दशमः स्मृतः। तम एकादशः प्रोक्तस्तथा सारस्वतः परः ॥ ५ ॥
त्रयोदश उदानस्तु गारुडोऽथ चतुर्दशः। कौर्मः पञ्चदशः प्रोक्तः पौर्णमास्यामजायत ॥ ६ ॥
षोडशो नारसिंहस्तु समानस्तु ततोऽपरः। आग्नेयोऽष्टादशः प्रोक्तः सोमकल्पस्तथा परः ॥ ७ ॥
मानवो विंशतिः प्रोक्तस्तत्पुमानिति चापरः। वैकुण्ठश्चापरस्तद्वल्लक्ष्मीकल्पस्तथा परः ॥ ८ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

चतुर्विंशतिमः प्रोक्तः सावित्रीकल्पसंज्ञकः। पञ्चविंशस्ततो घोरो वाराहस्तु ततोऽपरः ॥ ९ ॥
सप्तविंशोऽथ वैराजो गौरीकल्पस्तथापरः। माहेश्वरस्तु स प्रोक्तस्त्रिपुरं यत्र घातितम् ॥ १० ॥
पितृकल्पस्तथान्ते तु या कुहूर्ब्रह्मणः पुरा। इत्येवं ब्रह्मणो मासः सर्वपातकनाशनः ॥ ११ ॥

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—अब मैं कल्पोंका वर्णन कर रहा हूँ, जो महान् पातकोंको नष्ट करनेवाला है और जिसका अनुकीर्तन करनेसे वेदाध्ययनका पुण्य प्राप्त होता है। उनमें प्रथम श्वेतकल्प, दूसरा नीललोहित, तीसरा वामदेव, चौथा रथन्तरकल्प, पाँचवाँ रौरवकल्प, छठा देवकल्प, सातवाँ बृहत्कल्प, आठवाँ कंदर्पकल्प, नवाँ सद्यः-कल्प, दसवाँ ईशानकल्प, ग्यारहवाँ तमःकल्प, बारहवाँ सारस्वतकल्प, तेरहवाँ उदानकल्प, चौदहवाँ गारुडकल्प तथा पंद्रहवाँ कौर्मकल्प कहा गया है। इस दिन ब्रह्माजीकी पूर्णिमातिथि थी। सोलहवाँ नारसिंहकल्प, सत्रहवाँ समान-कल्प, अठारहवाँ आग्नेयकल्प, उन्नीसवाँ सोमकल्प, बीसवाँ मानवकल्प, इक्कीसवाँ तत्पुमान्‌कल्प, बाईसवाँ वैकुण्ठकल्प, तेईसवाँ लक्ष्मीकल्प, चौबीसवाँ सावित्रीकल्प, पचीसवाँ घोरकल्प, छब्बीसवाँ वाराहकल्प, सत्ताईसवाँ वैराजकल्प, अट्ठाईसवाँ गौरीकल्प, उन्तीसवाँ माहेश्वरकल्प कहा गया है, जिसमें त्रिपुरका विनाश हुआ था। तीसवाँ पितृकल्प है, जो प्राचीन कालमें ब्रह्माकी अमावस्या थी। इस प्रकार ये सभी तीसों कल्प ब्रह्माके एक मास हैं, जो सभी पातकोंका नाश करनेवाले हैं ॥ २—११ ॥

आदावेव हि माहात्म्यं यस्मिन् यस्य विधीयते। तस्य कल्पस्य तन्नाम विहितं ब्रह्मणा पुरा ॥ १२ ॥
संकीर्णास्तामसाश्चैव राजसाः सात्त्विकास्तथा। रजस्तमोमयास्तद्वदेते त्रिंशदुदाहृताः ॥ १३ ॥
संकीर्णेषु सरस्वत्याः पितॄणां च्युष्टिरुच्यते।
अग्नेः शिवस्य माहात्म्यं तामसेषु दिवाकरे। राजसेषु च माहात्म्यमधिकं ब्रह्मणः स्मृतम् ॥ १४ ॥
यस्मिन् कल्पे तु यत्प्रोक्तं पुराणं ब्रह्मणा पुरा। तस्य तस्य तु माहात्म्यं तत्स्वरूपेण वर्ण्यते ॥ १५ ॥
सात्त्विकेष्वधिकं तद्वद् विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम्। तथैव योगसंसिद्धा गमिष्यन्ति परां गतिम् ॥ १६ ॥
ब्राह्मं पाद्ममिमं यस्तु पठेत् पर्वणि पर्वणि। तस्य धर्मे मतिर्ब्रह्मा करोति विपुलां श्रियम् ॥ १७ ॥
यस्तु दद्यादिमान् कृत्वा हैमान् पर्वणि पर्वणि। ब्रह्मविष्णुपुरे वासं मुनिभिः पूज्यते दिवि ॥ १८ ॥
सर्वपापक्षयकरं कल्पदानं यतो भवेत्। मुनिरूपांस्ततः कृत्वा दद्यात् कल्पान् विचक्षणः ॥ १९ ॥
पुराणसंहिता चेयं तव भूप मयोदिता। सर्वपापहरा नित्यमारोग्यश्रीफलप्रदा ॥ २० ॥
ब्रह्मसंवत्सरशतादेकाहं शैवमुच्यते। शिववर्षशतादेकं निमेषं वैष्णवं विदुः ॥ २१ ॥
यदा स विष्णुर्जागर्ति तदेदं चेष्टते जगत्। यदा स्वपिति शान्तात्मा तदा सर्वं निमीलति ॥ २२ ॥

प्रारम्भमें ही जिस कल्पमें जिसका माहात्म्य वर्णन किया गया है, उसी आधारपर ब्रह्माने उस कल्पका वह नाम रखा है। ये तीसों कल्प संकीर्ण, तामस, राजस, सात्त्विक तथा रजस्तमोमय—इन भेदोंसे युक्त कहे गये हैं। संकीर्ण कल्पोंमें सरस्वती तथा पितरोंका, तामसमें अग्नि, सूर्य तथा शिवका और राजसमें ब्रह्माका अधिक माहात्म्य कहा गया है। प्राचीन कालमें ब्रह्माने जिस कल्पमें जिस पुराणको कहा है, उसी कल्पका माहात्म्य उस पुराणमें वर्णन किया गया है। सात्त्विक कल्पोंमें उत्तम रूपसे विष्णु भगवान्‌का माहात्म्य वर्णित है। योगसे सिद्धि प्राप्त करनेवाले लोग उनके पाठसे परमगतिको प्राप्त होते हैं। जो व्यक्ति प्रत्येक पर्वमें इन ब्रह्म तथा पद्म नामक पुराणोंका पाठ करता है, उसकी बुद्धिको ब्रह्मा धर्ममें लगाते हैं तथा उसे प्रचुर सम्पत्ति प्रदान करते हैं। जो व्यक्ति पर्व आनेपर इन्हें सोनेका बनवाकर दान करता है, वह ब्रह्मा तथा विष्णुके पुरमें निवास करते हुए स्वर्गमें मुनियोंद्वारा पूजित होता है; क्योंकि कल्पदान सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करनेवाला होता

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

है। विचक्षण पुरुषको इन कल्पोंको मुनिके समान स्वरूपवाला बनाकर दान करना चाहिये। राजन्! यह पुराण-संहिता, जो मैंने तुम्हें बताया है, सभी पापोंको नष्ट करनेवाली तथा नित्य आरोग्य एवं श्रीरूप फल प्रदान करनेवाली है। ब्रह्माका सौ वर्ष शिवका एक दिन तथा शिवका सौ वर्ष विष्णुका एक निमेष कहा जाता है। जब वे विष्णु जागते रहते हैं, तब यह जगत् भी चेष्टावान् रहता है और जब वे शान्त होकर शयन करते हैं, तब सारा जगत् शान्त हो जाता है॥ १२–२२॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वा देवदेवेशो मत्स्यरूपी जनार्दनः। पश्यतां सर्वभूतानां तत्रैवान्तरधीयत॥ २३॥
वैवस्वतो हि भगवान् विसृज्य विविधाः प्रजाः। स्वान्तरं पालयामास मार्तण्डकुलवर्धनः॥ २४॥
यस्य मन्वन्तरं चैतदधुना चानुवर्तते।
पुण्यं पवित्रमेतद् वः कथितं मत्स्यभाषितम्। पुराणं सर्वशास्त्राणां यदेतन्मूर्ध्नि संस्थितम्॥ २५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे कल्पानुकीर्त्तनं नाम नवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २९०॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! ऐसा कहकर मत्स्यरूपी देवदेवेश्वर जनार्दन सभी प्राणियोंके सामने वहीं अन्तर्हित हो गये। विवस्वान्‌के पुत्र मार्तण्ड-कुलवर्धन भगवान् मनु विविध प्रजाओंकी सृष्टि कर अपनी अवधितक उनका पालन करते रहे। उन्हींका यह मन्वन्तर अभीतक चला आ रहा है। इस प्रकार मैंने आपलोगोंसे मत्स्यभगवान्‌द्वारा कहे गये पुण्यप्रद पवित्र पुराणका वर्णन कर दिया। यह मत्स्यपुराण सभी शास्त्रोंमें शिरोभूषण-रूपसे अवस्थित है॥ २३–२५॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें कल्पानुकीर्तन नामक दो सौ नब्बेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २९०॥

दो सौ इक्यानबेवाँ अध्याय

मत्स्यपुराणकी अनुक्रमणिका

सूत उवाच

एतद् वः कथितं सर्वं यदुक्तं विश्वरूपिणा। मात्स्यं पुराणमखिलं धर्मकामार्थसाधनम्॥ १॥
यत्रादौ मनुसंवादो ब्रह्माण्डकथनं तथा। सांख्यं शारीरकं प्रोक्तं चतुर्मुखमुखोद्भवम्॥ २॥
देवासुराणामुत्पत्तिर्मारुतोत्पत्तिरेव च। मदनद्वादशी तद्वल्लोकपालाभिपूजनम्॥ ३॥
मन्वन्तराणामुद्देशो वैन्यराजाभिवर्णनम्। सूर्यवैवस्वतोत्पत्तिर्बुधसङ्गमनं तथा॥ ४॥
पितृवंशानुकथनं श्राद्धकालस्तथैव च। पितृतीर्थप्रवासश्च सोमोत्पत्तिस्तथैव च॥ ५॥
कीर्तनं सोमवंशस्य ययातिचरितं तथा। कार्तवीर्यस्य माहात्म्यं वृष्णिवंशानुकीर्तनम्॥ ६॥
भृगुशापस्तथा विष्णोर्दशत्यशापस्तथैव च। कीर्तनं पुरुवंशस्य वंशो हौताशनस्तथा॥ ७॥
पुराणकीर्तनं तद्वत् क्रियायोगस्तथैव च। व्रतं नक्षत्रसंख्याकं मार्तण्डशयनं तथा॥ ८॥
कृष्णाष्टमीव्रतं तद्वद् रोहिणीचन्द्रसंज्ञितम्। तडागविधिमाहात्म्यं पादपोत्सर्ग एव च॥ ९॥
सौभाग्यशयनं तद्वदगस्त्यव्रतमेव च। तथानन्ततृतीया तु रसकल्याणिनी तथा॥ १०॥
आर्द्रानन्दकरी तद्वद् व्रतं सारस्वतं पुनः। उपरागाभिषेकश्च सप्तमीस्नपनं पुनः॥ ११॥
भीमाख्या द्वादशी तद्वदनङ्गशयनं तथा। अशून्यशयनं तद्वत् तथैवाङ्गारकव्रतम्॥ १२॥
सप्तमीसप्तकं तद्वद् विशोकद्वादशी तथा। मेरुप्रदानं दशधा ग्रहशान्तिस्तथैव च॥ १३॥
ग्रहस्वरूपकथनं तथा शिवचतुर्दशी। तथा सर्वफलत्यागः सूर्यवारव्रतं तथा॥ १४॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! विश्वस्वरूप मत्स्य-भगवान्‌ने धर्म, अर्थ और कामके साधनभूत जिस सम्पूर्ण मत्स्यपुराणका वर्णन किया था, वह सब मैंने आपलोगोंको बतला दिया । उसमें आदिमें मनुका संवाद, ब्रह्माण्डका वर्णन तथा चतुर्मुख ब्रह्माके मुखसे उद्भूत शारीरक सांख्यका वर्णन है । तत्पश्चात् देवताओं और असुरोंकी उत्पत्ति, मरुद्गणोंकी उत्पत्ति, मदनद्वादशी, लोकपालोंका पूजन, मन्वन्तरोंका उद्देश्य, राजा पृथुका वर्णन, सूर्य और वैवस्वत मनुकी उत्पत्ति, बुधका इलासे संयोग, पितृवंशका वर्णन, श्राद्धके कालका निर्णय, पितृतीर्थोंमें प्रवास, सोमकी उत्पत्ति, सोमवंशका वर्णन, ययातिका चरित्र, कार्तवीर्य अर्जुनका माहात्म्य, वृष्णि-वंशका वर्णन, भृगुशाप, विष्णुका दैत्योंको शाप, पुरुषेशका कीर्तन, अग्नि-वंशका वर्णन, पुराणोंका वर्णन, क्रियायोगका विवेचन, नक्षत्रसंज्ञकव्रत, मार्तण्ड-शयन, कृष्णाष्टमीव्रत, रोहिणीचन्द्रव्रत, तडागविधिका माहात्म्य, पादपोत्सर्ग-विधि, सौभाग्यशयनव्रत, अगस्त्य-व्रत, अनन्ततृतीयाव्रत, रसकल्याणिनीव्रत, आर्द्रानन्दकरी-व्रत, सारस्वतव्रत, उपरागाभिषेकव्रत, सप्तमीस्नपन-व्रत, भीमद्वादशीव्रत, अनङ्गशयनव्रत, अशून्यशयनव्रत, अङ्गारकव्रत, सप्तमीसप्तकव्रत, विशोकद्वादशीव्रत, दस प्रकारके मेरुओंके दानकी विधि, ग्रहशान्ति, ग्रहोंके स्वरूपका कथन, शिवचतुर्दशीव्रत, सर्वफलत्यागव्रत तथा सूर्यवार-व्रतका निरूपण हुआ है ॥ १—१४ ॥

संक्रान्तिस्नपनं तद्वद् विभूतिद्वादशीव्रतम् । षष्टिव्रतानां माहात्म्यं तथा स्नानविधिक्रमः ॥ १५ ॥
प्रयागस्य तु माहात्म्यं सर्वतीर्थानुकीर्तनम् । ऐलाश्रमव्रतं तद्वद् द्वीपलोकानुकीर्तनम् ॥ १६ ॥
सूर्यचन्द्रगतिस्तद्वदादित्यरथवर्णनम् । तथान्तरिक्षचारश्च ध्रुवमाहात्म्यमेव च ॥ १७ ॥
भुवनानि सुरेन्द्राणां त्रिपुराघोषणं तथा । पितृपिण्डदमाहात्म्यं मन्वन्तरविनिर्णयः ॥ १८ ॥
वज्राङ्गस्य तु सम्भूतिस्तारकोत्पत्तिरेव च । तारकासुरमाहात्म्यं ब्रह्मदेवानुमन्त्रणम् ॥ १९ ॥
पार्वतीसम्भवस्तद्वत् तथा शिवतपोवनम् । अनङ्गदेहदाहस्तु रतिशोकस्तथैव च ॥ २० ॥
गौरीतपोवनं तद्वद् विश्वनाथप्रसादनम् । पार्वतीऋषिसंवादस्तथैवोद्वाहमङ्गलम् ॥ २१ ॥
कुमारसम्भवस्तद्वत् कुमारविजयस्तथा । तारकस्य वधो घोरो नरसिंहोपवर्णनम् ॥ २२ ॥
पद्मोद्भवविसर्गस्तु तथैवान्धकघातनम् । वाराणस्यास्तु माहात्म्यं नर्मदायास्तथैव च ॥ २३ ॥
प्रवरानुक्रमस्तद्वत् पितृगाथानुकीर्तनम् । तथोभयमुखीदानं दानं कृष्णाजिनस्य च ॥ २४ ॥
तथा सावित्र्युपाख्यानं राजधर्मास्तथैव च । यात्रानिमित्तकथनं स्वप्नमाङ्गल्यकीर्तनम् ॥ २५ ॥
वामनस्य तु माहात्म्यं तथैवाथ वराहजम् । क्षीरोदमथनं तद्वत् कालकूटाभिशासनम् ॥ २६ ॥
देवासुरविमर्दश्च वास्तुविद्यास्तथैव च । प्रतिमालक्षणं तद्वद् देवताराधनं ततः ॥ २७ ॥
प्रासादलक्षणं तद्वन्मण्डपानां तु लक्षणम् ।
भविष्यद्राजनिर्देशो महादानानुकीर्तनम् । कल्पानुकीर्तनं तद्वद् ग्रन्थानुक्रमणी तथा ॥ २८ ॥

उसी प्रकार संक्रान्तिस्नपनव्रत, विभूतिद्वादशीव्रत, साठ व्रतोंका माहात्म्य, स्नानविधिका क्रम, प्रयागका माहात्म्य, समस्त तीर्थोंका वर्णन, ऐलाश्रमव्रत, द्वीप और लोकोंका कथन, सूर्य और चन्द्रमाकी गतिका वर्णन, आदित्यके रथका वर्णन, उसका अन्तरिक्षमें गमन, ध्रुवका माहात्म्य, सुरेन्द्रोंके भुवन, त्रिपुरके प्रति घोषणा, पितरोंके पिण्डदानका माहात्म्य, मन्वन्तरोंका निर्णय, वज्राङ्गकी उत्पत्ति, तारककी उत्पत्ति, तारकासुरकी प्रशंसा, ब्रह्मा और देवताओंकी मन्त्रणा, पार्वतीकी उत्पत्ति, शिवका तपोवन-गमन, कामदेवके शरीरका दाह, रतिका शोक, पार्वतीका तपोवन-गमन, विश्वनाथकी प्रसन्नता, पार्वती और सप्तर्षियोंका संवाद, पार्वतीका विवाहोत्सव, कुमार स्कन्दकी उत्पत्ति, कुमारकी विजय, तारकासुरका भयंकर वध, नरसिंहावतारका वर्णन, पद्मोद्भवका विसर्ग,

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

अन्धकासुरका वध, वाराणसीका माहात्म्य, नर्मदाका माहात्म्य, प्रवरोंका अनुक्रम, पितृगाथाका वर्णन, उभयमुखी दान तथा कृष्णमृगचर्मके दानका वर्णन, सावित्रीका उपाख्यान, राजधर्मका वर्णन, यात्राके निमित्तका कथन, शुभ-अशुभ स्वप्नों और शकुनोंका निरूपण, वामनका माहात्म्य, वराहका माहात्म्य, क्षीरसागरका मन्थन, कालकूटका दमन, देवों और असुरोंका संग्राम, वास्तुविद्याका कथन, प्रतिमाओंके लक्षण, देवताओंकी आराधना, प्रासादोंका लक्षण, मण्डपोंका लक्षण, भविष्यत्कालीन राजाओंका वर्णन, महादानोंका कथन, कल्पोंका वर्णन तथा ग्रन्थोंकी अनुक्रमणिकाका कथन हुआ है ॥ १५–२८ ॥

एतत् पवित्रमायुष्यमेतत् कीर्तिविवर्धनम् । एतत् पवित्रं कल्याणं महापापहरं शुभम् ॥ २९ ॥
अस्मात् पुराणात् सुकृतं नराणां तीर्थावलीनामवगाहनानाम् ।
समस्तधर्माचरणोद्भवानां सदैव लाभश्च महाफलानाम् ॥ ३० ॥
एतत् पुराणं परमं सर्वदोषविघातकम् । मत्स्यरूपेण हरिणा कथितं मनवेऽर्णवे ॥ ३१ ॥
अस्मात् पुराणादपि पादमेकं पठेत् तु यः सोऽपि विमुक्तपापः ।
नारायणस्यास्पदमेति नूनमनङ्गवद् दिव्यवपुः सुखी स्यात् ॥ ३२ ॥
पुराणमेतत् सकलं रहस्यं श्रद्धान्वितः पुण्यमिदं शृणोति ।
स चाश्वमेधावभृथप्रभावं फलं समाप्नोति हरप्रसादात् ॥ ३३ ॥
शिवं विष्णुं समभ्यर्च्य ब्रह्माणं सदिवाकरम् ।
श्लोकं श्लोकार्धपादं वा श्रद्धया यः शृणोति वा । श्रावयेद् वापि धर्मज्ञस्तत्फलं शृणुत द्विजाः ॥ ३४ ॥
ब्राह्मणो लभते विद्यां क्षत्रियो लभते महीम् । वैश्यो धनमवाप्नोति सुखं शूद्रस्तु विन्दति ॥ ३५ ॥
आयुष्मान् पुत्रवांश्चैव लक्ष्मीवान् पापवर्जितः । श्रुत्वा पुराणमखिलं शत्रुभिश्चापराजितः ॥ ३६ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽनुक्रमणिका नामैकनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९१ ॥

यह पुराण परम पवित्र, आयु प्रदान करनेवाला, कीर्तिवर्धक, परम पावन, कल्याणकारक, बड़े-बड़े पापोंको नष्ट करनेवाला और मङ्गलमय है । इस पुराणसे मनुष्योंको सदैव पुण्य तथा समस्त तीर्थोंमें स्नान करने और सम्पूर्ण धर्माचरणसे उत्पन्न हुए महान् फलोंका लाभ प्राप्त होता है । यह परमोत्तम पुराण सम्पूर्ण दोषोंका नाशक है । इसे मत्स्यरूपधारी श्रीहरिने प्रलयकालमें एकार्णवके जलमें मनुके प्रति कहा था । जो मनुष्य इस पुराणके एक श्लोकके एक चरणका भी पाठ करता है, वह भी पापोंसे मुक्त होकर सुखी हो जाता है तथा कामदेवकी भाँति दिव्य शरीर धारणकर निश्चय ही नारायणके निवासस्थान वैकुण्ठमें चला जाता है । जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक इस पुण्यप्रद एवं रहस्यमय सम्पूर्ण पुराणको सुनता है, वह शंकरजीकी कृपासे अश्वमेध-यज्ञके अन्तमें होनेवाले अवभृथ-स्नानके सदृश प्रभावशाली फलको प्राप्त करता है । द्विजवरो ! जो धर्मज्ञ मनुष्य शिव, विष्णु, ब्रह्मा और सूर्यकी अर्चना करके श्रद्धापूर्वक इस पुराणके एक श्लोक, आधे श्लोक अथवा एक चरणको सुनता है अथवा दूसरेको सुनाता है, उसे जो फल प्राप्त होता है, उसे सुनिये । वह ब्राह्मण हो तो विद्या, क्षत्रिय हो तो पृथ्वी, वैश्य हो तो धन और शूद्र हो तो सुख प्राप्त करता है । सम्पूर्ण पुराण सुननेवाला पापरहित होकर आयुष्मान्, पुत्रवान् और लक्ष्मीवान् हो जाता है तथा उसे शत्रु पराजित नहीं कर सकते ॥ २९–३६ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अनुक्रमणिका नामक दो सौ इक्यानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २९१ ॥

Sri Vidyanidhi Book Centre, Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

पुराण-श्रवण-कालमें पालनीय धर्म

श्रद्धाभक्तिसमायुक्ता नान्यकार्येषु लालसाः । वाग्यताः शुचयोऽव्यग्राः श्रोतारः पुण्यभागिनः ॥ १ ॥
अभक्त्या ये कथां पुण्यां शृण्वन्ति मनुजाधमाः । तेषां पुण्यफलं नास्ति दुःखं स्याज्जन्मजन्मनि ॥ २ ॥
पुराणं ये च सम्पूज्य ताम्बूलाद्यैरुपायनैः । शृण्वन्ति च कथां भक्त्याऽदरिद्राः स्युर्न संशयः ॥ ३ ॥
कथायां कीर्त्यमानायां ये गच्छन्त्यन्यतो नराः । भोगान्तरे प्रणश्यन्ति तेषां दाराश्च सम्पदः ॥ ४ ॥
सोष्णीषमस्तका ये च कथां शृण्वन्ति पावनीम् । ते बलाकाः प्रजायन्ते पापिनो मनुजाधमाः ॥ ५ ॥
ताम्बूलं भक्षयन्तो ये कथां शृण्वन्ति पावनीम् । श्वविष्ठां खादयन्त्येतान्नयन्ति यमकिंकराः ॥ ६ ॥
ये च तुङ्गासनारूढाः कथां शृण्वन्ति दाम्भिकाः । अक्षय्यान्नरकान् भुक्त्वा ते भवन्त्येव वायसाः ॥ ७ ॥
ये वै वरासनारूढा ये च मध्यासनस्थिताः । शृण्वन्ति सत्कथां ते वै भवन्त्यर्जुनपादपाः ॥ ८ ॥
असम्प्रणम्य शृण्वन्ति विषभक्षा भवन्ति ते । तथा शयानाः शृण्वन्ति भवन्त्यजगरा नराः ॥ ९ ॥

जो लोग श्रद्धा और भक्तिसे सम्पन्न, अन्य कार्योंकी लालसासे रहित, मौन, पवित्र और शान्तचित्तसे (पुराणकी कथाको) श्रवण करते हैं, वे ही पुण्यके भागी होते हैं। जो अधम मनुष्य भक्तिरहित होकर पुण्यकथाको सुनते हैं, उन्हें पुण्यफल तो मिलता नहीं, उलटे प्रत्येक जन्ममें दुःख भोगना पड़ता है। जो लोग ताम्बूल, पुष्प, चन्दन आदि पूजन-सामग्रियोंद्वारा पुराणकी भलीभाँति पूजा करके भक्तिपूर्वक कथा सुनते हैं, वे निःसंदेह दरिद्रतारहित अर्थात् धनवान् होते हैं। जो मनुष्य कथा होते समय अन्य कार्यके लिये वहाँसे उठकर अन्यत्र चले जाते हैं, उनकी पत्नी और सम्पत्ति नष्ट हो जाती है। जो पापी अधम मनुष्य मस्तकपर पगड़ी बाँधकर (या टोपी लगाकर) पवित्र कथाको सुनते हैं, वे (दूसरे जन्ममें) बगुला होकर उत्पन्न होते हैं। जो लोग पान चबाते हुए पवित्र कथाको सुनते हैं, उन्हें कुत्तेका मल खाना पड़ता है और यमदूत उन्हें यमपुरीमें ले जाते हैं। जो ढोंगी मनुष्य (व्यासासनसे) ऊँचे आसनपर बैठकर कथा सुनते हैं, वे ही अक्षय नरकोंका भोग करके कौआ होते हैं। जो लोग (व्यासासनसे) श्रेष्ठ आसनपर अथवा मध्यम आसनपर बैठकर उत्तम कथाको श्रवण करते हैं, वे अर्जुन नामक वृक्ष होते हैं। जो मनुष्य (पुराणकी पुस्तक और व्यासको) बिना प्रणाम किये ही कथा सुनते हैं, वे विषभक्षी होते हैं तथा जो लोग सोते हुए कथा सुनते हैं, वे अजगर साँप होते हैं ॥ १-९ ॥

यः शृणोति कथां वक्तुः समानासनसंस्थितः । गुरुतल्पसमं पापं सम्प्राप्य नरकं व्रजेत् ॥ १० ॥
ये निन्दन्ति पुराणज्ञान् कथां वै पापहारिणीम् । ते वै जन्मशतं मर्त्याः सूकराः सम्भवन्ति हि ॥ ११ ॥
कथायां कीर्त्यमानायां ये वदन्ति दुरुत्तरम् । ते गर्दभाः प्रजायन्ते कृकलासास्तथैव च ॥ १२ ॥
कदाचिदपि ये पुण्यां न शृण्वन्ति कथां नराः । ते भुक्त्वा नरकान् घोरान् भवन्ति वनसूकराः ॥ १३ ॥
ये कथामनुमोदन्ते कीर्त्यमानां नरोत्तमाः । अशृण्वन्तोऽपि ते यान्ति शाश्वतं परमं पदम् ॥ १४ ॥
कथायां कीर्त्यमानायां विघ्नं कुर्वन्ति ये शठाः । कोट्यब्दं नरकान् भुक्त्वा भवन्ति ग्रामसूकराः ॥ १५ ॥
ये श्रावयन्ति मनुजान् पुण्यां पौराणिकीं कथाम् । कल्पकोटिशतं साग्रं तिष्ठन्ति ब्रह्मणः पदे ॥ १६ ॥
आसनार्थं प्रयच्छन्ति पुराणज्ञस्य ये नराः । कम्बलाजिनवासांसि मञ्चं फलकमेव च ॥ १७ ॥
स्वर्गलोकं समासाद्य भुक्त्वा भोगान् यथेप्सितान् । स्थित्वा ब्रह्मादिलोकेषु पदं यान्ति निरामयम् ॥ १८ ॥

इसी प्रकार जो वक्ताके समान आसनपर बैठकर कथा सुनता है, वह गुरु-शय्या-गमनके समान पापका भागी होकर नरकगामी होता है। जो मनुष्य पुराणोंके ज्ञाता (व्यास) और पापोंको हरण करनेवाली कथाकी निन्दा करते हैं, वे सौ जन्मोंतक सूकर-योनिमें उत्पन्न होते हैं। कथा होते समय जो लोग वक्ताको बुरा उत्तर देते हैं, वे गदहा तथा गिरगिटकी योनिमें पैदा होते हैं। जो मनुष्य इस पुण्य कथाको कभी भी नहीं सुनते,

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

वे घोर नरकोंका भोग करके वनैले सूअर होते हैं। जो नरश्रेष्ठ कही जाती हुई कथाका अनुमोदन करते हैं, वे कथा न सुननेपर भी अविनाशी परम पदको प्राप्त होते हैं। जो दुष्ट कही जाती हुई कथामें विघ्न पैदा करते हैं, वे करोड़ों वर्षोंतक नरकोंका भोग करके अन्तमें ग्रामीण सूअर होते हैं। जो लोग साधारण मनुष्योंको पुराणसम्बन्धिनी पुण्य कथा सुनाते हैं, वे सौ करोड़ कल्पोंसे भी अधिक समयतक ब्रह्मलोकमें निवास करते हैं। जो मनुष्य पुराणके ज्ञाता वक्ताको आसनके लिये कम्बल, मृगचर्म, वस्त्र, सिंहासन और चौकी प्रदान करते हैं, वे स्वर्गलोकमें जाकर अभीष्ट भोगोंका उपभोग करनेके बाद ब्रह्मा आदिके लोकोंमें निवास कर अन्तमें निरामय पदको प्राप्त होते हैं ॥ १०-१८ ॥

पुराणस्य प्रयच्छन्ति ये वरासनमुत्तमम्। भोगिनो ज्ञानसम्पन्ना भवन्ति च भवे भवे ॥ १९ ॥
ये महापातकैर्युक्ता उपपातकिनश्च ये। पुराणश्रवणादेव ते प्रयान्ति परं पदम् ॥ २० ॥
एवंविधविधानेन पुराणं शृणुयान्नरः। भुक्त्वा भोगान् यथाकामं विष्णुलोकं प्रयाति सः॥ २१ ॥
पुस्तकं पूजयेत् पश्चाद् वस्त्रालंकरणादिभिः। वाचकं विप्रसंयुक्तं पूजयीत प्रयत्नवान् ॥ २२ ॥
गोभूमिहेमवस्त्राणि वाचकाय निवेदयेत्। ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चान्मण्डलड्डुकपायसैः॥ २३ ॥
त्वं व्यासरूपी भगवन् बुद्ध्या चाङ्गिरसोपमः। पुण्यवाञ्शीलसम्पन्नः सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥ २४ ॥
प्रसन्नमानसं कुर्याद् दानमानोपचारतः। त्वत्प्रसादादिमान् धर्मान् सम्पूर्णाञ्श्रुतवानहम् ॥ २५ ॥
एवं प्रार्थनकं कृत्वा व्यासस्य परमात्मनः। यशस्वी च भवेन्नित्यं यः कुर्यादेवमादरात् ॥ २६ ॥
नारदोक्तानिमान् धर्मान् यः कुर्यान्नियतेन्द्रियः। कृत्स्नं फलमवाप्नोति पुराणश्रवणस्य वै ॥ २७ ॥

इसी तरह जो लोग पुराणकी पुस्तकके लिये उत्तम श्रेष्ठ आसन प्रदान करते हैं, वे प्रत्येक जन्ममें भोगोंका उपभोग करनेवाले एवं ज्ञानी होते हैं। जो महापातकोंसे युक्त होते हैं अथवा जो उपपातकी होते हैं, वे सभी पुराणकी कथा सुननेसे ही परम पदको प्राप्त हो जाते हैं। जो मनुष्य इस प्रकारके नियम-विधानसे पुराणकी कथा सुनता है, वह स्वेच्छानुसार भोगोंको भोगकर विष्णुलोकको चला जाता है। कथा समाप्त होनेपर श्रोता पुरुष प्रयत्नपूर्वक वस्त्र और अलंकार आदिद्वारा पुस्तककी पूजा करे। तत्पश्चात् सहायक ब्राह्मणसहित वाचककी पूजा करे। उस समय वाचकको गौ, पृथ्वी, सोना और वस्त्र देना चाहिये। तदुपरान्त ब्राह्मणोंको मलाई, लड्डू और खीरका भोजन कराना चाहिये। तदनन्तर परमात्मा व्याससे प्रार्थना करे—'आप व्यासरूपी भगवान् बुद्धिमें बृहस्पतिके समान, पुण्यवान्, शीलसम्पन्न, सत्यवादी और जितेन्द्रिय हैं, आपकी कृपासे मैंने इन सम्पूर्ण धर्मोंको सुना है।' इस प्रकार प्रार्थना कर दान, मान और सेवासे उनके मनको प्रसन्न करना चाहिये। जो मनुष्य इस प्रकार आदरपूर्वक करता है, वह सदा यशस्वी होता है। जो जितेन्द्रिय मनुष्य देवर्षि नारदद्वारा कहे गये इन धर्मोंका पालन करता है, वह पुराण-श्रवणका सम्पूर्ण फल पाता है ॥

सूत उवाच

मत्स्यरूपी स भगवान् मनवे बुद्धिशालिने। अवपोद्घातसहितमुक्त्वा ह्यन्तर्दधौ तदा ॥ २८ ॥

इति पुराणश्रवणकालीनधर्माः ।

इति श्रीमद्द्वैपायनमुनिप्रणीतं मत्स्यपुराणं समाप्तम् ।

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! उस समय मत्स्यरूपी भगवान् बुद्धिशाली मनुसे आदि-अन्त-सहित इस पुराणको कहकर अन्तर्हित हो गये ॥ २८ ॥

इस प्रकार श्रीमद्द्वैपायनमुनिप्रणीत मत्स्यपुराण समाप्त हुआ ॥

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

॥ श्रीहरिः ॥

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

'कल्याण'के आगामी ६०वें वर्ष १९८६का विशेषाङ्क

'संकीर्तनाङ्क'

भारतीय संस्कृतिमें अपने शास्त्रों, ऋषि-महर्षियों, संत-महात्माओं और भगवद्भक्तोंने अनुभव कर यह निष्कर्ष निकाला और उद्घोषित किया कि कलियुगमें मनुष्यके कल्याणका मुख्यतम सर्वसुलभ और सरल साधन श्रीभगवन्नाम-संकीर्तन ही है। आज देशकी विषम परिस्थितियोंमें तथा विश्वके अशान्त वातावरणमें (जब कि जगत्‌में जीवनकी जटिलताएँ और तनाव बढ़ते जा रहे हैं, सम्पूर्ण मानवजाति शान्तिकी खोजमें व्याकुल है, ऐसे समयमें) 'कल्याण'ने यह निर्णय किया है कि अगले वर्ष १९८६ई० में जनकल्याणार्थ विशेषाङ्कके रूपमें 'संकीर्तनाङ्क' प्रकाशित किया जाय, जिसमें श्रीभगवन्नाम-संकीर्तनसे सम्बद्ध गूढ़ रहस्यों, महत्त्वों, संकीर्तनसे श्रेयःस्वरूप भगवत्-प्राप्ति करनेवाले संत-महात्माओंके चरित्रोंकी विशेषताओं एवं संकीर्तनकी समसामयिक उपयोगिताका सरल-सुगम दिग्दर्शन साधनरूपमें कराया जाय। इस साधनके प्रचार-प्रसारसे प्राणिमात्रका वास्तविक कल्याण तो होगा ही, साथ ही आजके भौतिक वातावरणमें विश्व-प्रेम, सद्भाव और सौहार्द भी बढ़ेंगे तथा भगवान्‌की कृपासे मानव-मात्रमें सद्‌वृत्तियोंका उदय होगा एवं विश्व-कल्याण, विश्व-शान्तिकी दिशामें प्रगति होगी।

एक विशेष प्रसन्नताकी बात यह है कि श्रीभगवन्नाम-संकीर्तनके समर्थ प्रेरक संत श्रीचैतन्य महाप्रभुका पञ्चशती-समारोह भी इसी वर्ष मनाया जा रहा है। अतः महाप्रभुका संकीर्तन-संदेश जन-जनतक पहुँच जाय—यह भी हमारा अन्यतम लक्ष्य है।

इन सबके लिये हम भारतके गण्य-मान्य आचार्य, संत-महात्माओं, अधिकारी मनीषी लेखकों एवं सङ्कीर्तन-प्रेमियोंसे सहयोगकी प्रार्थना करते हैं। हम संकीर्तनके प्रत्येक पक्षपर पठनीय, विचार्य, प्रेरक एवम् अनुष्ठेय सामग्रीका संकलन इस विशेषाङ्कमें देना चाहते हैं। अतः विद्वान् लेखकोंकी सेवामें विशेषाङ्ककी एक संक्षिप्त वाञ्छनीय सूची दिशा-निर्देशके ढंगपर यहाँ दी जा रही है। हमारी आपसे विनम्र प्रार्थना है कि आप अपनी रचना ३१ जुलाई १९८५ के पूर्व अवश्य भेज देनेकी कृपा करें।

—राधेश्याम खेमका
(सम्पादक)

संकीर्तनाङ्ककी संक्षिप्त विषय-सूची

१–संकीर्तनकी शास्त्रीय परिभाषा
२–कीर्तन-संकीर्तनका विवेचन
३–कलिजुग केवल हरि गुन गाहा
४–संकीर्तनमें नाम-महिमा
५–नाम-वन्दना, नाम-स्तुति
६–'कीर्तनीयः सदा हरिः'
७–नाम-संकीर्तनके विविध स्वरूप और महत्त्व
८–नामके साथ लीला, गुण, रूप और चरित्र-कीर्तनका महत्त्व
९–'कलौ तद्धरिकीर्तनात्'
१०–अन्य भक्ति-साधनोंकी अपेक्षा संकीर्तनका वैशिष्ट्य
११–कीर्तनका नवधा भक्तिमें स्थान और महत्त्व
१२–संकीर्तनमें तन्मयता और समाधि
१३–संकीर्तनमें भगवद्दर्शन और भगवत्-साक्षात्कार
१४–संकीर्तनसे योगावस्थाकी प्राप्ति

कृ० पृ० उ०

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri

CC-O. In Public Domain. Digitized by eGangotri

मिलनेका पता

गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

Sri Vidyabharathi Book Centre, Sringeri